CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

1.2

कठोपनिषद्

जीवन-यज्ञ विज्ञान

विमला ठकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह संवाद मित्रों तथा उनकी मित्र विमला के बीच हैं। आप चाहें तो इन्हें आचार्य एवं शिष्य के बीच के संवाद कह सकते हैं।

मैं आपके साथ एक अपारम्परिक दृष्टिकोण बाँट रही हूँ।.... मैं आपके साथ इन प्राचीन ग्रन्थों के वैश्विक सार का प्रज्ञान, जीवन का आत्मिक मूलतत्त्व बाँट रही हूँ।

मेरे मित्रों, धर्म का सार सत्य की व्यक्तिगत खोज है। वह संगठित धर्मों व्दारा पेश किये गये, बने–बनाये सत्यों अथवा व्यवहार के प्रतिमानों को स्वीकार करना नहीं है। इससे तो इस नगरी में बसी मूल प्रज्ञा का अपमान करना होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कठोपनिषद्

जीवन-यज्ञ विज्ञान

विमला ठकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

RHS-B

कठोपनिषद्

जीवन-यज्ञ विज्ञान

संवाद - श्री विमला ठकार

सम्पादन एवं अनुवाद
डॉ. तेजिन्दर वालिया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

KATHOPANISHAD
JĪVAN YAJÑĀ VIJÑĀNA

कठोपनिषद्
जीवन-यज्ञ विज्ञान

(डलहौज़ी, १९९५, मूल अंग्रेज़ी संवादों का अनुवाद)

प्रथम संस्करण जनवरी, २००४.

© विमल प्रकाशन ट्रस्ट

'संतकृपा', पहली मंज़िल,
१०३, रत्नम टॉवर्स,
चीफ जस्टिस के बंगले के पीछे,
जर्जीज़ बंगलो रोड,
बोडकदेव, अहमदाबाद-३८००५४.

प्रकाशक : डॉ. स्वर्णलता भिशीकर
डॉ. तेजिन्दर वालिया
विमल प्रकाशन ट्रस्ट के लिये

कंपोझिंग : श्री ग्राफिक्स
भिलार, पांचगणी.
फोन : (०२१६८) २५०२७७

मुखपृष्ट : श्री. एस. व्ही. बोंगाले

मुद्रक : साई इंप्रेशन्स
१६, सुप्रभा कॉटेज,
पांचगणी - ४१२८०५.
फोन : (०२१६८) २४०६६४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समर्पण

डलहौज़ी, सितम्बर १९९५ । शिवकुल के सत्संग कक्ष में विमलाचार्य के साथ कठोपनिषद् के अध्ययन के लिये उपस्थित युरोप के योगाचार्य व अन्य जिज्ञासु । हिमालय की चोटियों का स्पर्श कर ब्रह्मविद्या के रहस्य उद्घोषित करते हुये श्री विमलाबहन के वचन ।

कठोपनिषद् के अनादि-अनंत सत्य को श्री विमलाजी की वाणी जीवन-योग की परिभाषा में संवादों का स्वरूप प्रदान करती । सत्य-प्रेम के पथिक को वह अपने ही अस्तित्व में यज्ञ-कर्म का आमंत्रण देती। नचिकेता, एक ब्रह्मविद्या के जिज्ञासु को, संबन्धो में संयम का मार्ग दिखा, वह मध्य मार्ग की दिशा प्रदान करती ।

इन संवादों के प्रवाह की विश्रांति के क्षणों में यज्ञों की भाषा ग्रहण कर पाने का प्रश्न उठाया गया । ऐसे में मात्र इतना ही कहना हुआ था- 'यह कुछ परिचित सा जान पड़ता है ।' देश-काल की सीमाओं का वेधन करती हुई श्री विमलबहन की दृष्टि ने वाणी में घुल कर कहा था-'यह तुम्हारे खून में है ।' संभव है, खून में पड़े अचेतन संबन्ध को एक चेतन स्वरूप देने के सहयोग के लिये ही, इस दूर-द्रष्टा ने अंग्रेज़ी में दिये जा रहे संवादों के हिन्दी अनुवाद का सुझाव दिया ।

श्री विमलाजी के आशीष को शिरोधार्य मानते हुये भी प्रश्न था कि साधना कर्म किस विध संभव हो? उस क्षण यह स्पष्ट न था कि एक आशीर्वाद अपने में ही अकल्पनीय संयोग एवं मार्ग समाये रहता है । उचित समय पर वह अनुकूल परिस्थितियाँ प्रकट करता चला जाता है ।

सन् १९९७ में कार्यभार से मुक्त होते ही, श्री जयश्री दोशी ने एकांतवास के लिये, पांचगणी में अपना निवास स्थान दिया । विमलाजी के प्रेम में ओत-प्रोत इस साधक ने एक अनुकूल परिवेश दिया तथा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अंग्रेज़ी के संवादों का अभिलेखन कर सम्पादन एवं अनुवाद के लिये आधार बनाया ।*

अनूदित संवादों को जब किसी संस्कृत एवं हिन्दी भाषा के योग्य ज्ञाता द्वारा जाँच लिये जाने का प्रश्न उठा, तो श्री विमलाजी ने डॉ. स्वर्णलता भिशीकर से भेंट करवा दी । भाषाओं में विद्वता के अतिरिक्त, उनकी साधक प्रवृत्ति के कारण अनुवाद का शुद्धीकरण सत्संग का शुभावसर बना । यदि पांचगणी के निवास स्थान ने अनिवार्य एकांत दिया, तो लताताई की कर्म भूमि–ज्ञान प्रबोधिनी–ने असीम आत्मीयता से हस्तलिखित प्रतिलिपि को एक ग्रन्थ का स्वरूप देने में सहयोग दिया । यहीं पर कॉम्प्यूटर प्रति तैयार की गयी ।

पांचगणी में कठोपनिषद् के साथ के इस संबन्ध को दक्षिणकाशी ने भी अपने स्नेहाशीष से वर्जित नहीं रखा । यहाँ की एक साधक मंडली ने प्रो. व्ही. व्ही. कोटबागे से भेंट करवा दी । प्रूफ शोधन के निमित्त से, हिन्दी साहित्य के इस प्राध्यापक का भी भाषा के शुद्धीकरण में योगदान रहा । प्रूफ शोधन में श्री मोहिनी भुटानी, डॉ. प्रज्ञा वाखले, श्री विनीता सक्सेना का अमूल्य योगदान रहा ।

इस ग्रन्थ रचना में, अनूदित संवादों के श्रोताओं का एक अनोखा योगदान रहा है । सहवास में जीने वाली बहनें तथा अन्य मित्रजन जिस एकाग्रता से श्रवण करते, वह भारतीय परम्परा के श्रोता–धर्म का स्मरण करवाता। यह स्वाभाविक था कि पठन–पाठन का प्रत्येक कर्म अनुवाद की संप्रेषणता को सहजता प्रदान करता चला गया । श्रोताओं की श्रवण–शक्ति, उनकी जिज्ञासा, उनके अन्दर पड़ा सत्य प्रेम, इस ग्रन्थ का एक मधुर अंग बन गया ।

श्री विमलाजी का सुझाव था कि अनुवाद के प्रकाशन के प्रश्न का विचार किये बिना अपना कर्म करना । अनुवाद सम्पूर्ण होने पर ही उन्होंने प्रकाशन का निर्णय लिया । डॉ. कपिलमीत बजाज ने प्रकाशन

* मूल अंग्रेज़ी में कठोपनिषद् के इन संवादों का अभी प्रकाशन नहीं हुआ है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के लिये धनराशि, एक सहज विश्वास के साथ भेंट कर दी । मित्रों के सहयोग से ही मुखपृष्ठ तैयार हुआ, उन्हींके सहयोग से पांचगणी में ही मुद्रण का कार्य सम्पन्न हुआ।

इस यज्ञ कर्म में अनेकों मित्रों ने स्नेह अर्पण किया है । उन्हें धन्यवाद देने का मेरा अधिकार नहीं है । प्रत्येक ने अपनी साधक वृत्ति वश एवं संबन्धो में विश्वास रख अपना-अपना योगदान दिया है । संभव है, यह ग्रन्थ पाठक को अपने ही अस्तित्व में पड़ी त्रिणाचिकेता अग्नि के साथ सम्पर्क करने में सहायक हो । मनुष्य चेतना में चले आ रहे अनादि-अनंत यज्ञ में, वह भी एक बहुमूल्य आहुति होगी ।

सन १९९५ में जीवन ने पहली बार अनुवादक को ब्रह्मविद्या के साथ सम्पर्क का शुभावसर प्रदान किया । एक ब्रह्मविद् की वाणी से, उसकी उपस्थिति से, ईश्वर ने इस विद्या के प्रति जागृत होने का अवसर दिया । आज भी वह जीवन-यज्ञ में, यथाशक्ति, मनोभौतिक की आहुतियाँ अर्पित कर रही है। मनुष्य चेतना में पड़े सत्य प्रेम को संजोय, प्रत्येक आहुति की भस्म से नवजीवन प्राप्त कर, वह नतमस्तक है ।

तेजिन्दर वालिया

८-१२-२००३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दो शब्द स्नेह-कृतज्ञता के

तेजिन्दर बहन मेरी सहेली है। आत्मदर्शिनी विमलाजी के वात्सल्य की छायामें और चेतना के प्रकाश में हमारी धारणाओं का पोषण हुआ है। विमलाजी ने कठोपनिषद् पर जो अंग्रेज़ी में प्रवचन किये उनके हिन्दी अनुवाद का काम बहन ने तप के रूप में स्वीकार लिया। उसके बाद हमने सोलापूर की ज्ञान प्रबोधिनि में बैठकर दो बार उसका एकाग्रता के साथ अवलोकन किया। अनुवाद का कार्य और अवलोकन का सत्संग-सत्य का संग बहन के लिये आत्मदर्शन का मार्ग प्रशस्त करता चला। मेरे लिये भी वह सत्संग अनमोल रहा। मेरे जीवन की शुद्धि करता गया। स्वामी रंगनाथानंदजी महाराज के कठोपनिषद् पर दिये अंग्रेज़ी प्रवचनों का मराठी में अनुवाद करने का सौभाग्य मुझे इससे पहले प्राप्त हुआ था। सत्य एक है, लेकिन ज्ञानी लोग उसकी ओर अपनी-अपनी अलग-अलग शैली से कैसे संकेत करते हैं यह मैं समझ सकी।

विमलाजी के जीवन दर्शन में, उपनिषदों के मर्मग्रहण में एक अपूर्व ताज़गी; अभिनवता है। प्रेय और श्रेय के रूढार्थ को लाँघकर वे जीवन के समग्र स्वीकार की एक नयी दृष्टि देती हैं। जिसकी चेतना वैश्विक चेतना के साथ एक हो गयी है ऐसा एक अवधूत कठोपनिषद् को अनुभवपूत वाणी से समझा रहा है। तेजिंदर बहन ने निरतिशय प्रांजलता के साथ, प्रामाणिकता के साथ उस उद्‌बोधन को हिन्दी भाषा में लाया है। उन्होंने ऐसा आइना बनने की कोशिश की है कि जिसका कुछ अपनापन नहीं है।मूल स्वरूप का केवल प्रतिबिंब दिखाना यह भी एक साधना हुई।

विमलाजी के प्रति मैं कृतज्ञता रखती हूँ कि अवधान की लौ उन्होंने श्रोताओं के हृदय में जगायी-मेरे अंदर जगायी। तेजिंदर बहन के प्रति मैं निर्मल, आनन्दमय स्नेह रखती हूँ और चाहती हूँ कि सत्य का संग करने की और भी उपलब्धियाँ भविष्य में प्राप्त हों। धन्यवाद!

– स्वर्णलता भिशीकर

१५-१२-२००३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय सूचि

भूमिका ०१

प्रथम अध्याय			द्वितीय अध्याय		
पहला	संवाद	१४	तेरहवाँ	संवाद	१९७
दूसरा	संवाद	२९	चौदहवाँ	संवाद	२१३
तीसरा	संवाद	४४	पन्द्रहवाँ	संवाद	२३१
चौथा	संवाद	५९	सोलहवाँ	संवाद	२४३
पाँचवाँ	संवाद	७८	सत्रहवाँ	संवाद	२५४
छठा	संवाद	९३	अठारहवाँ	संवाद	२६९
सातवाँ	संवाद	१०७	उन्नीसवाँ	संवाद	२८३
आठवाँ	संवाद	१२२	बीसवाँ	संवाद	३०१
नौवाँ	संवाद	१३७	इक्कीसवाँ	संवाद	३१५
दसवाँ	संवाद	१५२	बाईसवाँ	संवाद	३२९
ग्यारहवाँ	संवाद	१६९	तेईसवाँ	संवाद	३४३
बारहवाँ	संवाद	१८३	चौबीसवाँ	संवाद	३५७
***			पचीसवाँ	संवाद	३७३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रार्थना

यस्मिन सर्वं यतः सर्वम्
यः सर्वं सर्वदृक् तथा
सर्वभावपदातीतम्
स्वात्मानं स्मराम्यहम्
स्वात्मानं नमाम्यहम्

यस्मिन् सर्वम् - वह, जिसमें समस्त समाविष्ट है; जीवन की समग्रता समाविष्ट है, जीवन की पूर्णता समाविष्ट है। वह, जिसमें जीवन की अनेकता समाविष्ट है। वह एकता, जो अनेकता को अपने वास्तविक गुण समान समाये हुये है।

यतः सर्वम्- वह, जिसमें अनेकता का, समग्रता का उद्गमन होता है।

यः सर्वम्- वह एकता, जो स्वयं अनेकता बन जाती है, वह एकता जो स्वयं समग्रता बन जाती है। वह मध्यबिन्दु जो स्वयं पूर्णता बन जाता है। एक मध्यबिन्दु को कभी परिधि बनते हुये नहीं देखा जाता परन्तु जीवन में ब्रह्मांड का मध्यबिन्दु ही जीवन की परिधि होता है।

सर्वदृक् तथा- सौन्दर्य यह है कि वह एकता, वह अनेकता, विविधता व समस्तता का रूप धारण किये हुये भी उस समग्रता की द्रष्टा बनी रहती है। वह एक की अनेक बनने की प्रक्रिया की, एकता से अनेकता का रूप धारण करने की द्रष्टा है। वह द्रष्टा है, इसलिये क्या होता है ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वभावपदातीतम्- पद् शब्द को एक नाम, एक रूप द्वारा स्पष्ट नहीं किया जा सकता, इसका वर्णन नहीं किया जा सकता । इसका एक नाम, एक रूप नहीं है । वह समग्रता, वह सत्त्व, वह एकता मेरी आत्मा है । ब्रह्मांड का वह मध्यबिन्दु मुझमें है ।

स्वात्मानं स्मराम्यहम्,
स्वात्मानं नमाम्यहम्- हम अपने अस्तित्व के सत्त्व को नमन करते हैं। हम उसे नमन करते हैं, जो ब्रह्मांड का मध्यबिन्दु है, जो एकता है, जो एकत्व है, जो अनेकता में विकसित होता है, जो समग्रता में समृद्ध होता है । उसका स्मरण कर हम उसके प्रति जागृत होते हैं ।

– **ॐ नमो भगवते वैवस्वताय मृत्यवे ।**
ब्रह्मविद्याचार्याय नचिकेतसे च ।।

हम वैवस्वत को, सूर्य के पुत्र को, अग्नि के पुत्र को नमन करते हैं। वे ब्रह्मविद्या के आचार्य हैं, शिक्षक हैं, गुरु हैं। उस सौभाग्यशाली जिज्ञासु नचिकेता को भी हम नमन करते हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूमिका

हज़ारों वर्ष पूर्व जब उपनिषद् लिखे गये थे, विमला आपको उस प्राचीन काल में ले जायेंगी। वे यहाँ अपना गीत नहीं सुनायेंगी परन्तु समस्त नम्रता के साथ वे आप तक उपनिषदों के पुराकालीन ऋषियों का कथन पहुँचाने का प्रयास करेंगी। वे आपके साथ उपनिषदों की अपनी निजी समझ बाँटेंगी।

आपको कृष्णमूर्ति, रामकृष्ण, रमण, विमला अथवा अन्य किसी की भी शिक्षा को एक ओर रखना होगा। आइये कुछ न जानने की दशा में रहने की विनम्रता रखें। इससे हमारी ग्रहणशक्ति उन्मुक्त हो श्रवण करने का उपयुक्त सामर्थ्य रखेगी। जब मन विचाराधिकारों के अनुबन्धनों से मुक्त होता है, तो श्रवण करना एक सम्पूर्ण कर्म हो सकता है। यह अत्यंत अनिवार्य है, क्योंकि उपनिषद् अध्यात्म के गुह्य मूलतत्त्वों का शब्दों में प्रकटन हैं। वे दार्शनिक निष्कर्षों का संग्रह नहीं हैं, वे विचारों द्वारा रचित सिद्धांत नहीं हैं। वे गुरु शिष्य के बीच आध्यात्मिक जीवन के रहस्यों का साक्षात संवाद हैं।

अध्ययन की भूमिका

उपनिषदों का यह अध्ययन कुछ वर्षों पूर्व, यूरोप के कुछ योग अध्यापकों के स्नेह तथा मैत्री के कारण आरम्भ हुआ था। यद्यपि मैंने उपनिषदों का अध्ययन किया था परन्तु उपनिषदों के अध्यापन वर्गों का संचालन, इससे पूर्व कभी भारत अथवा अन्य किसी देश में नहीं किया गया था। विभिन्न यूरोपीय देशों के ये योग अध्यापक स्वयं भी भारतीय तत्त्वज्ञान के विद्यार्थी हैं। इन्होंने पातञ्जल योग का अध्ययन, मुझसे भेंट होने के पूर्व ही कर लिया था। भारतवर्ष में इन्होंने मेरे साथ ईशावास्योपनिषद, केनोपनिषद, छांदोग्योपनिषद व गीता के बारह अध्यायों का अध्ययन किया है। इसलिये ये संवाद मुख्यत: इन योग के अध्यापकों के साथ होंगे। उपनिषदों का यह अध्ययन योग के आचार्यों एवं शिष्यों की सहायता करता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह स्पष्टीकरण आवश्यक है, क्योंकि उपनिषदों में शिक्षा का वैभव है। दो सप्ताहों में आप कठोपनिषद् के वैभव के अध्ययन की कल्पना नहीं कर सकते। प्रत्येक मंत्र का अध्ययन, उसमें प्रयुक्त प्रतीक व पुरा कथायें महीनों ले सकती हैं। इन रूपक कथाओं की आवश्यकता रहस्यमय अभिप्रायों को नास्तिक व अज्ञेयवादियों के छिछले कुतूहल की मूढ़ता से संरक्षित रखने के लिये थी। इस समस्त अध्ययन के लिये सप्ताहों की नहीं महीनों की आवश्यकता होगी। हमारा संबन्ध उपनिषदों में महत्त्वांकित ध्यानावस्था पर होगा, पृथक अस्तित्व के आभास के पार जाने पर होगा। यहाँ देश-काल की अपरिवर्तनीय वास्तविकता के भ्रम के पार जाने पर महत्त्व दिया जायेगा।

मुझे आशंका है कि जिन्होंने अन्य किसी उपनिषद् का अध्ययन नहीं किया है, जो योग, राजयोग, समर्थयोग इत्यादि के योग विज्ञान से परिचित नहीं हैं, उन्हें मेरे संवाद कुछ अस्पष्ट तथा ग्रहण करने में कठिन लगेंगे। इस कारण कठोपनिषद् में लीन होने से पूर्व उनसे क्षमा माँगना अनिवार्य है।

वेद शब्द के सूक्ष्म आशय हैं। इस शब्द का मूल है विद्। विद् अर्थात् जानना, जानना किसी शब्द, किसी भाव-भंगिमा अथवा संकेत द्वारा, जानना मस्तिष्क की सहायता द्वारा; क्योंकि वह मस्तिष्क का ही अंग है, जो शब्द को ग्रहण कर उसे समझता है। वेद का अर्थ है ज्ञान। वेद लिखित शब्द अथवा ग्रन्थ हैं, जिन में सम्पूर्ण जीवन का ज्ञान समाविष्ट है। उनमें न केवल अस्तित्व का सार दिया गया है, न केवल जीवन के सूक्ष्म रहस्य दिये गये हैं, वे जीवन के प्रत्येक पहलू पर ध्यान देते हैं। उनमें जैविक जीवन, शारीरिक जीवन, मानसिक जीवन के ढाँचे हैं। जिस समुदाय में वे लिखे गये थे, उसके जीवन से संबन्धित कथा-सार, प्रतीक, परम्पराओं का भी उनमें उल्लेख है। सैद्धान्तिक धारणाओं से परे, उनका संबन्ध सूक्ष्म रहस्यों से, जैविकता, भौतिकता, मनोविज्ञान, मस्तिष्कीय ज्ञान से है। उनमें आत्मिक विद्या, अतीन्द्रिय ज्ञान है। आप नाम लीजिये और आपको वह वेदों में मिलेगा। गणित विज्ञान, ज्योतिष विज्ञान,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुवांशिक विज्ञान, मनोविज्ञान, यौनविज्ञान इत्यादि सब आपको वेदों में मिलेगा। *प्राचीनकाल के ऋषि जीवन प्रेमी थे। वे आत्मत्याग अथवा जीवन का किसी भी ढंग से अस्वीकार करना नहीं जानते थे। उन्होंने भौतिक संन्यास अथवा मानसिक संन्यास के लिये स्तोत्र नहीं गाये हैं।* वे जीवन प्रेमी थे, जीवन शब्द के प्रत्येक आशय में वे उसके उपासक थे। स्त्री-पुरुष के संबन्ध में उनकी रुचि थी, संतति में उनकी रुचि थी, मवेशी, अश्व, गौ, वृषभ, पक्षी, वन,समस्त उनकी रुचि के पात्र थे। विलक्षण होता है जीवन का प्रेम। उनको जीवन से प्रेम था। वेद जीवन के गीत हैं।

सैंकड़ों वर्षों से हमें चार या पाँच वेद मिले हैं,ये हैं ऋक्, साम, यजुः, अथर्व। इन वेदों में ब्राह्मण, संहिता, आरण्यक, निरुक्त इत्यादि हैं। वेदों के छः अंग हैं, इनको षडङ्ग कहा जाता है; षड् का अर्थ है छः।* उपनिषद् आरण्यक भाग के अन्तर्गत आते हैं तथा कुछ ब्राह्मण भाग के अन्तर्गत भी। आरण्यक का मूल शब्द अरण्य है, अर्थात् वन। ऋषि वनों में निवास करते थे, वे गृहस्थ थे, विवाहित तथा सन्तान सहित। जो जीवन का अध्ययन संपूर्णता में करना चाहते, वे ऋषिकुल जा कर उनके साथ निवास करते, सहभागी होते तथा उनके साथ अध्ययन करते।

कठ उपनिषद् यजुर्वेद के अन्तर्गत आता है। यजुर्वेद के दो भाग हैं, शुक्ल यजुर्वेद, जिसे श्वेत अथवा उज्ज्वल यजुर्वेद कहा जाता है, दूसरा है कृष्ण यजुर्वेद अथवा काला यजुर्वेद। हमें इस सबमें जाने की आवश्यकता नहीं है। मैं आपको इनका स्पर्श मात्र दे रही हूँ।

उपनिषदों का सौन्दर्य उनकी काव्य शैली में है, उनमें हैं ऋचा, मंत्र, श्लोक। वे वर्णनात्मक नहीं हैं, न ही वे किसी सिद्धान्त का प्रचार करते हैं। उनकी शैली संवाद अथवा विवेचन की है। *ये संवाद गुरु तथा शिष्य के बीच हैं, एक जिज्ञासू तथा उसके बीच जिसकी जिज्ञासा ज्ञान में खिल चुकी है।* ज्ञान शब्दों की जानकारी के आशय

---

* *हम इन सब में नहीं जायेंगे, केवल एक मोटी रूपरेखा देखेंगे।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में नहीं परन्तु जिस का जीवन, प्रतिदिन का जीना उस ज्ञान का साक्षी है। जो ज्ञान जीवन की गतिविधि में प्रकट नहीं होता, उसकी अध्यात्म में कोई गरिमा नहीं होती, धर्मशीलता के लिये उसका कोई महत्त्व नहीं होता। आपके संबन्धों का स्वरूप आपकी समझ का प्रमाण है; संबन्ध अपने शरीर, मन, बुद्धि तथा उन सबके साथ जो आप के शरीर के बाहर हैं - मानवीय, गैर-मानवीय वर्ग, सजीव-निर्जीव जगत् एवं आपके समस्त सह-जीव। *उपनिषद् कोई दार्शनिक प्रणालियाँ नहीं हैं, वे कल्पना मात्र नहीं हैं, उनकी धर्मसिद्धान्तों में कोई रुचि नहीं है। वे गुरु के निजी जीवन तथा जीने के अनुभवों के साथ संवाद हैं, वे मात्र शब्दों का आदान-प्रदान नहीं हैं। संभवत: आधुनिक मनुष्य संवाद एवं सहभागिता का महत्त्व नहीं समझ पायेंगे।* आजकल की शिक्षा मुद्रित शब्दों को पुस्तक के पन्नों से मस्तिष्क में डाल, उन्हें वहीं रखना है। प्राचीन काल के ऋषियों के लिए विद्या का यह अर्थ नहीं था, वह शब्दों द्वारा कहना मात्र न था, वह शक्ति प्रदान करना था। इसलिये उपनिषदों की शैली संवाद एवं वार्तालाप की है।

उपनिषदों में नाम दिये गये हैं, आचार्य का नाम, शिष्य का नाम और फिर स्थान एवं परम्परायें हैं। यह उनका बाह्य स्वरूप है। इसीके साथ आंतरिक आशय भी हैं। बाह्य स्वरूप में विद्यार्थी की आचार्य को संबोधन करने की शैली और आचार्य की शिष्य को संबोधन की शैली है। वह सब शिष्टाचार की बाह्यता, उपयोग किये गये प्रतीक, पुरा-कथाओं के विवरण इत्यादि का स्वरूप प्राच्य है। परन्तु उनके द्वारा सूचित किये गये आशय प्राच्य संसार तक, भारतीय देशों तक सीमित नहीं हैं। उनका सार विश्वव्यापी है। पिछले दस वर्षों से हम अपने विद्यार्थियों के साथ उपनिषदों के विश्वरूपी सार का, भगवत्गीता के सर्वदेशीय सार का अध्ययन करते आये हैं। परम्पराओं, पुराकथाओं तथा प्रतीकों की बाह्यता को महत्त्व देने में कोई लाभ नहीं है, न ही उनका पाश्चात्य चित्त पर रोपण करने से कोई लाभ है। आवश्यकता है सार्वभौमिक आशयों को खोज निकालने की। उदाहरण के लिए इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपनिषद् के प्रारम्भ में पिता एवं पुत्र के बीच संवाद है, पिता का नाम है वाजश्रवस् तथा पुत्र का नचिकेता। उसके पश्चात् यमराज एवं नचिकेता के बीच संवाद है। आइये इन तीन नामों के आशय को देख लें।

वाजश्रवस् का अहम् केन्द्रित कर्म-कांड

संस्कृत एक महत्त्वपूर्ण भाषा है, इस में दिये गये नाम संदर्भ रहित नहीं होते,प्रत्येक नाम का एक आशय रहता है। यह आशय मूल धातु-वह जिससे शब्द बनता है-उससे संलग्न ऐतिहासिक पुरा-कथाओं से, उनके गुह्य अभिप्रायों से प्राप्त होता है। मूल शब्द के अनुसार वाजश्रवस् नाम में वाज* शब्द का संकेत भोजन अथवा पोषण से है। श्रव अथवा श्रवस् का तात्पर्य है देना,व्यय करना,दानशीलता,उदारता। इसके अनुसार वाजश्रवस् वह व्यक्ति हुआ,जो अपनी संपत्ति दान देने के लिये प्रसिद्ध था। प्राचीनकाल में धन को संपत्ति नहीं माना जाता था। यद्यपि उस काल में भी मुद्रा थी परन्तु संपत्ति से उनका अभिप्राय भोजन, फल-सब्ज़ी, काष्ठ फल, मवेशी इत्यादि से था। मवेशी का वे पवित्र संपत्ति के रूप में सम्मान करते थे; भूमि,मवेशी तथा अन्न ही संपत्ति होती थी। इसी काल में था वाजश्रवस्,जिसे अपनी संपत्ति दान स्वरूप, यज्ञ में देना अति प्रिय था। क्यों प्रिय था ? क्योंकि वह जिस पर आपका अधिकार हो, उसे दान में देने से सूक्ष्म लोक** के लिये पुण्य अर्जित होता है। यदि आप स्थूल लोक में दान देते हैं तो आप सूक्ष्म लोक के लिये धन कमाते हैं। यदि आप स्थूल जगत् में वह दान में देते हैं जिस पर आपका स्वामित्व है अथवा अधिकार है, तो उससे उच्च स्तर पर, सूक्ष्म लोक में आपको उसका लाभ मिलता है। भारतीय परम्परा में इसे पुण्य अथवा नैतिक सदाचार

---

* *वाज का अर्थ बाण भी होता है, अधिक परिशुद्ध रूप में बाण के ऊपर का पंख।*

** *पुराकालीन ऋषि वैज्ञानिक थे। उन्होंने दृश्य जगत् का भेदन कर, भू-पृथ्वी के परिक्रमा पथ, भुवः- जल के कक्ष, स्वः- अग्नि कक्ष इत्यादि से पहचान कर ली थी। उन्होंने जीवन के सात स्तरों अथवा पृथ्वी एवं अनंत अंतरिक्ष के बीच के सात भिन्न स्तरों को जान लिया था, जिन पर व्यक्ति एक साथ रह सकता है। जैविक स्तर पर एक कक्ष में, मनोभौतिक स्तर पर दूसरे कक्ष में, ज्ञान के स्तर पर तीसरे कक्ष में इत्यादि, इत्यादि।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहते हैं।

आप वस्तुओं को यज्ञ में दान दे कर सूक्ष्म लोक के लिये, स्वर्गलोक के लिये पुण्य कमाते हैं। स्वर्गलोक एक कक्ष है, मानसिकता के परे का कक्ष, जिसमें सुख की असीमित संभावना होती है। यदि आप उस स्तर पर उठ जाते हैं, तो कोई दुःख नहीं भोगना पड़ता, वहाँ रहता है केवल सुख, दीर्घायु इत्यादि। ऐसे सुख के अर्जन में वाजश्रवस् जीवन भर व्यस्त रहा। वाजश्रवस् नाम तथा उसके जीने की शैली का यह बाह्य आशय है। जीने की इस शैली में यज्ञ किये जाते हैं,ब्राह्मण एवं योग्य व्यक्तियों को वस्तुयें दान में दी जाती हैं। इस दान देने में एक हेतु होता है, वह प्रेम अथवा करुणा से जन्म नहीं लेता। यह एक अहम् केन्द्रित कर्म होता है; कुछ देना होता है कमाने के लिये, कुछ पाने के लिये। भले आप अपनी संपत्ति चिरकालिक सुख के लिये, उच्चस्तरीय सुख की प्राप्ति के लिये देते हैं, आप अपने जीवन का, उसकी शक्तियों का व्यय करते हैं। इससे आप अपनी जीवन संपत्ति का व्यय करते हैं। उदाहरणतः युवावस्था जीवन की संपत्ति है; वह धन है। यदि आप उसकी भावनाओं की शक्ति का, मस्तिष्क की शक्ति का, विचार शक्ति का व्यय कुछ पाने के लिये बलिदान कर देते हैं, तो आप निढाल हो जाते हैं। कमाने, संचय करने, देने की निरंतर क्रिया आपकी ऊर्जाओं को क्षीण कर देती है।

वैराग्य की सुगंध लिये हुये नचिकेता

व्यक्ति के जीवन में एक समय ऐसा आता है, जब वह अपने आपसे पूछता है अथवा अहम् व्यक्तित्व के पीछे छुपी प्रज्ञा की अग्नि पूछती है, यह सब देते रहने का क्या महत्त्व है ? प्राप्त करने में, उस पर अधिकार रखने में, स्वामित्व रखने और देने में सुख है परन्तु वह शान्ति नहीं प्रदान करता। वह पूर्णतः का आभास नहीं देता, वह पवित्रता का भान नहीं देता। *प्राप्त करने में, स्वामित्व व अधिकरण में, देने में पवित्रता नहीं होती। अहम् केन्द्रित क्रिया में अथवा गतिविधि में पावनता अथवा शुद्धता की सुगन्ध नहीं होती।* इसलिये, अहम् व्यक्तित्व

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के पीछे छुपी प्रज्ञा अहम् से प्रश्न करती है - इस सबसे क्या? आखिर कब तक? क्या इससे परे कुछ नहीं है? एकअपूर्णता का भाव, एक अधूरेपन का अनुभव, एक आभास अशुद्धता का-यदि मैं इस शब्द का उपयोग करूँ तो-व्यक्ति को चुभता रहता है।

मैंने यह उल्लेख किया, क्योंकि यह नचिकेता शब्द का आशय है। यहाँ पुत्र का नाम नचिकेता है। *न-चिकेता,चिक् का अर्थ है पहचानना, समझना, अत: नचिकेता वह है जो अदृश्य है, गुह्य है, वह प्रज्ञा जो हमारे अस्तित्व की गहराई में, हमारे अस्तित्व के मूल में गुह्य है।* एक अंतिम आवरण समान वह प्रज्ञा, आत्मन् के,सत्ता के और हमारे बीच है, वह सजीव एवं निर्जीव जगत् में समायी है। हम उसके प्रति जागृत नहीं हैं, हम उसका बोध नहीं कर सकते। हमें बोध होता है अपनी ज्ञानेन्द्रियों का, अपने शरीर का, हम अनुभव कर पाते हैं अपनी अन्तर–इन्द्रियों का, हम अनुभव कर पाते हैं ज्ञान का, भावनाओं का। वह प्रज्ञा तो गुह्य है, अस्तित्व के मूल की गहराई में है, एक दिन वह अधीर हो जाती है।

नचिकेता वाजश्रवस् का पुत्र है। अर्जन, स्वामित्व, दान देना एक नचिकेता को जन्म देता है, वह उस अदृष्ट, अदृश्य आभास को जन्म देता है। वह वैराग्य की प्रेरणा को, उससे पार जाने की प्रेरणा को जन्म देता है। वास्तव में वैराग्य एक पृथक अस्तित्व के अनुभव से पार जाना है, वह व्यक्तित्व से समस्तता में, एक सर्वव्यापक 'होनेपन' में जाना है। पिता वाजश्रवस् एक नचिकेता को जन्म देता है; उस प्रज्ञा को जन्म देता है जो वैराग्य की सुगंध लिये हुये है।

पुत्र पिता से पूछता है, मैं भी तो आपकी संपत्ति हूँ, आप मुझे किसे देने जा रहे हैं ? क्या उपयोग है इस प्रज्ञा का, जो हर पल एक अपूर्णता का, एक अधूरेपन का, जीवन की पूर्णता से एक प्रकार की वियुक्ति का अनुभव करती है ? इसलिये पुत्र पिता से कहता है, यदि आप वह समस्त दे रहे हैं जिस पर आपका अधिकार है, मैं भी तो आपका हूँ, आप मुझे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किसे देंगे ? बहुत सुन्दर प्रश्न है यह। हममें से प्रत्येक के अंदर है पिता वाजश्रवस् तथा प्रत्येक के अंदर पुत्र नचिकेता है।

यमराज संयम शक्ति के प्रतीक

चलिये अब शब्द यम की ओर बढ़ें। मेरे मित्र, योग के विद्यार्थी, इससे भली-भांति परिचित हैं। हठ–योग में आप यम से आरभ्म करते हैं और फिर आते हैं नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। भारतीयों का यम से मृत्यु के स्वामी के रूप में परिचय है, परन्तु हम अल्प परिचित यम शब्द के आशय को देखने जा रहे हैं। यम को वैवस्वत कहा जाता है। विवस्वत सूर्य का नाम है, जिसे आदित्य, नारायण व मित्र कहा जाता है; वे सभी नाम जो आप सूर्यनमस्कार में कहते हैं। यमराज इस सूर्य के पुत्र वैवस्वत हैं।

ॐ नमो भगवते वैवस्वताय मृत्यवे। ब्रह्मविद्याचार्याय नचिकेतसे च॥ यम विवस्वत के, उस प्रकाश के पुत्र हैं। क्या करता है सूर्य, वह आदित्य, वह नारायण, जिसका सार सावित्री है, गायत्री है, जिसका आप प्रातःकाल में गुणगान करते हैं? सूर्य प्रकाश है, सूर्य जीवन है, सूर्य जीवन की उष्णता है, सूर्य की किरणें जीवन का पोषण करती हैं। जीवन को सूर्य कैसे प्रकाश, उष्णता, आहार इत्यादि देता है? वह अन्धकार को दूर करता है। संस्कृत भाषा में सूर्य के सभी नाम अन्धकार को दूर करने की क्षमता के सूचक हैं। वैसे ही यम- वैवस्वत- ऐन्द्रिय, वाचिक, मानसिक, मस्तिष्कीय आसक्तियों के अन्धकार को दूर करता है। वह अहम् केन्द्रित कर्म और उसकी गतिविधियों के अन्धकार को दूर करता है। आपके अष्टाङ्ग योग में भी यम संयम का स्वामी है। नियम नकारात्मक पहलू है, यम सकारात्मक पहलू है, जो न तो प्रतिवाद करता है और न ही अभिपुष्टि; वह संयम है। यम संयम का ईश है। अन्धकार को दूर करना, अन्धकार का वेधन कर प्रकाश को जागृत करना होता है। यम इस अज्ञानता को दूर करता है कि मृत्यु जीवन का अंत है। यम मृत्यु संबन्धित अज्ञानता के अन्धकार को दूर करता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

डरिये नहीं, ये शब्द इतने सुंदर हैं कि संवाद का आरंभ करने से पहले, आपके साथ इनके आशय बाँटे बिना न रह पायी। अंग्रेज़ी में अनुवाद करते हुये कहा जाता है-एक वाजश्रवस् था, उसके पुत्र का नाम नचिकेता था, उसे यम के घर भेजा गया था इत्यादि, इत्यादि। इसका कोई अर्थ नहीं होता, यह तो बाह्य रूप है। मैं नहीं कहती कि यह गलत है, परन्तु उपनिषद् शिक्षा के लिये हैं, जीवन का अर्थ, जीवन का रहस्य खोजने की सहायता करने के लिये हैं। इसलिये हमें मूल से आरंभ करना है।

प्रत्येक वाजश्रवस् से एक नचिकेता का, एक जिज्ञासु का जन्म होता है। यदि उपार्जन, स्वामित्व, अधिकरण, दान देना, प्रज्ञा को प्रेरित नहीं करते, तो वे कर्म निर्जीव होंगे। यदि आप वास्तव में अर्जन करते हैं,स्वामित्व रखते हैं, अधिकार रखते हैं, दान देते हैं, वास्तव में उनसे सुख प्राप्त करते हैं, यदि उन सब में दम है, तो वह अवश्य ही आप के हृदय में एक नचिकेता को प्रेरित करेंगे। उपनिषद् यही संकेत देना चाहता है कि बाह्यता से हो गुज़रिये, उसका पूरी तरह सुख लीजिये परन्तु ध्यान रखिये वह सुख आपके साथ क्या करता है।

यम विश्व में संयम की शक्तियों का ईश है,वह उनका नियंत्रक है। संयम की शक्तियाँ विश्व व्यवस्था में समाविष्ट हैं; संयम की ये शक्तियाँ हैं। यदि ये शक्तियाँ हमारे द्वारा पहचान ली जाती हैं, यदि वह संयम, वह यम हम से मित्रता कर लेता है, तब व्यक्तित्व से सम्पूर्णता, पृथकता से समावेश की ओर जाना, अहम् व्यक्तित्व से आत्मन् की ओर उठना कठिन नहीं होता। यह उपनिषद् ब्रह्मविद्या का उपनिषद् है। लोग इसे मृत्यु का उपनिषद् कहते हैं, जो उसे एक प्रकार का उदासीन, निराशाजनक परिवेश देता है परन्तु ऐसा नहीं है।

अहम् की प्रसुप्तावस्था

जिन्हों ने योग का अध्ययन किया है, जो योग में रुचि रखते हैं, वे ध्यान दें। क्या हमें अपनी मानसिक गतिविधियों को, ज्ञान की गतिविधियों को, अनुभवों की गतिविधियों को प्रसुप्तावस्था में जाने देना, उन्हें पूर्णत:

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निलंबित होने देना अत्यंत कठिन नहीं लगता ? क्या हमें ऐसा नहीं लगता कि यह मरण समान है? अहम् व्यक्तित्व कहता है यदि कुछ जानना नहीं है, देखना नहीं है, किन्हीं अनुभवों को प्राप्त करना नहीं है, कुछ करना नहीं है तो वह मृत्यु होगी। यदि अहम् की एक ज्ञाता के रूप में, एक अनुभवकर्ता के, एक कर्ता के रूप में कोई गतिविधि नहीं है, तो वह जीवन का अंत होगा। जो समझते हैं कि अहम् केन्द्रित गतिविधियों में ही जीवन की संपूर्णता है, उनके लिये ध्यानावस्था अत्यंत कठिन हो जाती है।

अहम् व्यक्तित्व की आवश्यकता है, उस का होना स्वाभाविक है, उसका अपना महत्त्व है, उसका अपना उपयोग है। कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ उसकी गतिविधियों का कोई महत्त्व नहीं होता, जहाँ उसकी गतिविधियाँ बाधक बन जाती हैं। मानसिक गतिविधियों को अक्रियता में, प्रसुप्तावस्था में जाने देने से हम भयभीत होते हैं। *ऐसा नहीं कि लोग केवल भौतिक मृत्यु से भयभीत होते हैं, वे कहीं अधिक ध्यानावस्था से भयभीत होते हैं जिसके लिये एक अंधेरी सुरंग से गुज़रना पड़ता है; एक खालीपन की सुरंग से जाना होता है।* जहाँ आप कुछ देखते नहीं, आप कुछ जानते नहीं, आपके साथ कोई घटना घटित होती नहीं। ऐसे में आप लगभग अस्तित्वहीन हो जाते हैं, निष्क्रिय अथवा क्रियाहीन हो जाते हैं; यह भयभीत करता है। कृपया ध्यान से देखिये।

ध्यानावस्था का आयाम

यदि हम ध्यानावस्था में Quantum Jump नहीं लेते हैं तो यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा का कोई उपयोग नहीं। समाधि के आयाम में परिपक्व होना योग अध्ययन का चरम बिन्दु है। पहले छ: के अभ्यास से शरीर में सुडौलपन आयेगा, संभवत: मन में समन्वय होगा, मस्तिष्क में अव्यवस्था के स्थान पर व्यवस्था होगी परन्तु उससे क्या होगा ? वह होगा सुसंस्कृत, सभ्य, संवेदनशील परन्तु फिर भी एक अहम् व्यक्तित्व। उसका अपना महत्त्व है। वह आपके लिये धन लायेगा, यश लायेगा, सम्मान लायेगा। परन्तु जब तक आपमें अहम् व्यक्तित्व से ऊपर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उठने की स्वीकृति नहीं होती, वह समस्त व्यर्थ है। धारणा के अध्ययन तक अहम् व्यक्तित्व को कुछ न कुछ प्राप्त होता रहता है, उसे कुछ मिलता रहता है। अंतर्हित शक्तियाँ, सिद्धियाँ, कुंडलिनी जागृत होना, गुह्य अनुभव इत्यादि भी धारणा से होते हैं। जब ध्यानावस्था केबिन्दु पर पहुँचना होता है, तो अपने आपको सम्पूर्णत: खाली कर देना होता है। यह अपनी धन-सम्पत्ति देना नहीं है, यह अपने आपको दे देना है। योग के अध्यापकों व शिष्यों के लिये यही बाधा रही है । यदि कहीं आपका जन्म यूरोप, अमरीका इत्यादि देशों में हुआ है अथवा उन अभाग्यवान भारतीय नगरों में हुआ है जहाँ अहम् व्यक्तित्व को अनावश्यक महत्त्व दिया गया है,तो अहम् व्यक्तित्व का विसर्जन, उसका बिना शर्त प्रास्थगन अथवा अक्रियाशील होना एक प्रकार का भय जागृत करता है।

आधुनिक जगत् भौतिक अंत को स्वीकार करता है, क्योंकि वह अनिवार्य है। आप भले सौ, एक सौ बीस वर्ष तक जीवित रहें परन्तु उसके अंत में वह है । शरीर में रहते हुये, ज्ञान का, अनुभव का, उस केन्द्र का अंत करना, जिसने वह समस्त एकत्रित किया है, उसे सुरुचिपूर्ण सुसज्जित किया है, उससे सुख पाया है, सम्मान पाया है, उसका अंत होने देना स्वीकार नहीं होता। उसे जाने देना, जीते जी अन्दर से उस सब के प्रति मर जाना स्वीकार नहीं होता, परन्तु जब तक प्याला खाली नहीं होता उसे भरा नहीं जा सकता।

अहम् की आहुति में मृत्यु का रहस्य

ध्यानावस्था,जिसका आरम्भ अपने आपको खाली करने से होता है,अपने आपको शून्यता या फिर मौन की वेदी पर अर्पित करने से होता है, यह उपनिषद् उसकी बात करता है। यह मात्र शरीर की मृत्यु की बात नहीं करता न ही यह इस प्रश्न पर केन्द्रित रहता है कि जीवात्मा शरीर की मृत्यु पश्चात् बनी रहती है अथवा नहीं। यह उपनिषद् 'मैं' अथवा 'मैंपन' की, शरीर की मृत्यु पश्चात् बने रहने की बात नहीं करता? इस सब के लिये एक उपनिषद् लिखने की आवश्यकता नहीं थी। यह समस्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारतीय कथा-सार का अंश हो सकता है। यह बाह्य रूप अहम् व्यक्तित्व अथवा पृथक् व्यक्तित्व के भाव से ऊपर उठने के रहस्य को प्रकट करने के लिये है। क्या समस्तता में,सम्पूर्णता में Quantum Jump लेने पर भी, एक अस्तित्व, एक व्यक्तित्व-भले ही अक्रियाशील रूप में -बना रहता है ? क्या उसका अस्तित्व रहता है ? उपनिषद् में हमारा संबन्ध इस प्रश्न से होगा। क्या वह अस्तित्व पूर्णत: ब्रह्मांड में विलीन हो जाता है ? क्या उसकी विशिष्टता पूर्णता में, समग्रता में भी बनी रहती है, जिससे वह पुन: संसार में लौट सके? हम इस प्रश्न के साथ संवाद करने जा रहे हैं।

कठोपनिषद् में दो अध्याय हैं, पहले अध्याय के तीन भाग हैं और दूसरे के भी तीन भाग हैं। दो संप्ताहों में हम इनका अध्ययन समाप्त करेंगे।

उपनिषदों की शैली

. उपनिषदों का सौंदर्य उनकी अर्थगर्भिता में है। आप जानते हैं, जब कोई संदेश एक संकेत के रूप में दिया जाता है, तब उसे ग्रहण करना सहज होता है । जब नियमों, सिद्धांतों तथा निष्कर्षों को कूट-कूट कर भरा जाये तो वह प्रचार होता है, शिक्षा नहीं । शिक्षा सदा सांकेतिक होती है, जिससे दूसरे व्यक्ति तथा उसकी सर्जनात्मक शक्ति को आशय खोज निकालने का अवसर मिले। इसी कारण उपनिषद् काव्य शैली में है; वे गद्य नहीं पद्य हैं। पारम्परिक शिष्टाचार, व्यवहार, पुत्र द्वारा पिता का आदर, यम द्वारा अतिथि का आदर, आतिथ्य, शिष्टाचार, ये समस्त विवरण प्रस्ताव के लिये हैं। नग्न सत्य की सुरक्षा के लिये यह बाह्य म्यान हैं। इससे उपनिषद् अत्यंत रोचक बन जाते हैं। यदि वह शुष्क शोध प्रबन्ध होते तो वह योग, सांख्य, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त के समान होते। भारतीय दर्शन की इन छे प्रणालियों की भिन्न शैली है । प्रस्तुत संवाद काव्यमय हैं, वह अर्थगर्भित हैं। प्रतीकों पुराकथाओं, दन्तकथाओं, अन्योक्तियों का उपयोग करते हुये वे बहुत समृद्ध हैं। इससे आप और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हम जैसे साधारण व्यक्तियों की अभिरुचि बनी रहती है। यदि आपको स्मरण हो तो केन उपनिषद् में भी संवाद हैं, गीता भी कृष्ण एवं अर्जुन के बीच का संवाद है। हमने छान्दोग्य में भी संवादों का अध्ययन किया था, हाँ, ईशावास्य में संवाद नहीं हैं। यह ईश व केन के समान आसान नहीं हैं। बृहदारण्यक, छान्दोग्य तथा कठ*, ये तीन अत्यंत गंभीर उपनिषद् हैं। यह रहस्यवाद, आत्मिक विद्या तथा आध्यात्मिक महत्त्व से गर्भित हैं। आप के सहयोग से एक-एक कर इनके अंत तक पहुँचने की आशा रखती हूँ।

अपने विद्यार्थियों के प्रति मैं असीम कृतज्ञता का अनुभव करती हूँ। गत दस वर्षों से वे मुझे प्राचीन प्रज्ञा का अपना बोध बाँटने का अवसर प्रदान करते आये हैं। आज भी वह लम्बी दूरी तय करते हुये, महाद्वीपों और सागरों को पार करते हुये, इस छोटे से गाँव में आये हैं। हिमालय के शांत, निश्चल स्थान में बैठ, संजीदा जिज्ञासुओं के साथ संवाद करना एक शुभ अवसर है।

** कठ को कभी-कभी काठक भी कहा जाता है।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथम अध्याय
विलयन पथ

यहाँ श्रद्धा तथा अनुसंधान-जिज्ञासा-की लकड़ियों के घर्षण से अग्नि प्रज्वलित करनी है।

हृदय में प्रज्वलित वह अग्नि इस सूक्ष्म पथ पर आपका पथ प्रदर्शन करती है। आप ही वह मार्ग बन जाते हैं, आप ही वह पथ बन जाते हैं। आप ही तीर्थयात्री बन जाते हैं और आपका जीवन एक तीर्थयात्रा।

अहम् व्यक्तित्व से सहजतापूर्वक पार जाने, अहम् व्यक्तित्व के बोध की लौ में रूपांतरित होने के अतिरिक्त ध्यानावस्था अन्य कुछ नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पहला संवाद

यथार्थता के मूल स्वरूप की खोज,परम सत्य की खोज मनुष्य चेतना का सत्त्व है। यह खोज विश्व भर में विविध रूपों में होती आयी है। संगठित धर्म इस खोज की अभिव्यक्ति हैं। धर्म-संघ इसकी खोज प्रार्थना, उपासना, यज्ञ, तीर्थयात्रा द्वारा करते आये हैं। पूर्व तथा पश्चिम की दर्शन प्रणालियाँ, जीवन की व्यक्तिक व अव्यक्तिक गतिविधियों का तर्क द्वारा, बुद्धि-शक्ति द्वारा अन्वेषण, इस खोज का एक अन्य स्वरूप है। विश्व के विभिन्न भागौं में, रहस्यानुभवी अपने शरीर तथा अपने परिवेश में प्रचलित विविध ऊर्जाओं की सहायता से इसकी खोज करते आये हैं। कुछ विरळ मानव हस्तियाँ ऐसी रही हैं, जिन्हें खोज करने की आवश्यकता नहीं रही। उनका जन्म सत्य के सहज अनुभव के साथ हुआ, उन्होंने ब्रह्मांड के मध्य बिन्दु का अनुभव अपनी ही चेतना में किया। वैज्ञानिकों ने सत्य की खोज,पदार्थों तथा उनमें समायी ऊर्जाओं की सहायता द्वारा की है। हम सभी परम सत्य के तीर्थयात्री हैं,जीवन के रहस्य की पवित्रता के अन्वेषक हैं। मानव हृदय में समाये प्रेम एवं करुणा के रहस्य के हम अन्वेषक हैं।

हमारा कठोपनिषद् का अध्ययन उस ऋषि के साथ एक संवाद होगा, जिसने यह ग्रन्थ लिखा है। हम प्राचीनकाल की अरण्य संस्कृति में लौट चलेंगें, जहाँ अनुसंधान, सत्य की खोज तथा दिन-प्रतिदिन के जीवन में अपनी समझ के प्रयोग सामाजिक जीवन के अंग थे। वह सत्य खोज की संस्कृति थी।

कथा का बाह्य एवं आंतरिक स्वरूप

कठोपनिषद्, जो कृष्ण यजुर्वेद का भाग है, उसका आरम्भ एक कथा के साथ होता है। यह कथा तैत्तिरीय उपनिषद् और ऋग्वेद के दसवें मंडल में, कुछ भिन्न स्वरूप में पायी जाती है। नचिकेता तथा यम के नाम ,उनके बीच का संवाद तैत्तिरीय ब्राह्मण व ऋग्वेद के दसवें मंडल में पाया जाता है।

हम कथा के बाह्य स्वरूप व उसके आंतरिक आशय पर एक साथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध्यान देंगे। कथा का बाह्य स्वरूप पिता वाजश्रवस तथा पुत्र नचिकेता के बीच घटित होता है। उसीके साथ-साथ यह कथा उसके आंतरिक स्वरूप की ओर संकेत करती है। हम उस पर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे। बाह्य तथा आंतरिक आशय का अध्ययन करते हुये, हम ध्यान में रखेंगे कि केवल योग विद्यार्थियों के लिए नहीं बल्कि प्रत्येक मनुष्य जीवन के लिये इसका क्या महत्व है। हम ये तीनों काम एक साथ करेंगे; बाह्य से आरम्भ कर हम अन्दर जायेंगे। फिर अंतस्थ की गहराई से शब्दों व धारणाओं के पार की यथार्थता की ओर जायेंगे।

इस कथा में वाजश्रवस नाम का एक व्यक्ति है, जो मेरे लिये धर्म की परम्परानिष्ठा का प्रतीक है। उसे यज्ञ करना अति प्रिय होता है। वह वस्तुओं को, अपनी संपत्ति को यज्ञ में दान स्वरूप देता है। इस ध्येय से देता है कि भौतिक मृत्यु पश्चात् वे चिरकालिक सुख के साधन होंगे। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि प्रत्येक धर्म में प्रार्थना, उपासना, यज्ञ इत्यादि बाह्य क्रियायें होती हैं; बस उनके स्वरूप भिन्न होते हैं। वैसे ही यहाँ भी एक स्वरूप है। ब्राह्मणों को, वे जो कुछ उपार्जन नहीं करते, किसी वस्तु पर स्वामित्व नहीं रखते, जो अपना जीवन धर्म शास्त्रों की शिक्षा को समर्पित कर देते हैं, उन्हें आमंत्रित कर संपत्ति उनके बीच बाँट दी जाती है।

कुछ ऐसा होता आया है कि जो प्रार्थना, उपासना, यज्ञ इत्यादि जैसी बाह्य क्रियायें करते आये हैं, वे अधिकतर उनके ध्येय के सार के प्रति सचेत नहीं रहते हैं। शब्दों में अटके हुये वे उनके अभिप्रायों को खो देते हैं। वैसे ही, जब वाजश्रवस् धार्मिक कर्म-कांड संपन्न कर रहा था, तो उसने दान में वृद्ध, कमज़ोर व असमर्थ मवेशी दिये, जिनका किसी को कोई लाभ न था। कुछ वैसे ही, जैसे हम प्रार्थना करते हुये शब्दों का यांत्रिकता से उच्चारण करते हैं। कदाचित ही हम शब्दों के आशय अथवा उनके अपेक्षित संकेत से अवगत रहते हैं। ऐसे ही, वाजश्रवस् ने बाह्य कर्म-कांड शास्त्रानुसार संपन्न किया, परन्तु उसके कर्म का वास्तविक अंश आशय से वंचित रहा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो वह दान स्वरूप दे रहा था, वह किसी भी योग्य न था अथवा दिया गया दान उनके विशेष उपयोग का न था, जो उस दान को स्वीकार कर रहे थे।

अन्तरात्मा का परिचायक

वाजश्रवस् का एक पुत्र था। उपनिषद् के अनुसार वह पुत्र, नचिकेता, पाँच वर्ष का था। वह यज्ञ का कर्मकांड ध्यान पूर्वक देख रहा था और उस से संतुष्ट नहीं था। नचिकेता वाजश्रवस् की अन्तरात्मा का परिचायक है; पिता अपने पुत्र में, अपनी संतान में पुनः जन्म लेता है। वाजश्रवस् धर्म की परम्परानिष्ठा का सूचक है तथा नचिकेता आत्मा के विद्रोह का निरूपक है। वह एक विद्रोही है। इसलिये वह नन्हा सा पाँच वर्षीय बालक आश्चर्य प्रकट करता है कि पिता अपनी असल संपत्ति नहीं दे रहे हैं। वह विचार करता है कि उनकी असल संपत्ति तो मैं हूँ, वे मुझे अत्यधिक प्रेम करते हैं,मैं उनके लिये बहुमूल्य हूँ। भला वे मुझे किसे देने जा रहे हैं ?

पुत्र चाहता था कि उसके पिता को अपने किये से लाभ हो। वह जानता था कि जो उसके पिता ने किया था, जिस ढंग से किया था, उससे उन्हें कोई लाभ होने वाला नहीं था। सत्य तथा अपने पिता के हित के लिये वह अपने पिता से पूछता है, आप मुझे किसे देने जा रहे हैं ? पिता ने सुना परन्तु उत्तर नहीं दिया। पुनः पूछने पर भी पिता चुप्पी साधे रहे, परन्तु बालक दृढ़ रहता है। *यह है जिज्ञासा का धैर्य, जो कोई पराजय स्वीकार नहीं करती तथा प्रश्न करने में अडिग रहना जानती है।* प्रश्न करना एक प्रकार का अनुसंधान होता है। बालक जानना चाहता था, क्या वह अपने पिता की कोई सेवा कर सकता है ?

तीसरी बार प्रश्न किये जाने पर पिता ने कहा- पुत्र, मैं तुम्हें मृत्यु के स्वामी, यमराज को देता हूँ। कठोपनिषद् के भारतीय व अ-भारतीय टीकाकारों व व्याख्याकारों ने एक समान टिप्पणी की है कि पिता ने क्रोधवश उत्तेजना में, उग्रता से, आवेग में पुत्र से कहा कि वह उसे यम को देने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जा रहा है। ऐसी व्याख्या अथवा टिप्पणी, किसी भी ढंग से उपनिषदों के सत्त्व से मेल नहीं खाती। वे इतने पवित्र व गम्भीर हैं कि वे छिछली प्रतिक्रियाओं के धारक नहीं हो सकते। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि जब पुत्र ने तीसरी बार प्रश्न किया, तो पिता को अवश्य ही अपनी भूल स्पष्ट हो गयी। उसके ध्यान में आ गया कि यज्ञ के नाम से क्या किया गया है। इसलिये उसने अपने पुत्र से कहा, बल्कि उससे अनुनय किया कि वह यमराज के पास जाये। वह उसके पास जाये जो जीवन का नियंत्रक है, परम संयम शक्ति है, जिसे चाहे तो आप नैतिक शक्ति कहिये, जीवन का मूल तत्त्व कहिये। पिता ने पुत्र को भेजने का निर्णय लिया, क्योंकि उन्हें अपने ही पुत्र के अस्तित्व से निष्ठा का,श्रद्धा का दर्शन हुआ।

कृपया, आश्चर्य मत कीजिये कि एक पाँच वर्षीय बालक में ऐसी परिपक्वता हो सकती है। पूर्व के देशों में आपको अनेकों ऐसी घटनायें मिलेंगी, जहाँ तीन या चार या पाँच वर्ष की आयु में ही व्यक्ति, हृदय में सत्य की खोज के प्रति सचेत हो जाता है। अद्वैत वेदान्त के भाष्यकार श्री शंकराचार्य पाँच वर्ष की आयु में, ज्ञानेश्वर महाराज आठ वर्ष की आयु में, रामकृष्ण परमहंस पाँच वर्ष की आयु में, माँ आनंदमयी सात वर्ष की आयु में, ऐसे अनेकों ही उदाहरण हैं। हमें संदेह की आवश्यकता नहीं कि पाँच वर्ष के बालक में ऐसी मानसिक परिपक्वता हो सकती है, जिससे वह यज्ञ में हो रहे छल को समझ पाये तथा उस कमी की पूर्ति करने का ढंग खोजना चाहे।

यम संयम का मूल है

यम नाम का अनुवाद मृत्यु के स्वामी के रूप में किया गया है। अंग्रेज़ी भाषा में या फिर भारतीय व्याख्यानों में भी यम को मृत्यु का स्वामी कहा जाता है। *मुझे शंका है हममें कितने लोग जानते हैं कि यम का असल नाम धर्म है; उन्हें यमराज कहा जाता है,धर्मराज कहा जाता है। यम जीवन का मूल है, जीवन में समाये धर्म का मूल है; वह संयम का मूल है जो समस्त ऊर्जाओं में समाविष्ट है। वह अन्तर में समायी प्रवृत्ति है।* संयम, बुद्धि के बल द्वारा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नियत किया हुआ अनुशासन नहीं है वह किसी भी गतिविधि का सहज स्वरूप है, जो पाँच तत्त्वों-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश-की वैश्विक गतिविधियों पर नियंत्रण रखता है। ये समस्त ऊर्जायें संतुलित रहती हैं तथा निरंतर पारस्परिक सहयोग में नियंत्रित रहती हैं। इसलिये नहीं कि कोई उन्हें नियंत्रण में रखे हुये है,परन्तु इसलिये कि संयम उनका सहज स्वरूप है। यम धर्म है। अपने आपमें भी यम शब्द का अर्थ संयम होता है; वह अभिवृत्ति की सकारात्मकता है।

पिता ने पुत्र से कहा कि वह उसे यम को देता है। इस पर, मानसिक रूप से परिपक्व पुत्र, शब्दों का श्रवण करते हुये विचार करता है कि वह यम के किस उपयोग का है ? उसके वहाँ जाने अथवा उस मूलतत्त्व से भेंट करने में क्या संगति हो सकती है ? ऐसे विचार करते हुये भी, नचिकेता पिता से कहता है कि वह उनकी इच्छा अनुसार यमराज के पास जायेगा। वह पिता से अनुरोध करता है कि उसके जाने के पश्चात् वह उसकी चिन्ता न करें। वह उस पथ पर जा रहा है जो मानव जाति का मार्ग रहा है। उससे पहले भी अनेकों ने उस पथ का अनुसरण किया है, जीवन के अर्थ की जिज्ञासा तथा खोज में उसका आचरण किया है।

पिता को आभास हो गया था कि उसके कर्म में कुछ अभाव रह गया है तथा पुत्र उस अभाव को पूरा करना चाहता है। अपने पिता से चिन्ता मुक्त रहने का निवेदन कर, पुत्र प्रणाम कर प्रस्थान करता है। यह कथा का बाह्य स्वरूप है। आंतरिक आशय यह है कि बालक चेतना के उच्चतर स्तर पर सत्य की खोज करने लगता है। प्रथम स्तर इन्द्रियों का स्तर था, पिता का संसार,जो पाँच इन्द्रियों के निर्देशों तक सीमित था। उसके लिये पाँच इन्द्रियों की गतिविधियाँ ही जीवन था। *वाजश्रवस् का जीवन इन्द्रियों के स्तर तक ही सीमित था परन्तु बालक नचिकेता उससे संतुष्ट न था अतः वह जिज्ञासा के उच्चतर स्तर पर उठ गया।* यह आंतरिक आशय है। हमें अभी बाह्य स्वरूप के संग आगे बढ़ना है, जिसमें बालक यमराज के घर जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह एक कथा है, दंत कथा है, एक पुरा कथा है, उसमें गूंथे हुये प्रतीक एक सजीव चित्र प्रस्तुत करते हैं। इस कथा के अनुसार, नचिकेता जब यमराज के द्वार पहुँचता है तो वे घर नहीं होते; वे तीन दिन पश्चात् लौटते हैं। बालक वहीं बैठ उनकी प्रतीक्षा करता है। प्राचीन भारत में, इतने भी प्राचीन नहीं, विमला के जीवन में कुछ पचास अथवा पचपन वर्ष पूर्व भी उसने अतिथियों को ऐसे प्रतीक्षा में देखा था। गाँवो में अथवा दूर-दूर के जंगलों में भ्रमण करते हुये, उसके देखने में यह आया था। यदि कोई अतिथि किसीके घर जाता तथा घर का स्वामी घर पर नहीं होता, तो प्रथा अनुसार एक ब्राह्मण को उस घर में भोजन नहीं करना होता था। वह घर के स्वामी के लौटने की प्रतीक्षा करता, भले उसका लौटना एक दिन में होता अथवा दो दिन में। वह वहीं उपवास करता, भोजन ग्रहण नहीं करता। बचपन में मध्य भारत के अंतर्भाग के गावों में ऐसा मेरे देखने में आया था।

घर लौटने पर यमराज को खेद होता है कि एक अतिथि को तीन दिन तक, उनके द्वार पर उपवास करना पड़ा। अपने आतिथ्य के प्रमाण स्वरूप वे नचिकेता से कहते हैं - 'श्रीमान, आपको मेरे घर में बिना भोजन व जल के तीन दिन तक रहना पड़ा, कृपया तीन वरदान माँगिये। मैं आपको तीन वरदान देता हूँ'। प्राचीन भारत में आतिथ्य की जो धारणा थी, एक गृहस्थ तथा घर आये अतिथि के बीच जो संबन्ध था,मैं उस के विस्तार में नहीं जाऊँगी, मात्र इतना कह रही हूँ कि उस संस्कृति में प्रत्येक कर्म एक यज्ञ होता था। जब कोई विवाह करता,वह एक यज्ञमय जीवन होता; विवाह अपने आपमें एक यज्ञ होता। जब कोई मातृत्व-पितृत्व स्वीकार करता वह यज्ञ होता। अर्जन कर परिवार का पालन-पोषण करता, घर बनाता, संपत्ति धारण करता तथा उसका उपयोग जरूरतमंदों के लिये करता,वह एक यज्ञ होता। अतिथि देवो भव, अतिथि ईश्वर का दूत माना जाता था। यह संबन्ध प्राच्य संस्कृति की विशिष्टता रही है। संभवत: सब जगह ऐसा ही हो, मैं पूर्व का ही उल्लेख कर रही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हूँ क्योंकि मेरा पालन-पोषण यहीं हुआ है ।

पहला वरदान

नचिकेता को यमराज द्वारा तीन वरदान दिये गये । बालक द्वारा माँगा गया पहला वरदान आश्चर्यजनक है । एक अति मानवीय, निर्दोष सहजता से वह अपने पिता के लिये चिंतित था । एक ही व्यक्ति में बाल्यावस्था की निर्दोषता तथा एक जिज्ञासु की परिपक्वता का सह-अस्तित्व देखने में आता है । *जब कोई अनुसंधान करता है तथा सत्य की खोज करता है, तो उस खोज की अभिवृत्ति उसे निर्भय बना देती है । एक निर्भय व्यक्ति में ही सहजता का होना संभव है; कायरता और सहजता मेल नहीं खाते ।* साधारणत: तो अनुमान लगाये जाते हैं, फेर-बदल किये जाते हैं, हिसाब-किताब रखे जाते हैं,मोल-तोल किये जाते हैं । आप तो जानते ही हैं कैसे अपने और दूसरों के व्यवहार में हेर-फेर किये जाते हैं । मानवीय संबन्धों की समस्त, समस्त नहीं तो अधिकतर उलझनें कायरता का, भय का परिणाम होती हैं । एक ब्रह्मजिज्ञासु सत्य के प्रति समर्पित होने के कारण निर्भयता पाता है । जब कोई सत्य की ओर उन्मुख होता है तथा उसकी खोज को अपना जीवन समर्पित करता है, तो उस की गति,उस की शक्ति उसे निर्भय बना देती है ।

नचिकेता, वह सरलता का सौन्दर्य, अपने पिता के प्रति एक मानवीय आत्मीयता, पहले वरदान स्वरूप माँगता है कि उसके घर लौटने पर, उसके पिता उसे स्वस्थ एवं शान्तिमय मिलें । उसकी प्रवीणता तो देखिये, उसने संकेत कर दिया है कि वह अपने पिता के पास लौटेगा । वह यमराज के पास रहने के लिये नहीं आया है । उसे अपने पिता के कल्याण की चिंता है, वह चाहता है कि लौटने पर, उसके पिता उसे स्वीकार करें । बाह्य आशय में, यमराज मृत्यु के स्वामी हैं और नचिकेता उनके पास गया है, अर्थात् उसकी मृत्यु हो गयी है । यदि कोई मृत्यु पश्चात् लौटता है तो उसे भूत-प्रेत कहा जाता है । यह बाह्य स्वरूप जन-साधारण के हित के लिये व आंतरिक रहस्य के संरक्षण के लिये है । इन दो आवश्यकताओं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की पूर्ति उपनिषदों की इस शैली द्वारा होती है। यह संवाद की शैली, काव्य शैली, पुरा कथाओं के प्रसंग, प्रतीकों व अन्योक्तियों इत्यादि के उपयोग द्वारा होती है।

नचिकेता ने एक अति मानवीय आत्मीयता को व्यक्त किया तथा यमराज ने उसे आश्वासन दिया कि उसके पिता पहले से ही स्वस्थ हैं, वे संतुष्ट हैं और उसके लौटने पर उसे स्वीकार करेंगे। इससे नचिकेता का बाल्यपन तृप्त हुआ।

प्रतिक्रियाओं से मुक्त जिज्ञासु

क्या मैं नचिकेता द्वारा माँगे गये वरदान के आंतरिक आशय की ओर लौट सकती हूँ ? उस पाँच वर्षीय ऋषि ने, अपनी मानसिक परिपक्वता में अपने पिता के प्रति किसी प्रतिक्रिया को उठने की स्वीकृति नहीं दी। जब उसे यम अथवा मृत्यु के स्वामी के पास जाने को कहा गया, तो उस निर्भय बालक में कोई प्रतिक्रिया नहीं उठी। उसने यह आघात नहीं लिया कि उसके पिता उसे मृत्यु को सौंप रहे हैं। एक अन्वेषक में, एक जिज्ञासु में, प्रतिक्रिया की क्रिया नहीं होती। आपके और मेरे लिये यह एक अति महत्वपूर्ण विषय है। हम अधिकतर अपनी प्रतिक्रियाओं द्वारा ही जीते हैं। हम कर्म में तो भले सावधान रहें, संभवतः सतर्क रहें तथा दायित्व भी स्वीकार करें परन्तु हमारी सम्पूर्ण शारीरिक संरचना, स्नायु-तंत्र व रासायनिक व्यवस्था में समायी प्रतिक्रियायें, संवेगात्मक प्रतिक्रियायें निरंतर गतिमान रहती हैं। हम प्रत्येक शब्द तथा हाव-भाव के अर्थ लगा कर प्रतिक्रिया करते हैं। जो सत्य की खोज के लिये निकलता है, वह अपना समय तथा शक्ति प्रतिक्रियाओं में व्यर्थ नहीं कर सकता। उस बालक में पिता के प्रति कोई प्रतिक्रिया नहीं उठी। उसकी आत्मीयता एक स्वाभाविक स्नेह से, अपने पिता के कल्याण के लिये थी।

यहाँ एक सूत्र है कि एक अन्वेषक को, एक जिज्ञासु को दूसरों के कर्म से मानसिक वेदना नहीं होनी चाहिये। उसे अपनी जीवमूलक शक्ति को अनावश्यक, गौण प्रतिक्रियाओं में व्यय नहीं करना चाहिये। दूसरों ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसा क्यों किया ? मैं उससे कितना दुःखी हुआ इत्यादि जैसी प्रतिक्रियाओं में जीवन व्यर्थ करने की जगह अपना ध्यान जीवन जीने के कर्म पर केन्द्रित रखना चाहिये। अहम् व्यक्तित्व को, जीवन-मूलक शक्ति को खंड-खंड करने की स्वीकृति नहीं दी जा सकती। जब हम मानसिक से संकल्पनातीत की ओर बढ़ेंगे-मात्र इन्द्रियातीत नहीं परन्तु संकल्पनातीत-अधिमानसिक के क्षेत्र में जायेंगे, तो हमें कहीं अधिक शक्ति की, सजीवता की आवश्यकता होगी। जीने के कर्म में विभ्रांत होना बहुत महँगा पड़ता है। मैंने ऐसा सीखा है। आप जानते हैं, मैं पढ़ते-पढ़ते सीखती जाती हूँ। मैं समस्त को जीने के कर्म से संबन्धित करती जाती हूँ। मेरा अनुभव ऐसा रहा है कि जीने की गति के सिवा भला जीवन और क्या है ? सीखना ही है जो आपको चैतन्यशाली रखता है। जानने की अर्जनशील गति, जानकारी का संग्रहण आपको निस्तेजित कर देता है, वह सरलता के होने का स्थान नहीं देता। मैंने नचिकेता से, प्राचीनकाल के उस नन्हें से ऋषि से ऐसा सीखा है।

दूसरा वरदान

चलिये, अब नचिकेता द्वारा माँगे गये दूसरे वरदान की ओर बढ़ें। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि प्रत्येक धर्म ने स्वर्ग की एक छवि का निर्माण किया है। वह स्वर्ग जहाँ वेदना रहित, कष्ट रहित सुख होगा, जहाँ कोई विपत्ति, कोई संभ्रांति, कोई पीड़ा नहीं होगी। जहाँ सुख प्रदान करने वाले समस्त साधन होंगे, अवकाश होगा, कोई परिश्रम नहीं करना होगा, इत्यादि, इत्यादि। हमारा संसार इन्द्रियों द्वारा प्रस्तुत किये गये तथ्यों द्वारा रचा होता है। हमारे जीवन की गतिविधि बाह्य विषयों के साथ इन्द्रियों के सम्पर्क द्वारा होती है, उन इन्द्रियों द्वारा जो सुख की तलाश में रहती हैं। इसलिये हम जीवन के एक अन्य कक्ष की, जीवन के एक अन्य आयाम की कल्पना करते हैं, जहाँ दुःख रहित सुख होगा। यहाँ भौतिक स्तर पर, जैविक स्तर पर एक द्वैत रहता है। सुख की छाया में अनेक दुःखों का पोषण होता है। सफलता की छाया में असफलता का अन्धकार होता है, मिलन की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उत्तेजना के संग विदाई का अन्धकार एवं उदासी रहती है। आप तो यह सब जानते ही हैं !

भौतिक स्तर पर, इस संसार में सुख एवं दुःख एक साथ रहते हैं; जन्म-मरण, जय-पराजय, मान-अपमान इत्यादि साथ-साथ रहते हैं। इसलिये, सभी धर्म-संघों तथा उनके धर्म-शास्त्रों ने विचार शक्ति द्वारा, कल्पनाओं द्वारा एक स्वर्गलोक की रचना की है। उनके अनुसार, यदि आप संसार में अच्छा आचरण करते हैं, प्रार्थनायें, पूजा, अर्चनायें करते हैं, सिनेगॉग, चर्च, मंदिर, गुरुद्वारे इत्यादि जाते हैं, अपना धन परोपकार में देते हैं, तब आप एक लम्बी अवधि के लिये स्वर्ग को जाते हैं। यह ऐन्द्रिय जगत् का प्रसार है, जो धर्म संघों व धर्मशास्त्रों ने रचा है। प्रत्येक धर्म ने ऐसा ही किया है। समस्त नैतिक उद्देश्यों के लिये, धार्मिक उद्देश्यों के लिये मानव प्राणियों को प्रलोभन दिये जाते हैं। कहा जाता है कि आपको पुरस्कारित किया जायेगा; स्वर्गलोक में जाना एक पुरस्कार है। यदि आप उचित आचरण नहीं करते हैं तो आप नरक लोक में भेजे जाते हैं। यह पुरस्कार एवं दंड सदाचरण के प्रोत्साहन के लिये होते हैं। जब प्रलोभनों, पुरस्कारों की प्रस्तुति, नरक का भय इत्यादि भी मनुष्य स्वभाव तथा उसकी विलक्षणताओं के साथ काम नहीं करते, तब आचरण की नियम संहितायें, मान्यताओं की संहितायें संगठित की जाती हैं। इनको लोकाचार कहा जाता है, आचरणशास्त्र कहा जाता है। उनको लागू करने का प्रयास होता है। यह आचरण के प्रतिमान बन जाते हैं। आप देखिये, सभी धर्म संघों व धर्मशास्त्रों ने ऐसा किया है ।

दूसरा प्रश्न स्वर्गलोक से संबन्ध रखता है । हम जिज्ञासुओं को, हमें, जिन्हें सत्य की खोज है, उन्हें समझ लेना चाहिये कि स्वर्गलोक की कल्पना क्यों की गयी है ? यह कल्पना ऐन्द्रिय जगत् का प्रसार है। ऐन्द्रिय सीमित होता है परन्तु कल्पना की कोई सीमा नहीं होती। संसार में एक दुःख रहित सुख की प्राप्ति असंभव होती है, आप यहाँ भय रहित सुनिश्चितता नहीं पा सकते। यहाँ विपरीतता होती है, यहाँ द्वित्व होता है, इसलिये हम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक ऐसे संसार की कल्पना करते हैं जहाँ कोई द्वैत नहीं होगा।

बालक, यमराज से पूछता है- क्या आप मुझे उस यज्ञ का विज्ञान, उस परम पावन अग्नि का उपयोग सिखायेंगे, जो स्वर्ग का सत्य जानने में मेरा सहायक होगा ? उसे सुखों में रुचि नहीं है, उसे स्वर्गलोक में कोई विशेष रुचि नहीं है। वह उस विज्ञान को जानना चाहता है जो उसे ऐन्द्रिय से स्वर्ग के काल्पनिक लोक से होते हुये, दूर, उसके पार ले जायेगा। इसलिये वह प्रार्थनाओं में, अर्चनाओं एवं कर्म कांडों में, यज्ञों में नहीं जाना चाहता, वह सूक्ष्म तत्त्व का वर माँगता है।

इस बिन्दु पर, कुछ समय लेकर मैं आपको बताना चाहूँगी कि प्राचीनकाल के भारत में जीवन को अग्नि माना जाता था; ज्ञान को एक प्रकार की अग्नि कहा जाता था,भावनाओं को एक प्रकार की अग्नि कहा जाता था। संभवतः आपने मंत्र योग में, तंत्र योग में तथा अपने योग के अध्ययन में देखा होगा कि जीवन एक अग्नि है। प्रकाश एक अग्नि है, उष्णता अग्नि है, अग्नि पोषक है, अग्नि उपभोक्ता है, वह सूर्य जिसे आप और मैं प्रतिदिन देखते हैं, वह जीवन की वैश्विक अग्नि का प्रतीक है।

मानव शरीर एक मंदिर है, जहाँ अनादि-अनंत अग्नि प्रज्वलित रहती है। आप काम-शक्ति से आरम्भ करते हैं, जो एक प्रकार की अग्नि है, जिसे समस्त मानवीय एवं गैर-मानवीय वर्ग अपने शरीर में समाये हैं। अग्नि की सर्जनात्मक शक्ति, उसकी सर्जनात्मकता वहाँ नाभि कमल में है। नाभि चक्र में एक अन्य प्रकार की अग्नि समायी है; यह बिन्दु, शरीर में नाद का स्त्रोत है। आप, योग के शिक्षक व विद्यार्थी तो जानते हैं कि नाद में अग्नि समायी है, उसमें प्रकाश समाया है तथा प्रकाश में अग्नि समायी है। यह परस्पर परिवर्तनीय शक्ति दूसरी अग्नि है। उससे ऊपर, हृदय चक्र में एक प्रकार की अग्नि है, जिसे आप भावनायें, अनुभूतियाँ, मनोभाव इत्यादि कहते हैं। यह हमारे जीवन का रासायनिक पक्ष है, यह भी अग्नि की ज्वाला है। कंठ में विशुद्धि चक्र है। उससे आगे दो नेत्रों के बीच भ्रूमध्य में आज्ञाचक्र है जिसमें विवेक की, बुद्धि की, तर्क शक्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की अग्नि समायी है। यदि आप और आगे बढ़ते हैं तो शीर्षशिखर में ब्रह्मरन्ध्र चक्र है, जिसमें अग्नि है; अग्नि का हज़ार पंखुड़ियों वाला कमल है। इस प्रकार, मानव शरीर भी बाहरी ब्रह्मांड के समान अग्नि समाये हुये हैं। पृथ्वी के गर्भ में अग्नि है, महासागरों के गर्भ में अग्नि है, आकाश के अंतरिक्ष में अग्नि है, बिजली है। जीवन को ज्वलंत अग्नि कहा जाता है। प्राच्य मानस में, अग्नि के विनाशक होने का विचार साहचर्य नहीं है, उसका सकारात्मक स्वरूप देखा गया है।

यहाँ, नचिकेता अग्नि को ऐन्द्रिय स्तर से मानसिक स्तर तथा अतिमानसिक स्तर पर ले जाने की शिक्षा का निवेदन कर रहा है। धर्म संघों ने जिन स्वर्गलोकों की चर्चा की है, वे उसके अधिक उपयोग के नहीं हैं परन्तु वह उस भाषा का उपयोग करता है। आप जान लीजिये कि उपनिषद् गुह्य अनुभवों के प्रकटन हैं। यदि आप उन्हें शब्दार्थ में ही समझेंगे तो वे आध्यात्मिक सुखवाद के सिवा और कुछ नहीं होंगे। ऐसे में वे मात्र स्वर्ग के लिये प्रार्थना होगी, मवेशियों, गायों इत्यदि के लिये माँग होगी। सामवेद के मंत्र कहते हैं- घृतं च मे, धनं च मे, मधुं च मे, गावश्च मे। ऋषि जीवन प्रेमी थे, इसलिये वे सांसारिक विषयों के लिये याचना करते थे। यदि कोई व्यक्ति उपनिषदों की भूमिका में नहीं जाता, तो वह उपनिषदों एवं वेदों को आध्यात्मिक सुखवाद के सिवा और कुछ नहीं समझेगा। वास्तव में ऐसा नहीं है।

अपने ही शरीर में यज्ञ की तैयारी

बाह्य स्वरूप दिखाने के साथ-साथ, अब मैं आपका ध्यान आंतरिक आशय की दिशा में आकर्षित कर रही हूँ। यह उपनिषद् कई मंत्रों में, कई श्लोकों में व्याख्या देता है कि उस अग्नि को कैसे प्रज्वलित किया जाये, जो नचिकेता को जीवन के उच्चतर लोकों में ले जाये। हम शब्दों को प्रत्यक्षार्थ में नहीं लेंगे कि कितनी ईंटे लेनी हैं, उन्हें कैसे व्यवस्थित करना है तथा अग्नि कैसे प्रज्वलित करनी है। यह तो बाह्य स्वरूप है। ईंटें तो आपकी अपनी इन्द्रियाँ हैं, अग्नि प्रज्वलित करना बोध-शक्ति की लौ को जागृत करना है न कि दो लकड़ियों को ले कर अग्नि प्रज्वलित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करना । *यहाँ श्रद्धा तथा अनुसंधान-जिज्ञासा-की लकड़ियों के घर्षण से अग्नि प्रज्वलित करनी है ।*

कठोपनिषद् के पहले अध्याय में ऐसे कितने ही मंत्र हैं, जिन्हें पढ़ने वाला बाह्य स्वरूप में भटक सकता है। कितनी ईंटें, उनको कैसे पकाना, कैसे उन्हें अपने शरीर में व्यवस्थित करना, यह समस्त शरीर में चक्रों की ओर संकेत करता है । जिसके अनुसार आप श्रद्धा तथा प्राणों की, जीवन शक्ति की लकड़ियां लेकर अग्नि प्रज्वलित करते हैं । मेरे विचार से हमें इन तीन-चार मंत्रों के विस्तार में नहीं जाना चाहिये, जिनमें बाह्य कर्म-कांड का वर्णन दिया गया है । ये आपकी जिज्ञासा से, योग के अध्ययन अथवा ध्यान के अध्ययन से विशेष संबन्ध नहीं रखते । इतना जान लेना ही पर्याप्त है कि जिज्ञासा को स्वत: प्राणों तथा श्रद्धा की सहायता द्वारा प्रज्वलित करना होता है। यह श्रद्धा होती है जीवन में तथा प्रेरणा होती है समझने की, खोज की, अनुसंधान की । यदि इन दोनों की सहायता द्वारा अंतस्थ में अग्नि प्रज्वलित की जाती है, तो फिर ग्रन्थ पढ़ने तथा शास्त्रों का अध्ययन करने की आवश्यकता नहीं होती । तब बाह्य सहारों की आवश्यकता नहीं होती। हृदय में प्रज्वलित वह अग्नि इस सूक्ष्म पथ पर आपका पथ प्रदर्शन करती है। आप ही वह मार्ग बन जाते हैं, आप ही वह पथ बन जाते हैं। आप ही तीर्थयात्री बन जाते हैं और आपका जीवन एक तीर्थयात्रा ।

निम्नतर की आहुति से उच्चतर का जन्म

लकड़ी जब जलती है, तभी ज्वाला प्रज्वलित होती है । उसे सुरक्षित रख, आप अग्नि तथा उसकी लौ को नहीं पा सकते। वैसे ही, जब आप चेतना के उच्च स्तरों पर उठ जाते हैं, तब आप निचली वास्तविकताओं के प्रति उदासीन हो जाते हैं । ऐन्द्रिय के साथ आपका संबन्ध, उसमें आपकी रूचि, उसके साथ की परस्पर क्रिया लगभग न के बराबर हो जाती है । उनके साथ आपका सबन्ध मात्र शरीर के भरण-पोषण के लिए होता है; आप उसे खिलाते हैं, उसे पहनाते हैं परन्तु उसके प्रति आपको कोई आकर्षण नहीं होता । आप ऐन्द्रिय के प्रति आकर्षित नहीं होते । उपयोग की वस्तुओं की अनेकता, जीवन की अभिव्यक्तियों की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनेकता आपको उलझाती नहीं, आपकी शक्तियों को क्षीण नहीं करती। रूपक भाषा में, आप ऐन्द्रिय के प्रति मर जाते हैं। ऐसा कहिये कि उसका अंत हो जाता है। उस मृत्यु से इंद्रियातीत की लौ का जन्म होता है।

कठोपनिषद् जन्म और मरण का रहस्य है। जैसे श्वास का लेना व छोड़ना होता रहता है, आप एक आयाम के प्रति मरते हैं और दूसरे में जन्म लेते हैं। यह निरंतर पुनर्जन्म है; निरंतर मरना तथा निरंतर जंन्म लेना है।

उपनिषद् आगे कहता है, यमराज ने नचिकेता को आरम्भ से अंत तक सम्पूर्ण प्रक्रिया का रहस्य प्रकट किया। यह जानने के लिये कि क्या बालक नचिकेता की समझ में आ गया है, वे उसे दोहराने को कहते हैं। कथा के अनुसार बालक सम्पूर्ण प्रक्रिया दोहरा देता है। आचार्य, नचिकेता की सराहना करते हैं कि मात्र एक बार समझाने पर उसने सम्पूर्ण विषय को ग्रहण कर लिया है। नचिकेता की सम्पूर्णता की पकड़, उसकी संवेदनशीलता तथा विलक्षण स्मरण-शक्ति से यमराज आश्चर्यचकित होते हैं। वे प्रार्थना करते हैं कि उन्हें नचिकेता समान और भी शिष्य मिलें। अपनी दी हुयी शिक्षा के अभिग्रहण, प्रतिधारण तथा प्रस्तुतीकरण से आनंदित हो, यमराज नचिकेता को दिये गये तीन वरदानों के अतिरिक्त एक अन्य वरदान देते हैं। वे वरदान देते हैं कि अपने ही शरीर में प्रज्ञा की अग्नि प्रज्वलित करने की सम्पूर्ण प्रक्रिया तथा उसे प्रज्वलित रखने को नचिकेता अग्नि के नाम से जाना जायेगा।

नचिकेता को प्रशंसा से प्रसन्न हो तृप्त नहीं हो जाना था, उसमें जिज्ञासा की सत्यनिष्ठा थी। प्रशंसा के प्रति मौन रह वह तीसरे वरदान, तीसरे प्रश्न पर ध्यान देता है। कल से हमारा अधिक समय इसी प्रश्न पर केन्द्रित होगा।

तीसरा प्रश्न

नचिकेता कहता है, महाराज, आपके सिखाने के साथ ही मेरे अन्दर अग्नि प्रज्वलित हो गयी है। मैंने मात्र आपके शब्दों को ही नहीं समझा, उनका श्रवण करते हुये अन्तर अग्नि प्रज्वलित हो गयी है। आपने ऐन्द्रिय जगत् तथा स्वर्गलोक के प्रसार के विषय में जो कहा, उसे मैंने ग्रहण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर लिया है। आपने देखा, श्रवण करना ही समझना है और समझना ही उसे जीना है, उनके बीच कोई समय का अन्तराल नहीं है। इसलिये, नचिकेता कहता है अग्नि प्रज्वलित हो गयी है।

अब एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रश्न तथा कठिनाई आती है। ऐन्द्रिय से मानसिकता में जाना आसान था, मानसिक स्तर पर भी संतुलन एवं संयम रखना आसान था। *अब, यदि मैं मानसिक के पार जाता हूँ, जो प्रायः मेरे अहम् व्यक्तित्व की मृत्यु होगी, जो प्रायः मेरे पृथक व्यक्तित्व के आभास की मृत्यु होगी, तब उस व्यक्तित्व का क्या होगा ?* प्रश्न के बाह्य स्वरूप में पूछा जा रहा है, क्या शरीर की मृत्यु के उपरान्त कुछ भी ऐसा है जो बना रहता है ? आंतरिक आशय में पूछा जा रहा है कि जब ऐन्द्रिय तथा मानसिक से एक Quantum Jump ली जाती है, जब अन्तर अग्नि एक अ-मानसिक, मानसिकता के पार, धारणाओं के पार के लोक में ले जाती है, तो क्या मेरा अहँ व्यक्तित्व, 'मैं' और 'मेरा' बना रहता है ? तब उस व्यक्तित्व का क्या होता है जो ऐन्द्रिय स्तर पर, मानसिक स्तर पर बनाया गया है ? यहाँ, इस स्तर पर 'मैं हूँ' की क्रिया है, उसकी गति है। इसके पार, जब इसका अंत हो जाता है, तो क्या उसका अस्तित्व, उसकी सत्ता पूर्णतः नष्ट हो जाती है ? जब उसके पार जाना होगा, तब 'मैं' वैश्विक जीवन की समग्रता में डूब जाऊँगा, समस्तता में डूब जाऊँगा, क्या तब व्यक्तित्व बना रहेगा ? जब मैं अहम् की मृत्यु पर, निज की मृत्यु पर समग्रता में विलीन हो जाऊँगा तो क्या शेष रहेगा ? क्या वह अंत होगा ? क्या मृत्यु अंत है ? क्या मृत्यु विलोपन है ? या फिर कुछ है जो बना रहता है ? वह क्या है जो सतत रहता है ? जब अहम् अक्रियता में जाता है, प्रसुप्तावस्था में जाता है, तब क्या शेष रहता है ? सरल शब्दों में, जब मन से, मस्तिष्क से विमुक्ति होती है, जब समस्त संस्कारों से, सम्पूर्ण व्यक्तिगत व वैश्विक अतीत से मुक्ति मिलती है, तब क्या शेष रहता है ? यही प्रश्न है, जिसके लिये इस उपनिषद् का प्रकटन हुआ है।

यह प्रश्न है ध्यान के विषय में। आने वाले सत्र में हमें भौतिक मृत्यु, भौतिक मरण, मानसिक मरण, ज्ञान एवं ज्ञाता के अंत होने, अनुभव होने तथा अनुभवकर्ता के अंत होने के प्रश्न में जुट जाना होगा। प्रश्न कठिन है। आने वाला यमराज एवं नचिकेता का संवाद कथा का वह भाग है, जो इस कठिन विषय को रुचिकर बनाता है। यह प्रश्न ध्यान के विषय में है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरा संवाद

जो लोग कल के वर्ग में उपस्थित थे, वे सत्य की इस तीर्थयात्रा में कृपया मेरे साथ आगे चलें। कल भी उल्लेख किया गया था कि उपनिषद् कोई पद्धति अथवा दार्शनिक प्रणाली प्रस्तुत नहीं करते हैं । वे किसी धर्मशास्त्र का प्रचार नहीं करते हैं। वे किसी संगठित अथवा संस्था रूपी धर्म को नियत नहीं करते हैं। वे परम सत्य के साथ सम्मिलन का शब्दों में प्रकटीकरण हैं । प्राच्य देशों में ब्रह्मांड के सत् के साथ सम्मिलन को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती थी। उस यथार्थता का प्रत्यक्ष अनुभव, उसकी खोज, उसका बोध तथा उससे संबन्धित होना जीवन का ध्येय था। इसीसे इन प्रकटनों में एक पावनता, एक पवित्रता है । संभवत: ऐसे प्रकटन विश्व के प्रत्येक भाग में हुये होंगे, सत्य के साथ संवाद करने का साहस करने वाले कुछ विरल मानव विश्व के प्राय: प्रत्येक भाग में रहे होंगे ।

उपनिषदों का प्रकटन भारतवर्ष में हुआ है, इसलिये ये शाब्दिक अभिव्यक्तियाँ इस समुदाय की स्थानीय परम्पराओं द्वारा प्रतिबन्धित हैं । उनका बाह्य स्वरूप हिन्दू जीवन शैली तथा उसकी प्रथाओं द्वारा प्रभावित है। उपनिषद् जिस आंतरिक आशय को प्रकट करना चाहते हैं, वह हिन्दु समुदाय तक, भारतीय संस्कृति तक सीमित नहीं है; वह देश-काल द्वारा सीमित नहीं है। इसलिये यदि योग विज्ञान में किसी की रुचि है तो उपनिषदों का अध्ययन अति संगत है । भारतीय दर्शन प्रणाली में योग दूसरे स्थान पर आता है, पहले सांख्य और फिर योग, बाद में आते हैं तर्क, न्याय इत्यादि । आपमें से जिन्होंने, मेरे साथ भगवत्गीता का अध्ययन किया है, संभवत: आगे अध्ययन करने पर उनके ध्यान में आयेगा कि भगवत्गीता का संदेश प्राय: कठ, तैत्तिरीय तथा छान्दोग्य उपनिषदों पर आधारित है । संभव है कि कुछ विशेष प्रसंग आपके ध्यान में आयेंगे ।

कल हमने कथा के संदेश की बाह्य संरचना के साथ परिचय पाया था, जिसमें पिता एवं पुत्र का संवाद था, पुत्र का यमराज अथवा धर्मराज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के पास जाना था। कल की दो बैठकों की यात्रा, पहले पन्द्रह मंत्रों का अध्ययन, तुलनात्मक दृष्टि से सरल था। आजसे यात्रा बहुत ही कठिन होगी। शब्द जिन रहस्यों को प्रकट करने का प्रयास करेंगे, उनको समझने के लिये आपको समग्र तितिक्षा की आवश्यकता होगी। आज हम सोलहवें, सत्रहवें व अठारहवें मंत्रों का अध्ययन करने जा रहे हैं।

उपनिषद् शब्द के छायार्थ

आरम्भ करने से पहले हम जान लें कि उपनिषद् शब्द के दो छायार्थ हैं। एक है, आचार्य के सान्निध्य में रहते हुये आचार्य एवं शिष्य का संवाद। उप का अर्थ है निकट। यह मात्र आचार्य के निकट बैठने का शारीरिक सान्निध्य नहीं है, यह है आचार्य के संग रहना। सहवास में जी कर आप देखते हैं कि आचार्य कैसे जीते हैं, वे कैसे कर्म करते हैं, वे कैसे अनुक्रिया करते हैं तथा कैसे जीवन की चुनौतियों को स्वीकार करते हैं। वैसे तो जीवन ही एक आचार्य है परन्तु जब आप अपने विशेष आचार्य के साथ, एक विशेष व्यक्ति के साथ जीते हैं, तब आपके अवलोकन तथा उनके जीवन के बीच एक संवाद होता है। उपनिषद् शब्द का यह एक पहलू है। ऐसे संवाद को भारतीय भाषाओं में सतसंग कहा जाता है; संग रहना तथा सहभागी होना। जब तक आचार्य एवं शिष्य प्रत्येक स्तर पर, ऐन्द्रिय, वाचिक, मानसिक एवं अधिमानसिक स्तर पर संग रह कर सहभागी नहीं होते, तब तक शिक्षा प्रदान नहीं की जा सकती। *प्रज्ञान का संचरण आचार्य अथवा शिष्य के किसी चेतन प्रयास का फल नहीं होता। वह एक घटना होती है। प्रज्ञान अति सूक्ष्म होता है, वह किसी भाषा के शब्द के समान स्थूल नहीं होता।* एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को शब्द प्रदान किये जा सकते हैं, पुस्तक से मस्तिष्क पर उनका अंतरण किया जा सकता है, परन्तु यह अंतरण अनिवार्यतः प्रज्ञान नहीं प्रदान करता। उसके लिये शिष्य की जीवन शक्ति तथा आचार्य की जीवन शक्ति के बीच पारस्परिक क्रिया की आवश्यकता होती है।

उपनिषद् शब्द का दूसरा छायार्थ अति रोचक है, यह है व्यक्त करना,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकट करना। संग जीने में, आचार्य सचेत रहता है कि शिष्य यथार्थता के अन्वेषण के लिए आया है। इसलिये वह प्रत्यक्ष सम्मिलन के रहस्य के प्रति, उसके प्रकटीकरण के प्रति सावधान रहता है। रहस्यों का अध्यापन नहीं किया जा सकता, उनका अंतरण नहीं किया जा सकता, उन्हें ग्रहण करना पड़ता है। इस प्रकार रहस्यों का प्रकटीकरण एक आशय है तथा जीवन की सहभागिता व संवाद एक अन्य आशय है। यह शब्द बहुत रोचक हैं !

त्रिणाचिकेता अग्नि

कल शाम हमने देखा , यमराज ने नचिकेता को अपनी सत्ता में अग्नि प्रज्वलित करने की विधिं का वर्णन दिया। आज प्रातः हम त्रिणाचिकेता शब्द के अर्थ, तीन प्रकार से अग्नि प्रज्वलित करने के आशय की ओर ध्यान देंगे। अब हम ध्यान देंगे अपनी सत्ता में अग्नि प्रज्वलित करने की वास्तविक क्रिया पर तथा आहुति देने की क्रिया पर। *ये यज्ञ अपने ही शरीर में करने होते हैं। स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर वेदी बनते हैं, वे यज्ञ-भूमि बनते हैं, जहाँ अपनी सत्ता से आहुतियाँ दी जाती हैं।*

पहला यज्ञ, यज्ञ की प्रक्रिया माँ से सीखनी होती है।* बालक माँ से शरीर की ऐन्द्रिय संरचना, नेत्र, नासिका, कर्ण, हस्त, पाँव इत्यादि की क्रिया प्रणाली से परिचय प्राप्त करता है। यह ऐन्द्रिय संरचना है, स्थूल शरीर है। माँ उसका पोषण करती है, वह हमारा उससे परिचय करवाती है; उसके साथ व्यवहार करना सिखाती है। फिर आती है पिता की भूमिका, वह आंतरिक इन्द्रियों से परिचय करवाता है। माँ शरीर पर दृश्यमान इन्द्रियों से परिचय कराती है, पिता आंतरिक इन्द्रियों से परिचय कराते हैं। जैसे नेत्र बाह्य इन्द्रियाँ हैं परन्तु उनमें समायी दृष्टि आंतरिक इन्द्रिय है। कर्ण श्रवण करने के यंत्र है, श्रवण करने की क्षमता आंतरिक इन्द्रिय है। जैसे हमारी पाँच ज्ञानेद्रियाँ शरीर की बाह्य झरोखे हैं, वैसे ही इन इन्द्रियों के

** हम प्राचीन काल तथा तब की शिक्षा पद्धति की चर्चा कर रहे हैं।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुरूप आंतरिक इन्द्रियाँ हैं। ये ज्ञानेन्द्रियों को शक्ति प्रदान करती हैं, जिससे ज्ञानेन्द्रियाँ देख सकती हैं, श्रवण कर सकती हैं, स्पर्श कर सकती हैं इत्यादि, इत्यादि। तीसरी भूमिका गुरू अथवा आचार्य की होती है। माता, पिता तथा गुरु एक त्रिकोण है, जिससे बालक को गुज़रना होता है। एक गुरू, एक आचार्य शिष्य की पहचान और अधिक सूक्ष्म काया से करवाता है, जिसे मन एवं बुद्धि कहा जाता है। मन में ग्रहण करने की, धारण करने की, पुन: प्रस्तुत करने की क्षमता सम्मिलित है। मन, इन्द्रियों द्वारा लाये गये संवेदनों को एकत्रित कर, उनको पृथक कर, उनका वर्गीकरण करने का प्रयास भी करता है। मन से भी सूक्ष्म है बुद्धि, तर्क शक्ति, जो ज्ञानेन्द्रियों की सहायता से मन द्वारा एकत्रित तथ्यों का विश्लेषण तथा संश्लेषण करती है।

हमारे पास ऐन्द्रिय संरचना* है, बाह्य एवं आंतरिक ज्ञानेन्द्रियाँ हैं और एक विचार संरचना है। मन तथा बुद्धि विचार संरचना में सम्मिलित हैं। इसमें विश्लेषण, समाकलन, संश्लेषण इत्यादि की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। इस प्रकार हमारे पास एक विचार काया है तथा एक स्थूल काया है। आचार्य, बालक को विचार काया की क्रियाविधि से परिचित करवाते हैं। संकल्पना, ज्ञान, विविध व्यवहार की नियम संहितायें, मूल्यांकन संरचनायें, आचार्य द्वारा दी जाती हैं अथवा वे उनसे परिचय करवाते हैं। यह सीखने की एक पद्धति है, जो प्राचीनकाल में प्रचलित थी। बोध की आंतरिक अग्नि को माता-पिता तथा आचार्य की सहायता से प्रज्वलित करने की यह एक पद्धति थी। निर्देश दिये जाते थे - मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव।

सीखने की दूसरी पद्धति वेदों द्वारा, शास्त्रों अथवा विज्ञान द्वारा, प्रत्यक्ष व्यक्तिगत अनुभवों द्वारा होती है; वेद, श्रुति एवं प्रत्यक्ष। यहाँ वेद शब्द से संकेत मात्र वेद के ग्रन्थों से नहीं अपितु समस्त उपलब्ध ज्ञान से है। आप ग्रन्थ पढ़ सकते हैं, ग्रन्थों का अध्ययन कर सकते

---

* *ऐन्द्रिय संरचना को स्थूल काया कहा जाता है।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं और फिर विज्ञान, जैसे रचना शास्त्र-विज्ञान, मनोविज्ञान, जीव-विज्ञान, भूविज्ञान इत्यादि से सीख सकते हैं। भारतवर्ष में शास्त्र-विज्ञान से संकेत षड् शास्त्र की ओर है। सांख्य-योग, हठ-योग, न्याय, वैशेषिका, मीमांसा, वेदान्त षड्दर्शन हैं। इस प्रकार सीखने की पद्धति का यह एक अन्य त्रिकोण हुआ- ग्रन्थ अथवा वेद, विज्ञान अथवा शास्त्र तथा प्रत्यक्ष अनुभव अथवा आत्म प्रतीति। आप अपनी समस्त समझ को इन तीन त्रिकोण बिन्दुओं द्वारा प्रमाणित कर सकते हैं।

सीखने की एक तीसरी पद्धति भी थी। इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष बोध के स्तर को प्रत्यय के स्तर द्वारा प्रमाणित करना तथा इस स्तर की उसके द्वारा परिपुष्टि करना जो मस्तिष्क एवं मन से परे है। भारतवर्ष में समझ को कभी वाचिक, सैद्धांतिक, शास्त्रीय ज्ञान संबन्धित समझ नहीं माना जाता था। यहाँ कहा जाता रहा है कि समझ की अग्नि को विविध पद्धतियों द्वारा प्रज्वलित करना होता है। ऐसा करने से त्रिणाचिकेत अग्नि प्रज्वलित होती है। सत्रहवें व अठारहवें मंत्रों में आप त्रिणाचिकेत शब्द का उपयोग पायेंगें । मैंने इस शब्द के छायार्थ स्पष्ट करने का प्रयास किया है । त्रि का अर्थ है तीन; नचिकेता अग्नि का तीन पद्धतियों द्वारा प्रज्वलित किया जाना।

यह तीन एक रहस्यमय अंक प्रतीत होता है। जब कोई भारतीय ग्रन्थों का अध्ययन करता है, वह उनमें तीन, पाँच, सात, नौ, ग्यारह अंकों का प्रयोग पाता है। अंक तीन कठ उपनिषद् में अत्याधिक महत्त्व रखता है। गीता में ऐसा अंक अठारह है, अठारह दिवस कौरवों तथा पांडवों के बीच युद्ध चला, अठारह ही हैं वेद व्यास द्वारा रचित अध्याय इत्यादि, इत्यादि। यहाँ है रहस्यमयी अंक तीन। क्यों? क्योंकि यह तीन प्रकार की काया की ओर संकेत करता है- स्थूल काया, विचार काया, सूक्ष्म काया। *हम ऐन्द्रिय संरचना को, ज्ञानेन्द्रियों को आंतरिक संरचना को अर्पित करेंगे, आंतरिक इन्द्रियों को बुद्धि एवं मन की अग्नि को अर्पित करेंगे तथा मन की आहुति, उसकी भेंट, उसका समर्पण प्रत्यक्ष सम्मिलन को अर्पित करेंगे।* हम स्वयं में ही, अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही शरीर में ये यज्ञ करेंगे, इसलिये हैं तीन कायायें। हम ये यज्ञ अपने शरीर के सभी तीन पहलुओं में, उन तीन पद्धतियों द्वारा एकत्रित शिक्षा की सहायता से करेंगे, जिसका अभी वर्णन दिया गया है।

इस रहस्यमयी अंक तीन के विषय में एक बात और कहने दीजिये। पहली है व्यक्तित्व युक्त चेतना, दूसरी है विश्वव्यापी मानवीय चेतना और तीसरी है परम् सर्वोच्च वैश्विक चेतना अथवा प्रज्ञा। यह तीन समझ द्वारा एक हो जाती हैं। व्यक्ति विशेष चेतना तथा उसकी समझ प्रजातीय चेतना (Racial Consciousness) द्वारा प्रमाणित कर, विश्वव्यापी मानवीय चेतना को आहुति स्वरूप अर्पित की जाती है। इन दोनों को सर्वोच्च प्रज्ञा को, परमात्मन को समर्पित कर दिया जाता है। यह समर्पणों का विज्ञान है, यज्ञ का विज्ञान है। कल हमने देखा था कि जीवन ही एक यज्ञ है, एक समर्पण है। जब कोई निम्न का समर्पण करता है तो उच्चतर प्रकट होता है, उसका समर्पण किया जाता है तो उच्चतम की लौ प्रकट होती है। इसलिये अंक तीन का महत्त्व है, यह मात्र संयोग नहीं है; कठोपनिषद् में यह एक रहस्यमय अंक है।

ऐल्किमी का विज्ञान

यमराज नचिकेता को यज्ञ करना सिखा रहे हैं, वे विवरण दे रहे हैं कैसे अग्नि अपने अन्दर प्रज्वलित करनी सीखी जाये ? कैसे वह प्रज्वलित की जाये? निम्नतर कैसे उच्चतर को समर्पित किया जाये। एक परित्याग के रूप में नहीं, स्वंय को किसी विषय, किसी वस्तु से वंचित करके नहीं। जब इन्द्रियों द्वारा प्रस्तुत किये गये तथ्य, इन्द्रियों द्वारा प्रस्तुत संवेदन तथा प्रभाव शरीर में विद्युत-चुंबकीय स्पंदनों (Electro Magnetic Impulses) के रूप में परिवर्तित होते हैं, तो वे संवेदनों के रूप में मर जाते हैं। स्पंदनों के रूप में उनका पुनर्जन्म होता है। वही स्पंदन मस्तिष्क तक जाते हैं, जहाँ पुनः एक परिवर्तन होता है। अब वे स्पंदन नहीं रहते, वे स्पंदनों के रूप में मर जाते हैं। अपनी मृत्यु में, मस्तिष्क द्वारा परिवर्तित हो वे एक अर्थ के रूप में प्रकट होते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कठोपनिषद् इसी निरंतर मृत्यु तथा पुनर्जन्म की गतिविधि की ओर संकेत करता है; मरना तथा पूर्णतया किसी भिन्न स्वरूप में रूपांतरित हो जाना। पहले की भस्म से तेजस्वी हो दूसरा अधिक शक्ति से प्रकट होता है।

निम्नतर को उच्चतर में अर्पित करने का वर्णन देने के पश्चात् यमराज नचिकेता से कहते हैं, यज्ञ में उपयोग की गयी ईंटें अन्य कुछ नहीं परन्तु अपने ही श्वास हैं, प्रत्येक श्वास एक ईंट है। जिस विधि तुम श्वास लेते हो, श्वास द्वारा अंदर लिये गये प्राण प्रतिधारण करते हो, जिस विधि तुम अनावश्यक अवशेष छोड़ते हो, तुम उस अग्नि का, उस स्थान का निर्माण करते हो जहाँ तुम यज्ञ का संचारण करने जा रहे हो। यमराज इन ईंटों के उपयोग का विस्तार में विवरण देते हैं। इसके साथ हमारा विशेष संबन्ध नहीं है परन्तु यदि आप अंग्रेज़ी अनुवाद में 'ब्रिक' शब्द का उपयोग पायेंगे, तो आश्चर्य करेंगे कि यहाँ मृत्यु एवं रूपांतरण के विज्ञान में ईंटों का उल्लेख कैसे आता है। यह एक प्रतीकात्मक शब्द है। यहाँ प्रत्येक शब्द संकेतात्मक है, क्योंकि यह गुह्य का वर्णन है, जीवन के मूलतत्त्वों का प्रकटीकरण है। आप तो जानते ही हैं प्राण अपने में ही, श्वास अपने में ही अग्नि का स्वरूप हैं।

यह समस्त विवरण दिये जाने केपश्चात् तथा नचिकेता द्वारा शब्दश: दोहराये जाने के उपरान्त, यमराज अति प्रसन्न होते हैं। आचार्य प्रसन्न होते हैं कि शिष्य ने श्वास लेने एवं छोड़ने की प्राणायाम की कला एवं विज्ञान को ग्रहण कर लिया है। उसने वह आसन सीख लिया है जिसमें श्वासों की ईंटें लगायी जाती हैं, उसने स्वयं को यम एवं नियम द्वारा प्रशिक्षित कर लिया है। आचार्य को लगता है कि शिष्य अब तैयार है।

ऐन्द्रिय स्तर पर भय का अंत

आइये पुन: ऐन्द्रिय स्तर पर लौटें। शिष्य ने समझ लिया है कि ऐन्द्रिय स्तर पर उसकी काया जीवन के वैश्विक सागर में एक लहर समान है। सागर में लहरें उठती हैं, वे जल से जन्म लेती हैं। वैसे ही हाड़-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मांस की, इन्द्रियों इत्यादि की सम्पूर्ण काया पंचमहाभूतों की बनी है, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश की बनी है। वे पाँच मूलतत्त्व, जिनसे समस्त ब्रह्मांड की रचना हुयी है, यह शरीर भी उन्हींसे रचा है। वह ब्रह्मांड के जीवन का एक अंग है, पृथकत्व एक भ्रम है। शरीर में मूलतत्त्वों का सार तथा बाह्य मूलतत्त्वों का सार एक ही है। शिष्य की बुद्धि को आभास हो जाता है कि वे भिन्न प्रतीत होते हैं, उनमें एक विविधता है परन्तु नींव एकता की है, सार एकता का है। भिन्नता, व्यक्तिक अथवा अव्यक्तिक स्वरूप में क्रियाशील होने के ढंग में है। मात्र यही भिन्नता है अन्यथा हम एक हैं, हम ब्रह्मांड के साथ एक हैं, हम प्रकृति के साथ एक हैं।

हम आधुनिक मनुष्य भली-भाँति जानते हैं कि हम प्रकृति से कितने भयभीत हैं। हमें भय होता है वर्षा से, हमें भय होता है अग्नि से, हमें भय लगता है शीत से, उष्मा से, क्योंकि हम प्रकृति में गतिमान मूलतत्त्वों से परिचित नहीं होते। हमने उनके संग व्यवहार करना, उनके संग संवाद करना, उनके संग जीना नहीं सीखा है। इसलिये हमें प्रकृति से एक मूलभूत भय रहता है। यदि आप उससे संबन्धित होना जानते हैं, उसके तत्त्वों को ग्रहण करना जानते हैं तो यह भय जाता है। आपको सीखना पड़ता है कैसे पृथ्वी से पोषण ग्रहण किया जाये तथा उसे प्रत्यर्पण किया जाये, कैसे जल तत्त्व से, अग्नि तत्त्व तथा आकाश की शून्यता से पोषण ग्रहण किया जाये। ऐसे संबन्धित होने से प्रकृति का भय, ब्रह्मांडमें सक्रिय मूलतत्त्वों का भय मिट जाता है।

सतरहवें एवं अठ्राहवें मंत्रों में यमराज वर्णन देने जा रहें हैं कि एक आध्यात्मिक जिज्ञासु क्यों निर्भय रहता है। यदि जीवन का भय, जीने का भय, मृत्यु का भय, संबन्धों का भय, प्रकृति के साथ परस्पर क्रिया का भय हृदय से लुप्त नहीं होता, तो सीखने की क्रिया अवरोधित हो जाती है, वह रुक जाती है। *इसलिये ऐन्द्रिय स्तर पर निर्भयता की नींव डालिये, जीवन के पाँच तत्त्वों के साथ सहज संबन्धों की खोज स्वयं कीजिये, उनके साथ परस्पर क्रिया सीखिये।* इससे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रोग का, बीमारियों का, अवनति का भय जाता रहता है, फिर आप इन्हें जीवन के एक नृत्य समान देखते हैं। वह जिसका जन्म है, वृद्धि, अवनति उसके मूल हैं और फिर है उसके रूप का विलोपन। इसका अर्थ जीवन का अंत नहीं। मृत्यु जीवन का नष्ट होना नहीं है। रूप के विघटन पर वह पृथ्वी में मिल जाता है और पुनः रूप धारण कर प्रकट होता है; कुछ भी नष्ट नहीं होता। जब आप देह को जलाते हैं, उसका दाह-संस्कार करते हैं अथवा उसे दफनाते हैं, तब कुछ भी नष्ट नहीं होता। मृत्यु को विनाश समझना एक भ्रम है। इसीसे जन-साधारण के मन में भय प्रेरित होता है।

ऐन्द्रिय स्तर पर जीवन के मूलतत्त्वों के बीच की एकता समझ में आ जाती है, यह समझ प्रत्यक्ष अवलोकन द्वारा आती है, यह प्रत्यक्ष बोध द्वारा आती है, यह समझ पारस्परिक क्रिया द्वारा आती है। यदि जीना पारस्परिक क्रिया नहीं तो और क्या है ?

मानसिक स्तर पर भय का अंत

ऐन्द्रिय से आप अंतःस्थ में जाते हैं, आप भौतिक से मानसिक की ओर, विचार संरचनाओं की ओर जाते हैं, जो आंतरिक इन्द्रियों की गतिविधि का पथ प्रदर्शन करती हैं। अब हम इस पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। आप प्राचीनकाल के इन ऋषियों का प्रज्ञान तो देखिये, वे कहते हैं कि मानसिक संरचना की नींव अनुभवों के निष्कर्षों द्वारा बनाये सिद्धान्तों में परिवर्तित करने पर आधारित होती है।* इन्द्रियाँ जानकारी लाती हैं तथा विचार संरचना- मन एवं बुद्धि- उसे एक प्रत्यय में, सिद्धांत में परिवर्तित कर देती है। वह प्रत्ययों को आयोजित कर ज्ञान का निरूपण करती है। जानकारी ज्ञान नहीं होती, जानकारी ज्ञान के लिये अपक्व सामग्री

---

* *यह एक अति सुन्दर परिभाषा है। आपमें से जिनकी आचार्य शंकराचार्य अथवा मध्वाचार्य- जो शंकराचार्य के बाद आते हैं- की समालोचनाओं का अध्ययन करने में रुचि हो, वे इसका अति रोचक विवरण पायेंगे। हम इन गहराइयों में नहीं जा सकते, क्योंकि हमारे पास दो ही सप्ताह का समय है। आपकी और मेरी अधिक गहराई में जाने की इच्छा होने पर भी समय हमें ऐसा करने की स्वीकृति नहीं देता है।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होती है। जब वह जानकारी व्यवस्थित की जाती है और आप दूसरों के लिये बोधगम्य निष्कर्ष निकालते हैं, तब इन्द्रियों द्वारा लायी गयी ठोस ऐन्द्रिय जानकारी ज्ञान बन जाती है। मनुष्यों के पास यह विचार संरचना है, उसे यह शानदार विरासत मिली है। जैसे पंचभूतों से रची यह काया मिली है, वैसे ही जिसे आप मन कहते हैं, मस्तिष्क इत्यादि कहते हैं, मनुष्य जीवन को वे विरासत में मिले हैं। प्राचीन काल के ऋषियों ने इसके लिए 'वैश्विक चेतना' शब्दों का उपयोग किया है।

जब जानने की गतिविधि होती है, उसका आशय 'मेरे' कुछ जानने से नहीं होता। अन्दर वह जानने की क्षमता होती हैं, वह जानना रहता है, जानने की गतिविधि रहती है, जानने की संदर्भ शैली रहती है। वह हमें विरासत में मिली है, इसलिये हममें वह जानने की गतिविधि होती है। जैसे पाँच मूलतत्त्व शरीर में क्रियाशील रहते हैं, वैसे ही संकल्पनात्मक, प्रत्ययात्मक क्रिया, उन्हें व्यवस्थित करने की, निष्कर्ष निकालने की निरंतर गतिविधि चलती रहती है। जैसे देखना एक अनैच्छिक क्रिया होती है, वैसे ही यह भ्रम होता है कि हम सोचते हैं अथवा मैं सोचता हूँ। मैं तो एक पात्र हूँ, जैसे मैं जैविक प्रक्रियाओं का पात्र हूँ, मैं इन मानसिक प्रक्रियाओं का भी पात्र हूँ। *मेरी व्यक्तिगत चेतना में ऐसा कुछ नहीं है, जो समस्त मानव जाति का ज्ञान अथवा अनुभव नहीं है। उपनिषद् एक अदभुत बात कह रहा है, वह क़हता है कि हमारे अन्दर ही ज्ञान का स्त्रोत है, ज्ञान का उद्गम है।* वह समस्त जो मानवता को ज्ञात है, वह यहाँ भीतर है, एक संभाव्य के रूप में वह हममें समाया है। जिसका सचेतन रूप से हमारी प्रेरणाओं के, हमारे उद्देश्यों के अनरूप हमारे द्वारा उपयोग किया जा सकता है।

एक जिज्ञासु अब ऐन्द्रिय स्तर से मानसिक स्तर पर, संकल्पना संबंधी, विचार शक्ति संबंधी, भावनाओं संबंधी स्तर पर आ जाता है। यह एक विशाल वर्णपट है। हम इन्द्रियों की अपेक्षा मन एवं मस्तिष्क के निर्णयों, उनके निष्कर्षों को अधिक महत्त्व देते हैं। इन्द्रियाँ हमारे अंदर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समाये इस ज्ञान तथा अनुभव के सार की अनुसेवी हैं, उनकी अपेक्षा वे गौण हैं। इन्द्रियों द्वारा लाये गये तथ्य मन एवं बुद्धि की अग्नि को अर्पित कर दिये जाते हैं और ज्ञान की आभा प्रकट होती है। आपने देखा होगा कि जब हमारे जीवन में अज्ञान दूर होता है, जब हम कुछ सीखते हैं, कुछ जानते हैं तो आनंद होता है, हमारे अन्तर में प्रांजलता का प्रकाश होता है, उसकी लालिमा फैलती है।

ऋषि उस ज्ञान के प्रकट होने की, उस प्रज्ञा के प्रकाश की बात कर रहे हैं जो इन्द्रियों द्वारा एकत्रित स्पन्दनों की मृत्यु से, मानसिक समझ में परिवर्तित हो कर प्रज्वलित होता है। भले वह भावनाओं का पहलू हो अथवा तंत्रिकीय पहलू हो, विचार काया में ऐन्द्रिय से अधिक ओज होता है, वह अधिक दीर्घकालिक होती है। इन्द्रियों के स्तर पर प्रभाव आते-जाते रहते हैं, वे क्षणिक रहते हैं। विचार काया में एक प्रकाश होता है जो अधिक स्थिर रहता है; जिसकी लौ, जिसका प्रकाश लम्बी अवधि तक रहता है। यदि ऐसा घटित होने दिया जाता है तो व्यक्तिगत चेतना की वैश्विक मानव चेतना के साथ एकता हो जाती है। कठोपनिषद् कहता है तब मन का भय लुप्त हो जाता है।

हम अपने मन से अत्यधिक भयभीत रहते हैं। हम उसके विषयों की जाँच नहीं करते, उनका निरीक्षण नहीं करते, उन्हें देखते नहीं। इसलिये हमें मन का भय रहता है। यदि हम अपने मन से, स्मृति से भयभीत नहीं होते हैं, तो हमें उसे नियंत्रण में रखने के लिये किन्हीं विशेष अनुशासनों की आवश्यकता नहीं पड़ती। समस्त अनुशासन मन के विरुद्ध बनाये जाते हैं। कृपया मेरे साथ देखिये। मन के प्रति हममें एक भय रहता है। यदि उसमें कुछ उभर आयेगा तो मैं उसे कैसे नियंत्रित करूँगा ? कौन सी विधि है ? कौन से मंत्र का उच्चारण हो ? किस यंत्र का उपयोग हो ? आपने देखा, हम मन से कितने भयभीत होते हैं।

एक बार हम समझ लें कि हमारा मन एक पृथक अंश नहीं है। हमारी चेतना के स्तर पर समस्त मानव ज्ञान, समस्त प्रज्ञान इत्यादि हममें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। वह मस्तिष्क के पीछे छुपा है, जैसे मन एवं मस्तिष्क ऐन्द्रिय संरचना के पीछे छुपे हैं। आप मन को नहीं देखते, मस्तिष्क को नहीं देखते, आप देखते हैं ज्ञानेन्द्रियों को, आप गति की क्षमता नहीं देखते, आप देखते हैं पैरों की गति को। जब तक हम पीछे छुपी क्रियाशील शक्ति को नहीं देखते, हम उससे अपरिचित रहते हैं। उदाहरणतः, जब तक हम इच्छा शक्ति का अध्ययन नहीं करते, उसका निरीक्षण नहीं करते, उसकी गतिविधि के साथ संबन्धित नहीं होते, हम उससे परिचित नहीं होते,उसे समझते नहीं हैं। यदि हम ऐसा करते हैं तो मन का भय लुप्त हो जाता है। आप जान जाते हैं कि आपके भीतर सम्पूर्ण मानव प्रज्ञान एक संभावना के रूप में उपस्थित है। वह आपमें प्रसुप्त है, वह है वहाँ। आप इसे अंत:प्रज्ञा बोध अथवा एक संवेदनशील अंत:प्रज्ञा कह सकते हैं। पशुओं में, गैर-मानवीय वर्ग में मूल प्रवृत्तियों की एक अद्‌भुत शक्ति होती है। वैसे ही मानवीय वर्ग के पास, प्रत्येक मनुष्य के पास उपयोग के लिये अंत:प्रज्ञा की लौ होती है, उसके पास उपयोग के लिये एक अनुबोधक संवेदनशीलता होती है।

अपूर्णता के आभास का अंत

इस पर भी ऋषि कहते हैं, कठोपनिषद् कहता है कि स्पन्दनों को प्रत्ययों में परिवर्तित करने से एकत्रित समस्त ज्ञान भी यथार्थता के साथ एक अप्रत्यक्ष संपर्क होता है। यथार्थता के साथ ऐन्द्रिय संपर्क, विचार संपर्क से अधिक अप्रत्यक्ष संपर्क होता है परन्तु विचार द्वारा किया गया संपर्क भी अप्रत्यक्ष होता है। *विचार की गतिविधि, समस्त मानवीय ज्ञान की गतिविधि, वेदों, बाइबिल, ज़ेदा-अवेस्था, कुराने शरीफ, धम्मपद इत्यादि, इत्यादि का प्रज्ञान यथार्थता के साथ अप्रत्यक्ष संपर्क होता है। वह समस्त प्रज्ञान आपके अन्दर परिमल के समान बसा है।* जैसे टोकरी भर फूल ले उन्हें परिमल की बूंदों में, सुगंधि में परिवर्तित कर दिया गया हो। वैसे हमारे मनुष्य शरीर में परिमल समाया है, समस्त मानवीय प्रज्ञान की सुगंध, उसकी सुरभि, उसका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अमृत समाया है ।* परन्तु यह भी एक अप्रत्यक्ष संपर्क है ।

जब तक शब्दों का प्रयोग होता है, जब तक मन की गतिविधि होती है, तब तक समस्त मानसिक गतिविधियाँ यथार्थता के साथ एक अप्रत्यक्ष संबन्ध में परिणत होती हैं । इसलिये ज्ञान सर्वदा सीमित जान पड़ता है । ज्ञान में वह सक्रियता नहीं होती । अंत:प्रज्ञा की गतिविधि में भी एक अधूरेपन का आभास रहता है । हममें अंत:प्रज्ञा की गतिविधि पूर्वाभास के रूप में होती है, अतीन्द्रिय ज्ञान इत्यादि के रूप में होती है, फिर भी वह पूर्णता नहीं होती, समग्रता नहीं, सम्पूर्णता नहीं होती । इसलिये उस पूर्णता के लिये, परिशुद्धता के लिये, सम्पूर्णता व समग्रता के लिये वह उत्कंठा, वह भूख, वह प्यास बनी रहती है । वह प्राचीन प्रज्ञान अथवा अत्याधुनिक ज्ञान द्वारा संतुष्ट नहीं होती ।

ऋषि कहते हैं, अब ज्ञान, उसकी गतिविधि तथा मन-मस्तिष्क की गतिविधि को मौन की अग्नि में आहुति स्वरूप अर्पित करना होता है । वह शान्त हो जायेगी, संभवत: अहम् व्यक्तित्व, वह विचार संरचना का नियंत्रक मौन में विलीन हो जायेगा । वह नष्ट नहीं होता, वह भी परिवर्तित हो जाता है । *मानसिक गतिविधियों की आहुति, ज्ञान, प्रज्ञान, अंत:प्रज्ञा इत्यादि की आहुति को ही आधुनिक भाषा में ध्यान कहा जाता है ।* यह यज्ञ है । यह समर्पण है। यमराज नचिकेता से वह समर्पण करने को कह रहे हैं।

मानसिक व्यथा का अंत।

जब ऐन्द्रिय स्तर पर एकत्व का बोध हुआ, उस की अनुभूति हुई, तब प्रकृति का भय लुप्त हो गया । तब सीखा गया कि ब्रह्मांड के तत्त्वों के साथ, पृथ्वी, जल इत्यादि के साथ कैसे संबन्धित हुआ जाता है । उसी प्रकार दूसरे स्तर पर आप सीखते हैं विचारों, भावनाओं, स्मृतियों के साथ कैसे व्यवहार किया जाये । अब भीतर कोई अव्यवस्था नहीं है ।

** मैं आपको एक कदम और आगे नहीं ले जारही, नहीं तो मैं कहती कि वह प्रज्ञान सर्वोच्च ब्रह्मांड की प्रज्ञा है । अभी मैं वह कदम नहीं लेरही, संभवत: हम यह कदम आज शाम या कल लेंगे ।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन सबके साथ आपने व्यवहार करना सीख लिया है। इससे मन का भय तथा मन का क्लेश समाप्त हो गया है। *चिंता, व्यग्रता, भय, तनाव, ये सब संकेत करते हैं कि हमें स्मृति के साथ सही व्यवहार करना नहीं आता है।* हमें यह नहीं आता है कि अनुभवों को जानकारी में निरंतर परिवर्तन करने की क्रिया के साथ कैसे व्यवहार किया जाये। जब हम मन के साथ, बुद्धि के साथ व्यवहार करना सीख जाते हैं तो भय का अंत हो जाता है। मानसिक व्यथा समस्त विचार संरचना की क्रियाविधि से अनजान होने का परिणाम है अथवा अव्यवस्था को पूर्ण व्यवस्था में परिवर्तित करने की अक्षमता का परिणाम है। यदि आप स्थिति को पहचानते हैं, जानते हैं कि तथ्यों को कैसे यथास्थान रखा जाये, तो मानसिक व्यथा का अंत हो जाता है। क्लेशमुक्तिः कैवल्यम्। मानसिक व्यथा का अंत ही आध्यात्मिकता है।

मानसिक स्तर पर मनुष्य आज बहुत आगे बढ़ गया है, फिर भी वह दबाव अथवा तनाव के बिना विचार संरचना का उपयोग करना नहीं सीख पाया है। जब आप सैर के लिये जाते हैं, सैर का आनंद लेते हैं, तो संभवतः शरीर के स्तर पर कुछ थकान का अनुभव होता है परन्तु वह बहुत मीठी होती है, बहुत स्वस्थ होती है। वैसे ही जब अतीत को सुलझाने का प्रयास किया जाता है, जब ज्ञान का उपयोग किया जाता है, तो कुछ मानसिक अथवा मस्तिष्कीय थकान होती है। उसका अर्थ तनाव अथवा दबाव में आना या फिर चिंता करना तो नहीं होता। हमारे आधुनिक जीवन की समस्या है कि समाज में किस प्रकार जिया जाये। कैसे बहु-पुष्पी संबन्धों से, प्रत्येक संबन्ध से किसी दुःख अथवा सुख या फ़िर तनाव अथवा चिंता के अवशेष संजोये बिना उनसे गुज़रा जाये। यह उपनिषद् ऐसी जीवन शैली व विज्ञान सिखाता है, जिससे कुछ अवशेष नहीं रहते। यदि पसंदगी व नापसंदगी के अवशेष, राग एवं द्वेष के अवशेष रह जाते हैं, तब वह मानसिक अवशेष शरीर के विलोपन पश्चात् भी बने रहते हैं। वह स्पंदनों के रूप में बने रहते हैं तथा पृथ्वी की ओर आकर्षित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो कर एक नये शरीर का वस्त्र ओढ़ पुनः जीना आरम्भ करते हैं।

मानसिक पीड़ा का अंत ही धर्मपरायणता अथवा आध्यात्मिकता का सार है। शोकातिगो मोदत स्वर्गलोके। यमराज कहते हैं, इससे ऐन्द्रिय स्तर पर व मानसिक स्तर पर कोई पीड़ा नहीं रहती; शरीर के अन्त से पूर्व ही पीड़ा का अन्त कर देना होता है। भौतिक स्तर पर भय का अंत हो जाता है। इस प्रकार मरण-जीवन के मूल भय का निराकरण तथा प्रत्येक क्षण, प्रत्येक संबन्ध के मानसिक अवशेष का निराकरण होने पर ये दोनों लुप्त हो जाते हैं।

यमराज कहते हैं, नचिकेता, यदि तुमने शब्दों के स्तर पर यह समझ लिया है, यदि तुमने शाब्दिक स्तर की समझ को अपने संबन्धों की गतिविधियों में निचोड़ लिया है, तब, केवल तब मुक्ति होती है। *शाब्दिक समझ को संबन्धों की गतिविधि में रूपान्तर करने पर ही मुक्ति होती है।* यह शब्द,'निचाय्ये', वास्तव में एक सुन्दर शब्द है। जैसे एक नींबू को निचोड़ा जाता है, आप ईख को निचोड़ उससे रस निकालते हैं। वैसे ही जब ज्ञान को जीवन की पारस्परिक क्रियाओं में निचोड़ा जाता है, तब होती है शान्ति। तब उस अपराजयी, अगम्य शान्ति के क्षेत्र में प्रवेश होता है।

वह जो पर्दे के पीछे है, उसमें Quantum Jump लेने का विवरण अठारहवें मंत्र की चौथी पंक्ति में दिया गया है। अगले सत्र में हम इसका अध्ययन करेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीसरा संवाद

जिन्होंने मेरे साथ छान्दोग्य उपनिषद् का अध्ययन किया है, संभवत: उन्हें स्मरण हो, उसमें जीवन को यज्ञ कहा गया है। छान्दोग्य, बृहदारण्यक तथा श्वेताश्वतर उपनिषदों के अनुसार सृष्टि का मूल कारण, सर्जन की प्रेरणा, सत्-चित्-आनंद की त्रिविध ज्वाला है।* सत् , अनंत सर्जनात्मक सामर्थ्य लिये हुये अविनाशी सत्य है, चित् है स्व-बोध की अंतर्जात शक्ति तथा आनंद अकारण परमानंद है, जिसे सत् एवं चित् की गति सहजता से प्रेरित करती है। यह वह त्रिविध अग्नि है, जिससे समस्त ब्रह्मांड का प्रसर्जन हुआ है। भारतवर्ष में, सत्-चित्-आनंद, ईश्वरत्व का सर्वोच्च वर्णन रहा है। ईश्वरत्व एक त्रिविध अग्नि है, एक त्रिविध प्रकाश है।

जीवन एक अनादि-अनंत यज्ञ

इस उपनिषद् द्वारा यह भी कहा गया है कि स्वयं को विभिन्न आकारों में,पदार्थों में प्रवाहित करने की ईश्वरत्व की गतिविधि एक अनादि-अनंत यज्ञ है।** जीवनं यज्ञम् ; जीवन एक यज्ञ है। जीने की गति में आप अपना सम्पूर्ण अस्तित्व शब्द में, कर्म में, उंडेल देते हैं। *एक वैश्विक यज्ञ चलता रहता है। यज्ञ पुरुष, वह ईश्वरत्व अद्भुत तल्लीनता से अनंतता अपना सत्त्व विभिन्न स्वरूपों में, अनगिनत विभिन्न शक्तियों में प्रवाहित करता रहता है।* ब्रह्मांड ऊर्जाओं के कर्म का क्षेत्र है, सत्-चित्-आनंद की त्रिविध ज्वाला से ब्रह्मांड का प्रसर्जन होता है। इसलिये हम मनुष्य जीव ईश्वरत्व के सहभागी हैं, जो अपने सत्त्व में ईश्वरत्व के, सच्चिदानन्द के भागीदार हैं, उनका जीवन भी एक यज्ञ होता है।

आपने देखा, यह मनुष्य जीवन की पूर्णतया भिन्न दिशा है। यह

---

* *छान्दोग्य,बृहदारण्यक तथा श्वेताश्वतर उपनिषदों ने हमें सिखाया है कि अग्नि, त्रिविध अग्नि, जीवन की त्रिविध अग्नि ईश्वरत्व का सार है।*

** *यज्ञ में अपने अस्तित्व के सार को उंडेल, उसके प्रवाह की गति में समृद्ध होना होता है।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गतिविधि कुछ प्राप्त करने के लिए नहीं होती, यह अपने अस्तित्व को प्रवाहित करने की गतिविधि होती है। यह दान है, यज्ञ है, प्रदान करना है और उसीमें समृद्ध होना है। हज़ारों वर्ष पूर्व की अरण्य संस्कृति में, कृषि संस्कृति की छोटी इकाइयों में सरल साक्षात संबन्ध होते थे। वह संस्कृति प्रकृति के साथ, पृथ्वी, जल, आकाश, सूर्य-चन्द्रमा के साथ अंत:क्रिया में एक अति सरल जीवन शैली द्वारा अनुग्रहित थी।

हमारे लिये बीसवीं सदी के अंत में रहते हुये, उन प्राचीन लोगों के चित् को समझ पाना बहुत कठिन है। उनके लिये सम्पूर्ण जीवन विश्व-व्यवस्था के साथ गूँथा हुआ था। इसलिये यज्ञ, दान इत्यादि शब्दों के अर्थ किसीको भयभीत नहीं करते थे। मरना तथा पुन: जन्म लेना भय प्रेरित नहीं करते थे, किसीके समक्ष कसौटी नहीं उपस्थित करते थे। क्योंकि जब आप वनों में रहते हैं, जब आप कृषि संस्कृति में रहते हैं, खेती-बाड़ी कर उपज की कटाई करते हैं, तब आप जीवन के सरल लय-ताल से परिचित रहते हैं। प्रकृति के संग निरंतर अंत:क्रिया में रहते हुये देखना होता है कैसे एक दाना पकता है और कैसे नष्ट होता है; वह मरता है और पुन: जन्म लेता है। देखना होता है कि आकार - भले वह मानवीय हो अथवा गैर-मानवीय - जन्म लेते हैं और फिर कभी न कभी विघटित होते हैं। इससे मरना और जन्म लेना कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता, वह किसी उल्लास अथवा व्यथा का कारण नहीं बनता, वह किसी वियोग का अनुभव नहीं देता। यह स्पष्टीकरण उसके लिये आवश्यक है, जो हम अभी आगे देखने जा रहे हैं।

भौतिक काया में एक पृथकता का भाव रहता है, वह एक पृथक सत्ता है। आप उसकी एक, दो, तीन, चार इत्यादि में गणना कर सकते हैं। आप उसे एक नाम देते हैं तथा उस सत्ता को उस नाम से सम्बोधित करते हैं, परन्तु उस भौतिक पृथकता अथवा शारीरिक सत्ता के होने के भान में अहम् का कोई दंश नहीं होता। वह एक मूक पृथकता होती है, जो अधिक दु:ख नहीं देती। एक सरल जीवन शैली में जब आप वनस्पति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर, उपज पर, शाक-सब्ज़ियों पर, फलों पर, काष्ट-फलों इत्यादि पर निर्भर करते हैं, तब आप प्रकृति को एक ढंग से ग्रहण करते हैं और एक अन्य ढंग से प्रदान करते हैं। उस ग्रहण करने व प्रदान करने में एक लय होती है। इस अहम् रहित लय में तथा शारीरिक आवश्यकताओं में अपनी ही एक सुन्दरता होती है। भूख, प्यास, निद्रा, काम, प्रजनन इत्यादि मर्यादित होते हैं, वे काल नियंत्रित होते हैं, उनकी अपनी ही एक सुन्दरता, एक सुचारुता होती है, उनका एक घटनाचक्र होता है।

हम शहरों में जन्म लेते हैं, हम अति जटिल औद्योगिक सभ्यता में रहते हैं, जहाँ प्रकृति के साथ पारस्परिक व्यवहार अति सीमित रहता है। वह भी यदि रहता है, तब। किसके पास अवकाश है सूर्य को, चन्द्रमा को निहारने का, किस के पास समय है देखने का कि सूर्यकिरणों का खेती-बाड़ी पर, कोमल अंकुरों पर क्या प्रभाव पड़ता है। किसके पास अवकाश है उस अमृत को देखने का जो चन्द्रमा में से रिस, फलों और फसलों के सत् में प्रवाहित होता है। हमारे पास आकाश के सितारों के साथ संबन्धित होने का अवकाश नहीं है; हमारे पास कोई समय नहीं है। यह आदि कालीन जीवन के लिये आतुरता नहीं है, मैं आदिम शैली का पक्ष नहीं ले रही हूँ परन्तु ईश्वर जानता है वे लोग आदिम थे अथवा हम हैं।

प्राच्य ऋषि-मुनि विभिन्न ऋतुओं के स्तोत्र गाते। वसंत इन्नु रन्त्य:; वसंत कैसी सुन्दर है, क्यों न उसके साथ विहार करें। ग्रीष्म इन्नु रन्त्य:; ग्रीष्म का एक भिन्न ही सौन्दर्य है, तेज का, उष्मा का मेरे साथ एक भिन्न ही संबन्ध है, मुझे उसके साथ क्रीड़ा करने दो। वर्षा ऋतु, हेमंत, शरद, शिशिर रन्त्य:। पतझड़ की, शरद की व्यक्त करने की अपनी ही भाषा है, मुझे उनके संग क्रीड़ा करने दो, उन्हें समझने दो। यह एक भिन्न ही अभिवृत्ति है।

ध्यान के प्रश्न में निमग्न होने से पूर्व, शारीरिक, मानसिक शक्तियों के रूपांतरित हो मौन की शून्यता से उत्पन्न बोध में विकसित होने से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्व, मैं आपके ध्यान में लाना चाहती थी कि जीवन ही एक निरंतर यज्ञ है। ग्रहण करने का, प्रदान करने का, संबन्धित होने का वह एक अनादि-अनंत यज्ञ है। कठोपनिषद् के साथ हमारा संबन्धित होने का प्रयास भी एक यज्ञ है। यह मात्र अध्ययन करना नहीं है, यह ग्रंथ को पढ़ कर, आचार्य द्वारा दिये गये प्रवचनों का श्रवण कर, उन्हें अपने दैनिक जीवन के साथ संबन्धित करना है। कोई अध्ययन, कोई शिक्षा व्यावहारिक पहलू से संबन्धित हुये बिना सम्पूर्ण नहीं होती; सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों आवश्यक हैं। इसलिये आचार्य ध्यान देता है कि शिष्य शिक्षा को अपने दैनिक जीवन से, शारीरिक गतिविधियों से, मानसिक गतिविधियों से संबन्धित कर रहा है या नहीं। यदि ज्ञान तथा जीने के कर्म में पारस्परिक संबन्ध नहीं होता तो अध्ययन अधूरा रहता है। यह शिक्षा की एक शैली थी।

अध्ययन के पश्चात् 'इज्जा' की भूमिका होती है, इज्जा भी एक प्राचीन वैदिक शब्द है। इसका उपयोग सामवेद तथा यजुर्वेद के सिवा विरल है। *इज्जा शब्द कुछ-कुछ इच्छा शक्ति के तुल्य है। इस इच्छा शक्ति के परिष्कार के लिये आचार्य शिष्य की सहायता करते हैं। वे ध्यान रखते हैं कि मानव जाति में अंतर्जात उस शक्ति का शिष्य कैसे उपयोग करता है।* यदि इच्छा को, इच्छा शक्ति को सदा ज्ञानेन्द्रियों से बाहर जाने की, शरीर से दूर जाने की, बुद्धि-शक्ति से, ज्ञान से दूर जाने की अनुमति दी जाये, यदि उसे निरंकुश घूमने की अनुमति दी जाये, तब वह बहुमूल्य शक्ति भोग-विलास की आवृत्ति में व्यर्थ जायेगी। आप ज्ञानेन्द्रियों तथा विषय पदार्थों के संपर्क से, उनकी पारस्परिक क्रिया से भले जितना भी सुख पाने का प्रयास करें वह सुख बना नहीं रहता। वह सुख क्षणिक होता है। विषय पदार्थों से, ऐन्द्रिय संपर्क तथा पारस्परिक क्रिया से आप जितना सुख प्राप्त कर सकते हैं, आप उतना अधिक चाहते हैं। आप चाहते हैं विविधता, आप चाहते हैं विभिन्न आस्वाद, सुवास, विभिन्न रूप, आकार इत्यादि,इत्यादि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इज्जा को, इच्छाशक्ति को शिक्षित करना पड़ता है, ताकि वह सदा ज्ञानेन्द्रियों से बाहर न भागती रहे। वह उनसे बाहर केवल तब जाये, जब शरीर की पुष्टि की, उसके पालन-पोषण की आवश्यकता हो। वह धर्म बनता है, वह एक यम बनता है। इज्जा, यम के बोध से, उस अंतर्जात संयम की शक्ति से संबन्धित है। निषेध अथवा परित्याग व्यक्तित्व को संकुचित कर देते हैं, अति-भोग भ्रष्टाचार में परिणत होता है। निषेध, दमन व अति-भोग से बचने के लिये संयम बीच का मार्ग है, जिसमें सौन्दर्यबोध है, नैतिक लालित्य है तथा जिसकी बुद्धिसंपन्न गरिमा है। ऐसे, इच्छाशक्ति को संयम द्वारा शिक्षित किया जाता है, सभ्य किया जाता है। इससे आपको इच्छा का बाहर से नियंत्रण नहीं करना पड़ता, उसे बाहर से किसी प्राधिकार द्वारा, व्यवहार संहिता अथवा मूल्यांकन संहिता द्वारा, नियंत्रित नहीं करना पड़ता। आंतरिक संयम का बल इच्छाशक्ति की गतिविधि को भव्यता प्रदान करता है।

इच्छाशक्ति की सहायता से विषय-पदार्थों की दिशा में बाहर जा पोषण लाया जाता है, शारीरिक आवश्यकताओं की तुष्टि की जाती है। ऐसा हो जाने पर इच्छाशक्ति क्या करती है ? शक्ति कभी निष्क्रिय नहीं हो सकती। उस ऊर्जा को जीवन के रहस्य, जीवन के सत्य की खोज में समर्पित करना होता है। भरण-पोषण का कर्म सुसभ्य, शालीन ढंग से, विवेक से करने पश्चात्, इच्छाशक्ति जीवन के अर्थ, जीवन व जीने के रहस्य की खोज के प्रति समर्पित हो जाती है।

'दान' एक अन्य महत्त्वपूर्ण शब्द है। दान देना, दया धर्म करना अथवा उपहार इत्यादि देना नहीं है। उपनिषदों व वेदों में दान का आशय पूर्णतया भिन्न है। ***दान का अर्थ है अन्य मनुष्यों के साथ आपके संबन्ध का स्वरूप, क्योंकि उस संबन्ध में आप अपना सत्त्व देते हैं। संबन्धों की गति में आप अपना सार उंडेल देते हैं।*** मानवीय तथा गैर-मानवीय जातियों के साथ परस्पर संबन्ध दान है। जीवन जीने का कर्म ही अध्ययन है, दान है, इज्जा है। शिष्य को ध्यान मार्ग पर,अमरत्व के मार्ग पर ले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाने से पहले, आचार्य इन तीनों के परिष्कार में शिष्य की सहायता करता है।

आगे जा कर कठोपनिषद् मनुष्य जीवन का एक रथ के रूप में वर्णन देता है। त्रिगुणी ईश तत्त्व के लिये विश्व एक रथ है, वैसे ही मनुष्य काया भी एक रथ है। ऐन्द्रिय अंग अश्व हैं, ऐन्द्रिय विषय मार्ग हैं, जिन पर इन अश्वों को चलना पड़ता है। बुद्धि एवं तर्कशक्ति का प्रभाग संवाहन करता हुआ सारथी है। उस बुद्धि के हाथों में ज्ञान की, विचारों की, भावनाओं की, मनोभावों की, स्मृतियों इत्यादि की बागडोर है। मन: प्रग्रहमेव च; प्रग्रहम् वह बागडोर है, जिससे आप इन्द्रियों रूपी अश्वों को नियंत्रण में रखते हैं। इस मनुष्य शरीर रूपी रथ के दस अश्व हैं तथा लगाम भी दस ही हैं। इन सब का विशेष उल्लेख दिया गया है परन्तु हम विभिन्न अश्वों, धी, बुद्धि, धृति, प्रज्ञा, स्मृति, कल्पना इत्यादि के उल्लेख में नहीं जायेंगे। उस रथ में कौन विराजमान है ? रथ में विराजित है आत्मा, परम् प्रज्ञा, परम् जीवन शक्ति, सत्-चित्-आनंद की त्रिगुणी ज्वाला। यह उपनिषद् विस्तार में वर्णन देने जा रहा है कि इन मार्गों, ऐन्द्रिय पदार्थों के साथ क्या करना होता है। अश्वों के साथ, ज्ञानेन्द्रियों के साथ, लगाम के साथ और फिर सारथी के साथ क्या करना होता है, इत्यादि, इत्यादि। यह वर्णन का, बल्कि एक सूक्ष्म विषय को स्पष्ट करने का अति सुन्दर ढंग है।

वरदान की पूर्व तैयारी

तीसरा वरदान माँगने से पूर्व ही, सत्रहवें तथा अठारहवें श्लोक में उसकी भूमिका तैयार की जा रही है। आज प्रात: हमने देखा था कि शरीर में, ऐन्द्रिय स्तर पर त्रिविध अग्नि को यम, नियम, आसन, प्राणायाम द्वारा कैसे प्रज्वलित किया जाता है। इन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों को कैसे अनुशासित तथा सुसभ्य किया जाता है, सुसंस्कृत किया जाता है, संवेदनशील बनाया जाता है। यह एक प्रकार का आत्मानुशासन होता है, यह आत्म-संयम, आत्म-नियंत्रण होता है; हाँ, यह आत्म-प्रभुत्व होता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। किसी को बाहर से आपको नहीं कहना पड़ता क्या किया जाये, जो करना होता है उसका अंत:प्रज्ञात्मक बोध रहता है। इससे, ऐन्द्रिय संरचना में अनुशासित आचरण की लौ जलायी जाती है।

आप जानते हैं, बीसवीं सदी में एक प्रचलन है, ध्यान सिखाने का दावा करने वाली विविध शिक्षा संस्थाओं में यह कथन प्रचलित है कि आप चाहें जिस विधि जी सकते हैं। आपको किसी अनुशासन की, किसी सुसभ्यता, किसी सुसंस्कृति की, शिष्टता की, परिष्करण अथवा संवेदनशीलता की आवश्यकता नहीं है। जैसा मन करे वैसे जीया जाये; आहार, निद्रा, काम, व्यायाम इत्यादि के साथ भले आपका संबन्ध अव्यवस्थित रहे, फिर भी ध्यानावस्था हो सकती है। वहाँ बस तकनीकें, विहित नियम इत्यादि सिखाये जाते हैं। कोई भी उपनिषद् इससे सहमत नहीं है। मूल ग्यारह उपनिषद् हैं, वे संवेदनशीलता की अपेक्षा करते हैं। *इन्द्रियों को संवेदनशील करने के सिवा अनुशासन भला और क्या है ? जब आप सूक्ष्म लोक में प्रवेश करना चाहते हैं, तब आपको संवेदनशीलता की तथा शुद्धता की आवश्यकता पड़ती है।* वहाँ कोई मलिन, बेडौल, अनियत गतिविधि नहीं चलती। वहाँ सुनिश्चित परिशुद्धता की अत्यंत आवश्यकता होती है। वह एक मूल आवश्यकता है।

अपने अन्दर आत्म-नियंत्रण अथवा आत्म-संयम की अग्नि प्रज्वलित करनी होती है। कैसे प्रज्वलित की जाती है अग्नि ? यह सम्पूर्ण मानव जाति के पूर्व ज्ञान एवं अनुभव के स्रोत से मन के द्वारा जलायी जाती है। विचार संरचना तथा ऐन्द्रिय गतिविधि का पारस्परिक संबन्ध, ऐन्द्रिय शक्ति के एक नवीन मनोभौतिक शक्ति में रूपांतरित होने में परिणत होता है। कुण्डलिनी जैसी मनोभौतिक शक्तियों से आप परिचित हैं ? भ्रू-मध्य में, उदर के गर्त इत्यादि में यह शक्ति समायी है। ऐसे अनेक संवेदनशील बिन्दु हैं, जहाँ एक साधक को इस अग्निशिखा के प्रज्वलित होने का आभास होता है। यदि वह साधक तत्पर एवं गंभीर होता है तथा उसकी गंभीरता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बनी रहती है, तब उसे उस शक्ति का अनुभव होता है।

इस प्रकार शरीर की त्रिगुण अग्नि में एक है ऐन्द्रिय स्तर तथा दूसरा है मानसिक स्तर। मानसिक स्तर पर भावनाओं, विचारों, इच्छाओं सबन्धित अव्यवस्था का, अराजकता का निराकरण करना होता है। एक व्यवस्था, एक सुचारुता लानी होती है , क्योंकि व्यवस्था एक सहज सरलता में परिणत होती है। अव्यवस्था ही है जो जटिलतायें लाती है अन्यथा जीवन में जटिलता जैसा कुछ नहीं है। जीवन तथा जीने का कर्म अति सरल है, जब तक हम उसे जटिल नहीं बना देते। नि:संदेह, इसके लिये एक सरल जीवन शैली की अपेक्षा भी होती है। बीसवीं सदी के अंत में रहते हुये, हमारे लिये दैनिक जीवन में इस सहज सरलता की कल्पना भी कर पाना कठिन है। महज जीवन शैली ही इतनी जटिल है, यंत्रों के साथ, मशीनों के साथ, जटिल सामाजिक-आर्थिक, राजनैतिक संरचनाओं के साथ एक निरंतर पारस्परिक संबन्ध रहता है। यहाँ अर्थव्यवस्थाओं तथा राजनीतियों के विश्वव्यापीकरण की जटिलतायें हैं। आप जानते ही हैं हिंसा एवं भ्रष्टाचार का संप्रदाय प्रत्येक विषय को अभिभूत कर रहा है। इसने प्रदूषित किया है, केवल जटिल ही नहीं अपितु अपवित्र किया है। इस भ्रष्ट, हिंसक, अशांत समाज में रहते हुये, एक समुदाय के लिये उस सहज सरलता में रहने की कल्पना मात्र भी कठिन है। इसलिये लोग मानते हैं कि उपनिषदों में वर्णित काल्पनिक है, मिथक है। अपने व्यक्तिगत सम्मिलन की प्रामाणिकता से मैं आपको बता सकती हूँ कि ये न तो मिथक है न ही काल्पनिक है; यह आध्यात्मिक तथ्य का एक अति सरल कथन है।

अस्त-व्यस्तता का निराकरण किया जाता है, अव्यवस्था को प्रत्याहार एवं धारणा द्वारा शुद्ध किया जाता है। धारणा एकाग्रचित्त होने का अध्ययन है। 'धृ धारयते इति धारणा'। एकाग्रचित्तता को बनाये रखने के लिये आप अपनी धारणा शक्ति को विकसित करते हैं। कृपया ध्यान दीजिये, शक्ति को ग्रहण करने तथा उसे बनाये रखने के लिये आप धारणा शक्ति का विकास करते हैं। धारणा दृष्टि को शुद्ध करती है। हम खुली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आँखों भी नहीं देखते, हम प्रत्यक्ष की इकाई को सम्पूर्णता में ग्रहण नहीं करते। हम अन्यमनस्क से, दुचित्ते से रहते हैं, बस आधा ही देखना होता है तथा आधा अनदेखा रह जाता है। हम चिंतित रहते हैं, दबाव में रहते हैं। आप तो जानते हैं, हमारे प्रत्यक्ष बोध भी अशुद्ध होते हैं, वे आंशिक होते हैं अथवा खंडित होते हैं। इसलिये प्रत्याहार एवं धारणा का अध्ययन, एकाग्रचित्तता द्वारा साधक के अवलोकन के स्वरूप को शुद्ध करने में सहायक होता है।

एकाग्रचित्तता के गुण को प्रत्यक्ष बोध के कर्म में बनाये रखना होता है। उस प्रत्यक्षण को धारण कर उसे अपनी संस्कृति, अपने ज्ञान के साथ संबन्धित करना होता है और फिर उसे व्यक्त करना होता है। पहले अभिग्रहण, फिर प्रतिधारण और फिर व्यक्त करना। यह प्रत्याहार एवं धारणा द्वारा शुद्धता एवं संवेदनशीलता लाना है। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो अस्त-व्यस्त मन के साथ, अराजक एवं संवेगात्मक भावनाओं से भरे जीवन के साथ ध्यान की दिशा में जाना नहीं होता। यदि आपकी अराजक भावनायें कभी एक दिशा में दौड़ती हैं, दूसरे दिन, दूसरी घड़ी, दूसरी दिशा में, तो आप ध्यानावस्था में नहीं जा सकते। यदि इच्छायें, कामनायें बाह्य से प्रलोभित हो ऐन्द्रिय अंगों से बाहर दौड़ती रहें, तो स्वाभाविक है कि जीवन के सत्य का प्रकटन अथवा अहम् व्यक्तित्व से पार जाना संभव नहीं होता। *अहम् व्यक्तित्व से सहजतापूर्वक पार जाने, अहम् व्यक्तित्व के बोध की लौ में रूपांतरित होने के अतिरिक्त ध्यानावस्था अन्य कुछ नहीं है।*

वह त्रिगुण अग्नि, जिसे हम अपनी ही सत्ता में प्रज्वलित करते हैं, उसका तीसरा पहलू बोध की अग्नि है। आने वाले कुछ दिनों तक हम इसके विषय में चर्चा करेंगे। इसके विस्तार में जाने के लिये कुछ और वर्गों की आवश्यकता पड़ेगी।

यमराज कहते हैं, हे नचिकेता, इस त्रिणाचिकेता अग्नि को अपनी सत्ता में प्रज्वलित करना अति आवश्यक है। तुमने वह सीख लिया है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसलिये यह अग्नि, अपनी सत्ता में इस त्रिविध अग्नि को प्रज्वलित करने की सम्पूर्ण विधि नचिकेता अग्नि कहलायेगी। आधुनिक भाषा में कहा जा सकता है, यह नचिकेता तकनीक के नाम से परिचित होगी। आचार्य शिष्य की सत्यनिष्ठा एवं सचाई की प्रशंसा करते हैं और तीसरा वरदान माँगने को कहते हैं।

नचिकेता का तीसरा प्रश्न

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके। बालक नचिकेता में समायी विलक्षण जिज्ञासा से यह प्रश्न अंकुरित होता है। वह कहता है, देखिये यमराज, धर्मराज, हे धर्म के स्वामी, जीवन एवं जीने के सार-तत्त्व, हे संयम की मौलिक शक्ति, मुझे एक विषय समझने में अत्यधिक कठिनाई होती है। कुछ लोग कहते हैं किअहम् के पार जाने पश्चात् व्यक्तित्व बना रहता है, सुरक्षित रहता है। जब कि अंन्य जन दावा करते हैं कि अहम् व्यक्तित्व के पार जाने पश्चात् अथवा अहम् व्यक्तित्व के विघटन पश्चात् कोई पृथक अस्तित्व नहीं रहता। मंत्र की पहली पंक्ति में, 'प्रेते' कुतूहल पैदा करने वाला शब्द है। आचार्य शंकराचार्य सहित अधिकतर टीकाकारों ने प्रेते शब्द का अर्थ मृत्यु से लगाया है अर्थात यहाँ से प्रस्थान पश्चात्। लोगों ने इसका अर्थ शरीर छोड़ने के पश्चात् के आशय में लगाया है। यहाँ से प्रस्थान; 'यहाँ' का अर्थ शरीर से लगाया है। *इस संदर्भ में व्याख्या होगी- क्या भौतिक मृत्यु पश्चात् कोई व्यक्तित्व शेष रहता है?* एक अन्य व्याख्या होगी- ध्यानावस्था में जाने पश्चात् क्या व्यक्तित्व बना रहता है?*

नचिकेता कहता है, हे स्वामी, हे यमराज यह एक विवादात्मक विषय

---

* *संभवतः लोग ऐसा ही प्रश्न बुद्ध से किया करते थे। जब बुद्ध अर्हत होने की बात करते तो उनसे पूछा जाता- अर्हत के स्तर पर, जब ऐन्द्रिय, शारीरिक, तथा मानसिक तदात्मीकरण का अंत होता है, क्या तब कुछ शेष रहता है ? इस विषय पर बुद्ध मौन रहते। वह न तो हाँ कहते न ही ना। वह सोचते,यदि मैं हाँ कहता हूँ तो वे एक उलझन बना लेंगे, यदि मैं न कहता हूँ तो एक अन्य उलझनं। अच्छा होगा यदि लोग स्वयं ही खोज निकालें। तथागत गौतम बुद्ध का यह मौन अति महत्त्वपूर्ण है, वह अर्थगर्भित है।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, इसलिये मैं इसे आपसे समझना चाहूँगा। आप मृत्यु का रहस्य तथा जन्म का रहस्य जानते हैं। अपने पिता द्वारा मुझे यह रहस्य जानने के लिये भेजा गया है, अन्यथा वे मुझे मृत्यु के स्वामी के पास क्यों भेजते? मेरे पिता ने मुझे आपके पास जन्म एवं मृत्यु का रहस्य जानने के लिये भेजा है। कृपया मुझे बताइये क्या पुनर्जन्म होता है ? यदि पुनर्जन्म होता है, तो वह किस का होता है ? एक पाँच वर्षीय बालक द्वारा, एक मुक्त जीवन-शक्ति द्वारा पूछा गया यह एक अति सुन्दर प्रश्न है।

उपनिषद् के अनुसार यम आश्चर्यचकित हो जाते हैं। वे ऐसे प्रश्न के लिये तैयार न थे। उन्होंने सोचा था नचिकेता अपनी सत्ता में अग्नि प्रज्वलित करने के, आहुति देने के यज्ञ विज्ञान के रहस्य सीख कर संतुष्ट हो जायेगा। इसलिये प्रथम अनुक्रिया स्वरूप वे कहते हैं, 'मेरे बालक, देवता भी इसे समझ नहीं पाये हैं, उन्हें इसे समझने में अत्यंत कठिनाई होती है। यह विषय न केवल मनुष्य जाति के लिये, अपितु देवताओं के लिये भी विवादात्मक है।'

इस बिन्दु पर एक शब्द आता है, जहाँ हमें एक क्षण के लिये रुकना पड़ेगा। यमराज का 'देव' शब्द से क्या आशय है ? निश्चय ही इस शब्द का आशय देवी-देवताओं से नहीं है। 'दिव् दिव्यते इति देवः' अर्थात् वह जो बोध से स्व-प्रकाशित है। इस शब्द का मूल है 'दिव्', अर्थात् प्रकाशित करना एवं प्रकाशित होना। वह जिसे बोध हो गया है तथा जो उस बोध को दूसरों को प्रदान करता है। उदाहरणतः सूर्य को देव कहा जाता है, क्योंकि किसी को उसे प्रज्वलित नहीं करना पड़ता। सूर्य में जो अग्नि है, वह किसी अन्य को प्रज्वलित नहीं करनी पड़ती; प्रकाश एवं उष्णता सूर्य का सार हैं। ऐसे ही चन्द्रमा को पाश्चात्य भाषा में देवी कहा जाता है। आप भले उसे पुल्लिंग, स्त्रीलिंग अथवा अन्य किसी भी लिंग से संबोधित करें, वह है स्व-सर्जित, स्व-प्रजननित, स्व-प्रदीप्त, वह दूसरों को प्रकाशित करने की, दीप्त करने की क्षमता लिये है। यह देव शब्द का एक आशय है।'द्योयतना देवा इति' अर्थात् बोध जिसके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अस्तित्व का सार है । हमारी तरह उनमें समझ एवं बोध मस्तिष्कीय गतिविधियाँ नहीं होतीं, उनमें बोध की क्षमता अंतर्जात होती है । प्रत्यक्षण जब बोध बनता है तब उसे देव कहा जाता है ।

चलिये यम एवं नचिकेता के संवाद की ओर लौटते हैं । यमराज कहते हैं, 'देखो, मेरे प्रिय बालक, एक देवता को भी मृत्यु की, उस पार जाने की, अहम् के विघटन की उलझन को सुलझाने में कठिनाई होती है । तुम क्यों नहीं कोई अन्य प्रश्न करते ? क्यों नहीं कोई अन्य वरदान माँगते ? यह एक अत्यधिक जटिल विषय है, जिसे कोई समझ नहीं पाता है । तुम अन्य जो भी माँगोगे, मैं वह प्रदान करूँगा ।'

नचिकेता उत्तर देता है, 'देखिये महाराज, आपने मुझ से कहा है कि मुक्त जन भी इसे समझने में कठिनाई का अनुभव करते हैं । इसका आशय है कि मात्र आपको ही बोध है और आप ही उसे स्पष्ट कर सकते हैं । ऐसे में, मैं अन्य कोई वरदान क्यों मागूँ ? आपसे प्रत्यक्ष रूप से सीखने का मेरे लिए यह अवसर है । मुझे आपके समान कोई अन्य आचार्य नहीं मिलेगा, क्योंकि आपके ही कथन अनुसार देवता भी इसे नहीं समझ पाते हैं । मेरे लिये यही उचित होगा कि मैं अपने इस वरदान के लिये अडिग रहूँ ।'

एक अडिग जिज्ञासा

यमराज परीक्षा ले रहे हैं । कृपया, यमराज एवं नचिकेता के बीच घटित को हमारे अपने जीवन के संग संबन्धित कर देखिये । हम कुछ निम्न सिद्धियों एवं शक्तियों के जागृत होने से ही संतुष्ट हो जाते हैं । योग, ध्यान अथवा तंत्र-मंत्र के अध्ययन में शक्तियों के जागृत होने पर, उन्हें धन में परिवर्तित करने की भी चेष्टा करते हैं । उनकी संकल्पित अथवा असंकल्पित अभिव्यक्ति, हमारे पास धन-संपत्ति, यश, शिष्य इत्यादि लाती हैं और हम उनसे संतुष्ट हो जाते हैं । इसलिये अहम् से पार जाना, ध्यान तथा समाधि के विषय हमारे द्वारा उपेक्षित रह जाते हैं, कम से कम कुछ समय के लिये वे एक ओर कर दिये जाते हैं । हम यम, नियम, आसन,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा द्वारा व्यक्तित्व के विकास एवं अलंकरण से संतुष्ट हो जाते हैं। सुन्दर सुडौल शरीर, नियंत्रित मन तथा संयमित बुद्धि एवं विचार शक्ति के कारण स्वाभाविक है कि आप हज़ारों में एक होते हैं। आप इससे संतुष्ट हो जाते हैं। मुक्ति के लिये प्रेरणा, अहम् से पार जाने की, अहम् की मृत्यु की प्रेरणा हमारे अन्दर उतनी प्रबल व गहरी नहीं रहती। नचिकेता को देखें, और हम हैं कि प्रलोभित हो जाते हैं, हम विभ्रांत हो जाते हैं। इससे हमारे जीवन में प्रेरणा की गहराई, प्रेरणा की सत्यनिष्ठा, प्रेरणा की गति बनी नहीं रहती।

यमराज, नि:सन्देह एक अनुभवी आचार्य, नचिकेता से कहते हैं 'देखो प्रिय्र बालक, मैं तुम्हें मेरे अधीन समस्त धन-संपत्ति दे सकता हूँ। मैं तुम्हें सुन्दर तरुणियाँ, किशोरियाँ, बहुमूल्य हीरे-जवाहारात दे सकता हूँ; दीर्घ जीवन का वरदान दे सकता हूँ, समस्त कल्पनीय दौलत तुम्हें दे सकता हूँ परन्तु कृपया यह मत माँगो।' यह उपनिषद् व्यर्थ में ही अनेकों श्लोकों में यह विस्तार नहीं देता। वह हमें बताना चाहता है कि अहम् से पार जाने के मार्ग में अनेकों प्रलोभन आते हैं। *एक बार आप अष्टांग योग के पहले छे में से हो गुज़रते हैं, एक बार आपका पहले छे पर अधिकार आ जाता है तो आप संतुष्ट हो जाते हैं। यह संतोष प्रकाश को धुंधला कर देता है, वह लौ को मद्धिम कर देता है और हम अटक जाते हैं।*

यमराज द्वारा अश्व, मवेशी, धन, हीरे-जवाहरात, सुन्दर किशोरियों इत्यादि का प्रस्ताव दिये जाने पर बालक नचिकेता क्या उत्तर देता है ?* नचिकेता कहता है, 'देखिये महाराज, आप जीवन एवं मृत्यु के स्वामी हैं, आप मुझे दीर्घ आयु, सौ-दो सौ वर्षों का जीवन प्रदान कर सकते हैं परन्तु उस अवधि के अंत में तो मृत्यु है ही। तब क्यों न मैं आज

---

* *यह एक काल्पनिक संवाद नहीं है। यह वह चित्रित करने का काव्यात्मक ढंग है, जो हमारे जीवन में होता आया है। हमारे ध्यान में यह विषय आजाये, इसलिए यमराज द्वारा हमारे जीवन का वर्णन दिया गया है।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही उसके साथ संवाद कर लूँ। मृत्यु एवं मरण के रहस्य के समाधान के लिये मैं क्यों सौ-दो सौ वर्षों तक प्रतीक्षा करूँ ? आप मुझे समस्त भोग-विलास का प्रस्ताव दे रहे हैं, परन्तु मैंने देखा है कि दिन-प्रतिदिन ऐन्द्रिय अंगों की शक्ति, ऐन्द्रिय भोग-विलास के उपभोग के प्रत्येक कर्म से क्षीण पड़ती जाती है। ऐन्द्रिय सुखों की जितनी विविधता रहती है, सुख के जितने अधिक साधन प्राप्त रहते हैं, उतना ही शरीर की प्राणाधार शक्ति का व्यय होता है।' वे एक अति सुन्दर शब्द 'जीर्यते' का उपयोग करते हैं।

जीर्यते का अर्थ है कमज़ोर पड़ना। ऐन्द्रिय सुखों के प्रत्येक कर्म के साथ, शरीर की प्राणाधार शक्ति कमज़ोर पड़ती है। नचिकेता कहता है, 'आप मुझे इन सुख के साधनों द्वारा प्रलोभित करना चाहते हैं, ताकि मेरी प्राणाधार शक्ति शिथिल पड़ जाये और मैं आपसे यह प्रश्न न पूछ सकूँ। नहीं, नहीं चाहिये मुझे ये समस्त। सुख के साथ सदा उसे खो देने का भय बना रहता है, क्या आप चाहते हैं कि मैं दु:ख की राह पर चलूँ ? आपके पास मैं दु:ख का अन्त करने का मार्ग पाने को आया हूँ और आप धन-संपत्ति, सुख व दीर्घायु के प्रलोभन द्वारा मेरा ध्यान अन्य दिशा में लगाना चाहते हैं। महाराज, मुझे इनमें किसी की भी अभिलाषा नहीं है। मैं भला दीर्घायु, असाधारण दीर्घायु ले कर क्या करूँगा ?'

नचिकेता का दृढ़ निश्चय

भौतिक जीवन की दीर्घायु से, उसके सुख से, मन के इन मात्र संतोषों से नचिकेता प्रलोभित नहीं हुआ। हम तो बहुत छोटे, बहुत नगण्य सुखों से प्रलोभित हो जाते हैं, उन्हीं में निमग्न हो जाते हैं, उन्हीं में उलझ जाते हैं। इसलिये हमारा समर्पण एक नदी के प्रवाह समान नहीं होता, उसमें उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। हमारी सांधना एवं स्वशिक्षा में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। यह तीन कदम आगे व दो कदम पीछे अथवा दो कदम आगे व तीन कदम पीछे लेने समान होता है। हमारी साधना ऐसी होती है। नचिकेता तीक्ष्ण बुद्धि-संपन्न जान पड़ता है। इसलिये वह कहता है, 'नहीं महाराज, आप अपना राज्य एवं सुन्दर किशोरियाँ अपने लिये रखिये। आप अपने अश्व, मवेशी, संपत्ति इत्यादि सब अपने लिये रखिये। आपके लिये भले उनसे आनंद लेना संभव हो, मैं उन सब में अपना समय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्यर्थ गँवाना नहीं चाहता।' यह एक कथा नहीं है। यम एवं नचिकेता के इस संवाद को लेकर अनेकों मंत्र समर्पित किये गये हैं। यम अपने प्रस्ताव रखते जाते हैं और प्रत्येक प्रस्ताव के समक्ष नचिकेता का निश्चय दृढ़ रहता है।

मैं आगे बढ़ती परन्तु पहले एक शब्द पर हम कुछ ध्यान देते हैं। यमराज जब सुन्दर युवतिओं का प्रस्ताव रखते हैं तो वे कहते हैं, 'ऐसी सुन्दरता, ऐसी विशेष सुन्दर युवतियाँ मानव जाति को प्राप्य नहीं हैं, वह तुम्हें हर संभव ढंग से रिझायेंगी।' इन युवतिओं के लिये 'रामा' शब्द का उपयोग किया गया है। रम् मूल धातु है, जिससे रामा शब्द बना है। रामा वह स्त्री होती है, जो उसके साथ यौन संबन्ध की इच्छा रखने वाले पुरुष को हर संभव ढंग से रिझाती है। वह हर संभव ढंग से क्रीड़ा कर सकती है। उस नारी को, स्वर्ग सुन्दरी को रामा कहा जाता है। इन विशेष रूप से शिक्षित नारियों में तथा एक साधारण नारीत्व में यह अन्तर है। यमराज नचिकेता को उच्चतर एवं परिष्कृत यौन-भोग से प्रलोभित करने का प्रयत्न करते हैं। यह एक सुन्दर श्लोक है परन्तु हमें इसके विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं है। नचिकेता कहता है, 'महाराज, मुझे यौन-संबन्ध के ईश्वरत्व का भान है, मुझे उसके साथ खिलवाड़ नहीं करना है।'*

हम उपनिषदों का अध्ययन योग के विद्यार्थियों के रूप में कर रहे हैं, उनसे हमें जीवन का विज्ञान, जीने का विज्ञान सीखना है। यह अध्ययन भावनाओं का मनोरंजन अथवा बौद्धिक उत्तेजन नहीं है। हमारे लिये यह जीवन एवं मरण का प्रश्न है। हम संजीदा विद्यार्थी हैं। यम एवं नचिकेता के बीच का यह संवाद योग विद्यार्थियों के लिये शिक्षा है कि अपने ध्यान को इधर-उधर जाने की अनुमति न दीजिये, अपनी शक्तियों का अपव्यय मत कीजिये, अपनी ऊर्जाओं को इन्द्रियों के रास्ते बिखरने मत दीजिये। उपनिषद् का संदेश है, उन ऊर्जाओं को स्थिर रखिये, व्यवस्थित रखिये, एक समग्रता में, सम्पूर्णता में रखिये।

---

* *मूल संस्कृत भाषा में यम और नचिकेता के बीच की यह खींचातानी अति सुन्दर है, काव्यमय है। कठोपनिषद् काव्य शैली में सबसे अधिक संपन्न है। काव्य शैली की गहनता एवं लालित्य का सौन्दर्य, इस वक्ता द्वारा अध्ययन किये गये उपनिषदों में से श्रेष्ठ है।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चौथा संवाद

पिछले दो दिनों की अपेक्षा आज हमें कुछ अधिक परिश्रम करना होगा। हम दो काम करेगें, श्रोताओं द्वारा किये गये दो प्रश्नों पर ध्यान देंगे तथा उपनिषद् के दो श्लोकों का अध्ययन करेंगे।

सभी जिज्ञासुओं की जानकारी एवं अनुस्मरण के लिये मैं दोहरा रही हूँ कि उपनिषद् जीवन के विज्ञान के साथ संबंध रखते हैं। उपनिषद् जीवन के आत्मिक मूलतत्त्वों का प्रकटन हैं। वे ऋषियों, मुनियों एवं शिष्यों के बीच हुये संवाद हैं। रामायण, महाभारत अथवा भागवत् के समान वे महाकाव्य नहीं हैं। वे किन्हीं दर्शन प्रणालियों के सिद्धान्त प्रस्तुत नहीं करते, वे तथ्य की सहज अभिव्यक्तियाँ हैं, संवाद हैं।

प्रश्न :- यम महाराज नियंत्रण के प्रतिनिधि हैं, वे संयम शक्ति हैं। कृपया इस विधान को कुछ और स्पष्ट करके बताइये।

उत्तर : जब हिन्दु अपने धर्म ग्रन्थों में यम शब्द का उपयोग करते हैं, तो वे यमराज का एक देवता के रूप में, एक व्यक्ति के रूप में वर्णन करते हैं। वे यह भी वर्णन देते हैं कि यमराज किस रंग के वस्त्र धारण करते हैं, कैसे भैंसे की सवारी करते हैं इत्यादि, इत्यादि। उपनिषदों के अभ्यासकों को संभवतः ईशावास्य की शिक्षा स्मरण हो, 'ईशावास्यम् इदं सर्वं यत् किं च जगत्यां जगत्'। वहाँ ईश प्रज्ञा का मूलतत्त्व है, वह प्रज्ञा की शक्ति है; वह शक्ति, जो इस भूमंडल पर प्रत्येक रहने वाले तथा प्रत्येक गतिमान वस्तु में विद्यमान है। वहाँ ईश्वर एक देवता नहीं है। ईशावास्य उपनिषद् के ईश्वर से हिन्दुओं ने लाखों देवी-देवताओं का निर्माण किया है, संयोग से यम उनमें से एक हैं।

यम परिवर्तन एवं रूपांतरण का स्वाभाविक तत्त्व

यहाँ, इस उपनिषद् में यम परिवर्तन का, रूप विधान के अंत एवं शक्तियों के अंत का मूलतत्त्व है, वह अंतर्जात सारतत्त्व है। वह जीवन की संपूर्णता का स्वाभाविक नियम है। जहाँ जीवन की संपूर्णता स्वयं को स्वरूपों के प्रसर्जन, उनके वर्धन, उनके अंगों के क्षय, उनके अंत अथवा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समाप्ति की गतिविधि में व्यक्त करती है। वह समाप्ति एक अन्य रूप के अंकुरण के बीज की बुआई करती है। जीवन की गति स्वरूपों के व्यक्त होने से तथा उनके अव्यक्त में विलीन होने से बनती है। इसलिये जीवन की संपूर्णता, जीवन की समस्तता एक निर्जीव, मृतक घटना नहीं है, वह एक गतिहीन घटना नहीं है। वह एक गतिशील घटना है; इस गति में निर्गमन, वर्धन, क्षय एवं मरण सम्मिलित हैं। *जीवन एवं मरण जीवन के ईश्वरत्व की गतिशीलता के सूचक हैं।*

क्या आपके ध्यान में आया है कि हमारी भौतिक काया में वर्धन, क्षय एवं मरण की क्रिया निरंतर चलती रहती है। शरीर में कोई भी कोशाणु गतिहीन नहीं हैं, चाहे वे मस्तिष्कीय कोशाणु हों अथवा रक्त कोशाणु या फिर शरीर संरचना के अन्य कोई कोशाणु हों। वे परिवर्तित होते रहते हैं; उनके स्वभाव, उनके गुण भी परिवर्तित होते हैं। फिर वे कोशाणु मर जाते हैं तथा नये कोशाणु जन्म लेते हैं। आयुर्वेद विशेषज्ञों के अनुसार प्रत्येक सात वर्षों में शरीर का प्रत्येक कोशाणु परिवर्तित होता है। इस प्रकार जन्म हो रहा है, मृत्यु हो रही है, पुनर्जन्म हो रहा है; परिवर्तन हो रहा है। गतिशीलता के इस नियम को यम कहा जाता है। यम के बिना जीवन गतिहीन होगा, वह निर्जीव होगा।

परिवर्तन तत्त्व वास्तव में संयम का मूलतत्त्व है। बाल्यावस्था को संयम में रखते हुये, शरीर के प्रत्येक कोशाणु को परिवर्तित करते हुये युवावस्था का जन्म होता है। वह समस्त जो युवावस्था सूचित करती है, वह उत्तरोत्तर परिवर्तित होते हुये युवावस्था के अन्त के लक्षणों तक, प्रौढ़ावस्था के प्रकटन तक ले जाता है। *इस प्रकार मृत्यु का स्वामी, वास्तव में परिवर्तन का सहज मूलतत्त्व है।* उसके कारण वर्धन एवं परिपक्वता की अभिव्यक्ति होती है। जब तक एक रूप का अवसान नहीं होता, उस रूप में समाविष्ट शक्तियाँ-जो संभवत: अपने वातावरण के लिये महत्त्व खो चुकी हैं-अन्य किन्हीं शक्तियों में रूपान्तरित नहीं हो सकतीं। इसलिये परिवर्तन एवं संयम के मूलतत्त्व यम को मृत्यु भी कहा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाता है।

मरण एवं जन्म एक दूसरे में सम्मिलित हैं। आप मरण को जन्म से तथा जन्म को मरण से अलग नहीं कर सकते। जन्म शनैः शनैः मृत्यु का प्रारम्भ है तथा मृत्यु एक अन्य जन्म के अंकुरित होने का आरम्भ है। आप ऐसा वृक्षों में देखते हैं। शरद ऋतु में वृक्ष की टहनियों के पत्ते झरते हैं। वृक्ष अनावृत होते हैं, जिससे आप एक भी पत्ता नहीं देख पाते। पत्ते पहले रंग बदलते हैं और फिर वे आहिस्ता से, सहजता से पृथ्वी पर झड़ जाते हैं। बिना किसी दुर्भाव के, बिना किसी पीड़ा के, निःशब्दतः वे पृथ्वी पर गिर जाते हैं। उसीके साथ अत्यंत शान्ति से टहनियों के भीतर एक नया जीवन पनपता है, जिसे आप बसंत ऋतु कहते हैं। वह बसंत आपको टहनियों से निकलती हुयी कोमल, चिकनी, चमकदार पत्तियों से, तनों से, पतली टहनियों इत्यादि से प्रस्फुटित होती हुई दिखती है। इस प्रकार हेमन्त ऋतु बसंत का प्रारम्भ है।*

यम संयम की शक्ति है, परिवर्तन की शक्ति है, परिवर्तन का मूलतत्त्व है। उसे मृत्यु कहा जाता है, क्योंकि प्रत्येक परिवर्तन में मृत्यु का आभास होता हैं, मानो कुछ मर रहा हो। यम के लिये 'अंतक' एक अन्य सुन्दर शब्द है, अन्त है समाप्ति, मिट जाना। वाजपेय संहिता में यज्ञ करते हुये यम को, मृत्यु को, अंतक को, जीवन की संपूर्णता में समाविष्ट उस परिवर्तन करने की स्वाभाविक शक्ति को आहुति दी जाती है। 'यमाय स्वाहा। मृत्यवे स्वाहा। अन्तकाय स्वाहा।'

यदि आप अनुमति दें तो मैं आपको कुछ और गहराई में ले जाऊं। यम का अर्थ जुड़वा (यमज) भी है। मैं आपको यम तथा उनकी बहन यमी के विषय में, तैतिरीय उपनिषद् तथा ऋग्वेद में दिये गये उन सब विवरणों में नहीं ले जाऊंगी। वह आपको गहराई में बहुत दूर ले जाना होगा। इतना पर्याप्त है कि यम का आशय जन्म एवं मृत्यु के जुड़वा होने में, एक साथ होने में है। जन्म को बहन कहा जाता है तथा मृत्यु को

** हम यहाँ जीवन के गुह्य तत्त्वों के साथ सम्पर्क कर रहे हैं।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भाई कहा जाता है। *यम यमज है। यम परिवर्तन की स्वाभाविक शक्ति है, जिसमें संयम की, नियंत्रण की आवश्यकता पड़ती है। यम अंत करने वाला है, जो आकारों को रूपांतरित करता है।* प्रश्नकर्ता ठीक ही कहता है,कठोपनिषद् को समझने के लिये यम शब्द अति महत्त्वपूर्ण है।

भौतिक विषयों की अस्थिरता

यदि हम उस मंत्र की ओर ध्यान दें जिस का हमें आज सुबह अध्ययन करना है ,तो इस प्रश्न को संभवतः और भी विस्तार में समझा जा सकेगा । *श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत् सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।* मंत्र का प्रारम्भ श्वोभावा से होता है, श्वो का अर्थ है आने वाला कल। नचिकेता यमराज से कह रहा है कि समस्त पदार्थ श्वोभाव हैं, अर्थात् समस्त ऐन्द्रिय पदार्थों में, उनके संबन्ध में अनिश्चितता के, अस्थिरता के गुण हैं। ऐन्द्रिय पदार्थ अभी यहाँ होता है, वास्तविक जान पड़ता है परन्तु इससे कोई आश्वासन नहीं कि वह आज शाम अथवा कल भी वहाँ रहेगा। समस्त ऐन्द्रिय विषय अपितु वह समस्त जिसने रूप धारण किया है, ऊर्जाओं में, पदार्थों में, भौतिक वस्तुओं में अस्थिरता की, अनिश्चितता की अपूर्णता रहती है। आने वाले क्षण वह वहाँ हो भी सकते हैं और वहाँ नहीं भी हो सकते। इसलिये संपूर्ण भौतिक जगत्, संपूर्ण व्यक्त जगत् को वेदांतियों द्वारा 'माया' कहा गया है ।

माया वह है जिसे वास्तविक न कहा जा सके, जिसे अवास्तविक कह कर भी वर्णित न किया जा सके। वह इस क्षण वास्तविक होता है क्योंकि आपकी ज्ञानेन्द्रियाँ उसे स्पर्श कर सकती हैं। आपके प्रत्यक्ष बोध आपकी इन्द्रियों तथा ज्ञानेन्द्रियों द्वारा नियंत्रित रहते हैं। इसलिये, जब आँखें आकार को देख सकती हैं, हाथ उस आकार का स्पर्श कर सकते हैं, कर्ण उन वस्तुओं की गति से उत्पन्न शब्द को सुन सकते हैं तो आप उसे अवास्तविक नहीं कह सकते। परन्तु यदि आप उसी वस्तु की ओर पुनः देखने का प्रयास करते हैं, तब क्या होता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है? उदाहरण स्वरूप एक फूल को लीजिये। एक कली खिली है, एक फूल में विकसित हुयी है, आप उसे वास्तविक फूल के रूप में देखते हैं, वह एक कोमल फूल है। दो घंटों बाद आप वहाँ जाते हैं तो उसकी ताज़गी अब वहाँ नहीं होती; वह मुरझा रहा है, वह सिकुड़ रहा है। वहाँ कुछ घंटों पश्चात् जाने पर आप उसी फूल को देखना चाहते हैं और वह सूख गया होता है। परिवर्तन कितना तेज़ होता है। इस कारण, वह जो निरंतर परिवर्तित होता रहता है, उसे आप न तो वास्तविक कह सकते हैं न ही आप उसे अवास्तविक कह सकते हैं। वही परिवर्तन इस जीवन की गतिशीलता को बनाये रखता है।

नचिकेता कहता है, 'महाराज, आप मुझे समस्त लोकों की धन-संपत्तियों का प्रस्ताव दे रहे हैं आप मुझे भौतिक सुख, मानसिक सुख भेंट कर रहे हैं। मुझे आप समस्त धन, भौतिक स्तर के, मानसिक स्तर के ज्ञान, अनुभव इत्यादियों का प्रस्ताव दे रहे हैं परन्तु वे न तो वास्तविक हैं और न ही अवास्तविक। मैं उन सबसे क्या करूँगा ? उनके होने पर इन्द्रियाँ उनके सम्पर्क में आती हैं, उनके साथ पारस्परिक क्रिया करती हैं तथा उनसे पोषण प्राप्त करती हैं। यह एक प्रयोजन है परन्तु यह जीवन का ध्येय नहीं हो सकता।

'श्वोभावा मर्त्यस्य' अर्थात् एक नश्वर सत्ता। मनुष्य सत्तायें भी नश्वर हैं, वे भी परिवर्तन के अधीन हैं। वह भी किसी न किसी क्षण, वर्धन से क्षय तथा विघटन में परिवर्तित होती हैं। *जीवन परिवर्तन का एक प्रवाह है, परिवर्तन का एक भँवर है। इसलिये जो उपलब्ध हो उसे स्वीकार कीजिये परन्तु उसके साथ चिपके रहने का प्रयास मत कीजिये।* मनुष्य जीवियों के मन के साथ भी ऐसा ही होता है, आज, इस क्षण कोई मित्र होता है, अगले दिन मित्रता संभवत: कम हो जाती है अथवा वह मित्रता प्रतिद्वंद्विता में परिवर्तित हो जाती है। वहाँ एक अनिश्चितता होती है। इसलिये जब तक वह है उसका आनंद लीजिये परन्तु उससे चिपककर मत रहिये। अपनी खुशी को भौतिक पदार्थों पर,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानसिक अनुभवों पर, जीवन के सिद्धान्तों पर, जीवन के हठमतों पर निर्भर मत होने दीजिये।

मैं कहने का प्रयास कर रही हूँ कि यम अथवा मृत्यु भय का विषय नहीं है। ओह ! हिन्दुओं ने मृत्यु का कैसे भयजनक रूप में वर्णन किया है ! जब वे अपने बच्चों को डाँटना चाहते हैं अन्यथा उनको किसी निश्चित ढंग से व्यवहार करने के लिये बाध्य करना चाहते हैं, तो वे कहते हैं, 'सही ढंग से बर्ताव करो नहीं तो यम आ जायेगा।' आप जानते ही हैं, सभी धर्मों ने परिवर्तन तथा शक्तियों के रूपांतरित होने के तथ्यों के प्रति, मानसिकता में कैसे अवरोध पैदा किये हैं।

मृत्यु का सहर्ष आलिंगन

एक महान साधक हुआ करते थे, उनका नाम रोनाल्ड निक्सन था। वे भारत में सन १९२४ में आये थे, सन १९६५ में उनका देहान्त हुआ था। उन्होंने अति मूल्यवान ग्रन्थों—योगा ऑफ कठोपनिषद्, योगा ऑफ भगवतगीता, द सन ऑफ मॅन, आईसिस अनवेलड इत्यादि की रचना की है। जब उनके प्रस्थान का क्षण आया तो उन्होंने अपने निकट उपस्थित जनों से कहा- 'अब मैं प्रस्थान कर रहा हूँ, मनुष्य शरीर का परित्याग कर मैं प्रस्थान करता हूँ'। एक और संत थे, आचार्य विनोबा के नाम से जाने जाते थे। जब उन्होंने जान लिया कि हृदय, फेफड़े, सुचारू ढंग से काम नहीं कर रहे हैं और उनकी आयु अस्सी के पार हो गयी है, तो उन्होंने कहा, 'मृत्यु को यह शरीर सौंपने के लिये मुझे तैयारी करने दीजिये। इसलिये बिना भोजन, बिना जल, इसको संपूर्णतः शुद्ध होने दीजिये। मुझे अपनी संपूर्ण शक्ति संरक्षित करने दीजिये, ताकि मैं यह शरीर शालीनतापूर्वक मृत्यु को समर्पित कर सकूँ'। इसलिये कोई अपव्यय नहीं, शक्ति का व्यय नहीं, लागत नहीं; उन्होंने शाब्दिक मौन धारण किया। उन्हें ऐसी अवस्था में देख पाना बहुत ही सुन्दर था। आपकी मित्र विमला वहाँ गयीं थीं। वे चाहते थे उनके अंतिम प्रस्थान के पूर्व मैं उनसे भेंट करूँ। शक्ति के, प्रज्ञा के रूप में सचेतन प्रस्थान को देखने के परमानंद का अनुभव मैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आज भी कर सकती हूँ।

मृत्यु भयभीत करने का विषय नहीं है। तब क्या मैं इसे परिवर्तन का सहज तत्त्व कह सकती हूँ ? इस सहज तत्त्व का आशय है मृत्यु। यह शक्तियों के रूपांतरण का कारण है। यह संयम की शक्ति है अन्यथा आकृतियों की, उनके संबन्धों की निर्जीव गतिहीन निष्क्रियता की दुर्गंध रहेगी। *जीवन जीने योग्य है, क्योंकि मृत्यु है। इससे प्रत्येक क्षण बहुमूल्य बन जाता है, प्रत्येक गतिविधि अमूल्य हो जाती है, प्रत्येक क्षण महत्त्वपूर्ण हो जाता है। प्रत्येक संबन्ध मूल्यवान बन जाता है।*

हम देख सकते हैं कि कठोपनिषद् से वेदान्त के दर्शन ने 'माया' के सिद्धान्त का निर्माण किया है। 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या'; यह वेदान्त का सार है। ब्रह्म, वह अव्यक्त 'होनापन' ही एक अनश्वर तथ्य है। इसे 'ऋतम्' कहा जाता है। इसे ही सत्यम् कहा जाता है। जगत् मिथ्या अर्थात वह जिसमें गति है; जिसमें परिवर्तन की संभावना है वह मिथ्या है। कहने का आशय है कि वह अवर्णनीय है, वह न तो वास्तविक है न ही अवास्तविक; वह जो एक साथ वास्तविक एवं अवास्तविक है। आज आपका भौतिक विज्ञान यही कहेगा। भौतिक विज्ञान अब वेदान्त के शब्दों का प्रयोग कर रहा है - 'एक साथ वास्तविक एवं अवास्तविक होना'; 'ऊर्जा का एक साथ परमाणु रूप में तथा तरंग की कंपन के रूप में होना' इत्यादि, इत्यादि। प्रकृति की वास्तविकता का वर्णन करते हुये, वह 'रहस्य' शब्द का भी प्रयोग कर रहा है। मेरे लिये जीवन की सम्पूर्णता, उसकी समस्तता एक रहस्य है। वह सम्पूर्णता, वह समस्तता ईश्वरत्व का सार है। एक साथ वास्तविक एवं अवास्तविक होना उस रहस्य का सार है।

धम्मपद् में भी 'अंतक' शब्द का उपयोग होता है। अंतक, वह अंत करने की शक्ति, जो जीवन की गति में स्वाभाविक है। वास्तव में यह अकल्पनीय है कि वह अज्ञेय, सर्जनात्मक क्षमता, लाखों, अरबों वर्षों से चली आ रही है। कोई संकल्पना इसे स्पर्श भी नहीं कर सकती, कोई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्द इसका वर्णन नहीं कर सकते। इसलिये वेन्दात ब्रह्म एवं जगत् दोनों को अवर्णनीय कहता है; वह जो शाब्दिक अभिव्यक्तियों को चुनौती देता है। अनिर्वचनीय स्वरूपिणी माया, अनिर्वचनीय स्वरूपं ब्रह्म। माया अवर्णनीय है और ब्रह्म अवर्णनीय है; वे शाब्दिक अभिव्यक्ति को चुनौती देते हैं। मन की पहुँच वहाँ तक नहीं है । इसलिये उस भव्यता, उस वैभव के वर्णन के लिये शब्द नहीं हैं।*

प्रश्न २ :- दूसरे प्रश्न पर ध्यान केंद्रित करते हुये, मैं इसे उपनिषद् के मंत्रों के साथ संबन्धित कर रही हूँ। यह प्रश्न है—जब अस्तित्व के मूल में प्रज्ञा है, तब मनुष्य के मन में सुख की इच्छा तथा अन्य दुःख के कारण कैसे घर कर लेते है ? सुख की चाह का अंधकार किस क्षण मनुष्य चित्त में प्रवेश करता है? प्रज्ञा का प्रभाव इस आक्रमण को क्यों नहीं रोकता है ?**

सुख एवं दुःख अनिवार्य संवेदनायें

क्या हमने ध्यान दिया है कि सुख एवं दुःख दोनों ही संवेदन हैं । भौतिक स्तर पर हम एकाकीकरण में नहीं जीते, एकाकीकरण में कोई जीवन नहीं है । एक जीवित व्यक्ति निरंतर ऐन्द्रिय विषयों के सम्पर्क में रहता है । जब आँखें खुली हों, जब आप जागृत हों, तो आप ऐन्द्रिय विषयों की अनुभूति से बच नहीं सकते । देखना एक स्वैच्छिक गतिविधि नहीं है, वह एक स्वाभाविक गतिविधि है । आप जाग रहें हों तो कर्ण श्रवण करेंगे, सुनने को बाध्य होंगे, भले आप उसके प्रति ध्यान दें अथवा न दें । ध्यान दे कर श्रवण करना स्वैच्छिक है, किसी व्यक्ति एवं वस्तु का अवलोकन करना स्वैच्छिक है, परन्तु देखना, श्रवण करना, गंध लेना इत्यादि जीवन की अहम् व्यक्तित्व संबन्धित स्वैच्छिक गतिविधियाँ नहीं हैं । वह संवेदनशील बोध जिसे हम प्रज्ञा कहते हैं, वह एक ही क्षण में

** कठोपनिषद् का काव्य वास्तव में अद्‌भुत है। सभी उपनिषद् उच्चकोटि के काव्य के उदाहरण हैं परन्तु कठोपनिषद् सब से उत्कृष्ट है।*

*** प्रश्नकर्ता ने आक्रमण शब्द का प्रयोग नहीं किया है, मैं उसका भावानुवाद कर रही हूँ।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देखने, श्रवण करने, गंध लेने, स्पर्श करने की क्षमता रखती है। आत्मा, चैतन्य, प्रज्ञा एक-आयामी तथ्य नहीं है। सुख एवं दु:ख अनिवार्य संवेदनायें हैं। यदि आप इन्द्रियों को उनके विषयों से पृथक करने की चेष्टा करेंगे, तो आप जीवन की गतिविधि को दरिद्र कर देंगे। क्योंकि आंखें विषयों को देखती हैं तो स्मृति में नाम उभरते हैं, इसलिये मैं अपनी आंखें मूंद कर बैठूंगा। यह जीने का ढंग नहीं है। यह वैराग्य नहीं है। किसी विषय से पीछे हटने का, स्वयं को वंचित करने का वैराग्य से, त्याग से, संयम से कोई संबन्ध नहीं है। बल पूर्वक स्वयं को वंचित करना जीवन के प्रति अपराध है। आप इन्द्रियों अथवा उनकी ऊर्जाओं को वंचित कैसे कर सकते हैं ? *सुख तो रहेंगे। सुखों से बचने की आवश्यकता नहीं है परन्तु उनको ढूंढने की भी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वे तो वहाँ होंगे ही।*

कृपया ध्यान दीजिये। सुख कोई खोजने का विषय नहीं है। सुखों का व्यापार,सुखों की खोज, सुखों को दोहराने की इच्छा जीवन का ध्येय नहीं हो सकते। भूल है सुख को दोहराने के आग्रह में। भौतिक संवेदनों के रूप में, सुख एवं दु:ख न तो नैतिक हैं न ही अनैतिक। वे संवेदन तो जीवन के अंग हैं परन्तु उस पारस्परिक संबन्ध में मन प्रवेश करता है। जब इन्द्रियाँ अपने-अपने ऐन्द्रिय विषयों से सुख का अनुभव करती हैं, तो मन आ कर कहता है मुझे और अधिक लेने दो, मुझे इसे कल के लिये सुरक्षित रखने दो, मुझे इसे पुन: पाने दो। वह मानसिक गतिविधि ही है, जो भौतिक घटना के आनंद को दूषित करती है।

जब आप सुन्दर दृश्य देखते हैं, एक सुन्दर पक्षी, एक सुन्दर पुरुष अथवा स्त्री देखते हैं और एक प्रकार का सुखद संवेदन होता है, उसमें क्या दोष है ? परन्तु जब मन कहता है, मुझे उसे अपनाने दो, मुझे उस पर अधिकार करने दो, मुझे उसे पाने दो ताकि सुख पर मेरा नियंत्रण हो सके, तब आप उस सुख से ध्येय का निर्माण करते हैं। वास्तव में इससे हम उस सुख का अनुभव करने की क्षमता का, उस भौतिक क्षमता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का अनादर कर रहे हैं, उसका अपमान कर रहे हैं। हम उसे मन की लालसा का साधन बना देते हैं और मन उसे एक उत्कट आसक्ति का रूप दे देता है।

हमने भू-मंडल के साथ स्वामित्व रखने, अधिकार रखने, आदेशानुसार सुख पाने का व्यवहार किया है, हमने इस भू-मंडल को लूट लिया है, क्योंकि हम सुख का व्यापार करने वाली सभ्यता बन गये हैं। उपभोग की वस्तुओं का घिनौना बहुजनन, इस सुख के अवैध व्यापार के लक्षण के सिवा अन्य कुछ नहीं है। यह मुनष्य जाति अब व्यसनी हो गयी है। उन्नति के नाम से, समृद्धि के नाम से हमें सुख का व्यसन हो गया है। एक बार आपको सुख की संवेदनाओं का व्यसन हो जाये तो आप उसके दूसरे पहलू-दुःख-से बचाव चाहते हैं, परन्तु वे एक साथ रहते हैं। इसमें एक द्वैत है तथा द्वैत में आप अधिक समय तक दूसरे पहलू से बच नहीं सकते। सुख की खोज, सुख की चाह भय उत्पन्न करती है। एक बार स्वामित्व की इच्छा होती है तो फिर भय होता है। वहाँ होता है सुरक्षा का आग्रह, वहाँ होती है ईर्ष्या, लोभ इत्यादि; वह समस्त आ जाता है।

हम जीवन को देखते हैं परन्तु ध्यान से नहीं देखते; उसे निहारते नहीं। हम शब्द सुनते हैं परन्तु उसका ध्यान पूर्वक श्रवण नहीं करते। हमारे पास मन है, मस्तिष्क है परन्तु हम क्षणिक का स्थायी से, नश्वर का अनश्वर से अंतर पहचानने का, समझने का प्रयास नहीं करते। इससे हम अज्ञानी रह जाते हैं। *कृपया ध्यान दीजिये, सुख अपराधी नहीं हैं, विचार द्वारा प्रस्तावित स्वामित्व की इच्छा, अधिकरण की इच्छा, दोहराने की इच्छा अपराधी है।*

हममें प्रज्ञा प्रसुप्त पड़ी है। जब हम जीवन के प्रति गंभीर हो जाते हैं तो हम व्यवहारों के उन स्वरूपों के प्रति असंतुष्ट हो जाते हैं, जो हम अपने चारों ओर देखते आये हैं। तब हम स्वयं के लिये विचार करने लगते हैं, सुव्यवस्था करने लगते हैं। अपने लिये विवेक पूर्वक विभेदन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करना आरम्भ करते हैं। हम जानना चाहते हैं कि इस सौ वर्ष के जीवन का ध्येय क्या है ? तब हम नियम बनाने में, निष्कर्ष निकालने इत्यादि में नहीं जाते हैं। तब हम सिद्धान्त नहीं बनाते हैं कि अन्य व्यक्ति ऐसा क्यों नहीं कर रहे अथवा वैसा क्यों नहीं कर रहे। अब यह मेरा जीवन है, जो मुझे जीना है। क्या आप अपना घर साफ नहीं करते? क्या आप कहते हैं कि बाहर गंदा है इसलिये मैं अपना घर नहीं साफ करूँगा, या फिर बाहर अन्धकार हो तो अपने घर दीप नहीं जलाऊँगा ? हम ऐसा नहीं करते। हमें अपनी प्रज्ञा का उपयोग करना होता है। वह है वहाँ। परन्तु हम प्रज्ञा को, उस प्रसुप्त शक्ति को ऐन्द्रिय से संबन्धित नहीं करते। निष्क्रियता से, पीढ़ी दर पीढ़ी दिये गये प्रतिमानों का हम अनुगमन करते रहते हैं अथवा हम समाज द्वारा दिये गये प्रतिमानों को अपना लेते हैं।

सुख की संवेदना अन्धकार नहीं है। यदि इस क्षण सुख की संवेदना है, यदि उस के आनंद का अनुभव है, तो उसमें कोई आध्यात्मिक, नैतिक दोष नहीं है। जब आप स्वादिष्ट भोजन करते हैं तो उसका आनंद क्यों न लें? जब आप सागर किनारे बैठते हैं, तब सुख एवं आनंद एक साथ उपलब्ध रहते हैं। जब आप पहाड़ की चोटी पर खड़े होते हैं, तो आंखों को सुख के साथ-साथ हृदय को आनंद भी प्राप्त होता है। यदि उनको आने वाले कल के विचार से, दोबारा पाने के विचार से अनछुआ रखा जाये, तो उनमें ईश्वरत्व रहता है, पवित्रता रहती है। मुझे कुतूहल है, क्या आप इसमें पवित्रता देखेंगे? *मुझे सुख में भी पवित्रता दिखती है। मुझे मृत्यु में पवित्रता दिखती है। मुझे परिवर्तन में पवित्रता दिखती है।*

पाँच वर्ष की आयु से मैंने अपने शरीर में होने वाले परिवर्तनों का अवलोकन किया है। बाल्यावस्था के भोलेपन की पवित्रता में अपना ही सौन्दर्य था। फिर, मन में उछलती हुई जिज्ञासायें एवं प्रत्येक विषय पर प्रश्न पूछने की प्रेरणा आयी; कुछ भी न स्वीकार करने की, कुछ भी न मानने की, सब कुछ समझने की प्रेरणा थी। वह थी किशोरावस्था। प्रश्न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करना आसपास के लोगों, मेरे माता-पिता एवं अध्यापकों को विद्रोह समान जान पड़ता था। परन्तु बाल्यावस्था, उसकी अबोधता, अबोधता की भव्यता, अबोधता की निराश्रयता प्रश्न करने की सतर्कता में परिवर्तित हो चुकी थी। यदि कोई कुछ मानने के लिये अथवा स्वीकार करने के लिये कहता तो मुझे अपने अन्दर अपमान का अनुभव होता। मेरे पास समझाने के लिये शब्द नहीं थे। फिर देखा मैंने युवावस्था का शरीर में आगमन, युवावस्था का सौन्दर्य तथा शक्तियों का एक साथ क्षितिज में समांतर एवं ऊर्ध्व विस्तार। युवावस्था प्रत्येक विषय का, ईश्वर एवं ईश्वरत्व का, पदार्थ एवं शक्ति का अन्वेषण करना चाहती थी। युवावस्था के विलोपन के साथ प्रौढ़ावस्था का आगमन हुआ। अब वह चारों ओर की सक्रिय उछल कूद नहीं थी, जो युवावस्था में थी। आप जानते ही हैं, भोजन के स्वाद बदल जाते हैं, साहचर्य की अभिरुचि बदल जाती है, पढ़ने की रुचि इत्यादी सब कुछ बदल जाता है।

शरीर में अभिव्यक्त परिवर्तनों की वेग धारा को मैंने सतर्कता से देखा है। जो इसमें होता है वही ब्रह्मांड में होता है। यहाँ अणु विश्व है तो वहाँ ब्रह्मांड है। जहाँ तक सत्त्व का प्रश्न है, दोनों एक ही हैं। वहाँ अव्यक्त की विराट अभिव्यक्ति है, तो यहाँ ब्रह्मांड की संघनित अभिव्यक्ति है।

इस प्रकार प्रौढ़ावस्था देखी है और देख रही हूँ वृद्धावस्था को आते हुये। उसकी परिपक्वता एवं स्थिरता उसके साथ जीवन की गति एवं ऐन्द्रिय स्तर की गति देख रही हूँ। मेरे प्रिय मित्रों, मैंने एक बात ध्यान से देखी है, यद्यपि शरीर युवावस्था से प्रौढ़ावस्था में, प्रौढ़ावस्था से वृद्धावस्था में परिवर्तित होता है, चेतना की सजीवता उस से प्रभावित नहीं होती। प्रज्ञा की सजीवता सदा शुद्ध रहती है। ७२ वर्ष पार करने के पश्चात् भी सीखने की वह सजीवता,खोज करने की जो प्रेरणा पाँच वर्ष की आयु में थी, ७२ वर्ष की आयु में भी यहाँ है। आत्मा के अस्तित्व की स्वतंत्रता, प्रज्ञा के अस्तित्व की स्वतंत्रता है। मैं आपके साथ यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोई सिद्धान्त नहीं बाँट रही हूँ। इस शरीर के हाड़-माँस से ढका हुआ जो रहस्य है, उसका शब्दों द्वारा प्रकटन किया जा रहा है।

सुख की लालसा से अन्धकार की उत्पत्ति

प्रश्न था, सुख की चाह का अन्धकार कब मानसिकता में प्रवेश करता है ? प्रश्न है, 'कब' ? वह प्रवेश करता है, बल्कि वह जागृत होता है, जब आप संरचना के प्रति, उसके सामर्थ्य के प्रति जागृत होते हैं। जब आप विचार संरचना के सम्पर्क को दोहरा पाने की क्षमता के प्रति सचेत होते हैं। मेरे विचार से, जब आप अपने अहम् व्यक्तित्व के ऐन्द्रिय सम्पर्क तथा पारस्परिक क्रिया के प्रबोधक होने के प्रति सचेत होते हैं, तब सुख की लालसा का आरम्भ होता है। *जिया जा रहा सुख अन्धकार नहीं है। जब सुख की तलाश को भौतिक, मानसिक, अतीन्द्रिय, गुह्य अथवा किसी भी स्तर के सुख को ध्येय बनाया जाता है, जब और की लालसा होती है, तब अन्धकार का आरम्भ होता है।*

कृपया ध्यान दीजिये, क्या प्रत्येक मनुष्य के हृदय में वह हल्की सी अंतरात्मा की आवाज़ क्रियाशील नहीं रहती ? क्या वह आपमें और मुझ में काम नहीं करती ? जब आप शाब्दिक, ऐन्द्रिय, मानसिक स्तर पर असंयम में जाते हैं, तब धीरे से वह अंतरात्मा आपसे कहती है कि अब आप उल्लघंन कर रहे हैं। वह कहती है आप जो कह रहे हैं वह अनुचित है; आप संयम खो रहे हैं, यह असंयम है, यह अव्यवस्था है। वह असंयम भले वाणी से संबन्धित हो, भोजन लेने की पुनरावृत्ति से, उसकी मात्रा से, गुण से संबन्धित हो। जब मन इनके पीछे भागता है, जब आप झूठ बोलते हैं, जब आप आधे सत्य एवं आधे असत्य कहते हैं, क्या तब एक छोटी सी, अति कोमल आवाज़ नहीं कहती कि यह गलत है ? वह आवाज़ प्रज्ञा की होती है। वह संयम की चेष्टा करती है। आपके अन्दर वह यमराज का कथन होता है, वह एक स्वाभाविक संयम शक्ति की हल्की सी आवाज़ होती है। क्या हम अंतरात्मा की उस आवाज़ की उपेक्षा नहीं करते ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आपकी एवं मेरी अंतरात्मा के मूलतत्त्व के सिवा यम और कुछ नहीं है। परन्तु हम उसकी उपेक्षा करते हैं, बहुत कठोरता से उसे एक ओर हटा देते हैं, उसे दबा देते हैं।

अनाग्रही प्रज्ञा

जब भौतिक, मानसिक, बौद्धिक, अतीन्द्रिय सुखों को जीवन का ध्येय, उसका उद्देश्य, उसका लक्ष्य बना लिया जाता है, तब फैलता है अन्धकार। प्रज्ञा ऐसा क्यों होने देती है ? क्योंकि प्रज्ञा, वह जीवन का सार, वह आत्मा, वह चैतन्य कोई तानाशाह नहीं है। वह वहाँ है, यदि आप उसके प्रति उन्मुख होते हैं तो वह आपके लिये उपलब्ध है। वह एक आग्रही, तानाशाह मूलतत्त्व नहीं है, वैसे ही जैसे प्रेम निबंधन नहीं नियत करता। क्या प्रेम संबन्धों को सौदे की दूकान बनाता है ? क्या प्रेम विक्री-खरीदी जानता है ? वह स्वाग्रही नहीं होता। उसी प्रकार जीवन का सौन्दर्य, जीवन की पवित्रता, जीवन की शुद्धता, उस अनाग्रही प्रांजलता के, उस प्रज्ञा के हममें उपलब्ध होने में समाविष्ट है।

क्या आपको गीता से स्मरण है – 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे अर्जुन तिष्ठति'? ईश्वर, वह प्रज्ञा का मूलतत्त्व जो सर्वस्व में व्याप्त है, वह प्रत्येक मानव हृदय में भी स्पंदित है। लोग उसका उपयोग नहीं करते, उसके प्रति ध्यान नहीं देते। इसलिये जब विद्यार्थी योग की ओर उन्मुख होते हैं, सर्वप्रथम उन्हें यम के मूलतत्त्व से प्रारम्भ करना पड़ता है, नियम उसके बाद आते हैं। संयम का अर्थ, उसका महत्त्व यम द्वारा सिखाया जाता है, उसकी नींव यम द्वारा रखी जाती है। यम-अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह-नियम को दृढ़ता देते हैं। आपको वे यम स्मरण हैं ? अहिंसा का नियम होना संभव है परन्तु सत्य यम होता है।

प्रज्ञा अन्धकार को हस्तक्षेप नहीं करने देती परन्तु या तो अज्ञानता में या फिर अहंकारवश हम अंतरात्मा की आवाज़ की अवहेलना करते हैं, उसकी उपेक्षा करते हैं, उसे दबा देते हैं। हम वही, उसी तरह करते जाते हैं, जैसा हमारा मन चाहता है। मन ऐन्द्रिय अंगों के निकटतम सम्पर्क

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में होता है। इसलिये बुद्धि एवं विवेक का अनादर कर ऐन्द्रिय अंग वह करते हैं, जो मन उन्हें करने को कहता है। वे बुद्धि की भी, अपनी प्रज्ञा की भी उपेक्षा करते हैं।

हठ-योग का स्थान

इसलिये आप विवेक सीखते हैं। आप आसन एवं प्राणायाम द्वारा रक्त तथा प्राणों को प्राणवायु देते हैं, उन्हें ताज़ा करते हैं। प्रत्याहार, जो विभेदीकरण का मूलतत्त्व है, आप उसकी ओर उन्मुख होते हैं। आप प्रत्येक ऐन्द्रिय अंग के व्यवहार के प्रति विवेक लाते हैं। जब आप समस्त इन्द्रियों के व्यवहार में विवेक लाते हैं वह सौन्दर्यपूर्ण होता है, वह प्रत्याहार होता है। वह मुँह फेरना नहीं है, अपने आपको वंचित करना नहीं है, वह दमन नहीं है, निरोध नहीं है। फिर भी अद्‌भुत ढंग से वह आपको सुखों में लिप्त होने की बीमारी से बचाता है। अगले कदम पर, धारणा का अध्ययन प्रत्याहार को शक्ति देता है। जिस प्रकार प्राणायाम आसनों को शक्तिशाली बनाता है, धारणा एकाग्रता की, प्रत्याहार की उपलब्धि को स्थिर करती है। यदि योग को सही ढंग से समझा जाये तो वह बहुत सुन्दर है। वह योग प्रदीपिका का मात्र शाब्दिक अध्ययन नहीं है। यदि हम अष्टांग योग के मूल अभिप्राय क़ो देखते हैं तो वह अद्‌भुत विषय है।

अब हम ध्यान की ओर उन्मुख होते हैं। *केवल एक सुसंस्कृत, संवेदनशील, पूर्णत: विकसित अहम् व्यक्तित्व ही अहम् से परे जाने की घटना में अपना समर्पण करता है, वह सहमत होता है, अपना सहयोग देता है।* वह स्वेच्छा से प्रसुप्तावस्था में जाना, क्रिया-रहित होना स्वीकार करता है, वह रूपांतरण की, ध्यानावस्था में जाने की स्वीकृति देता है। अस्त-व्यस्त, अनियंत्रित, अनुशासनहीन शरीर अथवा मन अनाग्रही मौन अथवा ध्यानावस्था को कभी आत्मसमर्पण नहीं करते। वह सौन्दर्यपूर्ण प्रसुप्तावस्था तथा अक्रियता जिसे मृत्यु कहा जाता है, उससे बचने के लिए वे बहाने बनाते हैं, वे हेर-फ़ेर एवं युक्तियाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चलाने की चेष्टा करते हैं। स्वेच्छा से अक्रियाशील अवस्था में जाने को काव्यात्मक भाषा में मृत्यु अथवा मरण कहा जाता है।

भौतिक एवं मानसिक संपत्ति का उचित स्थान

अब हम सत्ताईसवें मंत्र का अध्ययन करेंगे। *न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा।* यह एक सुन्दर श्लोक है। 'वित्त' सम्पत्ति है; जिसके साथ आप कुछ मूल्य जोड़ते हैं उसे संपत्ति कहा जाता है। यदि कृषि संस्कृति में मवेशी संपत्ति थे, आज आपकी कारों, रेफरीजिरेटरों तथा कम्प्यूटरों को शायद संपत्ति कहा जाये। संपत्ति की व्याख्या, किसी वस्तु के साथ जोड़ा हुआ मूल्य बदलता रहता है। अरण्य संस्कृति में, कृषि संस्कृति में, औद्योगिक एवं अब औद्योगीकरण के पश्चात् पर्यावरण-वाद की सहायता से संपत्ति की व्याख्या पुन: बदल रही है। आप जानते हैं, जीवित होना एक अद्‌भुत घटना है। सब कुछ परिवर्तित होता है, संस्कृतियों का स्वरूप बदलता रहता है। राजनीतिक, आर्थिक नक्शे परिवर्तित हो रहे हैं; शासन के संबन्ध, उसकी हिंसा के स्वरूप परिवर्तित हो रहे हैं। जीवित होना एक सौभाग्य है; इन समस्त विषयों को देख पाना, इनको समझ पाना एवं नश्वर विषयों की पारस्परिक क्रियाओं से अमरत्व ग्रहण कर पाना सौभाग्य है। क्या आप जानते हैं प्रेम उस अमरत्व का प्रतीक है, जीवन के मूलतत्त्व के रूप में करुणा उस अमरत्व की ओर संकेत करती है। ईर्ष्या, घृणा, लोभ इत्यादि सब के सब नश्वर हैं। ब्रह्मांड के चित्रपट पर यह नश्वरता एवं अनश्वरता का नृत्य है।

वित्त का आशय संपत्ति, भौतिक पदार्थों की संपत्ति, घर-जायदाद, वाहन, बौद्धिक ज्ञान, शाब्दिक ज्ञान, संपत्ति इत्यादि से है। धन-संपत्ति आपको प्राधिकार देती है, वह प्राधिकार आपको सामाजिक मान देता है। वह प्राधिकार एक सुरक्षा के भ्रम का आभास देता है। ज्ञान धन है, मानसिक अनुभव, ऐन्द्रिय, अतींद्रिय, गुह्य अनुभव भी संपत्ति होते हैं। नचिकेता यमराज से कहता है, 'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो।' शिष्य अपनी समझ,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपना अभिमत आचार्य के समक्ष उंडेल रहा है, ताकि आचार्य जान सकें कि शिष्य कितना समझ पाया है। आचार्य एवं शिष्य के बीच का यह संवाद अद्‌भुत है। दोनों तरफ से कुछ छुपाने को नहीं है; न तो आचार्य कुछ गुप्त रखते हैं, न ही शिष्य कुछ छुपाता है।

नचिकेता कहता है, 'जाने दीजिये, आप मुझे इस लोक एवं अन्य लोकों की संपत्ति का प्रस्ताव दे रहे हैं। क्या आप सोचते हैं कि मनुष्य जीवन की परिपूर्ति इनमें है ?' 'तर्पणम्', इस अति सुन्दर शब्द का अर्थ है परिपूर्ति।'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो'; मनुष्य जाति का जीवन किसी प्रकार की संपत्ति द्वारा परिपूर्ण नहीं होता। वह एक आवश्यकता होती है परन्तु पूर्णता नहीं होती। कृपया देखिये, संपत्ति आवश्यकता है, ज्ञान एक आवश्यकता है, वह मस्तिष्क की संपत्ति है। आपका घर, आपकी संपत्ति एक आवश्यकता है, वे पूर्णता नहीं है। वे अपने आपमें ध्येय नहीं है, वे ध्येय के साधन हैं। अनुभव मन की संपत्ति हैं, वे भावनाओं के पहलू हैं। आपको सांस्कृतिक रूप से कंगाल होने की आवश्यकता नहीं है; आवश्यकता नहीं है कि आप भावनाओं से अथवा बौद्धिक रूप से कंगाल हों या फिर भूख से पीड़ित व्यक्ति हों। *भौतिक, बौद्धिक, शाब्दिक रूप से संपन्न रहिये, उनका आनंद लीजिये परन्तु उनसे परिपूर्णता नहीं है। वे जीवन का लक्ष्य नहीं, ध्येय नहीं, उद्देश्य नहीं हैं।* किसका उद्देश्य नहीं हैं ? मनुष्य जीवन का।

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो। एक बार फिर आपको संस्कृत भाषा के संपर्क में आना पड़ता है। मननात् मनुष्यः। अन्य जीव-जंतुओं समान मनुष्य भी संसार में एक जीव है परन्तु उसके पास विवेक की, मनन चिन्तन की, विचार की शक्ति है। मनुष्य को प्रकृति द्वारा मन एवं बुद्धि की शक्तियों का उपहार दिया गया है; विश्लेषण एवं संश्लेषण के लिए विवेक तथा समझ के लिए मन एवं बुद्धि प्रदान किये गये हैं। इसलिये ऐसा जीव, जिसे प्रकृति ने विवेक की, विभेदन की, विश्लेषण एवं संश्लेषण की शक्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रदान की है, क्या वह किसी भी संपत्ति द्वारा, किसी भी स्तर पर पूर्णता का अनुभव करेगा ? उसके परे भी कुछ है !

आत्म बोध में पूर्णता का आभास

नचिकेता यमराज से कह रहा है, 'यदि आप मुझे सभी प्रकार की धन-दौलत, भोग-विलास एवं सुख प्रदान भी कर दें, मैं जानता हूँ कि अंत में तो मृत्यु है। इसलिये मनुष्य जीवन की पूर्णता इसी बोध में है कि वह क्या है ? जीना क्या है ? ज़ीवन एवं मृत्यु का महत्त्व क्या है ? मनुष्य जीवन का लक्ष्य आत्म-बोध में है।'

चलिये, सुकरात के कथन पर ध्यान दीजिये कि आत्म-ज्ञान ही कर्तव्यपरायणता है। प्लेटो के कथन पर ध्यान दीजिये कि संसार एक व्यक्तिनिष्ठ काल्पनिक धारणा है। शंकराचार्य के कथन पर ध्यान दें - 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः' । मनुष्य एवं ईश्वर में एक कृत्रिम द्वैत है। ब्रह्मांड में प्रज्ञा ही केवल एक चिरस्थायी मूलतत्त्व है और आप वही हैं। 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म'; जीवन ईश्वरत्व है। सर्वं अर्थात् समस्त, ब्रह्म अर्थात् जीवन की समस्तता, पूर्णता अर्थात ईश्वरत्व। *सृष्टि में कहीं अलग बैठा, जीवन को बाहर से नियंत्रित करता हुआ कोई ईश्वर नहीं है।* वह समस्त धर्म-संघों के लिये छोड़ दीजिये, क्योंकि वे उन लोगों को शिक्षित करते हैं जिन्हें जीवन की विशालता से, अनंतता से संबन्धित होने के लिये किन्हीं सहायक उपायों की आवश्यकता होती है। मेरे मित्रों, यह एक उत्कृष्ट अध्ययन है; अध्यात्म के विज्ञान में, जीवन के विज्ञान में उपनिषद् उच्च स्तरीय अध्ययन हैं।

मनुष्य जीवन की पूर्णता संपत्ति के संग्रहण में तथा भौतिक, मानसिक, अथवा बौद्धिक संपत्ति की देख-भाल में नहीं है। क्योंकि जीवन परिवर्तित होता रहता है और संपत्ति के संग्रहण से तथा सुखों को दोहराते रहने में प्राणाधार शक्ति घटती रहती है। किसी भी प्रकार के सुख के अतिभोग का प्रत्येक कर्म सज़ीवता पर प्रभाव करता है। आपमें वह उत्साह नहीं रहता, वह ताज़गी, वह शक्ति नहीं रहती। अन्यथा ७०-७५ अथवा ८०
Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वर्ष की आयु के उपरान्त मनुष्य मस्तिष्क में जीर्णता क्यों आये ? मस्तिष्क की जीव-इकाईयों के स्वरूप पर कोई प्रभाव क्यों पड़े ? ऐसा क्यों हो, जब तक कि उस प्राण शक्ति के प्रति आप असावधान न रहे हों या फिर भौतिक, शाब्दिक, मानसिक, बौद्धिक सुखों के लिये उसका अत्यधिक उपयोग अथवा व्यय न किया हो।

यदि हमने आज सुबह की बैठक के अन्त में कुछ सीखा है, तो वह है कि सौ अथवा एक सौ बीस वर्ष का मनुष्य जीवन एक बहुमूल्य अवसर है। जीवित होना हमारा सौभाग्य है, यह एक वरदान है, यह जीवन का अनुग्रह है। सुन्दर ऐन्द्रिय अंगों से सुसज्जित, ऐन्द्रिय शक्तियों से भरपूर, अग्नि के मूलतत्त्व की लौ, प्राण एवं प्रज्ञा के मूलतत्त्व की लौ समाये हुये जीना ईश्वरानुग्रह है। इसलिये शक्तियों को संरक्षित रखना चाहिये, अर्थात् उनका उपयोग वैज्ञानिक ढंग से, एक वैज्ञानिक की सूक्ष्मता से, परिशुद्धता से करना चाहिये। उनका सही ढंग से उपयोग कीजिये, जीवन का आनंद लीजिये परन्तु गतिविधियों के प्रति असावधान, अनियत अथवा अव्यवस्थित मत रहिये।

आशा है कि अब हमारे मन में यमराज के प्रति कोई भय नहीं होगा। आप भले उसे स्त्री-रूप अथवा पुरुष-रूप में देखें, वह एक सक्रिय मूलतत्त्व है। संयम के इस मूलतत्त्व की सतर्कता के बीना, उसके द्वारा परिवर्तनों के नियंत्रण बिना जीवन निस्तेज होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाँचवाँ संवाद

हम प्रथम अध्याय की द्वितीय वल्ली से प्रारम्भ कर रहे हैं।

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषे सिनीतः।

जिनका जन्म तथा पालन-पोषण पश्चिम में हुआ है, उनके लिये मनुष्य जीवन तथा यथार्थता के प्रति इस प्राच्य दृष्टिकोण को ग्रहण कर पाना या फिर उसे समझ पाना वास्तव में कठिन होगा। मुझे आशंका है आज सुबह जब हम श्रेय एवं प्रेय शब्दों का अध्ययन करेंगे तो कुछ कठिनाई होगी। भारतीय अथवा अभारतीय भाषाओं में उपनिषदों का अनुवाद करने वाले अधिकतर अथवा सभी भाष्यकारों ने प्रेय का अर्थ सुखदायी तथा श्रेय का अनुवाद अच्छा अथवा श्रेष्ठ लगाया है। ये कुछ भ्रमजनक शब्द हैं।

श्रेय एवं प्रेय जीवन के दो आयाम

पश्चिम में अच्छे एवं बुरे के बीच विभाजन की जो कल्पना की जाती है उससे हम परिचित हैं। ऐसे ही कुछ भाष्यकारों ने प्रेय शब्द की व्याख्या बुराई का मार्ग कह कर की है, कुछ ने तो उसे शैतान का मार्ग तक कहा है। कुछ ने उसका विवरण अन्धकार का मार्ग कह कर किया है। उन्होंने श्रेय को ईश्वर का मार्ग, अच्छाई का मार्ग, प्रकाश का मार्ग इत्यादि कहा है । जहाँ तक वेदों एवं उपनिषदों का संबन्ध है, प्राचीन काल के किसी भी ऋषि-मुनि द्वारा ऐसे द्विभाजन की स्वीकृति अथवा ऐसा अभिकथन नहीं है। प्रेय शब्द की प्राप्ति प्रिय शब्द से होती है, जो मूल शब्द प्रियता से अर्थात् प्रसन्न करने से, तुष्टि करने से बनता है।

मुझे ऐसा जान पड़ता है कि सुख एक भौतिक संवेदना है, जो इन्द्रियों एवं ऐन्द्रिय विषयों की परस्पर क्रिया द्वारा उत्पन्न होती है। वह एक सहज भौतिक घटना है। सुख में कुछ अनैतिक नहीं है। यदि कोई विभिन्न सुखों से, विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों तथा विभिन्न ऐन्द्रिय विषयों के स्वरूपों, रसानुभूतियों, सुवासों, सुगन्धों से गुज़र जाये, तो उस सुख में कोई बुराई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं है। यह पारस्परिक क्रिया का, जीवन एवं जीने का विषय है। मुँह मोड़ लेने में तथा एकाकीकरण में कोई जीवन नहीं है। एकाकीकरण में शरीर के स्तर पर जीवित रहना तो हो सकता है, परन्तु इसे जीने की पवित्र क्रिया नहीं कहा जा सकता।

सुख के संवेदन से बचने की आवश्यकता नहीं है, उसमें कुछ अस्वस्थता नहीं है। उसमें हम मानवेतर जीवों के सहभागी हैं। मनुष्य का विवरण एक बुद्धि-संपन्न प्राणी के रूप में किया जाता है। हमारी जैविक संरचना में समाई पशु-प्रकृति का खंडन करने में कोई लाभ नहीं है। हम पाशविक हैं। भौतिक स्तर पर, स्थूल काया के स्तर पर हम अधिक विकसित हैं परन्तु पाशविकता वहाँ है। जब हम कोई सुन्दर वस्तु देखते हैं, स्वादिष्ट भोजन करते हैं, सुन्दर संगीत सुनते हैं, बसंत की कोमल तथा शरद समीर की हल्की चुभन का स्पर्श पाते हैं तो पशु प्रकृति संतुष्ट होती है। यह संवेदन न केवल अनिवार्य हैं, वह जीने की लीला के अंश हैं। इसलिये प्रेय का अर्थ किसी विषय से स्वयं को वंचित करने, उससे बचने से नहीं है। जब इन्द्रियों को अपने-अपने ऐन्द्रिय विषयों से सुख पाने पर संतुष्टि होती है तो वह कोई पाप नहीं है। मनुष्य जीवन में पाशविक स्तर है। उसे निम्नतर स्तर कहा जा सकता है, फिर भी वह जीवन का एक स्तर है। जीवन में प्रांजलता के लिये सुख एवं दुःख की स्वीकार्य एवं अस्वीकार्य संवेदनाओं से गुज़रने की अनिवार्यता के साथ समझौता करना आवश्यक है। दोष कब होता है? जब इच्छा का अंश बीच में आ जाता है। जब मन एवं विचार रेंगते हुये आ जाते हैं और कहते हैं कि हमें कल भी यह चाहिये; वह आने वाला कल जिसका आज कोई महत्त्व नहीं है। वैसे ही, मन बीते हुये कल की स्मृति के साथ खिलवाड़ करता है, जिसका अभी कोई अस्तित्व नहीं है। दोषी मन है, विचार की क्रिया दोषी है। वह इन्द्रियों एवं ऐन्द्रिंय विषयों को, उस सुन्दर पारस्परिक क्रिया को अपवित्र तथा संदूषित कर देती है; वह मार्ग अन्धकार का मार्ग बन जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुख का अनुसरण जब जीवन के लक्ष्य के रूप में किया जाता है, जब सुख नैतिक मूल्यों की कीमत पर खोजा जाता है, तब दोष होता है। पहले आप शरीर के सुखों को दोहराने के प्रतिमान बनाते हैं, आप पुनरावृत्ति चाहते हैं। आप आदत बनाते हैं और फिर आपको व्यसन हो जाता है। आप उस पर निर्भर हो जाते हैं, आपको उस आदत के प्रतिमान का व्यसन हो जाता है। तब ऐन्द्रिय विषयों -भोजन, सौन्दर्य अथवा यौन विषय, आदमी अथवा औरत- के न होने पर भी आसक्ति उन विषयों की प्रतिमा की रचना कर लेती है। मनुष्य मन उन बनाये गये सम्मोहनों के साथ खेलने लगता है। आसक्तियाँ स्मृति द्वारा पैदा की जाती हैं। यदि कोई सावधान न रहे, तो वह आसक्ति एक पागलपन का रूप धारण कर लेती है। ऐसे ही लोग मनोरुग्ण हो जाते हैं। *सुख में कोई दोष नहीं है, शरीर में कोई दोष नहीं है। शरीर एक पाप नहीं है। परन्तु जब किसी भी कीमत पर मन सुख को पाने का तथा पीड़ा से बचने का एक लक्ष्य, एक ध्येय बना लेता है, तब विकृति तथा विकार बनने आरम्भ होते हैं ।*

उपनिषद् कहता है अन्य श्रेयः, अन्य प्रेयः। मनुष्य जीवन में दो आयाम हैं। एक है भौतिक आयाम, सुख का आयाम, जो आपकी तुष्टि करता है। बाह्य इन्द्रियाँ शरीर को अलंकृत करती हैं, वे परस्पर क्रिया की साधन हैं, वह रुचिर संवेदन लाने की अभिकर्ता हैं। वह हमारी मित्र हैं, ऐन्द्रिय अंग हमारे सहयोगी हैं। वैसे ही हमारे आन्तरिक अंग भी हैं। संस्कृत में मन को अंतःकरण कहा जाता है; अंतः अर्थात् आंतरिक, करण अर्थात् उपकरण। इस प्रकार हमारे बाह्य तथा आंतरिक उपकरण हैं। मनुष्य केवल पशुवृत्ति नहीं है, वह केवल एक जैविक संरचना नहीं है। जीवन के विकास के साथ उसके पास मन है, मस्तिष्क है , जिसकी पूर्णतः भिन्न क्षमतायें हैं। जिस प्रकार शरीर की, जैविक संरचना की, भौतिक काया की प्राथमिक आवश्यकतायें हैं, भोजन, यौन सुख, निद्रा, संगीत, वस्त्र, सुन्दर स्थानों में रहने की आवश्यकतायें हैं, उसी प्रकार मन एवं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मस्तिष्क की भी मूल माँगें हैं। मस्तिष्क को ज्ञान की संघटित जानकारी की अपेक्षा होती है। वह सदा जीवन में व्यवस्था की माँग करता है। वह ऐन्द्रिय अंगों द्वारा ग्रहण किये गये स्पंदनों की संबद्धता चाहता है। उनको व्यवस्थित करना, आयोजित करना चाहता है तथा उनसे किसी प्रकार के निष्कर्ष निकालना चाहता है। मन उस व्यवस्था में भावनाओं की उष्णता जोड़ देता है। मन एवं मस्तिष्क अपेक्षा की रचना करते हैं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, एक विचारशील प्राणी है। उसकी न केवल एक अभिरुचि अथवा एक वृत्ति होती है परन्तु सहकारी मनुष्य जीवियों, पशुओं, पक्षियों, पेड़ों के साथ रहने की, उनके साथ सहभागिता की एक माँग रहती है। जीवन की यह सहभागिता मानसिक स्वाथ्य के लिये अनिवार्य है। पारस्परिक क्रिया सहभागिता का मार्ग बनाती है। इसलिये मन एवं मस्तिष्क अपनी अपेक्षाओं से, अपनी क्रिया विधि से सदाचार की, नैतिकता की रचना करते हैं।

शरीर के स्तर पर एक नैतिकता-रिक्त आयाम होता है। जो अनैतिकता का आयाम नहीं है। कृपया मेरे साथ इन दो में अन्तर देखने का प्रयास करें। जब कुछ गलत करने की क्षमता रहती है, तभी तो सही कर्म करने की, सीखने की आवश्यकता पड़ती है। वह मस्तिष्कीय स्तर ही है जहाँ किसी की हानि करने, मारने, चोरी करने, झूठ बोलने की संभावना रहती है। इसलिये जीवन में मानसिक स्तर पर नैतिक नियम, नैतिक विज्ञान बनाये जाते हैं। मनुष्य के पास ये सब होते हैं, पशुओं के पास ये नैतिक पहलू नहीं होते। उनको इसकी आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि उनके पास इस विषय पर विचार करने के लिये मन नहीं होता। वह मनुष्य जीव ही है जिसने युद्धों, हथियारों, गोला-बारूदों इत्यादि में से तंत्रज्ञान के सहारे उद्यौगीकरण की रचना की है। अब हम इसका परिणाम भोग रहे हैं। अब विनाश के उपकरण न केवल राज्य के हाथों में हैं परन्तु किसी के भी हाथों में दिये जाते हैं और वे उनका उपयोग कर सकते हैं।

अब है दूसरा स्तर। पहला संभवत: निम्नतर स्तर था और यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उच्चतर स्तर है, जहाँ आप चयन कर सकते हैं। मनुष्य जब सदाचार संबन्धित स्तर पर पहुँच जाता है, जब वह मन का, विचार, मनन, विवेक, विश्लेषण, व्याख्या का उपयोग करने लग जाता है, केवल तब नैतिक मूल्यों का निरूपण होता है। नैतिकता के बिना मनुष्य जीवन क्या है ? मनुष्य केवल रोटी पर ही जीवित नहीं रहता। उसे रोटी चाहिये, वह एक आवश्यकता है परन्तु भौतिक आवश्यकताओं की तुष्टि के संतोष का अनुभव भी तभी होता है, जब उसमें नैतिक पहलू हो। इसलिये हमारे पास जो हो हमें वह बाँटना अच्छा लगता है। हमें किसी की हानि किये बिना जीना अच्छा लगता है। मनुष्य जीवन अनावश्यक भय से, लालच से, झूठ बोलना पसंद नहीं करता। कोई व्यक्ति झूठ बोलने में, धोखा देने में, मारने इत्यादि विकृतियों में बिना कारण नहीं जाता, जब तक कि वह किसी मानसिक रोग से, विकृति से पीड़ित न हो। मैं कहने का प्रयास कर रही थी कि यह मानसिक स्तर है, मन एवं बुद्धि का स्तर है। मनुष्य चेतना आज इस स्तर पर स्थित है।

प्रेय वह है जो भौतिक स्तर पर सुख देता है। प्रेय वह है जो मानसिक स्तर पर सुख देता है। प्रेय अर्थात् सुखदायक; वह भौतिक एवं मानसिक दोनों स्तरों पर लागू होता है। जब आप कोई अच्छा ग्रन्थ पढ़ते हैं, अच्छा साहित्य पढ़ते हैं, भले वह कविता हो अथवा उपन्यास या फिर निबन्ध, दर्शनशास्त्र इत्यादि हो, उससे मस्तिष्क को एक प्रकार का सुख मिलता है। जब उसे शुद्ध विचार, शुद्ध भावना, सुन्दर काव्यात्मक रचना, सुन्दर संगीत मिलता है, तब वहाँ एक संवेदनशील सुख रहता है। *कृपया प्रेय शब्द का अर्थ बुरे से मत लगाईये। यदि आप प्रेय का, वह जो आपको सुख देता है, उसका स्व-केन्द्रित ढंग से स्वार्थ के लिये उपयोग करते हैं तो वह अन्धकार के मार्ग की ओर जाता है।* यदि आपकी अभिरुचि प्रबुद्ध है, यदि आप समाज के हित का विचार करते हैं, तब प्रेय का बुरा होना अनिवार्य नहीं है, वह अच्छा भी हो सकता है। यह स्पष्टीकरण अति आवश्यक है, क्योंकि भौतिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुख, विशेषत: काम-सुख तथा यौन संबन्धों की धर्म संघों ने निंदा की है। उपनिषद् एवं वेद यह निंदा नहीं करते। सुख की निंदा नहीं करनी है, सुख का निषेध नहीं करना है। अच्छे साहित्य, अच्छे विचार, अच्छी संगत, अच्छे संगीत, अच्छे भोजन, अच्छे घरों की आवश्यकता का अस्वीकार अथवा तिरस्कार नहीं करना होता है।

यदि मनुष्य केवल शरीर नहीं है, तो वह केवल शरीर एवं मन भी नहीं है। मनुष्य प्राणियों का एक अन्य आयाम जान पड़ता है। जहाँ प्रेम के लिये उत्कंठा, मानसिकता के पार प्रेम, करुणा, मैत्री, शान्ति की आंतरिक आवश्यकता होती है। ये समस्त आवश्यकतायें भौतिक आवश्यकतायें नहीं हैं, न ही ये मानसिक अपेक्षायें हैं। ये हमारे सत्त्व के किसी अन्य आयाम की आवश्यकतायें जान पड़ती हैं। मनुष्य एक बहुआयामी प्राणी है। *श्रेय शब्द उस मार्ग की ओर संकेत करता है, जहाँ मानसिकता के पार की आवश्यकताओं की तृप्ति होती है।*

आपको गहराई में ले जाने के लिये मैं क्षमा याचना करती हूँ, परन्तु यह शब्द अति महत्त्वपूर्ण हैं। यहाँ अच्छे एवं बुरे का कोई विभाजन नहीं है परन्तु हैं निम्नतर सुख, उच्चतर सुख, एवं उच्चतम सुख। उपनिषद् का कहना है कि मनुष्य जीवन में दो मार्ग हैं, जो एक दूसरे में घुले-मिले हैं। क्योंकि आप मन को शरीर से अलग नहीं कर सकते; आप अधिमानसिक आयाम को मन तथा शरीर से अलग नहीं कर सकते। मनुष्य जीव एक सम्मिश्रित पूर्णता है, एक समांगी पूर्णता है, जिसमें इन तीनों का एक साथ अस्तित्व है। यह संभव है कि प्रत्येक आयाम में तीनों का सहास्तित्व हो।

श्रेय एवं प्रेय के बन्धन

यदि मैं उपनिषद् के श्रेय तथा प्रेय शब्दों के अर्थ स्पष्ट करने में सफल हुई हूँ, तो चलिये आगे बढ़ें। *अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुष सिनीत:।* यह एक बहुत स्तब्ध कर देने वाला कथन है। सिनीत: शब्द का अर्थ है बाँधना, एक बन्धन बाँधना। जब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आप किसी वस्तु के चारों ओर ज़ंजीर डालते हैं, आप किसी वस्तु अथवा व्यक्ति को बाँधते हैं, तब सिनीतः शब्द का प्रयोग किया जाता है। अब इस स्तब्ध करने वाले कथन को देखिये। *उपनिषद् कहता है प्रेय एवं श्रेय, दोनों मनुष्य जीवन में बंधन बनाते हैं।* श्रेय प्रेरणा है स्वतंत्रता के लिये, प्रेरणा है प्रेम की, प्रेरणा है मुक्ति, मोक्ष इत्यादि की। ऋषि कहते हैं जिस प्रकार प्रेय बाँधता है तथा बंधन बनाता है, श्रेय का अनुसरण, जिसे आप अध्यात्म कहते हैं उसका अनुसरण यदि मन एवं शरीर की कीमत पर किया जाता है, तो वह भी बंधन बनाता है। यदि शरीर एवं मन के निम्न सुखों का अनुसरण अन्य की कीमत पर किया जाता है, यदि भौतिक सुखों का अनुसरण नैतिक की कीमत पर तथा प्रबुद्ध हित का अनुसरण अध्यात्म की कीमत पर किया जाता है, तब वह बंधन बनाते हैं।

आधुनिक संसार को वास्तव में यह स्वीकार नहीं होता। भाष्यकार आपस में संघर्ष करते आये हैं, वे प्रमाण देते आये हैं कि श्रेय, वह परम आध्यात्मिक मुक्ति अथवा मोक्ष बंधन नहीं बना सकता।*

यह स्तब्ध करने वाला कथन है कियदि प्रेय, वह सुखदायक, वह सुख का मार्ग बंधन बनाता है, तो प्रकाश का मार्ग, मुक्ति का, मोक्ष का मार्ग भी बाँधता है। कब बाँधता है वह ? जब एक उद्देश्य, एक ध्येय समान उसका अनुसरण किया जाता है। यदि आप अपने लिये आध्यात्मिक मार्ग का अनुसरण करने की बाध्यता बना लेते हैं, तब वह हानिकारक हो जाता है। यदि आप कहते हैं कि मैंने वेद, उपनिषद्, धम्मपद्, बाईबिल, दर्शनशास्त्र इत्यादि पढ़े हैं अतः मुझे अध्यात्म के मार्ग का अनुसरण अवश्य ही करना है, तब बाध्यता होती है। बाध्य खान, बाध्य निद्रा, बाध्य यौन-संबन्ध के समान, यदि आप अपने मन तथा विचार की सहायता से, युक्ति से, जोड़-तोड़ से एक बाध्यता बनाते हैं और फिर उस मार्ग का अनुसरण

---

* *ऐसे भाष्यकारों में हैं- शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निंबार्काचार्य, वल्लभाचार्य तथा अभारतीय भाष्यकार।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करने का प्रयास करते हैं, तब वह प्रकाश का मार्ग अन्धकार का मार्ग बन जाता है। उपनिषद् हमें यह संदेश देना चाहता है कि अध्यात्म की प्रेरणा, मोक्ष की प्रेरणा, मुक्ति के लिये प्रेम भौतिक एवं मानसिक के तिरस्कार पर आधारित नहीं होना चाहिये। वह संबन्धों के, सामाजिक जीवन के तिरस्कार पर आधारित नहीं होना चाहिये।

उपनिषदों के अनुसार आध्यात्मिक पथ वह सहज स्वाधीन प्रेरणा है, जो अनन्य तदात्मीकरण की माँग नहीं करती। कृपया ध्यान दीजिये कि तदात्मीकरण शब्द का प्रयोग किया गया है न कि समर्पण का; समर्पण करना तदात्मीकरण से भिन्न है। क्यों कह रही हूँ मैं यह ? क्योंकि इन उपनिषदों से हिन्दुओं ने संन्यास का, त्याग का, जीवन से मुँह मोड़ने का मार्ग बनाया है। वे कहते हैं नारी एक पाप है, यौन-संबन्ध पाप है, संपूर्ण संसार एक बंधन है। इनका अस्वीकार कीजिये तब आपको 'वह' मिलेगा। अन्य का तिरस्कार कर उन्होंने एक मानसिक बाध्यता बनायी है।

उपनिषद् कहते हैं किसी विषय का तिरस्कार अथवा परित्याग नहीं करना है। आपको देखना है कि वह निम्नतर है, फिर है उच्चतर और उससे भी ऊपर उठने की संभावना तथा समर्थता होती है। यह उत्थान का मार्ग है। सुख का अनुभव के स्तर पर फैलाव होता है, वह समतल विस्तार होता है। जब आप नैतिकता में सुदृढ़ रहते हैं, तब अच्छाई केवल अच्छाई के लिये होती है, वह प्रभुत्व, सुख अथवा धन संपत्ति पाने के लिये नहीं होती। सत्य अथवा नैतिकता, शुद्धता एवं सत्यनिष्ठा को अपने आपमें अच्छा माना जाता है न कि किसी अन्य के साधन के रूप में। तब उस आधार से, सदाचार अथवा नैतिकता में सुदृढ़ होने से अधिमानसिकता के, अधिनैतिकता के आयाम की ओर उठना होता है।

नैतिक रूप से एक अच्छे नागरिक तथा एक आध्यात्मिक जिज्ञासु, एक आध्यात्मिक व्यक्ति के जीवन में अंतर देखिये। आप चाहे संपूर्ण देश का, संपूर्ण संसार का भला करें, आप चाहे अपना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन समाज सेवा, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक शिक्षा में लगा दें, वह प्रबुद्ध आत्म-हित होता है, वह सामाजिक हित होता है। आप नैतिक रूप से एक अच्छे इन्सान हो सकते हैं, उसका अर्थ यह नहीं कि उस अच्छाई का आध्यात्मिक जिज्ञासा अथवा खोज के स्तर पर महत्त्व होगा। इसलिये मैंने कहा था कि आधुनिक भारतीयों के लिये भी यह स्तब्ध करने वाला कथन है, फिर अ-भारतीयों का तो क्या। देखिये, उपनिषद् अध्यात्म को नैतिकता के आधार से उठता देखते हैं परन्तु भौतिक अथवा नैतिक के विरुद्ध नहीं; कोई विभाजन नहीं हैं। यह देखना बहुत महत्त्वपूर्ण है। *मानसिक एवं भौतिक की कीमत पर, उनके तिरस्कार के आधार पर आध्यात्मिक साधना नहीं होती।* आप आश्रम में रहें अथवा संन्यास लें, मानसिक या भौतिक के तिरस्कार के आधार पर आध्यात्मिक उन्नयन संभव नहीं है। आध्यात्मिकता तो आंतरिक गुण है। इसके विषय में हम बाद में चर्चा करेगें। मुझे द्वितीय श्लोक की ओर बढ़ने दीजिये।

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद्वृणीते॥

यह बहुत महत्त्वपूर्ण श्लोक है, यह उसकी नींव रखेगा, जिसका हम बाद में श्रवण करने जा रहे हैं। नचिकेता ने मृत्यु के, मरण के, व्यक्तिगत अहम् के, व्यक्तित्व के सतत रहने इत्यादि के विषय में पूछा था। यमराज ने प्रश्नों एवं उत्तरों को एक भिन्न मोड़ दे दिया है। वे उसकी नींव डाल रहे हैं जो उन्होंने मृत्यु के विज्ञान, जीवन के विज्ञान, पुनर्जन्म के विज्ञान अथवा देहान्तर इत्यादि के विषय में कहना है। यह कोई असावधानता से श्रवण करने का विषय नहीं है।

मनन-चिंतन द्वारा श्रेय एवं प्रेय के पथ का चयन

यमराज ने अब नींव डालनी आरम्भ की है। वे कहते हैं, श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ। 'एतः' एक सुन्दर क्रियावाचक शब्द है। श्रेय एवं प्रेय मनुष्य जाति को घेरे रहते हैं, वे मनुष्यों को अन्दर एवं बाहर से घेरे रहते हैं। आप इन दोनों में किसी से भी बच नहीं सकते। आप इसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नियति कह सकते हैं कि मनुष्य जीवन में ये दोनों सम्मिश्रित रहते हैं। भौतिक जीवन सुखों की माँग करता है तथा मन एवं मस्तिष्क सदाचार एवं नैतिकता की माँग करते हैं। अधिमानसिकता का आयाम शान्ति, आनंद, स्वतंत्रता एवं मुक्ति की माँग करता है। ये समस्त मिश्रित रहते हैं। यमराज कहते हैं, यह मनुष्य शरीर में जन्म लेने का सौन्दर्य है। शंकराचार्य, वेदान्त एवं अद्वैत के प्रवक्ता ने 'एत:' शब्द की विस्तार में व्याख्या दी है। अभितस् अर्थात् घिरे रहना। हम कैसे बाहर से इन के द्वारा घिरे रहते हैं, हम कैसे अन्दर से इन के द्वारा घिरे रहते हैं, हम इन समस्त व्याख्याओं में नहीं जा सकते। मैं केवल इस विषय को स्पष्ट करने की चेष्टा कर रही हूँ, केवल उतने विस्तार में जा रही हूँ, जो योग विद्यार्थियों के लिये आवश्यक है।

श्रेय एवं प्रेय मनुष्य जीवन में मिश्रित हैं। वे मिश्रित हैं, चाहे आप सुखद को अच्छे से और अच्छे को सुखद से अलग करने का प्रयास करें, वे अलग- नहीं हो सकते। तब्र क्या किया जाये ? उपनिषद् एक ढंग, एक विधि देते हैं- तौ सम्परीत्य विविनक्ति। 'सम्परीत्य' का अर्थ है, चारों ओर से चिंतन-मनन कर लेना। आप सुख का, सुखदायक के समस्त पहलुओं का चारों ओर से निरीक्षण कर लें, आप श्रेय का भी चारों ओर से निरीक्षण कर लें। देख लीजिये अच्छाई के स्रोत को, अच्छाई के सार को। देख लीजिये क्या अच्छाई का कारण है, क्या सुख को हमारे लिये सुखद बनाता है। सम्परीत्य एक सुन्दर शब्द है, जिसका उपसर्ग 'सं' है। अपरीत्य अर्थात् निरीक्षण करना, अनुसंधान करना, चारों ओर से देखना; जिसे संस्कृत भाषा में प्रदक्षिणा कहते हैं। विविनक्ति का अर्थ है विभेदन करना, अलग-अलग करना, विश्लेषण करना। भारतवर्ष में एक दंत-कथा है आप चाहें तो उसे अन्योक्ति कहिये। कहा जाता है, कैलाश तथा मानस में हंस रहते हैं, यदि उनके समक्ष दूध रखा जाये तो वह दूध को पानी से अलग कर सकते हैं। वह दूध के अंश का ग्रहण कर लेते हैं और पानी को एक तरफ कर देते हैं। इस प्रकार विविनक्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का अर्थ है अलग्-अलग करना, मन द्वारा सुख को श्रेय से अलग करना।

आध्यात्मिक अन्वेषण में धैर्य

'धीरः' वह है, जिसकेपास धैर्य है। आध्यात्मिक अन्वेषण का शत्रु है अधीरता। धीरता कालातीत होती है, अधीरता काल सीमित होती है। अधिकतर तात्कालिक परिणाम पाने की वृत्ति और व्यग्रता रहती है; मानो खाने का ग्रास ले उसे खाया, चबाया और फिर भूख का अनुभव नहीं रहा। मानसिक स्तर पर, तात्कालिक परिणाम, काल परिबद्ध, देश परिबद्ध परिणाम नहीं होते। मस्तिष्क की सहायता से कुछ ज्ञान प्राप्त करने पर उसे पचा पाना, उस समझ का अनुभव कर पाना समय लेता है। नैतिक जीवन धैर्य की अपेक्षा करता है, आध्यात्मिक स्तर पर तो कहीं अधिक धैर्य की अपेक्षा होती है। धीरः एक सुन्दर शब्द है। अंग्रेज़ी भाषा में अधिकतर भाष्यकारों ने इसे साहस शब्द में अनूदित किया है। जहाँ तक मैं देख पाती हूँ, धीरः, धैर्य, धृति का आशय साहस नहीं होता।*

प्रेम समान धैर्य समय नहीं जानता, वह समय को नहीं मानता। वह मोह है जो अधीर होता है। आसक्ति एकदम अधीर होती है परन्तु प्रेम का दूसरा नाम कालातीत धैर्य है। उपनिषद् कहता है, जो धीर है, जिसके पास अवर्णनीय धैर्य है, वह जाँच एवं निरीक्षण कर, चहुँ ओर से चिंतन-मनन कर सुखकर एवं उपयुक्त को अलग-अलग कर लेता है। एक धीर व्यक्ति, विभेदीकरण के उच्च एवं सूक्ष्म गुण वाला व्यक्ति उन्हें यथास्थान रखता है। उन्हें जीवन में उचित स्थान, उचित

---

* *मैं आपके साथ उपनिषदों की अपनी समझ बाँट रही हूँ। मैंने उपनिषदों का अध्ययन विश्वविद्यालय में अपनी एम.ए की डिग्री के लिये किया था। उनका अध्ययन भारत के विख्यात विद्वानों के साथ किया था, जैसे सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, जो भारतवर्ष के राष्ट्रपति रहे थे। मैंने भारतीय दर्शनशास्त्र का अध्ययन कुछ महीनों तक उनके साथ, उनके घर में रह कर किया था। इसलिये मैं आपके साथ एक अपारम्परिक दृष्टिकोण बाँट रही हूँ। यदि मुझे यहाँ, भारत में, केवल हिन्दुओं के साथ उपनिषद् की चर्चा करनी होती, तब व्याख्या वही रहती परन्तु उसका ढंग भिन्न रहता। मैं उनको दिखाने की चेष्टा करती, कैसे हिन्दु संप्रदाय ने वेदों के शब्दों पर व्याख्याओं का आरोपण किया है। उनको भ्रष्ट किया है। परन्तु यहाँ, मैं आपके साथ इन प्राचीन ग्रन्थों के वैश्विक सार का प्रज्ञान, जीवन का आत्मिक मूलतत्त्व बाँट रही हूँ।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महत्त्व देता है। तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः। फिर क्या होता है ? वह धीर व्यक्ति, असीम धैर्यवान व्यक्ति, वह जिसके पास कालातीत, कालमुक्त धैर्य है, वह धैर्य का, आध्यात्मिक प्रेरणा का चयन करता है। वह चयन करता है पूर्ण मुक्ति की प्रेरणा का। किससे मुक्ति ? उन इन्द्रियों से, जो सुखों को चिपकती हैं, इन्द्रियाँ एवं मन कहते हैं, हमें सुख के लिये स्वतंत्रता अवश्य चाहिये, अध्यात्म कहता है इन्द्रियों की माँग की पकड़ से मुक्ति चाहिये। कृपया देखिये।

एक धीर, एक धैर्यशील व्यक्ति उच्चतम का चयन करता है। वह कहता है, हाँ, मैं निम्नतर के साथ, भौतिक के साथ जीऊँगा। मैं उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करूँगा, परन्तु वहाँ अनुसरण करने को कुछ नहीं है। मैं मस्तिष्क की आवश्यकता की संतुष्टि करूँगा, मस्तिष्क को उचित विचार, उचित भावनायें इत्यादि दूँगा परन्तु मुझे उनके पीछे दौड़ना नहीं है। आप जानते ही हैं लोग ज्ञान के व्यसनी हो जाते हैं, जैसे कुछ लोगों को सुखों का व्यसन हो जाता है। अपने परिचित लोगों में, विद्वानों में ऐसे लोग हैं जिन्हें देर रात तक पढ़े बिना नींद नहीं आती। एक शामक के समान, उनके पास कोई पुस्तक होनी चाहिए अन्यथा वे सो नहीं सकते। उन्हें एक घंटा, दो घंटे पढ़ना ही होता है, उन्हें एक पारस्परिक क्रिया की आवश्यकता रहती है। अपने तथा दूसरे किसी के मस्तिष्क के बीच वे एक पारस्परिक क्रिया चाहते हैं। कुछ ऐसे हैं, जब तक वे दूसरों का कुछ भला नहीं कर लेते वे सो नहीं सकते।

हमारे प्रिय कृष्णमूर्ति कहा करते थे, भला करने वाले व्यक्ति दूसरों का भला किये बिना जी नहीं सकते। उन्हें इसका व्यसन रहता है। दूसरों का भला करना, दूसरों की सेवा करना अच्छी बात है परन्तु यदि आपको इसका व्यसन हो जाये तो ? मेरे मित्र जन हैं, जो समाज कार्यकर्ता हैं, जो एक स्थान में तीन दिन से अधिक रह नहीं सकते, उनके लिये घूमते रहना अनिवार्य है। उन्हें दूसरों को मुक्ति की ओर भेजने की बहुत चिंता रहती है। आपने देखा, आपको उसका व्यसन हो जाता है। प्रबुद्ध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आत्म-हित, समाज सेवा, समाज की भलाई भी बंधन बन सकती है।

एक धैर्यशील व्यक्ति उस मार्ग का चयन करता है, जो उसे भौतिक सुखों एवं मानसिक सुखों के व्यसन से मुक्त करेगा। यह सुख की तलाश से मुक्ति है। मनुष्य संवेदनाओं का व्यापारी है, उसे संवेदनायें, उत्तेजनायें चाहिए होती हैं। शान्ति उत्तेजनाओं को उकसाने का मार्ग नहीं है। मानसिक, बौद्धिक उत्तेजनायें, व्यक्तित्वों, दर्शनशास्त्रों, ग्रन्थों इत्यादि की उत्तेजनायें चाहे कितनी ही भली क्यों न हों, वे मुक्ति एवं शान्ति का पथ नहीं होतीं। 'श्रेयो हि धीरः'; एक धैर्यवान व्यक्ति विवेक का उपयोग करता है, वह प्रेम, शान्ति, एवं मुक्ति के मार्ग का, मोक्ष के मार्ग का चयन करता है। अन्य जनों के साथ रहते हुये वह श्रेय का अनुसरण करता है। कृपया ध्यान दीजिये, वह भौतिक एवं मानसिक स्तर पर तिरस्कार, वंचना, नियंत्रण, दमन इत्यादि किये बिना जीता है।

क्या अब आप उस संयम शक्ति की आवश्यकता समझ सकते हैं ? जैसे वैश्विक जीवन में संयम के मूलतत्त्व हैं, जो जन्म के विकसित होने के, क्षय एवं मृत्यु के कारण हैं, उसी प्रकार विभेद करने वाले तथा धैर्य रखने वाले व्यक्ति के पास उस संयम की आंतरिक शक्ति रहती है। कोई अनुशासन, कोई व्यवहार के नियमों का रोपण नहीं करना पड़ता। कुछ भी आंतरिक बाध्यता के कारण नहीं किया जाता। यदि आपको कुछ करने के लिये अन्दर अथवा बाहर से बाध्य किये जाने की आवश्यकता होती है, तो उसमें कोई स्वतंत्रता नहीं होती। *मुक्ति का मार्ग गुलामी से आरम्भ नहीं होता। शान्ति एवं मुक्ति की यात्रा गुलामी, व्यसन, आसक्ति इत्यादि को स्वीकार करने से आरम्भ नहीं होती।* इसलिये एक धीर व्यक्ति, श्रेय के मार्ग का, प्रकाश एवं मुक्ति के मार्ग का चयन करता है।

मन्दः शब्द का अर्थ है, वे जिन्हें मानसिक भ्रम रहता है, जो मूढ़ बुद्धि के होते हैं। एक मूढ़ बुद्धिवाला व्यक्ति चयन नहीं कर सकता। वह भौतिक एवं मानसिक सुखों से, उनके द्वारा सुरक्षा एवं बने रहने के भ्रम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वारा उत्तेजित हो आकर्षित होता है। फिर कभी उच्चतम के विषय में सुनने पर, उसके विषय में पढ़ने पर, वह उसके प्रति आकर्षित होता है, परन्तु उसकी अभिरुचि रहती है भौतिक एवं मानसिक के लिये। इस प्रकार मंदः वह है जो संभ्रमित हो जाता है। वह दोनों के बीच डोलता है और इस डोलने के लिये क्या बहाना देता है ? 'योगक्षेमाद् वृणीते;' मैंने प्रेय का चयन किया है, क्योंकि अपनी तथा समाज की देख-रेख मेरा कर्तव्य है, मेरा उत्तरदायित्व है। वह यह भी कहता है कि समाज में वस्तुओं का उपार्जन, सामाजिक स्तर के अनुसार करना पड़ता है। 'योगक्षेम', यह द्विवचनीय शब्द भी मन्त्रमुग्ध करने वाला है। योग का अर्थ है उसे प्राप्त करना जो आपके पास नहीं है तथा क्षेम का अर्थ है आपने जो प्राप्त किया है उसे सुरक्षित रखना। 'अप्राप्तस्य प्राणं योगः। प्राप्तस्य रक्षणं क्षेमः॥' वह कहता है, आप कहते हैं कि प्राप्त करने के पीछे मत जाओ परन्तु ऐसा करना पड़ता है, वह मेरा कर्तव्य है। फिर मेरा कर्तव्य है कि उसे सुरक्षित रखूँ, निश्चित रखूँ, उसे बचा कर रखूँ। उत्तरदायित्व के नाम से स्वामित्व, अधिकरण, सुरक्षण एवं अर्जन किया जाता है। ऐसे ही सफाई पेश करने का क्रम चलता रहता है।

आध्यात्मिक जीवन ऐसी किसी अपेक्षा का निर्माण नहीं करता। भौतिक आवश्यकतायें बाध्यता निर्माण करती हैं परन्तु प्रेम, शान्ति एवं मुक्ति अन्तर में अनुभव की जाने वाली आवश्यकतायें हैं, वे आग्रही नहीं होतीं। जब शरीर को भूख लगती है, वह माँग करता है। जब मन को अकेलेपन का अनुभव होता है, वह एक माँग का निर्माण करता है। *प्रेम, मुक्ति एवं शान्ति केवल अनुभव किये जाते हैं। वे अन्तरात्मा की आवाज़ें होती हैं, जो हल्के से आपके हृदय में उठती हैं। वे न तो आग्रही हैं न ही वे आक्रमक हैं।* उनकी माँगे आक्रमक, आग्रही अथवा तानाशाह नहीं होतीं।

तीसरे श्लोक में यमराज कहते हैं, 'हे नचिकेता, पाँच वर्ष की कोमल आयु में तुम ने सिद्ध कर दिया है कि तुम असीम धैर्य तथा तीक्ष्ण बुद्धि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाले, विवेकी मनुष्य हो। मैं तुम्हें कितनी संपत्ति, कितनी कीर्ति से, दीर्घ आयु से प्रलोभित कर रहा हूँ। मैं तुम्हें कितनी वस्तुओं का प्रस्ताव देता रहा हूँ। मनुष्य जीवों द्वारा काल्पनिक समस्त सुखों का प्रस्ताव देता रहा हूँ, परन्तु एक क्षण के लिये भी मैं तुम्हें प्रलोभित करने में सफ़ल नहीं हुआ। कितनी सत्यनिष्ठा है तुम्हारे पास ! कैसे विशाल धैर्यशील पुरुष हो तुम ! तुम एक संपूर्ण जिज्ञासु हो, जिसे कुछ भी प्रलोभित नहीं करता। तुम मुझ से जो वरदान माँग रहे हो, उससे तुम ज़रा भी नहीं हटे। तुम मुझ से मृत्यु का, जन्मांतर का रहस्य पूछ रहे हो। मैं कह रहा हूँ वह छोड़ अन्य समस्त ले लो परन्तु तुम इन्कार करते रहे हो। लोग तो भौतिक एवं मानसिक सुखों द्वारा बहा लिये जाते हैं; सुख उनको प्रलोभित कर देता है। जब तक उन्हें स्मरण होता है कि वे पथभ्रष्ट हो गये हैं और वे वापिस लौटते हैं, तब तक मानसिक एवं भौतिक सुखों के अतिभोग में उन्होंने अपनी अधिकतर प्राणाधार शक्ति गवाँ दी होती है।'

आप जानते हैं, सुखों की पुनरावृत्ति संवेदनशीलता को शक्तिहीन कर देती है। वह सजीवता की गहराई, शक्ति की प्रबलता छीन लेती है। शरीर की मृत्यु पश्चात् यदि कुछ शेष रहता है, तो क्या रहता है? क्या कुछ भी, शरीर का कोई भी अंश, कोई भी तत्त्व, भौतिक मृत्यु पश्चात् बना रहता है? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिये, ऐसे मन, शरीर एवं मस्तिष्क की आवश्यकता होती है, जो सतर्क हो, प्रबल हो, शक्ति से भरपूर हो।

अब मैं तृतीय तथा चतुर्थ श्लोक समाप्त कर रही हूँ। ये मात्र गुणगान हैं, जहाँ आचार्य यम अपने शिष्य की प्रशंसा कर रहे हैं। वे कहते हैं, 'मैं तुम्हें नमन करता हूँ, मैं तुम्हारा आदर करता हूँ। मेरी जानकारी में तुम एक अति दुर्लभ व्यक्ति हो। जब भी मैंने यह प्रलोभन दिये हैं, जन साधारण उनके द्वारा बहा लिये गये हैं परन्तु तुम अपनी जिज्ञासा में अडिग रहे हो। ऐसा प्रतीत होता है, मेरे द्वारा ब्रह्मविद्या के प्रकटन के लिये, मृत्यु एवं देहान्तर के रहस्य को प्रकट करने के लिये तुम उचित शिष्य हो।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छठा संवाद

एक उत्तम आचार्य समान, धर्मराज नचिकेता को उसी सत्य की व्याख्या एक भिन्न दृष्टिकोण से देने जा रहे हैं। शिक्षा प्रदान करना आचार्य की सर्जनात्मक सुझाव देने की क्षमता को चुनौती देता है। विभिन्न दृष्टिकोणों से सुझाव देते हुए,आचार्य शिष्य को उसी बिंदु पर ले आते हैं।

विद्या एवं अविद्या

दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता।

विद्याभीप्सिनं नचिकेतसं मन्ये, न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त ॥

अब दो शब्द हैं विद्या एवं अविद्या। आपमें जिन्होंने मेरे साथ ईशावास्य उपनिषद् का अध्ययन किया है और जिन्होंने पातञ्जल योग का अध्ययन किया है, वे विद्या एवं अविद्या शब्दों से भली-भाँति परिचित हैं। यह उपनिषद् इन शब्दों का एक विशेष अर्थ में प्रयोग करता है। चलिये, पहले अभिधार्थ देख लें। दूरम् अेते-दूर ले जाते हैं; विपरीते विषूची-विरुद्ध दिशाओं में; विपरीत अर्थात् विरुद्ध अथवा परस्परविरोधी। अेते अर्थात् ले जाना। यमराज नचिकेता को समझा रहे हैं कि विद्या एवं अविद्या, मनुष्य को पारस्परिक भिन्न दिशाओं में ले जाती हैं। अविद्या शब्द को अधिकतर अज्ञानता के अर्थ में अनूदित किया जाता है; कठोपनिषद् इसे पूर्णतया भिन्न अभिप्राय देता है। उसके अनुसार, स्वंय को छोड़ शेष सबके विषय में जानना एवं जानकारी रखना अविद्या है। जब आप स्वयं को छोड़ जीव विज्ञान, शरीर रचना शास्त्र, रसायन विज्ञान, शिल्प विज्ञान, भू-विज्ञान इत्यादि के विषय में जानते हैं अथवा संसार के प्रत्येक विषय का अध्ययन करते हैं तो वह अविद्या है। इस अर्थ में प्राकृतिक विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, भौतिक रचना इत्यादि के साथ संबन्ध रखने वाले विज्ञान अविद्या हैं। विद्या है ज्ञाता के विषय में ज्ञान। मनोविज्ञान की भाषा में यह अध्ययनकर्ता का अध्ययन है।

आधुनिक विज्ञान विषयों का अध्ययन करते हैं, जिसे वे वस्तुनिष्ठ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथ्य कहते हैं। उन्हें भौतिक तथ्य, मनोवैज्ञानिक तथ्य चाहिये होते हैं परन्तु वे समस्त अध्ययन अध्ययनकर्ता को बाहर रखते हैं; द्रष्टा की प्रकृति को, ज्ञाता को, अनुभवकर्ता को उस अध्ययन से बाहर रखा जाता है। विद्या ज्ञाता का, व्यक्ति का, आत्मा के अध्ययन का विज्ञान है। मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र इत्यादि एक समान अहम् व्यक्तित्व की चर्चा करते हैं। वे विचार जगत के प्रबोधक की बात करते हैं, वे शरीर में समाविष्ट आवेगों की, वृत्तियों की चर्चा करते हैं। विचार संरचना में समाविष्ट प्रतिबन्धनों की चर्चा करते हैं परन्तु वे इससे आगे नहीं जाते। इसलिये इन विज्ञानों का अध्ययन, वस्तुनिष्ठ तथ्य, भौतिक पदार्थ, भौतिक जगत् , मनोवैज्ञानिक तथ्य, ये समस्त एक प्रकार की अविद्या है। यह एक प्रकार का अंधापन है, क्योंकि जब तक आत्मज्ञान तथा आत्मबोध नहीं होता, *जब तक द्रष्टा को, ज्ञाता को अनुसंधान के, खोज के दायरे से बाहर रखा जाता है, वह अध्ययन अधूरा रहता है।* हम तो आत्म अध्ययन के सिवा अन्य समस्त विषयों के अध्ययन में तल्लीन हो जाते हैं। स्व शब्द का उपयोग यहाँ अहम् के अर्थ में नहीं परन्तु आत्मा के अर्थ में है।

यमराज कहते हैं–दूरमेते विपरीते विषूची, अविद्या या च विद्येति ज्ञाता। वे जो विद्या अथवा अविद्या के नाम से विख्यात हैं, वे न केवल आपको विभिन्न दिशाओं में ले जाते हैं, आप जितना उनका अनुसरण करते हैं, उन दिशाओं के बीच की दूरी उतनी ही बढ़ती जाती है। इनमें समानता का तत्त्व क्या है ? जानना ही वह तत्त्व है; परन्तु दिशायें भिन्न होती हैं। एक आपको स्वयं से दूर ले जाती है तो दूसरी अंत:प्रज्ञा पर केन्द्रित हो जाती है। क्या आपको बीसवीं सदी के महान पुरुष महर्षि रमण का स्मरण है ? उनके पास जो कोई भी जाता तथा प्रश्न करता, रमण कहते– 'वह कौन है जो प्रश्न कर रहा है ?' 'पूछिये कौन दु:खी है ?' वे कहते, 'मुझसे मत पूछिये दु:ख क्या है और उसका कैसे अंत किया जाये। पूछिये वह कौन है जो दु:खी होता है ?' 'वह क्या है' ? 'वह कौन है जो प्रश्न कर रहा है'? प्रश्न एवं प्रश्न करने का स्रोत क्या है ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपनिषद् यहाँ विद्या की बात कर रहा है; अध्यात्म विद्या विद्यानाम् । भारतीय संस्कृति कहती है, वास्तविक ज्ञान केवल एक है और वह है आत्मज्ञान; अन्य को पदार्थ विज्ञान कहा जाता है। आत्मविद्या है शक्तियों का विज्ञान, परम् सत्य का विज्ञान, सर्जन के अकारण कारण का, सर्जन के स्रोत, सर्जन के सार का विज्ञान। विद्या एवं अविद्या शब्द अति रुचिकर हैं। इस उपनिषद् द्वारा इनका अनूठा उपयोग किया गया है।

योग के विद्यार्थी उन पाँच प्रकार के दुःखों से परिचित हैं, जिनके विषय में पातञ्जलि कहते हैं- अविद्यास्मिता- राग-द्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः। अपनी प्रकृति के विषय में अज्ञानता अविद्या है, शरीर के साथ भ्रान्त तादात्म्य का कारण अस्मिता है। राग-द्वेष, आकर्षण एवं प्रतिकर्षण भ्रान्त तादात्म्य द्वारा होते हैं। अभिनिवेश का अर्थ है उन आकर्षणों एवं प्रतिकर्षणों द्वारा अभिभूत होना। यह पाँच प्रकार के क्लेश हैं। संबन्धों की गतिविधियों में ये पाँच प्रकार के क्लेश हमें अभिभूत करते हैं तथा योग का विज्ञान कहता है-क्लेश निवृत्तिः कैवल्यम्। *संबन्धों की गतिविधि में जब आप पाँच में से किसी भी क्लेश के बिना दूसरों के साथ संबन्धित हो सकते हैं, अपने शरीर से, संसार से ऐसे संबन्धित हो सकते हैं, तब वह नृिवत्ति है, वह निर्वाण है, वह मोक्ष है, वह कैवल्यम् है।*

कठोपनिषद् कहता है, विद्या एवं अविद्या दो भिन्न दिशायें हैं। कोई कितना ही जानकार व्यक्ति क्यों न हो, विद्वान क्यों न हो, उसकी विज्ञान में निपुणता एवं पांडित्य क्यों न हो, यदि वह अपनी प्रकृति के विषय में अज्ञानी है तो वह अज्ञानता भ्रष्ट करती है। ज्ञाता एवं कर्ता के प्रति अविद्या समस्त दुःखों के जन्म का कारण है, क्योंकि वह शरीर के साथ तादात्म्य की ओर ले जाती है। वह भौतिक एवं मानसिक स्रुखों के साथ तादात्म्य की भ्रान्ति की ओर ले जाती है, चाहे वह व्यक्तिगत स्तर पर हो अथवा सामूहिक स्तर पर हो। लोक-हितकारी राज्यों में राज्य समस्त नागरिकों के लिए लगभग सामान्य सुख के साधनों का प्रबन्ध कर देता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। बेरोज़गार भत्ते से लेकर समस्त सामाजिक असुरक्षिताओं को दूर करने की व्यवस्था की जाती है। वह आश्वासन, वह सुरक्षिततता अथवा वह प्रबन्ध मनुष्य मन को भ्रष्ट करता है। उसे प्राप्तकर्ता होने का, सब कुछ दिये जाने का व्यसन हो जाता है। वह जीवन की असुरक्षितता के भान का सामना नहीं कर सकता। वह जीवन में आने वाले क्षण के अज्ञात होने के, अनिश्चितता के भान के साथ जीना नहीं सीख सकता। यदि प्रत्येक पल नहीं तो लगभग प्रत्येक घंटा जीवन आपको एक नई चुनौती देता है। यदि आप भारतवर्ष में रहते हैं, तो लगभग प्रत्येक क्षण एक चुनौती आती है। परन्तु लोक-हितकारी राज्यों अथवा कल्याणवाद के संप्रदाय में समस्त प्रबन्धित किया जाता है, आपको एक निष्क्रिय उपभोक्ता में परिवर्तित कर दिया जाता है। उपभोगी होने की संस्कृति व्यक्ति की शक्ति को उसकी मानसिक, मस्तिष्कीय शक्ति को निर्बल करती है। यह हमारा विषय नहीं है, हमें तो केवल कहना था कि व्यक्तिगत अथवा सामूहिक स्तर पर अविद्या में विशिष्टतायें उन्नति एवं समृद्धि का आभास उत्पन्न करती हैं। वास्तव में वह एक आंतरिक, आत्मिक दरिद्रता होती है, क्योंकि द्रष्टा की, ज्ञाता की, कर्ता की अवज्ञा की जाती है। देखने वाले की प्रकृति की कोई जाँच नहीं करता। जानने की प्रक्रिया का विज्ञान क्या है, भावनाओं का रसायन क्या है, उनमें कोई नहीं जाता।

यह प्रभु कृपा है, वैज्ञानिकों ने अब समझ लिया है कि द्रष्टा के चित्त की दशा का प्रभाव दृश्य वस्तु की प्रकृति पर पड़ता है। उन्होंने इन विषयों पर लिखना आरम्भ कर दिया है। यह विशेषकर उन्नत प्रौद्योगिकी तथा अधिक से अधिक संवेदनशील यंत्रों के कारण हुआ है। यदि मन अशान्त हो और आप एक इलेक्ट्रॉनिक गैजिट को हाथ में पकड़ें तो उस पर प्रभाव पड़ता है। जिसका आप निरीक्षण कर रहे हों उसकी प्रकृति पर भी प्रभाव पड़ता है, इसलिये वैज्ञानिकों को अनुभव हो गया है कि वे द्रष्टा की उपेक्षा नहीं कर सकते। भौतिक विज्ञान अथवा रसायन विज्ञान इत्यादि के अध्ययन में अध्ययनकर्ता का अध्ययन सम्मिलित करना अनिवार्य है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिन्हें विद्या एवं अविद्या कहा जाता है, वे भिन्न-भिन्न दिशाओं में ले जाती हैं। अविद्या आपको सुख का बंदी रखती है, विशेषकर यदि आप विद्वान हैं, कवि हैं, संगीतकार, कलाकार, मूर्तिकार इत्यादि हैं ;तब आपको केवल धन की प्राप्ति नहीं होती, आपको मिलती है प्रसिद्धि, आपको मिलता है सम्मान। वह आपको भौतिक रूप से, मानसिक रूप से, सुख संरचना का बंदी बना देता है। वह एक प्रकार का दूषित करने वाला प्रभाव है। केवल सत्ताधिकार ही नहीं दूषित करता, सुखों का परिष्कार, सुखों का अनुसरण भी चेतना को दूषित कर सकता है।

यमराज कहते हैं, 'मेरे प्रिय बालक अविद्या में तुम्हारी अभिरुचि नहीं है। मैंनें तुम्हें इतनी वस्तुओं का प्रस्ताव दिया है, मैं तुम्हें दीर्घायु का रहस्य बताने को तैयार था, तुम्हें इच्छानुसार दीर्घायु जीने की क्षमता का वचन दे रहा था। यम ने कहा था, नचिकेता, तुम्हारे पुत्रों तथा प्रपौत्रों के सौ वर्ष की आयु होने पर भी, तुम उन्हें देखने के लिये जीवित रहोगे।' उन्होंने धन-संपत्ति, दीर्घायु तथा समस्त ज्ञान का वचन दिया था परन्तु नचिकेता ने वह समस्त अस्वीकार कर दिया था। इसलिये वे कहते हैं, 'इस नन्हीं सत्ता में कैसा विवेक है, इसमें प्रेय के स्थान पर श्रेय का चयन करने का, अविद्या के स्थान पर विद्या का अनुसरण करने का धैर्य है।' आचार्य उस बालक की श्रेष्ठता स्वीकार कर रहे हैं। यमराज की जीवन कथा में कहा जाता है कि वे इन समस्त प्रतिक्रियाओं, यज्ञों, सुख के अर्जनों में से गुज़रे थे। आगे चल कर नचिकेता को वे बतायेंगे, इन सब के अंत में उन्होंने व्यर्थता का, पुनरावृत्ति का, सुख एवं दुःख की बीभत्स आवृत्तीय प्रकृति का अनुभव कर मुँह मोड़ लिया था। वे कहते हैं, 'नचिकेता, तुम ने तो पाँच वर्ष की छोटी आयु में इन सबकी व्यर्थता का अनुभव कर लिया है; कैसा तीक्ष्ण विवेक है तुम्हारा।' वे आनंद व्यक्त कर रहे हैं कि नचिकेता ने विद्या के मार्ग, श्रेय के मार्ग, प्रकाश के मार्ग, आत्मज्ञान के मार्ग का चयन किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अविद्या का दंभ

अविद्यायामन्तरे वर्तमानः स्वयं धीरः पण्डितं मन्यमानाः ।
यमराज कहते हैं, मैं उनसे मिला हूँ जो अविद्या में तल्लीन हो जाते हैं, जो पदार्थों, शक्तियों, ग्रहों एवं आन्तरग्रहिक संबन्धों एवं अन्य सब शाब्दिक ज्ञान में तल्लीन हो जाते हैं। जो अपनी विद्वत्ता, दर्शनशास्त्र, तत्त्वमीमांसा इत्यादि के ज्ञान पर गर्व करते हैं। 'अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः'; वे अविद्या की गहराई में स्वयं को छोड़ अन्य समस्त की गहराई में तल्लीन हो जाते हैं। संभव है कि वे अपने आपको पण्डित मानते हों, विद्वान मानते हों, उन्हें लगता है मानो उन्होंने कुछ पा लिया है। उन्हें अपने ज्ञान पर अत्यंत गर्व का अनुभव होता है। अपने शाब्दिक ज्ञान में तल्लीन, उससे अभिभूत वे नहीं जानते कि उसमें आध्यात्मिक अन्धापन है।

अविद्या में रहते हुये वे अविद्या से कर्म करते हैं, क्योंकि उनका अहम् अत्यधिक बढ़ जाता है। 'मैं' जानता हूँ, 'मैंने' अनुभव किया है, 'मेरे' ये निष्कर्ष हैं, ये सिद्धान्त हैं। ऐसा कहते हुये वे स्वयं से बहुत आश्वस्त रहते हैं। शाब्दिक ज्ञान, सैद्धान्तिक ज्ञान, शास्त्रीय ज्ञान की उपलब्धि से मानसिकता में एक कड़ापन आ जाता है। ऐसा व्यक्ति ज्ञान के अभिग्रहण में, अनुभवों के अभिग्रहण में चक्कर काटता रहता है, उनका स्मरण करता हुआ, उनकी चर्चा करता हुआ अथवा उनके विषय में लिखता हुआ वह व्यस्त रहता है। हे नचिकेता, 'अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः', जो अविद्या में तल्लीन रहते हैं तथा उससे अभिभूत रहते हैं, वे एक अन्धे इन्सान के समान चक्कर काटते हुये अनुभव करते हैं कि उन्होंने कुछ पा लिया है। क्या हम ऐसा अनुभव नहीं करते ? यदि कहीं आप दूसरों की सहायता करते हैं, दान कर्म करते हैं, उदारता बरतते हैं, लोगों की सेवा करते हैं, तो चेतना का एक अन्य स्वरूप देखने को मिलता है। *समाज कार्यकर्ताओं का दंभ, राज्यों के राज्यकर्ताओं का अभिमान एवं दंभ, धार्मिक पण्डितों तथा आध्यात्मिक आचार्यों का अभिमान एवं दंभ, यह सब क्या हमने देखा नहीं है ?* उपनिषद्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस ओर संकेत कर रहा है।

'पण्डितं मन्यमाना:'। वे स्वंय को पंडित मानते हैं, उनको अपने ऊपर अचूक विश्वास होता है और वे दूसरों का मार्गदर्शन करना चाहते हैं। ऐसे व्यक्ति, जो आध्यात्मिक रूप से अंधे हैं, जब वह अन्य व्यक्तियों अथवा समुदायों का मार्गदर्शन करते हैं तो क्या होता है ? अन्धेनैव नीयमाना यथान्धा:; वह एक अन्धे व्यक्ति द्वारा दूसरे अन्धे व्यक्तियों को राह दिखाने समान होता है। आध्यात्मिक दृष्टि आत्मज्ञान की दृष्टि खोलती है। जैसे हमारी आँखें हैं और उनमें दृष्टि है, उनमें देखने की क्षमता है, वैसे ही हमारी आत्मा में, चेतना में दृष्टि है। हम इसे बोध की संवेदनशीलता कहते हैं, हम इसे प्रज्ञा कहते हैं। प्रज्ञा, चेतना में समाविष्ट दृष्टि है, जिसके लिये किताबी शिक्षा होना अनिवार्य नहीं होता। रामकृष्ण कहाँ किसी विद्यालय अथवा महाविद्यालय में गये थे ? महाऋषि रमण कहाँ गये थे ? स्कूल अथवा कॉलेजों में तो नहीं। उन्होंने पुस्तकें नहीं पढ़ीं थीं, जीवन की पुस्तक ही उनकी शिक्षा करती चली जाती है। यहाँ, ये लोग समाज का मार्गदर्शन करना चाहते हैं, वे लोगों का पथप्रदर्शन करना चाहते हैं। इसीलिये समाज चलता रहता है, लोग शरीर के दु:ख भोगते हुये, मन के दु:ख भोगते हुये चक्कर काटते रहते हैं। उन के दु:खों का कोई अन्त नहीं होता।

अध्यात्म का संबन्ध वेदना के अन्त, मानसिक वेदना के अन्त होने में होता है। मनुष्य जीवन में आनुवंशिक दोषों अथवा कमियों के अनुसार शारीरिक असमर्थतायें भले हों, परन्तु मानसिक दु:ख भोगना तो आधुनिक सभ्यता का अभिशाप है। इस मानसिक दु:ख भोग का अंत करना धर्म का सत्त्व है, अध्यात्म का सत्त्व है। यह उनके द्वारा नहीं होता, जो शैक्षिक, सैद्धान्तिक ज्ञान में तल्लीन बहुत गर्वित हैं अथवा दूसरों का पथप्रदर्शन करने में, मार्गदर्शन करने में उलझे हैं।

यदि विद्या एवं अविद्या शब्द का अर्थ स्पष्ट हो गया हो, तो हम जानेंगे कि वे श्रेय एवं प्रेय के अनुरूप हैं। शारीरिक एवं मानसिक क्षेत्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को हम प्रेय कहते हैं,यहाँ उन सुखों को अविद्या कहा गया हैं; भौतिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक,राजनैतिक इत्यादी उसमें सम्मिलित हैं। इस व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन के विस्तार को समझना चाहिये। यदि यह स्पष्ट हो गया हो तो चलिये आगे बढ़ें।

अविद्या इन्द्रियों के अनुभवों तक सीमित

न साम्परायः प्रतिभाति बालम्। इन शास्त्रों में प्रवीण लोगों, विद्वानों इत्यादि को उपनिषद् बालम् अर्थात् बालक कहता है। वे बालकों समान नासमझ होते हैं, वे बालकों समान अपरिपक्व होते हैं। वे आत्मा, यथार्थता, ब्रह्मविद्या से अज्ञात रहते हैं, वे उनके प्रति अज्ञानी रहते हैं। कठोपनिषद् कहता है ये अपरिपक्व विद्वान, जो शिक्षित अज्ञानता का दुःख भोगते हैं उन्हें एक बात समझ नहीं आती, वे देख नहीं पाते। वे क्या नहीं देख पाते ? वह जो ऐन्द्रिय अंगों, मन एवं बुद्धि की पहुँच से परे है।

श्रेय-प्रेय, विद्या-अविद्या के पश्चात् अब एक सुन्दर शब्द आया है- 'साम्परायः'। 'सम्यक परे ईयते गम्यते इति साम्परायः'। सम्यक् अर्थात् उचित ढंग, परे अर्थात् दृश्य से परे, स्पर्शनीय से परे। परे अर्थात् आपके बाह्य एवं आन्तरिक ऐन्द्रिय अंगों की पहुँच से परे। मूल शब्द ईयते के दो अर्थ हैं, जाना एवं जानना। ये ज्ञानी, ये पंडित नहीं जानते कि वे जो देखते हैं, स्पर्श करते हैं, उसके परे भी कुछ है। उनका संसार, उनका विश्व तथा उनका जगत्, उनका समस्त ज्ञान, पाँच इन्द्रियों द्वारा लाये गये तथ्यों पर आधारित होता है। इसलिये जहाँ इन्द्रियाँ नहीं पहुंच सकतीं, उन्हें लगता है उसका अस्तित्व नहीं है; दृश्य एवं स्पर्शनीय के परे और कोई अस्तित्व नहीं है। आकारों,आकृतियों का जगत् ही यथार्थता है तथा निराकार का कोई आयाम नहीं है। वह स्थूल काया में तल्लीन रहते हैं और फिर मानसिक एवं विचार की कुछ अधिक सूक्ष्म काया में तल्लीन हो जाते हैं। परन्तु विचार भी तो भौतिक ही होते हैं। विचार करने की गतिविधि आपके मस्तिष्क, आपके तंत्रिकीय -रासायनिक संरचना में होती है। इसलिये वह एक भौतिक क्रिया है। जब आप कोई विचार करते हैं तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस सूक्ष्म पदार्थ का आपके शरीर से स्पंदन के रूप में प्रसर्जन होता है।

'न साम्पराय: प्रतिभाति' अर्थात वे जान भी नहीं सकते कि उनके पास वह संवेदनशीलता नहीं है, जो वे अनुभव कर पायें कि इन्द्रियों की पहुँच के परे भी कुछ अस्तित्व है। उपनिषद् कहता है, इन शास्त्री पंडितों, अज्ञानी लोगों में कैसी आत्मिक अपरिपक्वता होती है, वे कितने नासमझ होते हैं। साम्पराय: अर्थात् वह जो इन्द्रियों की पहुँच से परे है, मस्तिष्क एवं मन से भी परे। संस्कृत भाषा, विशेषत: उपनिषदों की संस्कृत अद्‌भुत है। साम्पराय: वह शिक्षा, वह प्रणाली है, जो इन्द्रियों से पार जाने का सामर्थ्य देती है। सरल अंग्रेज़ी में आप इसे 'रिलिजन' कह सकते हैं। 'रिलिजन' एक सुन्दर शब्द है। इसका अर्थ है, वह जो सत्त्व के मूल के साथ आपका पुनर्मिलन कराता है। वह मूल धरती में नहीं है, वह भौतिक में नहीं है, वह चेतना में है, वह ऊर्जाओं में है। यही 'रिलिजन' शब्द का आशय है। यदि हम इस शब्द को संवेदनशीलता से, ध्यान से, सम्मान के साथ स्पर्श करते हैं तो यही आशय होता है। परन्तु इस शब्द का अशुद्ध उपयोग किया गया है। उस का दुरुपयोग किया गया है। उसे निर्दयता से कुचल दिया गया है। हम यहाँ किसी भी भाषा के शब्दों के असल आशय अध्ययन करने के लिये हैं।

न साम्पराय: प्रतिभाति बालम्। यह अपरिपक्व, नासमझ, अज्ञानी लोग नहीं देखते कि इन्द्रियों की पहुँच के परे कुछ है। परन्तु एक मार्ग ऐसा है, जिससे वह सुलभ है। संभवत: इन्द्रियों के लिये ऐसा नहीं है, मन एवं मस्तिष्क के लिये संभवत: नहीं है। *फिर भी एक पथ है, एक पथहीन पथ, एक राह रहित राह है जिससे वह सुलभ है।* इन्द्रियाँ उसे परे कहती हैं, क्योंकि वह ऐन्द्रिय अंगों की मर्यादा है। वह है वहाँ। इन शब्दों से उनका क्या अर्थ है, यह स्पष्ट करने के लिये ऋषि आगे बढ़ते हैं। वे कहते हैं, कुछ नासमझ व्यक्तियों के अनुसार सम्पूर्ण सत्य वह है जो हम इन्द्रियों द्वारा देख सकते हैं। अयं लोक: नास्ति पर:; वे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहते हैं सम्पूर्ण सत्य, एकमात्र सत्य, समग्र सत्य वह है जो हमारे पास ऐन्द्रिय अंगों द्वारा संवेदना के रूप में लाया जाता है। जिस की व्याख्या हमारे मस्तिष्क द्वारा की जा सकती है, केवल वही सत्य है।

इन्द्रियातीत लोक का अस्तित्व

साम्पराय शब्द के समान 'लोक' एक अन्य सांकेतिक शब्द है। अयं लोकः अर्थात् यही एकमात्र लोक है, यही एकमात्र वास्तविकता है। लोकयते इति लोकः। वह जिसका प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है, उसे लोक कहा जाता है। हमें रुक कर, एक दो क्षण 'लोक' शब्द को देने होंगे। दुर्भाग्यवश, इस शब्द को अपनी कल्पना अनुसार अनेकों विकृत ढंगों से अनूदित किया है। गायत्री मंत्र में सप्त लोकों - भू, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्-का, जीवन के सात आयामों का वर्णन दिया गया है। लोग समझते हैं जैसे पृथ्वी एक ग्रह है, संभवतः वहाँ और भी ग्रह हैं। उन के लिये स्वर्ग लोक भी वहाँ, ऊपर कहीं आकाश में है, जहाँ मृत्यु पश्चात् आप अपने सूक्ष्म शरीर में जाते हैं और वहाँ रहते हैं। वहाँ सुख के सभी साधन होते हैं, वहाँ कोई बीमारी नहीं पहुँचती, वहाँ कोई दुःख नहीं पहुँचता। ऐसी कल्पना की जाती है कि एक ठोस ग्रह समान स्वर्गलोक एक स्थान है। इसलिये लोग कहते हैं मृत्यु पश्चात् आत्मा स्वर्ग लोक को जाती है। क्या वहाँ आकाश में स्वर्गलोक है अथवा पृथ्वी के गर्भ में नरकलोक है? स्वर्ग अथवा नरक की एक भिन्न वास्तविकता के रूप में, अस्तित्व के किसी आयाम, कक्ष, ग्रह इत्यादि के रूप में धारणा करने की भूल अत्यंत संगीन, अत्यंत गंभीर परिणामों में परिणत हुयी है।

ऋषि उपरोक्त को सुधारते हैं। पहली पंक्ति में उन्होंने कहा कि ये विद्वान सोचते हैं कि दृश्य एवं स्पर्शनीय के परे और कुछ नहीं है। इन्द्रियों द्वारा, उनके स्मरण द्वारा, उनकी भाषाओं एवं दर्शनों द्वारा, धर्मविज्ञान इत्यादि द्वारा लायी गयी जानकारी के आधार पर, अपने शाब्दिक ज्ञान के आधार पर, वे कहते हैं कि उसके परे कुछ नहीं है। वे कहते हैं जब शरीर का अंत होता है तो समस्त का अंत हो जाता है, उसके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परे कुछ नहीं है। इसलिये वे कहते हैं, आध्यात्मिक कहे जाने वाले विषय का अनुसरण करने की कोई आवश्यकता नहीं है। ध्यान की क्या आवश्यकता है ? चेतना के किसी दूसरे आयाम में Quantum Jump लेने इत्यादि की यह सब चर्चा क्या है ? चेतना की यह अति सीमित धारणा है , एक बहुत सीमित विचार है। वे दावा करते हैं, ऐसी विचार पद्धतियाँ दावा करती हैं - अयं लोकः न अस्ति परः। हमारे द्वारा देखे जाने वाले, मानसिक स्तर पर अनुभव किये जाने के परे कोई अस्तित्व नहीं है। तर्कशक्ति के नाम पर, ठोस अनुभवों के नाम पर, ऐन्द्रिय अनुभवों के नाम पर, आत्मिक वास्तविकता का अस्वीकार किया जाता है। आत्मिक यथार्थता की इन्द्रियों द्वारा प्रतीति नहीं होती। वह जिसकी प्रतीति एवं अनुभव संवेदनशीलता से होती है, जो भौतिकीय शक्ति नहीं है उसे अस्वीकार किया जाता है। इससे संवेदनीय मूल्य, ऐन्द्रिय मूल्य, सुख के सम्प्रदाय, अतिभोग के सम्प्रदाय, दमन के सम्प्रदाय सर्वोच्च बन जाते हैं।

यमराज कहते हैं, 'हे नचिकेता, मेरे बालक तुमने कैसी सूक्ष्म दृष्टि पायी है। उन विद्वानों से, जिनसे जीवन में मेरा मिलना हुआ है, तुम उनसे, उन पण्डितों से अधिक सुलझे हुये और अधिक परिपक्व हो।' यमराज, एक पिता स्वरूप धर्मराज, एक नन्हें पाँच वर्षीय बालक से बात कर रहे हैं। यह पृष्ठभूमि है, कथा की ऐसी चित्रपटी फैलायी गयी है, इस पर समस्त कठोपनिषद् शब्दों द्वारा चित्रित किया जा रहा है। यमराज पूछते हैं, 'तुम्हें इतना विश्वास कैसे है कि वहाँ मृत्यु के परे कुछ है ? तुम मुझ से पूछ रहे हो मृत्यु पश्चात् क्या होता है ? इसका अर्थ है, तुम्हें विश्वास है कि वहाँ कुछ है। ये पण्डित नहीं जानते, वे दावा करते हैं- प्रतिभाति साम्परायः न अयं लोकः अस्ति न पराः। नचिकेता, तुम्हारे समान शिष्य पाना एक विशेषाधिकार है।'

हमने तीन श्लोकों में विद्या एवं अविद्या का अवलोकन किया है, फिर हमने हृदय एवं मस्तिष्क को अविद्या का बंदी बनते हुये, आध्यात्मिक अंधेपन में परिणत होते हुये देखा है। तीसरे श्लोक में यमराज उनसे पूछे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गये विषय की ओर बढ़ रहे हैं। वे कहते हैं, वहाँ यथार्थता है, ऐन्द्रिय एवं मानसिकता के परे जीवन है। एक ग्रह अथवा एक समाज के आशय में वह लोक नहीं है, परन्तु उसकी यर्थाथता है।

यदि आप बहुत थके हुये न हों, तो क्या मैं 'लोक' शब्द के एक अन्य आशय से परिचय करवा सकती हूँ ? 'लोकयते इति लोक:।' वह जो दिखायी पड़े वह लोक है तथा जिसके द्वारा आप देखते हैं उसे भी लोक कहा जाता है। इसीसे आलोक शब्द बनता है। लोक का एक अर्थ है प्रकाश, जिसके द्वारा आप देखते हैं। लोक वह भी होता है जो देखा जाता है। संस्कृत भाषा के शब्दों के दर्जनों अर्थ होते हैं। यदि आप प्रत्येक शब्द का कम से कम बारह भिन्न रीतियों से अध्ययन नहीं करते तो वेदों एवं उपनिषदों का अध्ययन सम्पूर्ण नहीं होता। जिन्हें वेदों एवं उपनिषदों में विशेषता ग्रहण करनी होती है, वे शब्द का उसके चौबीस भिन्न रीतियों से अध्ययन करते हैं। जैसे संगीत के स्वरों में मंद स्वर तथा अधिस्वर होते हैं। स्पंदनिक आवृत्ति, सुर बाँधने तथा उसकी तीव्रता के अनुसार आप संगीत के स्वरों के बीच अन्तर कर सकते हैं। यह संगीत का सौन्दर्य है। यदि कोई वाद्य संगीत अथवा कंठ-संगीत में मंद स्वरों एवं अधिस्वरों के स्पंदनों का स्पर्श नहीं पा सकता, तो संगीत की उत्कर्षता नहीं आती। उसी प्रकार, संस्कृत भाषा में प्रत्येक शब्द की छटायें होती हैं। क्योंकि हम बहुत संक्षेप में अध्ययन कर रहे हैं, मैं केवल भाषा की सुन्दरता की ओर संकेत कर सकती हूँ तथा अपने अध्ययन के प्रासंगिक अभिप्रायों की ओर संकेत कर सकती हूँ। अन्यथा हम यहाँ बैठ 'लोक' शब्द को लेकर एक घंटे तक चर्चा कर सकते हैं, साम्पराय: शब्द का विश्लेषण करते चले जा सकते हैं। आपको बताया जा सकता है सम्प्रदाय अथवा पंथ शब्द कैसे बना परन्तु मेरा ऐसा इरादा नहीं है।

यमराज कहते हैं, 'हे नचिकेता, मैं पूर्णत: संतुष्ट हूँ कि तुम पराविद्या, ब्रह्मविद्या के प्रति समर्पित हो; तुम्हें अन्य कुछ रुचिकर नहीं लगता। तुम्हारी समस्त शक्तियाँ ब्रह्मविद्या के, मृत्यु के रहस्य, जीवन के रहस्य के प्रकटीकरण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर केन्द्रित हैं। इसलिये अब मैं अति प्रसन्नता से तुम्हें उसका परिचय दे सकता हूँ, तुमसे इस विषय पर बात कर सकता हूँ।'

जब तक जिज्ञासा की सत्यनिष्ठा, एक अखंड समग्रता, जिज्ञासा की गहनता आपकी सत्ता में एक लौ समान नहीं जलती, तब तक रहस्यों को प्रकाशित नहीं किया जाता। शाब्दिक जानकारी संभव है, शाब्दिक ज्ञान संभव है। जब जानने की उत्कटता से भावनायें उत्तेजित हो उठती हैं तब अतींद्रिय अनुभव संभव है, परन्तु जीवन के गुह्य मूलों का प्रकटन एक स्थिर, गम्भीर एवं अखंडित जिज्ञासा की सत्यनिष्ठा की अपेक्षा करता है। नचिकेता में वह विद्यमान थी। घंटों लगाये जा सकते हैं विस्तार से विवरण देने में, यह दिखाने में कि नचिकेता की जिज्ञासा कितनी विशुद्ध, कितनी सत्यनिष्ठ, कितनी गम्भीर थी। लगभग छे श्लोकों में यमराज ने इसका विस्तार दिया है। नचिकेता के साथ वे बाँटते हैं कि किशोरावस्था में उनमें ऐसी जिज्ञासा नहीं थी। वे कहते हैं, 'मैं धन्य हुआ कि तुम मेरे पास सीखने के लिये आये हो।'

यह तो उपनिषद् की बात है परन्तु मैंने जाना है कि शंकराचार्य- वेदान्त तथा अद्वैत के प्रवक्ता- जब वे मुश्किल से आठ वर्षीय बालक थे, वे अपने गुरु के पास गये थे। वे दक्षिण भारत के एक छोर से, केरल से मध्य भारत, नर्मदा के किनारे पूरा रास्ता पैदल तय करते हुये गये थे। वहाँ जा कर उन्होंने उस गुफ़ा का द्वार खटखटाया, जहाँ गोविन्दापादाचार्य, उनके आचार्य, उनके होने वाले गुरु रहते थे।* गोविंदापादाचार्य ने पूछा, 'कौन है वहाँ ?' शंकराचार्य बोले, 'आपका प्रतिबिंब'। 'प्रतिबिंब यहाँ क्यों आया है ?' 'आद्य के दर्शन के लिये'। यह ऐतिहासिक घटना है। वेद एवं उपनिषद् तो पहले लिखे गये थे परन्तु शंकराचार्य तो इस मिट्टी के इतिहास के अंश हैं। वे बोले, 'महाराज,

---

* *ऋषि एकांत तथा मौन अधिक पसंद करते हैं, वे मुश्किल से ही स्वयं को प्रकट करते हैं। संत स्वयं को प्रकट करते हैं, वे लोगों के साथ मेल-जोल रखते हैं, आना-जाना रखते हैं। ऋषि जन मौन में, एकांत मे रहते हैं।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रतिबिंब अपने स्रोत को देखने आया है।' गोविंदापादाचार्य बाहर आते हैं और बालक के समक्ष साष्टांग प्रणाम करते हैं। आचार्य उससे कहते हैं, 'तुम केवल सीखने नहीं, मुझे भी कुछ सिखाने आये हो।'

चलिये आशा करें, यमराज अथवा धर्मराज अब सीधा उस विषय पर जायेंगे, जो नचिकेता ने उनसे पूछा था। उन्होंने आज नींव रखी है, चलिये पता करें आने वाले संवाद में वे क्या कहने जा रहे हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सातवाँ संवाद

मैं नहीं जानती, पिछले चार दिनों में किस हद तक मैं आप तक कठोपनिषद् की शिक्षा पहुँचा सकी हूँ । प्रत्येक शब्द का एक अभिधार्थ होता है, उस अर्थ में एक रहस्यमय छटा छिपी रहती है । शब्द का श्रवण कर उसके गुह्य स्पर्श का अनुभव कर पाना वास्तव में कठिन होता है ।

कल दोपहर अध्ययन किये गये मंत्र की अंतिम पंक्ति की ओर लौटना चाहूँगी । इस मंत्र की ओर ध्यान देने से पहले, मैं आपसे पहले तथा दूसरे दिन के वर्गों के स्मरण का अनुरोध करना चाहूँगी ।

कठोपनिषद के अनुसार वैश्विक जीवन अग्नि की ज्वाला है; वह त्रिविध अग्नि है । अग्नि की यह ज्वाला, जिसे हम ब्रह्मांड कहते हैं, वह अपने में आत्म-ज्ञान एवं आत्म-बोध की क्षमता लिये हुये है । इस त्रिविध अग्नि का दूसरा पहलू इच्छा की क्षमता है; यह प्रेरणा शक्ति है । आत्म-ज्ञान व आत्म-बोध स्वयं किसी गति का जनन नहीं करते । त्रिविध अग्नि का तीसरा पहलू अपने स्वाभाविक रूप के नित्य प्रकटन की गतिविधि है ।

पहले भाग, आत्म-ज्ञान अथवा आत्म-बोध को ज्ञान कहा जाता है । संस्कृत भाषा में ज्ञान का अर्थ केवल सैद्धान्तिक, शाब्दिक, अथवा शैक्षिक ज्ञान नहीं होता । ज्ञान शब्द का रहस्यमय भाव जीवन में समाविष्ट संवेदनशील अवबोधन की ओर है । *ज्ञान है बोध-शक्ति, इच्छा है भाव की, संकल्प की शक्ति तथा क्रिया है कर्म-शक्ति । ज्ञान, इच्छा एवं कर्म वैश्विक जीवन की त्रिविध अग्नि है । जीवन की प्रत्येक अभिव्यक्ति, उसके सजीव एवं निर्जीव प्रकटीकरण इस त्रिविध अग्नि को, त्रिविध ज्वाला को समाये हुये हैं ।* जड़ वस्तुओं में वह मूक है, मनुष्य जाति में वह व्यक्त हो उठती है । इसी कारण मनुष्य देह को वैश्विक दिव्यता के स्वयं को प्रकट करने का, उसकी त्रिविध विशिष्टता प्रकट करने का एक महान अवसर माना जाता है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब, यदि त्रिविध ज्वाला की नींव हमारी चेतना में सध गयी हो, तो चलिये, विद्या एवं अविद्या के विषय की ओर लौटें। विद्या एवं अविद्या शब्दों को हम दो-एक दृष्टिकोणों से विस्तार से देख चुके हैं । आपके सहयोग से अब दिखाना चाहूँगी कि विद्या एवं अविद्या बोध की दो पद्धतियाँ हैं। हमने अज्ञानता एवं ज्ञान के रूप देखे थे। कठोपनिषद् के संवाद में अब मैं आपको कुछ और गहराई में ले जाना चाहूँगी ।

विद्या एवं अविद्या बोध की भिन्न पद्धतियाँ

बोध की पद्धति, बोध के साधन निष्कर्ष का निर्णय करते हैं। हमारी सत्ता में त्रिविध ज्वाला है, त्रिविध अग्नि है; यह ज्ञान, इच्छा एवं कर्म की क्षमता रखती है। यह अग्नि, यह ज्वाला, मनुष्य देह में मनुष्य जाति के सामूहिक जीवन द्वारा लाखों वर्षों से प्रतिबन्धित है। यह अनुबन्धित चेतना एक पात्र है, जिसमें त्रिविध अग्नि प्रतिबन्धित जान पड़ती है। जब प्रतिबन्धित चेतना अपनी प्रतिबन्धित जानकारी, प्रतिबन्धित इच्छा के साथ इन्द्रियों का, ज्ञानेन्द्रियों का उपयोग बोध के साधनों के रूप में करती है, तो वह प्रकटन की विविधता देखती है। वह अनेकता अथवा जीवन की विविधता देखती है। क्योंकि इन्द्रियाँ, जिनके माध्यम से प्रतिबन्धित चेतना बोध करती है, वह यथार्थता के एक पहलू को ही देखने की क्षमता रखती हैं । आँखें आकृतियाँ देख सकती हैं, रंग देख सकती हैं, कान केवल शब्द सुन सकते हैं । शब्द यथार्थता का एक पहलू है; प्रकाश, आकृति, रंग उसके अन्य पहलू हैं; गंध, दुर्गंध यथार्थता के अन्य पहलू हैं ।,नाक केवल गंध ले सकती है, वह देख नहीं सकती । आँखें देख सकती हैं परन्तु सुन नहीं सकतीं; ज्ञानेन्द्रियाँ अपने क्रिया-कर्मों में सीमित होती हैं। इसलिये जब हम ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से देखते हैं, तब हमें यथार्थता के पृथक होने का बोध होता है। इससे एकता अनेकता में बँट जाती है। अभी मैं विभाजित शब्द का उपयोग करना पसंद नहीं करूंगी। विभाजन मन की रचना है परन्तु पृथकता, अनेकता, विविधता, ज्ञानेन्द्रियों के बोध के साधन स्वरूप उपयोग किये जाने का स्वाभाविक परिणाम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। यह साधनों के विषय में था, अब चलिये बोध पद्धति की ओर।

अविद्या पृथक्कारी बोध द्वारा नियंत्रित

हमारे शरीर में जो प्रतिबन्धित चेतना है, वह मूल्यांकन करने के प्रतिमानों द्वारा प्रतिबन्धित रहती है; वहाँ आचरण संहितायें हैं, मापदण्डों के, प्रतिमानों के, मूल्यों के ढाँचे हैं। इसलिये वह प्रतिबन्धित चेतना उसे प्राप्त प्रतिमानों द्वारा किसी इच्छा को प्रेरित करती है। अतीत इच्छा की गतिविधि का नियंत्रण करता है। बोध की पद्धति ही इच्छा है। मन उन विषयों को देखता है, उन विषयों का अवलोकन कर सकता है जिन्हें वह देखना चाहता है; जिन्हें देखने की वह आकांक्षा रखता है। मनोदशा, इच्छा, आकांक्षा, महत्त्वाकांक्षा, अभिरुचि, पूर्वाग्रहों इत्यादि के अनुसार ही मन देखता है। इन्द्रियाँ विविधता लाती हैं तथा इच्छा प्रत्यक्ष बोध में मूल्यों का आभास लाती है। अभी भी वह बोध पृथक्कारी होता है। भले व बुरे, नैतिक व अनैतिक, सुन्दर व असुन्दर, पसंद व नापसंद, स्वीकार करने योग्य अथवा अस्वीकार करने योग्य; यह अभी भी पृथक्कारी बोध है।

कल जिसे उपनिषद् ने अविद्या कहा था, भौतिक विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, दर्शनशास्त्र इत्यादि कहा था, वह पृथक्कारी बोध अथवा ज्ञान द्वारा नियंत्रित रहती है। पृथक्कारी बोध पद्धति तथा साधनों द्वारा प्राप्त, वह अपनी पृथकता में सीमित रहती है। इस पद्धति एवं साधनों पर आधारित समस्त ज्ञान का पृथक्कारी होना निश्चित होता है। कौन नियंत्रण करता है इस मूल्यांकन एवं पृथकता का ? कौन इस सब का नियंत्रण करता है ? वह करता है, जिसे हमने अहम् व्यक्तित्व कहा है।

ऐन्द्रिय स्तर पर प्रतिबन्धित बोध

कठोपनिषद अब निम्न व्यक्तित्व, उच्च व्यक्तित्व एवं उच्चतम व्यक्तित्व की बात करता है। जब वह प्रबोधक, वह अहम् जो प्रतिबन्धित चेतना है, जब वह ऐन्द्रिय स्तर पर प्रत्यक्ष बोध के साथ तादात्म्य करता है, तब इच्छा जीवन भर अनियंत्रित भटकती है। क्योंकि वह अनेकता को,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषयों की अनेकता को पकड़ना चाहती है, वह उन्हें प्राप्त करना चाहती है। यह विविधता, यह अनेकता तो लगभग अनंत होती है। असंख्य विविधता, प्रकटीकरण की असंख्य विभिन्नता, जीवन की एकता का वैभव है। वह एकता का, अभिन्नता का लावण्य है, जो स्वयं को नित नवीन स्वरूपों, नित नवीन संयोगों में अभिव्यक्त करने की क्षमता रखता है। इन्द्रियाँ केवल इस अनेकता को देखती हैं, वे एकता से अवगत नहीं रहतीं।

इच्छा इन्द्रियों की सहायता से प्राप्त करना चाहती है, अपनाना तथा अधिकार रखना चाहती है। पहले वह अनेकता से, अनगिनत विविधता से संबन्ध बनाना चाहती है, फिर वह उनका संवेदनाओं के रूप में, अनुभवों के रूप में, संपत्ति के रूप में अभिग्रहण करना चाहती है। *मनुष्य जीवन सीमित होते हुये, मनुष्य देह की शक्ति सीमित होते हुये, वृद्धि एवं क्षय के जैविक नियमों द्वारा संचलित मनुष्य इच्छा के विषयों के पीछे दौड़ता जाता है, अनेकता के पीछे दौड़ता जाता है और थक जाता है।* वह प्रतिबन्धित बोध वेदना एवं दुःख का, असंतोष, विजय एवं निराशा के भान का, विजय एवं पराजय का कारण बनता है। ज्ञानेन्द्रियों का उपयोग करती हुयी, उनके द्वारा प्रस्तुत किये गये तथ्यों पर निर्भर करती हुयी चेतना को निम्न व्यक्तित्व कहा जाता है।

मानसिक स्तर पर प्रतिबन्धित बोध

प्रतिबन्धित चेतना इन्द्रियों तथा उन के द्वारा प्रस्तुत की गयी यथार्थता से हट कर, विज्ञान, नीतिशास्त्र, भौतिक विज्ञान अथवा धर्मशास्त्रों, तत्त्वमीमांसा, दर्शनशास्त्रों इत्यादि के समस्त शाब्दिक ज्ञान पर निर्भर करने लगती है। अब इन्द्रियों अनुसार नहीं, परन्तु बौद्धिक विवरणों तथा परिभाषाओं द्वारा निर्धारित किया जाता है कि किसे स्वीकार किया जाये तथा किसे अस्वीकार। यह स्तर ऐन्द्रिय स्तर से अधिक चयनात्मक बन जाता है। जब मनुष्य जीव, विचारों, भावनाओं, नैतिक मूल्यों द्वारा जीता है, तो उस अहम्, उस व्यक्तित्व, उस प्रबोधक को उच्च व्यक्तित्व कहा जाता है। निम्न व्यक्तित्व संवेदनाओं के स्तर पर होता है तथा उच्च व्यक्तित्व

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानसिक स्तर पर होता है। इस स्तर पर, समस्त मनोभौतिक बोध पद्धति द्वारा तथा मनोभौतिक बोध के साधनों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। मस्तिष्क बोध का साधन बन जाता है, वह शब्द की सहायता से जानता है; शब्द मस्तिष्क की ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं। मस्तिष्क ज्ञान की अनुभूति है तथा शब्द ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। मस्तिष्क शब्दों की सहायता से देखता है। धारणायें, परिभाषायें, विवरण इत्यादि मन द्वारा मूल्य संरचनाओं के मापदंडों में ढाल दिये जाते हैं। वह तुलना करता है, विश्लेषण करता है, क्या प्राप्त करना चाहिये और क्या नहीं। यह उच्च स्तर है, चयनात्मक बोध है, चयन करना, स्वामित्व करना, प्राप्त करना इत्यादि है। फिर भी यह थका देता है, निढाल कर देता है। क्योंकि मन जो जानता है, जिसका उसे अनुभव है अथवा जिसे भौतिक अथवा मानसिक रूप में पाया है, उसकी वह दूसरों के साथ तुलना करता रहता है।

मानसिक बोध स्वभावगत तुलना की बीमारी से पीड़ित रहता है। जब तक वह स्वयं को नहीं बता सकता कि वह दूसरों के मन से, दूसरों में क्रियाशील मन से अधिक अच्छा है, उसके पास जो विचारों का, भावनाओं का स्वरूप है, संबन्धों की जो बनावट है वह अन्य जनों से अधिक अच्छी है, तब तक वह कभी प्रसन्नता का अनुभव नहीं करता। किसी भी तरह वह स्वयं को दूसरों से अच्छा प्रमाणित करना चाहता है। निरंतर तुलना करने की, मूल्यांकन करने की यह बीमारी, दु:ख एवं पीड़ा के लिये उर्वर भूमि बन जाती है। ऐन्द्रिय स्तर पर पीड़ा है, क्योंकि आप अनेकता को इन्द्रियों के दायरे में नहीं ले सकते। मानसिक स्तर पर आप असंतुष्ट हैं, क्योंकि संपत्ति होने पर भी वह किसी और से कम है, पत्नी अन्य किसी की पत्नी से कम सुंदर है, बच्चे किसी अन्य के बच्चों से कम गुणवान हैं। घर से लेकर संबन्धों तक ऐसे ही चलता रहता है। *इस प्रकार अविद्या दुःख एवं वेदना का स्रोत है। यह ज्ञान के निराकारण के लिये नहीं कहा गया है। उपनिषद् हमारे ध्यान में बोध की पद्धति, बोध की विधि, बोध के साधनों की मर्यादायें लाने का प्रयास कर रहा है।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आत्मबोध का स्तर

जब बोध ज्ञानेन्द्रियों पर निर्भर नहीं करता, जब वह प्रतिबन्धित मन पर निर्भर नहीं करता तो वह अन्तर्मुखी हो जाता है। उसे देखने की जिज्ञासा होती है कि क्या देख रहा है ? कौन देख रहा है ? कौन है जो बोध की पद्धति, बोध के साधनों का उपयोग कर रहा है ? वह निम्न व्यक्तित्व तथा उच्च व्यक्तित्व से ऊपर उठ जाता है। किसी तरह वह स्वयं को अतीत की पकड़-जो अनुबन्धित चेतना है-से स्वयं को मुक्त करने में सफल हो जाता है। प्रत्यक्ष प्रतीति-भले वह कितनी ही धुंधली क्यों न हो-वह उस पर निर्भर करता है। अब सूक्ष्मग्राहिता बोध की पद्धति होती है; जो ज्ञानेन्द्रियों अथवा मन की विशेषता नहीं है। वह आत्मज्ञान का गुण है। अब आप इच्छा एवं कर्म के पहलू से आत्मज्ञान तथा आत्मबोध की ओर पूर्णत: अभिमुख होते हैं।

एक साधक, एक जिज्ञासू निर्भयता से अन्तर्मुखी हो जाता है। विविधता अथवा शाब्दिक ज्ञान का अस्वीकार किये बिना वह उसकी गहरायी तक पहुँचना चाहता है। संभवत: वह उसके पार जाना चाहता है। वह अंतस्थ में जाता है और पाता है कि वहाँ एक संयोजक अथवा एकता का बोध है। वहाँ कोई विभाजक बोध नहीं है, कोई पृथक्कारी बोध नहीं है। वहाँ एकता का, एकात्मता का बोध है,क्योंकि वहाँ एक अस्तित्व है। वहाँ कोई एकात्मता है जो पाँच इन्द्रियों को भाँप लेती है। वहाँ कोई प्रज्ञा जान पड़ती है, जो विचारों, भावनाओं, मनोभावों को जान लेती है। ऐसी कोई शक्ति जान पड़ती है, जो प्रतिबन्धित चेतना से भिन्न है, इन्द्रियों के आवेगों से भिन्न है, उनसे स्वतंत्र है; वह वहाँ क्रियाशील है। वहाँ कोई संयोजक तत्त्व है, नहीं तो व्यक्ति अन्तर से बिखरा हुआ होला, खंडित होता, वहाँ एकात्मता का भान नहीं होता। वहाँ एक 'होनेपन' का भान है, जो इन्द्रियों पर निर्भर नहीं होता, जो प्रतिबन्धित चेतना पर निर्भर नहीं होता।

एक बालक के चार या पाँच वर्ष का होने पर उसे आभास होता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है -'मैं हूँ', 'मैं हूँ'। मानसिक गतिविधियों से अलग, ऐन्द्रिय गतिविधियों से अलग, जीवन अपने अस्तित्व की घोषणा कर रहा होता है। प्रयत्न कर देखिये। एक शांत कमरे में, शरीर में किसी हलन-चलन के बिना आप अपनी आँखें मूंद कर बैठें। वहाँ कोई शब्द आपकी श्रवण शक्ति पर आक्रमण न कर रहे हों। ऐसे में वहाँ गतिविधि स्थगित है, यदि आप भाग्यशाली हैं तो मानसिक गतिविधि भी अक्रियाशीलता में चली गयी है। तब भी जीवन होता है, वह आपके शरीर में स्पंदमान होता है। जीवन तब भी वहाँ है। होनेपन का बोध है वहाँ।

जब एक जिज्ञासु, मन, मस्तिष्क एवं इन्द्रियों की जगह उस होनेपन के अहसास की ओर ध्यान देता है, तब उसे एकात्मता के अनुभव का आभास होता है। वह एकता ही विविधता देखती है, वह एकता है जो जानना, अनुभव करना, कर्म करना देखती है। होनेपन के उस संयोजक अनुभव को विद्या कहते हैं। यह बोध करने की एक पद्धति है; असंवेदक, अनेन्द्रिय, अमानसिक बोध की पद्धति। क्या कोई साधन है ? होनेपन से अलग अन्य कोई साधन नहीं है। होनेपन का प्रकाश, आत्मज्ञान अथवा आत्मबोध की लौ ही एकमात्र साधन है। वह बोध का साधन है, वह बोध की पद्धति है और वह स्वयं बोधक है। कृपया यह देखिये।

अब हम समझ सकेंगे उपनिषद् क्यों कह रहा था कि जो ऐन्द्रिय स्तर पर अथवा मानसिक स्तर पर विविधता के कैदी हैं, वे कहते हैं - अयं लोको नास्ति पर:। वे अनेकता के अनुभवों, विचारों एवं भावनाओं की अनेकता में इतने निमग्न होते हैं, उस विविधता को निज करने की, उसे पाने की इच्छा उन्हें ऐसे पकड़ लेती है कि उन्हें अन्तर में संयोजक अनुभव के होने का भान नहीं होता। वे परिधि पर, बाह्य स्तर पर रहते हैं। उनकी ऐसी धारणा रहती है कि वह जो इन्द्रियाँ हमारे पास लाती हैं, वह जो शाब्दिक ज्ञान हमारे पास लाता है वही एकमात्र तथ्य है। बोध पद्धति एवं साधनों के कैदी बने, उन्हें इस आभास की संवेदनशीलता नहीं होती कि संभवत: बोध की कोई अन्य पद्धति भी है, उसके अतिरिक्त और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी कुछ है। न परः,वे कहते हैं, नहीं इसके परे और कुछ नहीं है। वे कहते हैं, मनुष्य के मस्तिष्क तथा विचार के परे और कुछ नहीं है। कृपया मेरे साथ समझने का प्रयास कीजिये।

पुनर्जन्म

यमराज कहते हैं, वे जो ऐन्द्रिय एवं मानसिक के कैदी हैं, वे पुनः पुनः मेरे मृत्यु एवं पुनर्जन्म के फंदे में आ जाते हैं- 'पुनर्वशमापद्यते' ; वे पुनः पुनः मेरे मरण एवं पुर्नजन्म के फन्दे के शिकार बनते हैं । क्यों? क्योंकि इच्छा की कभी तृप्ति नहीं हो सकती। वह अनेकता पर, अनगिनत अभिव्यक्तियों पर नज़र रखती है। इच्छा उनसे संबन्ध रखना, उनको अपनाना चाहती है, उन्हें पाना चाहती है। कोई भी व्यक्ति एक जीवन में समस्त ज्ञान, समस्त अनुभव, समस्त ऐन्द्रिय विषय, ज्ञान के विषय, अनुभव के विषय, ऐन्द्रिय अनुराग के विषय नहीं पा सकता। इसलिये वे सदा तुलना, प्रतिस्पर्धा, महत्वाकांक्षा, कुण्ठा के कारण पीड़ित रहते हैं। वे अपनी दुर्गति स्वयं करते हैं। जब देह का अंत होता है, वह काया का, अस्थियों का, ग्रन्थियों का, माँसपेशियों का, तंत्रिकीय- रासायनिक संरचनाओं का अन्त होता है। वह इच्छा जो गतिमान हो चुकी है , उसका क्या होता है ? त्रिविध अग्नि की इच्छा का आयाम, जो गति ले चुका है उस का क्या होता है ? कितनी ही इच्छायें अनकही हैं, कितनी आधी सफल हुयी हैं, कितनी दबा दी गयी हैं, वे नहीं मरतीं उसी प्रकार विचार नहीं मरते। वह अतृप्त, अव्यक्त, अर्धपूर्ण इच्छा बीज बन जाती है, वह आकाश में तैरती रहती है। जिस क्षण उसे प्रवेश के लिये तथा अपनी अभिव्यक्ति के लिये उचित माध्यम मिलता है, वह पुनः स्वयं को मनुष्य काया ओढ़ाती है और लोग कहते हैं उस व्यक्ति ने पुनः जन्म लिया। *वह इच्छा है जो बनी रहती है। रूप-विधान पानी पर बुद-बुदों समान होते हैं। मनुष्य आकृतियाँ सागर के वक्षस्थल पर लहरों अथवा बुद-बुदों समान होती हैं। वह इच्छा है जो सतत रहती है।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह इच्छा तत्त्व बहुत चिपकने वाला होता है। वह किसी विषय को चिपक जाये तो आप उसे अलग नहीं कर सकते। लोगों की तो फिर छुपी हुयी इच्छायें, सम्मोह, लालसायें एवं लोभ रहते हैं। विविधता के आकर्षण में उन्होंने अन्दर नहीं देखा है, उन्होंने बोध के रहस्य की खोज नहीं की है। यदि वे खोज करें तो उन्हें समझ में आयेगा कि दृष्टा एवं दृश्य, ये दो शक्तियाँ एक ही मूल शक्ति की अभिव्यक्तियाँ हैं। वे अन्दर नहीं देखते, वे उस रहस्यमयी एकात्मता को, जो हमारे जीवन में विद्यमान है उसे खोजते नहीं। वह एकात्मता कृत्रिमता से नहीं बनायी जा सकती। यह चार और पाँच को जोड़ नम्बर नौ पाना नहीं है। यह जोड़-तोड़ कर बनायी एकात्मता नहीं है, यह मानवीय प्रयास का परिणाम नहीं है। यह जीवन का सहज अनुभव है, होनेपन का अहसास है। वह संवेदनशील बोध अथवा प्रज्ञा की एकात्मता ही है जो विषयों का परस्पर संबन्ध बनाती है, उनका समन्वय करती है। जिससे आपको एक मनुष्य होने का अनुभव होता है। आप एक बालक थे, आप एक युवक थे, आप एक प्रौढ़ थे, आप एक वृद्ध हैं; इन समस्त अवस्थाओं में होनेपन की एक ही धारा है।

यमराज कहते हैं, अपनी अतृप्त, असंतुष्ट इच्छाओं के कारण तथा ऐन्द्रिय बोध एवं मानसिक बोध के साथ तदात्मीकरण होने के कारण, वे पुन: पुन: मेरे जन्म एवं मरण के फन्दे में आते हैं। यह एक अपूर्णता है। तब क्या किया जाये ? वह किनारा जो मस्तिष्क एवं विचार से, इन्द्रियों से परे है, साधारण व्यक्तियों के लिये उस की ओर प्रवृत होने का क्या कोई मार्ग है ? क्या कोई मार्ग है जिससे वे ज्ञाता की ओर उतने ही आकर्षित हो जायें, जितने वे बाह्य जगत् के प्रति हैं ? क्या कोई ढंग है जिस से वे एकता की ओर, एकात्मता की ओर उतने की आकर्षित हो जायें, जितना वे अनेकता से आकर्षित एवं मोहित हैं ? अब यह प्रश्न आचार्य यम के समक्ष है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एकत्व के मार्ग की कठिनाइयाँ

यमराज कहते हैं, 'हाँ, एक ढंग है, एक मार्ग है, जो इस एकत्व के प्रति प्रेम, ज्ञाता के प्रति, जानने के रहस्य, बोध करने व प्रत्यक्ष बोध के प्रति प्रेम जागृत कर सकता है। परन्तु कुछ अपेक्षायें हैं, कुछ कठिनाइयाँ हैं ! अनेकों इस विषय पर सुनते हैं परन्तु समझते नहीं; सुनते हुये हम सुनते नहीं, देखते हुये हम देखते नहीं। पहले तो, ऐसे लोग बहुत कम हैं जो एकत्व के, एकता के विषय को सुनना चाहते हैं। बहुत कम सौभाग्यशाली हैं जिन्हें अन्तर के विषय में, उस पार के विषय में, बोधकर्ता के, द्रष्टा के, ज्ञाता के; अनुभवकर्ता के विषय में सुनना अच्छा लगता है। अनुभव करने, जानने, पाने, अधिकार जमाने की उत्तेजना से उन्हें समय ही नहीं मिलता। वे इस गतिविधि में इतने व्यस्त रहते हैं, उन्हें लगता है अन्तर में देखने तथा दृष्टा, ज्ञाता, अनुभवकर्ता को खोजने की आवश्यकता नहीं है।

चलिये, यदि उनके पास समय एवं प्रवृत्ति हो भी, तो वे आकर सुनते हैं परन्तु समझते नहीं। क्यों ? क्योंकि अन्तर में यह धारणा होती है कि जो वे इन्द्रियों के माध्यम से देखते हैं, वही एकमात्र तथ्य है। उनमें अपनी बोध पद्धति एवं बोध के साधनों की प्रमाणिकता पर प्रश्न करने की उदारता एवं ग्रहणशीलता नहीं होती। इस कारण वे शब्द सुनते हैं, बुद्धि से शब्दों के शब्दकोशीय अर्थ समझते हैं परन्तु जीने की गति में वे अपनी इन्द्रियों की कही पर, अपने मन के अधिदेशों पर निर्भर करते हैं। कृपया देखिये, यह हमारे जीवन का वृतान्त है। व्यावहारिकता के नाम से, व्यावहारिक बुद्धि के नाम से हम अतीत का, प्रतिबन्धनों का, पूर्वजों के ज्ञान का आश्रय लेते हैं। हम इच्छा के आदेशों, उसकी मनोहरता एवं आकर्षण पर निर्भर करते हैं। यह एक कठिनाई है, जिससे प्रकाश का मार्ग, सहज बोध का, प्रत्यक्ष अनुभव का मार्ग बंद हो जाता है।

यमराज कहते हैं , दूसरी कठिनाई 'आश्चर्यो वक्ता' को ले कर है। ऐसे व्यक्ति, जो इस यथार्थता, इस एकात्मक यथार्थता- जिसे आप आत्मा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहते हैं- के विषय में बता सकें उन्हें लेकर है। आप चाहे उसे जो नाम दीजिये परन्तु वे, जो उस परम सत्ता के सत्त्व को दूसरों तक पहुँचा सकें, वे बहुत विरल हैं। न नरेणावरेण प्रोक्त एष; यमराज कहते हैं, ऐसे व्यक्ति जो अपने बौद्धिक ज्ञान पर निर्भर करते हैं, वे यथार्थता के सिद्धान्त अपने प्रत्यक्ष अनुभव से नहीं देते। इसीलिये वहाँ कोई अधिकृतता नहीं होती।

श्रोताओं के मार्ग में कठिनाई है कि वे ऐन्द्रिय एवं मानसिक पर निर्भर करते हैं तथा उनके प्रभुत्व को स्वीकार करते हैं। यमराज कहते हैं, वक्ता भी शाब्दिक ज्ञान का, बौद्धिक ज्ञान का प्रभुत्व स्वीकार कर लेते हैं। वे एक अप्रत्यक्ष ज्ञान की चर्चा करते हैं। इस कारण वक्ता एवं श्रोता, जो चर्चा करता है तथा जो श्रवण करता है, उनके बीच का संवाद निस्सार एवं नीरस रहता है। कठोपनिषद् ने तो बहुत कड़ी भाषा का उपयोग किया है, जहाँ तक संभव हो मैं उसे सौम्य शब्दों में कहने का प्रयास कर रही हूँ। यमराज ने ऐसे अध्ययन को जीने के कर्म से असंबन्धित, जीने की गतिविधि से असंबन्धित कहा है, जो जीवन के कर्म में उतरता नहीं है; ऐसा अध्यात्म जीने के कर्म में नहीं उतरता। यमराज कहते हैं, अप्रत्यक्ष ज्ञान पर आधारित ऐसे संप्रेषण हानिकारक होते हैं।

एक वक्ता एवं श्रोता को खोज पाना बहुत कठिन है। वह जो श्रवण कर उस समझ को जीते हैं उन्हें खोज पाना बहुत कठिन है। यमराज ने इस अयोग्यता के विवरण में चार श्लोक लिखे हैं। प्रकाश के मार्ग को कठिन माना जाता है। *मार्ग कठिन नहीं है। वह जो मस्तिष्क से परे अथवा मन से परे है, वह कठिन नहीं है। कठिनाई है ऐन्द्रिय एवं मानसिक के प्रभुत्व को स्वीकार करने में, जिसके साथ हम जन्म लेते हैं, जिसमें हम रहते हैं तथा जिससे हम कर्म करते हैं।*

वास्तविक वैराग्य

यमराज नचिकेता को प्रियतम कह कर संबोधित करते हैं। प्रेष्ठ अर्थात् वह जो परमप्रिय है, जिसे आप प्रेम करते हैं, जो प्रियतम है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वे कहते हैं, मेरे प्रेमपात्र नचिकेता, मैं तुम्हारी जिज्ञासा का मूल्य करता हूँ, उसका प्रशंसक हूँ। क्योंकि तुम्हारी जिज्ञासा में समस्त वासनाओं से वैराग्य की सुगंध है। *वासनाओं से वैराग्य को ही यमराज वास्तविक वैराग्य कहते हैं।* वे कहते हैं, नचिकेता तुमने घर-सम्पत्ति इत्यादि का त्याग ही नहीं किया परन्तु उनकी ओर देखने अथवा उनको पाने की इच्छा ही तुम्हारी चेतना से छूट गयी है। इच्छा का ऐसा छूटना ही वैराग्य का सार है।

हे नचिकेता, तुम वरिष्ठ हो। तुम्हारी सत्ता के गुण मेरी सत्ता से श्रेष्ठ हैं। क्यों ? क्योंकि मैं यज्ञ करने के कर्म-कांड इत्यादि से हो गुज़रा हूँ, मैंने शास्त्रों का, यज्ञों के विज्ञान का अनुसरण किया है, मैंने अनेकों यज्ञों का संचालन किया है। कैसे किये हैं मैंने वे यज्ञ ? मैंने उस नश्वर सामग्री द्वारा, चावल, तिल,घी, चंदन के टुकड़ों इत्यादि द्वारा यज्ञ किये हैं। नश्वर सामग्री द्वारा यज्ञ किये हैं तथा दान-दक्षिणा में भी नश्वर वस्तुयें, वस्त्र, मवेशी, कीमती रत्न इत्यादि पंडितों को दिये हैं। मैंने सोचा था कि शाश्वत को, शाश्वत के रहस्य को नश्वर वस्तुओं के अर्पण द्वारा प्राप्त करूँगा, उससे अनंत का प्रकटन हो जायेगा। ऐसा होना ही नहीं था, क्योंकि यज्ञों के फल को पाने की इच्छा मुझमें थी।

उपनिषद् सम्पूर्ण यजुर्वेद पर टिप्पणी कर रहा है, जो यज्ञ, याग, हवन, होम का विज्ञान है। इक्कीस प्रकार के यज्ञ हैं, लोगों को ये यज्ञ करना अतिप्रिय रहा होगा। आप धन का अर्जन करते हैं, संपत्ति एकत्रित करते हैं और फिर दान-पुण्य करते हैं। आप यज्ञ करते हैं, बड़े-बड़े पंडाल लगाते हैं। आप जानते ही हैं धन-संपत्ति का ऐसा प्रदर्शन। यमराज कहते हैं, 'नचिकेता, मैं परिपक्व हुआ हूँ परन्तु मैं नश्वर वस्तुओं का संग्रहण करने की इस क्रिया से गुज़रा हूँ। यज्ञ करते हुये, आहुति देते हुये मैंने अत्यंत संतोष का अनुभव किया था; यह सब किया था मैंने। हाँ, इन यज्ञों ने मुझे गुह्य अनुभव आवश्य दिये थे।'*

---

* *गुह्यविद्या एवं रहस्यवादी शब्दों का उल्लेख कठोपनिषद् के पहले अध्याय के दूसरे भाग में दस से पन्द्रह मंत्रो में किया गया है।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुरु-शिष्य संबन्ध

यमराज कहते हैं उन्होंने नश्वर द्वारा, अनित्य द्वारा उस तक पहुँचना चाहा जो उसके पार है और फिर उसकी व्यर्थता देखी। 'मैंने व्यर्थता देखी और फिर अंतर्मुखी हुआ। मेरे प्रिय नचिकेता, फिर मैंने अपने ही शरीर में आत्मबोध की अग्नि प्रज्वलित की। उच्च व्यक्तित्व को निम्न व्यक्तित्व का अर्पण आहुति स्वरूप देकर मैंने अपने शरीर में यज्ञ किया। प्रतिबन्धित चेतना की, अहम् की आहुति प्रत्यक्ष सम्पर्क को अर्पित करके यज्ञ किया। केवल जब मैंने अपने शरीर में यज्ञ आरम्भ किया, जब उस अग्नि ने निम्न व्यक्तित्व एंव उच्च व्यक्तित्व को भस्म करना आरम्भ किया, तभी उच्चतम के द्वार मेरे लिये खुले। यहाँ, तुम एक ऐसे जिज्ञासु हो जिसे कोई आकर्षण ही नहीं हुआ। तुम्हें कभी नश्वर का उपयोग करने की प्रवृत्ति ही नहीं हुयी। तुम कभी किन्हीं अनुभवों को पाने के इच्छुक ही नहीं हुये। केवल ऐन्द्रिय ही नहीं, मानसिक ही नहीं परन्तु तुम गुह्य अनुभवों को पाने के भी इच्छुक नहीं हुये। तुम एक ही विषय पर केन्द्रित रहे हो; परम यथार्थता पर, केवल सत्य पर केन्द्रित रहे हो। इसलिये उस पार के द्वार, अविनाशी प्रकाश के द्वार तुम्हारे लिये अवश्य खुले हैं।'

यमराज अपने अतीत पर नज़र डाल रहे हैं। ऐसा नहीं कि वे पश्चात्ताप कर रहे हैं परन्तु निस्संकोच अपना अनुभव बाँट रहे हैं। आप जानते हैं, गुरु-शिष्य के बीच का संबन्ध, पिता-पुत्र, पति-पत्नी अथवा अन्य किन्हीं संबन्धों से अधिक आत्मीयता का होता है। यह एक पावन संबन्ध होता है। यमराज अपना मानसिक जीवन, अपनी कमियाँ प्रकट कर रहे हैं। नचिकेता के समक्ष ऐसा करने में वे संकोच का अनुभव नहीं कर रहे। एक आचार्य अथवा एक गुरू यमराज समान होना चाहिये।

कठोपनिषद एक गुरू अथवा आचार्य होने की आवश्यकता की बात करता है। आचार्य के लिये गुरू एक संस्कृत शब्द है। आचार्य शब्द के साथ रहस्यमय दीर्घ अथवा मन्द स्वर नहीं जुड़े होते, गुरू शब्द के साथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वे होते हैं। *गुरू का अर्थ है, वह व्यक्ति जिसकी चेतना से अविद्या का अन्धकार पूर्णत: मिट गया है।* जब गुरू वर्गों में पढ़ाता है और कहीं मंच पर बैठता है केवल तब नहीं । अकेले में अथवा लोगों के बीच, रात में या दिन में, वहाँ वही सत्य का प्रकाश वाणी में तथा ऐन्द्रिय गतिविधियों में, संबन्धों की गतिविधियों में दीप्तिमान होता है।

अब हमारा संबन्ध आचार्य अथवा गुरु के गुणों से होगा, हम शिष्य के गुण देख चुके हैं। अभी इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि यमराज कहते हैं, 'नचिकेता, ऐसा नहीं सोचना कि किसी जिज्ञासु को एक उचित आचार्य अथवा एक गुरू की खोज करनी पड़ती है । जैसे ही वह अन्दर से तैयार हो जाता है, अन्दर से वासनाओं की पकड़ से मुक्त हो जाता है तो गुरू उसके द्वार पर होगा । जीवन गुरु-शिष्य की भेंट करा देगा ।' यमराज कुछ उदासी से कहते हैं, कहीं मुश्किल से ही आचार्य को वह शिष्य मिलता है जिसके लिये वह द्वार खोल सके, जिसके समक्ष वह प्रकट कर सके। क्योंकि, वह प्रकटन मात्र शब्दों द्वारा नहीं किया जा सकता, उस परस्पर सम्पर्क के लिये ग्रहणशक्ति की आवश्यकता पड़ती है।

यमराज कहते हैं, मैं व्यर्थ में तुम्हारी प्रशंसा नहीं कर रहा, मैं तुम्हारी मिथ्या प्रशंसा नहीं कर रहा । तुम्हें शिष्य के रूप में पा मैं धन्य हुआ, मैं सौभाग्यशाली हूँ। जिज्ञासुओं को आचार्य मिल जाते हैं परन्तु आचार्य के लिये एक योग्य शिष्य पाना दुर्लभ है; वह जिसकी ग्रहणशीलता परिपक्व हो, संवेदनशीलता परिपक्व हो, जो वासनाओं से अदूषित हो। उसमें आत्म-दर्शन की इच्छा को भी शान्त होना पड़ता है। जब तलक यह इच्छा है कि मुझे रहस्योद्घाटन अवश्य होना चाहिये, मुझे मुक्ति अवश्य प्राप्त होनी चाहिये, तब तक इच्छित तत्त्व की शक्ति हावी रहती है, वह शिक्षा अथवा उद्बोधन नहीं होने देती। शिक्षा प्राप्त करने की गतिविधि नहीं है । इच्छा की शक्ति सदा अर्जनशील होती है। वह ज्ञान को भी पाना चाहती है; 'मेरे पास ज्ञान है, मेरे पास अनुभव है।'

इस पहले अध्याय के दूसरे भाग में यम एवं नचिकेता के संवाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को पढ़ते हुये मुझे जे. कृष्णमूर्ति तथा उनके कथन का स्मरण हो आता है। ऐसा नहीं कि उन्होंने उपनिषद् पढ़े थे। मुझे बहुत आश्चर्य हुआ था, जब मैंने सुना था कि इस ग्रह से अंतिम विदा लेने से चार दिन पूर्व, उन्होंने कहा था कि उन्हें कोई समझ नहीं पाया है। जब मैंने सन १९८६ अथवा सन १९८८ में यह सुना था, तो मुझे वास्तव में धक्का लगा था। कृष्णमूर्ति वही कह रहे थे, जो यमराज कह रहे हैं। आखिरकर सत्य तो एक ही है,चाहे बुद्ध उसकी बात करें अथवा कोई रमण या कोई कृष्णमूर्ति। यमराज उदासी व्यक्त कर रहे हैं। वे अपना गहरा दु:ख व्यक्त कर रहे हैं। वे कहते हैं, इस रहस्य के प्रकटन को ग्रहण करने वाला विरल है। वह 'विरल' शब्द का उपयोग करते हैं। साधारणत: बौद्धिक ग्रहणशीलता रहती है; शब्दों, विचारों, प्रत्ययों को अपनाने के लिये, उन्हें स्मृति में रखने के लिये मस्तिष्क तत्पर रहता है । जब तक संवाद में समझे गये शब्दों का अर्थ दिन-प्रतिदिन के जीवन में जिया नहीं जाता, वह बोध की ओर नहीं ले जाता। आपने जो जाना है, उसे जीना ही मुक्ति प्रदान करता है; ज्ञान में मुक्ति प्रदान करने की शक्ति नहीं होती।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आठवाँ संवाद

अपने यूरोपीय मित्रों के प्रति मैं कृतज्ञता का अनुभव करती हूँ। इन योग के अध्यापकों ने मुझे प्राचीन ऋषियों-मुनियों के शब्दों के साथ आन्तरिक संवाद का अवसर दिया है। इन ऋषियों के शब्दों के माध्यम से वास्तव में उनके संग जीना हो जाता है।

पिछले आठ-दस वर्षों में हमारे एक साथ अध्ययन करने से, मेरे इन यूरोपीय मित्रों ने समझ लिया होगा कि उपनिषदों का संदेश योग विज्ञान की अन्य शाखाओं से भिन्न है। योग विद्यार्थियों के लिये विशिष्ट शाखाओं में विशेषज्ञ बनने के ढंग हैं। उदाहरणतः, व्यक्तित्व में यदि भावात्मक अंश प्रधान है तो वह भक्ति-योग का अनुसरण करता है; उसमें एक मार्ग है, एक देव है, वहाँ मंत्र है, मंत्रोच्चारण करना, पाठ करना इत्यादि है। यदि व्यक्ति बुद्धि प्रधान है तो वह ज्ञान योग का मार्ग लेता है। बुद्धि की सहायता से अध्ययन करता हुआ वह अभिप्रायों की गहराई में जाता है, जिससे बुद्धि प्रज्ञा को क्रियाशील करती है , उसे प्रेरित करती है। यदि कोई मौन का प्रेमी है, एकांत का प्रेमी है, तो वह ध्यान का मार्ग लेता है। ऐसे ही अन्य मार्ग हैं, कर्म योग - कर्म का मार्ग, लय योग - कर्म के विघटन का मार्ग, इत्यादि, इत्यादि।

उपनिषदों का पथहीन पथ

उपनिषदों में जिज्ञासु स्वयं ही - उसका शरीर, उसका मन एवं मस्तिष्क ही-मार्ग होता है। वह ही तीर्थयात्री होता है, उसके जीने का कर्म ही तीर्थयात्रा होती है, अस्तित्व के सार को खोज निकालना ही तीर्थस्थान होता है। वह सर्वस्व सम्मिलित किये है, इसलिये वह सत्य का पथहीन पथ है। यहाँ आप ही शिल्पी होते हैं और आप ही शैली, जिससे आप प्रतिमा बनाते हैं।

उपनिषदों की शिक्षा का दूसरा पहलू भी है। उपनिषदों के विद्यार्थी को, ब्रह्मविद्या के जिज्ञासु को, जीवन के विरोधाभासों के विराट नृत्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के साथ सामंजस्य कर लेना पड़ता है। निराकार तक पहुँचने के लिये उसे विषयों के आकार का उपयोग करना पड़ता है। निराकार तक पहुँचने के लिये आकार का उपयोग तथा नाद तक पहुँचने के लिये शब्द का उपयोग करना पड़ता है। नाद का उपयोग करते हुये मौन तक पहुँचना होता है। *हमें नश्वरता का, नश्वर शरीर का उपयोग उसमें समाविष्ट शाश्वत के अमृत को खोज निकालने के लिये करना पड़ता है।* हमें विरोधाभासों के साथ समायोजन करना पड़ता है। संन्यास के नाम से भौतिक जीवन से मुँह मोड़ लेना आसान है। आजीवन एकान्त में संबन्धों से बच कर रहना आसान होता है। एक जिज्ञासु को संबन्धों की गतिविधि में रहते हुये, इन्द्रियों को उनके विषयों तक पहुँचने देते हुये, मन एवं मस्तिष्क को वाणी एवं शाब्दिक ज्ञान से परिचित होने देते हुये, जन्म-मरण के, सुख-दुःख के द्वैत से गुज़रना होता है। ऐसे जीते हुये संतुलन, शान्ति एवं आनंद की गुफ़ा में कायम रहना होता है, ताकि एक क्षण के लिये भी ऐन्द्रिय, वाचिक, मानसिक, बौद्धिक स्तर पर असंतुलन न आये।

एक आचार्य के गुण

हम उपनिषद् के साथ संबन्ध रख रहे हैं, जहाँ हम ही पथ हैं और हम ही पथिक। हमारे संबन्धों की गतिविधि ही तीर्थयात्रा का क्षेत्र है और अपने 'स्व-भाव' को, सार को खोज निकालना ही तीर्थस्थल है। यह सब कहना क्यों आवश्यक था ? क्योंकि यमराज उस व्यक्ति का आचार्य के रूप में विवरण करते हैं, जो पहुँच चुका है। *तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गुह्वरेष्ठं पुराणम्।* आचार्य वह है, जिसने रहस्यमयी यथार्थता को शून्यता की गुफ़ा में खोज निकाला है, जहाँ अनादि-अनंत स्वयं को शून्यता ओढ़ा मानवजाति की ज्ञानेन्द्रियों से छुपा लेता है। आचार्य उसे कहा गया है, जिसने अपने शरीर, मस्तिष्क एवं मन में ही गुप्त परम् सत्य को खोज निकाला हो; वह जिसने पा लिया हो। दुर्दर्शं- वह जिसका बोध बहुत कठिनाई से होता है; गूढं- वह जो रहस्यमय एवं गुह्य दोनों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, गुहाहित-वह जो गुफ़ा में छुपा है। ऐसे व्यक्ति को आचार्य कहा जा सकता है, जिसने अपनी हृदय की गुफ़ा में बसा हुआ रहस्य, अमृतत्व का स्रोत खोज लिया है।

जब आकार निराकार का रहस्य प्रकट करते हैं, तब आकार पर, भौतिक काया पर जो भी घटित हो, चाहे वे सुखमय अथवा दुःखमय घटनायें एवं अनुभव हों, वे उस व्यक्ति की चेतना को किसी भी तरह प्रभावित नहीं करते। वे आत्मानुभव के आनंद को विक्षुब्ध नहीं कर सकते। उस व्यक्ति में जो शान्ति का साम्राज्य है, उसे विकृत नहीं कर सकते। यमराज कहते हैं, ऐसे व्यक्ति के जीवन में सुख की संवेदना से उत्पन्न हर्ष, उत्तेजना, उल्लास अब नहीं रहता। जब शरीर को किन्हीं वस्तुओं, विषयों अथवा व्यक्तियों से वंचित किया जाये, तो शोक का, दुःख का भाव स्पर्श नहीं करता। *एक आचार्य की कसौटी, संबन्धों की गतिविधि में व्यक्त उसके जीवन का स्वरूप है।*

नचिकेता यमराज से कहता है, 'क्योंकि आप उस पार पहुँच चुके जान पड़ते हैं, मैं आपसे उस रहस्य का वर्णन शब्दों में सीखने का इच्छुक हूँ। मुझे ऐसा प्रतीत होता है, आपने मौन की गुफ़ा में बसे उस रहस्य का, शून्यता के आकाश में, मौन में समाविष्ट उस समस्तता का अनुभव किया है। कृपया, मैं वह सीखने को उत्सुक हूँ।' जैसे यमराज शिष्य की प्रशंसा करते रहे हैं, गुणगान करते रहे हैं, अब शिष्य की बारी है। इसलिये वह आदरपूर्ण निवेदन करता है, सम्मान एवं अनुरोध करता है। यमराज उस के अनुरोध को स्वीकार करते हैं।

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाꣳसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदꣳ संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥

'हाँ, मेरे बालक, मैं तुम्हें उसके विषय में बताऊँगा, जिस का वर्णन वेदों में कुछ अपूर्णता से दिया गया है।' सर्वे वेदा अर्थात् सभी वेदों ने जिसके वर्णन की भरपूर चेष्टा की है। यत् पदं- पदं एक जटिल शब्द है। साधारणतः, संस्कृत में पद का अर्थ होता है वर्ण द्वारा रचित शब्द,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परन्तु यह ऋषियों की संस्कृत भाषा है, इसे आर्ष संस्कृत कहते हैं। आधुनिक संस्कृत भाषा के वैयाकरण- पाणिनी, यास्क तथा सुरेश्वराचार्य इसके व्याकरण पर नियंत्रण नहीं रख सकते। यह उस व्यक्ति से उठे भावोद्गार हैं, जो यथार्थता के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क के आनंद से लबालब भरा है;मानो जल की एक बूँद ने सम्पूर्ण सागर पी लिया हो। यह ऋषि की वैयक्तिक चेतना है, जिसने वैश्विक चेतना के सम्पूर्ण सागर को पी लिया है, उसे समा लिया है। इसलिये,मैंने इसे विरोधाभासों का नृत्य कहा है।

ॐ, परब्रह्म की अभिव्यक्ति

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति; आमनन्ति अर्थात् वर्णन करने का प्रयास करते है। सभी वेदों ने ब्रह्म स्वरूप का वर्णन करने की चेष्टा की है। 'पदं' उपनिषदों का शब्द है, 'परम पदं' अर्थात जो ब्रह्मन है। वेद ब्रह्म का वर्णन करने की चेष्टा करते आये हैं और उन समस्त वर्णनों से संतुष्ट नहीं हैं। तत्ते पदं: संग्रहेण; 'बहुत संक्षेप में मैं तुम्हें उस ब्रह्म के विषय में बताऊँगा।' नचिकेता यदि तुम उसे वाणी के स्तर पर शब्दों में अभिव्यक्त चाहते हो, तब तुम उसे ॐ के रूप में वर्णित समझो। इति तत पदं; यदि तुम उसे वाणी के स्तर पर कथित चाहते हो तो केवल एक शब्द है, जो अलग-अलग अक्षरों द्वारा रचित नहीं है। अ उ म् मिल कर ॐ बनता है, जो उस नाद का प्रतीक है।

यदि आपको स्मरण हो,ॐ शब्द छान्दोग्य उपनिषद् का मूल विषय है, यह बृहदारण्यक का भी विषय रहा है। लगभग प्रत्येक उपनिषद् को इस रहस्यमय नाद - ॐ - के साथ सम्पर्क करना पड़ता है। *ॐ का स्वरूप एक प्रतीक है। वह नाद का प्रतीक है, जो मौन का सार है।* आप ॐ की एक प्रतिमा नहीं बना सकते। भारतीयों ने उसे आकार देने का प्रयास किया है। वह उसे अंकित करते हैं, क्योंकि उस नाद को दिखाने का कोई अन्य ढंग नहीं है। यह केवल संकेत चिन्ह है, कोई प्रतीक वास्तविकता नहीं हो सकता; प्रतीक वह यथार्थता नहीं हो सकता।

यमराज कहते हैं, वह परब्रह्म, वह परम सत्य, केवल एक स्वयंभू:

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाद द्वारा ही सूचित किया जा सकता है, जो जीवन का नाद है। जहाँ कहीं भी जीवन है, वहाँ यह नाद है; नाद उसकी अभिव्यक्ति का सार है। सागर, पर्वत, वृक्ष, पशु-पक्षी, मनुष्य इत्यादि चाहे उसके प्रति जागृत हों अथवा नहीं, उनके अस्तित्व में वह स्वयंभूः अनादि एवं अनंत नाद गूँजता रहता है। यह मूल नाद सर्जन का स्रोत है, सृष्टि का सार है, इसी कारण यह यथार्थता का प्रतीक है। ॐ इति एकाक्षरं ब्रह्म, प्रणव इति ब्रह्म।

इस उपनिषद् में यमराज कहते हैं, ॐ प्रतीक है, वह यथार्थता का वर्णन है, उसका परम सूचक है। वाणी के लिये आप जिन अन्य स्वरों का उपयोग करते हैं,वे होठों, जिह्वा, दांतों इत्यादि के बीच के घर्षण का परिणाम होते हैं। मुँह बंद कर के भी सुनाई पड़ते तथा न सुनाई पड़ते हुये भी इस एकात्मक नाद का अनुभव किया जा सकता है, उसका उच्चारण किया जा सकता है। *यमराज कहते हैं यह ॐ का नाद तुम्हारे लिये साधना है। यह उस तक पहुँचने का मार्ग है, जो नाद से परे है।* यमराज कहते हैं ॐ एक नाद है वह शब्द नहीं है। उसका शब्दशः अनुवाद करते हुये मैं कह सकता हूँ, वह शब्द समान जान पड़ता है परन्तु वह केवल एक नाद है। उस नाद से शब्द का उत्सर्जन होता है।

यमराज वर्णन करते हैं, क्यों वे ॐ को नाद कहते हैं,परब्रह्म कहते हैं। जीवन एक अग्निशिखा है, उसमें ज्योति है तथा नाद में ज्योति समायी है। नाद में ज्योति संगुप्त है। जिस प्रकार ब्रह्मांड के पात्र में, ब्रह्म में, परम सत्य में, ज्ञान, इच्छा, क्रिया की त्रिविध अग्नि समायी है, उसी प्रकार यह ॐ का नाद पात्र है, वाहन है, जिसमें जीवन का प्रकाश समाया है। यमराज कहते हैं, मैं तुम्हें जीवन का रहस्य प्रकट कर रहा हूँ, अन्य कोई भी स्वर ऐसा समशील, सम्पूर्ण स्वर नहीं है; अन्य कोई भी स्वर स्वयंभू नहीं है। सम्पूर्ण जीवन उस नाद से स्पन्दित रहता है। हम उसका श्रवण नहीं कर सकते, क्योंकि हमारे कान घर्षण से उत्पन्न स्वरों से अवरुद्ध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होते हैं। जब तक उन विकृत स्वरों की ओर से ध्यान नहीं जाता जिनसे मनुष्य ने भाषाओं का निर्माण किया है, तब तक वह आदि नाद सुनाई नहीं देता। जब तक हम मनुष्य द्वारा बनाये गये कोलाहल से हट कर, अपने और उसके बीच एक दूरी नहीं बनाते, तब तक हम अन्तर के नि:शब्द नाद के स्पंन्दन का अनुभव नहीं कर सकते।

अध्ययन किये जा रहे दूसरे अध्याय के सत्रहवें मंत्र में, ऋषि हमारे जीवन में उन स्पन्दनों की नि:शब्दता का वर्णन कर रहे हैं, जिनका अनुभव करने के लिये अति सूक्ष्म संवेदनशीलता की आवश्यकता होती है। *जब इच्छा का कोलाहल शान्त होता है, जब आकर्षण तथा प्रतिकर्षण के कारण हुआ विभाजन मिटता है, जब ज्ञानेन्द्रियाँ अनुशासित हो जाती हैं, नचिकेता, तब किसी व्यक्ति के लिये अपने ही शरीर में ॐ के उस नाद का अनुभव करना संभव होता है।* संवेदनशीलता के साथ अनुभव करना एक सूक्ष्म स्तर का बोध है, जहाँ ज्ञानेन्द्रियाँ नहीं पहुँच सकतीं, जहाँ मन एवं उसकी विचार की, कल्पना की क्षमता प्रवेश नहीं कर सकती। वहाँ होती है केवल संवेदनशीलता की सूक्ष्म शक्ति, एक प्रतीति; भावुकता नहीं परन्तु संवेदनशीलता। उस संवेदनशीलता द्वारा हुये बोध को संवेदनशीलता द्वारा हुई उस प्रतीति को प्रकटन कहा जाता है।

वासना रहित मौन

अब, यदि मैं इस विषय को स्पष्ट करने में सफल हुयी हूँ, तो चलिये आगे बढ़ें। ऋषि कहते हैं जो अशान्त मनुष्य हैं, वे जिनके मन कोई शान्ति नहीं जानते, जो सदा उत्तेजित, सदा बेचैन, सदा अस्थिर, सदा अनियमित रहते हैं, वे जिनकी ज्ञानेन्द्रियाँ संयम में शिक्षित नहीं होतीं, विषयों के साथ प्रत्येक सम्पर्क से वे असंयम में जाते हैं। जब इन्द्रियाँ शिक्षित न हों, जब मन स्थिर रहने में शिक्षित न हो, एक दीपक की लौ के समान उसे ऐसी जगह न धरा हो जहाँ हवा के झोंके प्रवेश न कर सकें, तो विषयों के साथ सम्पर्क में आंतरिक संयम नहीं होता। मन को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शान्त तथा ज्ञानेद्रियों को 'समाहितः' अर्थात् स्व-नियंत्रित होना होता है। जब ऐन्द्रिय स्तर पर असंगति अथवा अव्यवस्था नहीं होती, जब ऐन्द्रिय एवं मानसिक के बीच कोई कलह नहीं होती, जब आपके अस्तित्व का मनोभौतिक पहलू सम्पूर्णतः समशील होता है, तब आपको वास्तव में 'समाहितः' अर्थात् शान्त कहा जा सकता है।

यदि मन इच्छाओं, आशाओं, महत्त्वाकांक्षाओं का युद्धक्षेत्र हो और वहाँ अव्यवस्थित विचारों की भीड़ वानरों समान उछल-कूद कर रही हो, ज्ञानेन्द्रियाँ अपने ऐन्द्रिय विषयों की दिशा में प्राकृता समान दौड़ रहीं हों, वहाँ कोई शान्ति, अखंडित शान्ति संभव नहीं होती।* मनुष्य दौड़ते हैं, उनकी इन्द्रियाँ ऐन्द्रिय विषयों की दिशाओं में दौड़ती हैं, मानो वे पशु साम्राज्य के प्राणी हों। वे शान्ति से परिचित नहीं हैं। यदि आपने स्वयं को सहज संयम के सौन्दर्य एवं लालित्य में शिक्षित नहीं किया है तो ॐ के सूक्ष्म नाद का, जो शून्यता का नाद है, जो शून्यता का सार है,उसका अनुभव नहीं किया जा सकता।

'नचिकेता, क्योंकि तुम वासनाओं से मुक्त हो, तुम्हें उस बोध का अधिकार है।' *कृपया मेरे साथ यह जान लीजिये कि मन का वासनाओं रहित होना ही मौन का सार है। केवल वाणी का त्याग अन्तर मौन के संरक्षण का सहायक हो सकता है। मौन का वास्तविक सार तो मन का, चेतना का वासना रहित होना है।*

यदि कोई इच्छा न हो तो आप अपने भौतिक जीवन का संरक्षण कैसे करेंगे ? शरीर की देखभाल करना आपका उत्तरदायित्व है। आप शरीर का भरण-पोषण करते हैं, उसे पहनाते हैं, सुलाते हैं, व्यायाम देते हैं, मस्तिष्क को आवश्यक जानकारी इत्यादि देते हैं। आप यह सब इच्छा के कारण नहीं करते, उसमें इच्छा की कोई गतिविधि नहीं होती, क्योंकि

* *प्राकृता शब्द का उपयोग पशुओं के लिये किया जाता है, मनुष्य जाति संस्कृताहः है, संस्कृताहः पशु हैं। प्राकृता पशु वह है जो पशु रूप में है।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इच्छा तो परम सत्य की खोज में अन्तर्मुखी हो गयी है। इच्छा-अग्नि का अब एक ही उद्देश्य है; परम सत्य की खोज में वह अब प्रकाश के मार्ग का अनुसरण करती है। उसे अब अन्य में रुचि नहीं, वह उसे एक उत्तरदायित्व के भाव को सौंप देती है, जिसे हम शारीरिक आवश्यकताओं के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण कहते आये हैं। शरीर की आवश्यकताओं के लिये प्रबन्ध कीजिये, बिना किसी शिकायत से उनकी ओर ध्यान दीजिये परन्तु वहाँ कोई दमन नहीं, कोई निग्रह नहीं, कोई वंचन नहीं, अतिभोग नहीं, अधीरता नहीं। क्योंकि आन्तरिक समचित्तता, आंतरिक संतुलन, सहजता का लालित्य मौन की गति है। उसे बनाये रखना है। आपका शरीर, आपका मस्तिष्क उस समचित्तता का, उस सहजता का वाहक होना चाहिये।

वैश्विक, मौन के साथ सम्मिलन

ॐ को परम सत्य का प्रतीक, परम तथ्य का नाद कहने पश्चात् , उसके उच्चारण को बोध का मार्ग कहते हुये यम आगे बढ़ते हैं। यमराज कहते हैं, वासना-रहित होने से जो मौन विकसित होता है, वह भी प्रतिबन्धित चेतना का अंश होता है। वह मौन प्रतिबन्धित चेतना का भाग बन जाता है; वह आपके अहम् का, अहम् व्यक्तित्व का भाग बन जाता है। इसीके साथ-साथ, आपके शरीर में, आपके हृदय की गुफ़ा में वह पुरातन, अनादि-अनन्त, नि:शब्द मौन विराजमान है। *आपकी प्रतिबन्धित चेतना के मौन एवं आपके शरीर में बसे वैश्विक मूलतत्त्व रूपी मौन के बीच सम्मिलन (Communion) होता है।* चेतना के मौन एवं शरीर में समाविष्ट जीवन के अनादि-अनन्त मूलतत्त्व रूपी मौन के बीच अब सम्मिलन होता है, क्योंकि शरीर वैश्विक अग्निशिखा को धारण करने का वाहन है। जिस प्रकार एक सूर्य किरण स्वयं में सम्पूर्ण सूर्य को समाये रहती है, उसी प्रकार यह पिंडब्रह्मांड सम्पूर्ण ब्रह्मांड को समाये रहता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्। यह शून्यता, यह अनंतता, यह मौन आत्मन् का, सत्य का स्वरूप है। 'मेरे प्रिय नचिकेता, आत्मा कोई विषय नहीं है। वह तुम्हारे मस्तिष्क का भी विषय नहीं बन सकती, क्योंकि वह कोई प्रत्यय नहीं है। वह तुम्हारी ज्ञानेद्रियों का विषय नहीं है। वह तुम्हारे मस्तिष्क का विषय नहीं है, क्योंकि यह कोई विचार नहीं है। वह मनोभौतिक संरचना के लिये तथ्य नहीं है क्योंकि वह बहुत सूक्ष्म है। मौन के सिवा उस तक कुछ नहीं पहुँच सकता।'

वह आत्मन् , वह शून्यता जिसमें समस्तता अथवा सम्पूर्णता समायी है, वह कभी जन्मी नहीं थी और कभी मरती नहीं है। *अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो।* अजो अर्थात् अजन्मी, अमर, अमिट; शाश्वत वह जो अनादि है; पुराणो वह जो पुरातन है। हे नचिकेता, जीवन घटना एक पुरातन तथ्य है। मनुष्य द्वारा इसके आदिकाल का पता नहीं लग पाया है। नित नवीन एवं अभिनव स्वरूपों में व्यक्त होने की क्षमता के फलःस्वरूप यह अनंत जान पड़ती है। एक अति सुन्दर शब्द का उपयोग किया गया है, यह शब्द है पुराण। लोग समझते हैं कि पुराण का अर्थ रूढ़िवादी अर्थात् पुरातन है। नहीं, पुराण का अर्थ है, वह जिसकी अभिव्यक्ति प्रत्येक क्षण अभिनव है। जीवन कभी पुरातन नहीं होता।

नचिकेता वह आत्मन्, वह तथ्य जो अति सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, निराकार है, निःशब्द है, वह केवल उस नाद द्वारा व्यक्त होता है जिसे ॐ कहा जा सकता है। न जायते म्रियते वा कश्चित; वह आत्मा कभी जन्मी नहीं, न ही कभी वह मरी थी।* तुम ब्रह्मन् को समझना चाहते हो ? ब्रह्मन् शून्यता की नगण्यता के वस्त्र ओढ़े है, वह मौन की निःशब्दता

---

* *यदि मैं इस संस्कृत काव्य का सौन्दर्य आप तक पहुँचा सकूं, तो मैं अति आनंदित होऊंगी। इसमें संगीत है, इस में काव्य है, स्पष्टता के साथ प्रेम की कोमलता है।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धारण किये हुये है।

ध्यानावस्था में परब्रह्मन् की सम्पूर्णता का अनुभव

आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वत:। नि:शब्दता एवं शून्यता में निवास करते हुये भी वह सब जगह पहुँच जाती है। वह सर्वस्व में व्याप्त है, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान है। प्रत्येक अभिव्यक्ति में इसकी पूर्णता झलकती है। अभिव्यक्तियाँ पूर्णता के अंश नहीं होतीं; टुकड़ों को जोड़ कर बनायी गयी पूर्णता मनुष्य रचना है। जीवन की सम्पूर्णता प्रत्येक अभिव्यक्ति में है, चाहे वह घास का तिनका हो अथवा हाथी, पापी हो अथवा संत। वह उसमें झलकती है। वह सत्य, वह परब्रह्मन् , अनश्वरता का वह अमृत, प्रत्येक नश्वर रचना में समाया है।

एवं मत्वा धीर: हर्षो शोक: विमुच्यते । यह क्रियावाची शब्द 'मत्वा' का उपयोग ध्यान के लिये किया गया है। मनस एवं मननं इसके धातु शब्द हैं। नचिकेता तुम उस पर ध्यान करो जो तुम से कहा गया है। *ध्यान एक क्रियारहित अवधान है, वह एक सतर्क एकाग्रता है। यदि तुम ध्यानावस्था में रह सकते हो, तो वही एकमात्र अवस्था है जो समस्तता को स्वयं में सम्मिलित कर सकती है।* जैसे ही मस्तिष्क क्रियाशील होता है, वह किसी सुनिश्चित, विशेष आकार अथवा विषय से संबन्ध बनाता है। मस्तिष्कीय अवधान को किसी विषय पर केन्द्रित होने की आवश्यकता होती है। भौतिक बोध को आवश्यकता होती है एक विषय की, जिसे देखा जा सके, जिसे सुना जा सके। ध्यानावस्था का अवधान किसी ऐन्द्रिय विषय की ओर गतिमान नहीं होता। क्योंकि आत्मन्,वह तथ्य कोई विषय नहीं है; वह आपका सार है। वह अपनी गहराई में उतरना है। अनंतता का स्रोत आपकी ही सत्ता में है; नश्वरता के पिंड में शाश्वत का अमृत है। व्यक्ति एवं व्यक्तित्व के रूप में वह ब्रह्मांड के तथ्य का रहस्य है। हे नचिकेता, ध्यानमार्ग ही एकमात्र मार्ग है, जिसका सुझाव मैं सत्य की खोज के लिये दे सकता हूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्या सीखते हैं हम यम एवं नचिकेता के इस संवाद से ? क्या सीखते हैं हम कठोपनिषद् से ? हम सीखते हैं कि हमारे शरीर, हमारे मन, हमारे मस्तिष्क वह क्षेत्र हैं, जहाँ हमें ब्रह्मन् की, सत्य की खोज करनी है। यहीं, शरीर के क्षेत्र में अनुसंधान करना है, खोज करनी है। ब्रह्मांड ईश्वरीय काया है तथा अभिव्यक्तियाँ ईश्वर की अस्थियाँ है। यहाँ यह क्षेत्र है, जिससे भागना नहीं है। शरीर को एक बाधा मानना नहीं है, अपने प्रतिबन्धनों, अपने अतीत, अपने संस्कारों को सीमाबन्धन मानना नहीं है। यदि आप उन्हें सीमाबन्धनों की दृष्टि से देखते हैं, अपने शरीर को पाप, अपने मन को बन्धन तथा संबन्धों को बाधायें मानते है, तब शरीर के साथ, मन के साथ, तप, वैराग्य, संन्यास इत्यादि के नाम से संघर्ष की मानसिकता रहेगी।

ऐसे संप्रदाय रहे हैं, जिनमें लोग अपने शरीर को यातना देते आये हैं, अपनी मानसिक गतिविधियों का दमन करते आये हैं तथा अपने मस्तिष्क में विचारधाराओं के, सिद्धान्तों के, अलगाववाद के घेरे बनाते आये हैं। उपनिषद् ऐसी किसी पद्धति का सुझाव नहीं देते। उनमें जीवन के प्रति श्रद्धा एक अनिवार्य अंश है। *यदि ईश्वरत्व सर्व व्याप्त हैं, सर्व में पारगम्य है, यदि अनंतता, अमरता जीवन का अमृत है, तब यह स्पष्ट है कि हम अपने शरीर, अपने मन, अपने अतीत से नहीं लड़ सकते। यही क्षेत्र हैं, जहाँ हमें कर्म करने हैं।* हम ही मार्ग हैं, हम ही तीर्थयात्री हैं। अनेकता के मोहक आकर्षण से हट, इच्छा की अग्निशिखा सत्य की एकता की ओर, जीवन के एकत्व की ओर अभिमुख हो जाती है। हम से यही एक अपेक्षा होती है। जब इच्छा-शक्ति अन्तर्मुखी हो जाती है, अनेकता के आकर्षणों एवं प्रतिकर्षणों से मुँह मोड़ लेती है, तब वह स्थिर हो जाती है; तब जिज्ञासा गंभीर हो जाती है।

जब हममें स्थिरता आ जाती है अथवा हम उस स्थिरता तक पहुँच जाते हैं, तब संयम के मूलतत्त्व का पालन संभव होता है। हम आधुनिक लोगों के लिये यह अति कठिन है, क्योंकि हमने मस्तिष्क को परिष्कृत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर लिया है। हमारी समस्त जीवन क्रिया मस्तिष्कीय गतिविधि को इस भीषण सीमा तक अनिवार्य मानती है कि इस तीसरे बिन्दु पर कठिनाई उठती है। कठिनाई पड़ती है स्वयं को सम्मत करने में कि सभी मानसिक गतिविधियों, सभी मस्तिष्कीय गतिविधियों की अब आवश्यकता नहीं है। उनका वहाँ उपयोग हो, जहाँ वे प्रासंगिक हों। उससे अधिक की आवश्यकता नहीं। इच्छा का सहज त्याग कठिन होता है। हममें मस्तिष्क का प्रयोग करने की तथा परम-सत्य को किसी शब्द अथवा विचार में बांधने की इच्छा अति प्रबल होती है।

नैषा तर्केण मतिरापनेया। कठोपनिषद् के ऋषि कहते हैं, इस सत्य को अपने ज्ञान की, तर्क-वितर्क की गतिविधि से नहीं पकड़ा जा सकता। वह आपके तर्क की अवज्ञा करता है। तर्क वाद-विवाद करता है। सैद्धान्तिक विचार धारायें, तर्क-संगत वाद-विवाद, यह समस्त आधुनिक कृत्रिम, परिष्कृत, मस्तिष्कों की विशिष्टतायें हैं। भौतिक एवं सामाजिक जीवन में वे काम आती हैं। सैद्धान्तिक विचारधारा, काल्पनिक विचारधारा, मानसिक उपज, विचारों द्वारा बनायी गयी योजनायें उपयोगी होती हैं, इसलिये उनका व्यसन होता है। *मन एवं मस्तिष्क को पूर्णतः गतिहीन होने दीजिये। वह गतिहीनता संन्यास का सत्त्व है।*

यदि आवश्यकता है, तो मस्तिष्क की इस 'सम्मानित' गतिविधि को प्रसुप्तावस्था में जाने देने की तत्परता की है। हम उसका विरोध करते हैं। यदि 'मैं' वहाँ देखने के लिये नहीं है कि वहाँ क्या होता है, यदि 'मैं' वहाँ जानने के लिये नहीं है किउसके साथ क्या होता है, तब 'मुझे' कैसे जान पड़े कि 'मैं' सही मार्ग पर हूँ। आप जानते ही हैं मस्तिष्कीय गतिविधि पर हमारा विश्वास, उसके मापदंड, उसके प्रतिमान। हमने मानसिक संरचना तथा उसकी क्रिया पद्धति के प्रभुत्व का स्वीकार कर लिया है। क्या आपको पिछले पन्नों में बोध की पद्धति, बोध के साधनों के विषय का वर्णन स्मरण है ? हम उस बोध के साधनों एवं बोध की पद्धति को विश्रान्ति नहीं देना चाहते। ध्यानावस्था उस बोध पद्धति की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanaṣi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विश्रान्ति के सिवा और कुछ नहीं है। जब तक वह बोध की पद्धति प्रचलित है, तथा बोध के उन साधनों का उपयोग किया जाता है,हम विचारों, कल्पनाओं अथवा अनुभवों-चाहे वह गुह्य अनुभव ही हों- की विविधता में जाते हैं। इसलिये हमें स्वयं को शिक्षित करना है, सीखना है। यह योग के अध्ययन का मर्म है। हमें अब धारणा से ध्यान में, ध्यानावस्था में जाना है, जो समाधि के आयाम में विकसित होगी। जहाँ हमारी चेतना आत्मा की शून्यता में प्रतिष्ठित हो जाती है। वह वहाँ निवास करती है तथा उस सर्व सम्मिलित शून्यता से मस्तिष्क,मन एवं इन्द्रियों का उपयोग करती है।

यमराज नचिकेता को उस बिन्दु पर ले आते हैं, जहाँ से ध्यान का मार्ग है। उन्होंने 'सद्म' शब्द का उपयोग किया है। सद्म एक असाधारण संस्कृत शब्द है। इसका एक अर्थ है निवास स्थान, जिसमें आप रहते हैं। अन्य एक अर्थ है मार्ग अथवा द्वार तथा तीसरा अर्थ है सुअवसर। यमराज नचिकेता से कहते हैं, ॐ का स्वर तुम्हें प्रतिबन्धनों की मोटी दीवारों से मुक्ति की राह देगा। नचिकेता, यदि तुम ॐ के इस अश्राव्य नाद में, वह जो तुम्हारे सम्पूर्ण अस्तित्व में प्रतिध्वनित है, उसमें स्थिर हो जाते हो तो वह तुम्हारा आवास बन सकता है। वह जहाँ व्यक्ति का ब्रह्मांड से कोई वियोजन नहीं होता। उस मौन को आवास बनाने के सिवा ध्यान और कुछ नहीं है। सद्म परम धाम है। परब्रह्म का, परम सत्य का इस शून्यता में, मौन की नि:शब्दता में वास है।

जब आपकी सत्ता नाद के इस बोध से तृप्त होगी, तब अमृत का स्रोत आपके लिये होगा। तब अपने शरीर के परिवर्तन, उसकी वृद्धावस्था, उसका छूटना आपको विचलित नहीं करते। आकृतियाँ आती-जाती रही हैं, जन्म लेती, नष्ट होती रही हैं तथा मृत्यु के रूप में मिटती रही हैं। लाखों वर्षों से पुरूष रूप, स्त्री रूप, प्रतिबन्धनों की विविधता संबन्धों की विविधता का क्षेत्र रहा है। आकाश के तारामंडलों समान, उनके अन्त:संबन्ध, उनके पारस्परिक संबन्ध, पारस्परिक क्रिया, अन्तराग्रहिय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रिया के समान मनुष्य जीवन में भी पारस्परिक क्रिया होती है। *आप ने देखा कैसे यह एकांत में गरुड़ की उड़ान है।* हमारे जैसे मनुष्य संगति चाहते हैं, इसलिये भक्ति-योग में प्रतिमा की संगति होती है, धूप जलाना, दिया जलाना, नाम स्मरण, मंत्रोच्चारण इत्यादि होता है। हमें साथ चाहिये इसलिये हम अपने में ही संगीत द्वारा, मंत्रोच्चारण द्वारा, नृत्य इत्यादि द्वारा संगति पैदा कर लेते हैं। हमें साथ रहता है शब्दों का, किसी गतिविधि का,शाब्दिक नहीं तो किसी मानसिक गतिविधि का।

प्रथम अध्याय की दूसरी वल्ली के पच्चीसवें मंत्र में कहा गया है, स्वेच्छा से एकाकीपन को आमंत्रित करना ही मरण का कर्म है, एक विनाशहीन मरण है।

इन विषयों की चर्चा करने में कितना संकोच होता है! मात्र श्रवण करने से यह कितने दूर जान पड़ते हैं, परन्तु प्रतिदिन के जीवन में वे कितने समीप होते हैं! यदि हम उनको समझ सकते हैं, उस समझ को जीने के लिये उनके विषय में श्रवण करते हैं, तब वे बहुत समीप होते हैं। यह रहस्यपूर्ण विषयों में उड़ान लेना हैं। जीवन एक रहस्य है परन्तु रहस्यता नहीं है। आत्मिक विषय होने के नाते, जीवन का एक गुह्य मूल होने के नाते वह एक रहस्य है।

हमारे हाथ में अब एक सुनिश्चित सूत्र है; हमारे पास ॐ है, ॐ का नाद है, ॐ का प्रतीक है, हमारे शरीर में उस नाद की प्रतिध्वनि है। हमारे पास सहायक मापदंड हैं, हमारे पास संगति है, नाद की सहायता है, ॐ के नाद का साथ है। यदि हम इच्छा की गति को अन्तर्मुखी होने का अवसर देते हैं, तो हम मौन की गुफ़ा में प्रवेश कर सकते हैं। *यदि हम मस्तिष्क की गतिविधि को पूर्ण विश्रांति दे देते हैं और गुफ़ा में प्रवेश कर सकते हैं,तो शेष स्वयं परब्रह्म द्वारा संभाल लिया जाता है।*

इस शिक्षा का ऐश्वर्य तो देखिये! नाद सर्जन का मूल कारण होना, नाद जीवन ज्योति का पात्र होना। कैसा ऐश्वर्य, कैसा प्रभुत्व है! जब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैं इनको स्पर्श करती हूँ , इनका प्रभुत्व, इन संवादों का ऐश्वर्य मात्र मुझे अभिभूत करता है। क्योंकि योग के अध्यापक मेरे समक्ष बैठे हैं,मैं इन विषयों की बात करने का साहस बटोर सकती हूँ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नौवाँ संवाद

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रह्मांड की पृष्ठभूमि पर उपनिषद् असंख्य ऊर्जाओं के नृत्य के लिपिबद्ध महाकाव्य हैं। उनके स्तोत्र ब्रह्मांड की सुव्यवस्था एवं समन्वय को समर्पित हैं, जो असंख्य ऊर्जाओं को संयम में रखे हुये हैं। इस समन्वय, सुव्यवस्था एवं आंतरिक संयम का संगीत मौन के आकाश में निःशब्द गूंजता है। शैली काव्य की है तथा पद्धति प्रतीकात्मक विवरण की है। अवर्णनीय आत्मविश्वास के साथ ऋषि-मुनि उस स्वयं सिद्ध किये, जिये हुये सत्य को उद्घोषित करते हैं, जो एक साथ ऐन्द्रिय, मानसिक एवं अधिमानसिक के लिये महत्त्व रखता है।

आपमें से कुछ लोग उपनिषदों से अपरिचित हैं। कुछ ऐसे हैं जिन्होंने उपनिषदों का अध्ययन भारतीय दर्शनशास्त्र के अंश के रूप में किया है, या फिर किन्हीं अतीन्द्रिय सिद्धान्तों का विवरण जान कर किया है। संभव है, इस कारण वे उस सार से चूक जायें, जिसके लिये उपनिषदों की रचना हुयी है। हम उपनिषदों का विशेषतः कठोपनिषद् का अध्ययन कर रहे हैं, क्योंकि यह योग के विज्ञान का स्रोत है। यदि हम योग प्रदीपिका अथवा पातंञ्जल योग सूत्र के विज्ञानों को उपनिषदों की ब्रह्मविद्या पर आधारित नहीं समझेंगे, तो वह शारीरिक एवं मानसिक व्यायाम बन कर रह जायेंगे। भगवत्गीता के प्रत्येक अध्याय के अंत में कहा गया है 'ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे'; योग की नींव ब्रह्मविद्या में है।

सत्य की खोज में बुद्धि का स्थान

परम सत्य को बुद्धि द्वारा जानना होता है, आन्तरिक अनुसंधान द्वारा उसका अनुभव करना होता है। बोध के प्रकाश द्वारा उसके साथ सम्पर्क रखना होता है और फिर प्रत्येक संबंध में उसे अभिव्यक्त करना होता है। बुद्ध वह नहीं जिसने ब्रह्मन् के विषय में सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त कर लिया है। ब्रह्मविद् वह है जिसने उसका बोध अपने ही शरीर में, अपने मस्तिष्क में,मन में कर लिया है और उसे दैनिक संबंधों में जी रहा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। इस स्पष्टीकरण की आवश्यकता समझी गयी, क्योंकि कठोपनिषद् कहता है- *नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।* उस सभ्यता के लिये यह वक्तव्य अति आश्चर्यजनक है, जिसमें मस्तिष्क एवं मन की भूमिका पर अत्यधिक बल दिया जाता है, उन्हें अनावश्यक महत्त्व दिया जाता है। यहाँ उपनिषद् कहता है, इस सत्य को पाना, उस तक पहुँचना ऐसे व्यक्ति के लिये संभव नहीं है, जो अपनी शक्ति ब्रह्मन् के शाब्दिक विवरण मात्र में व्यय करता है।

प्रवचनम् का अर्थ है वाणी द्वारा व्याख्यान, क्रमबद्ध, सुव्यवस्थित व्याख्यान। ऐसे प्रवचन अथवा व्याख्यान अध्ययन का, स्वाध्याय का भाग होते हैं। जब शिष्य गुरु के साथ अपना अध्ययन समाप्त कर लौटने को तैयार होता है, तो आचार्य उससे कहता है, स्वाध्याय प्रवचनात् मा प्रमदितव्यः; स्वाध्याय में चूक नहीं करना, शाब्दिक स्तर पर अध्ययन करना, ऐन्द्रिय स्तर पर अध्ययन करना। आप जो अध्ययन करते हैं, उसे ऐन्द्रिय गतिविधियों के व्यवहार में लाने को स्वाध्याय करना अथवा अभ्यास करना कहा जाता है। पन्नों पर लिखे शब्दों को मस्तिष्क पर उतारना स्वाध्याय नहीं है। जब तक स्वाध्याय का जीवन में पालन न किया जाये, वह अधूरा रहता है। जीवन, ज्ञान को व्यवहार में लाने का, समझ को व्यवहार में लाने का क्षेत्र है। प्रवचनेन-अभ्यास; जो आपने समझा है, जो आपने जिया है, आपको उसे दूसरों के साथ बाँटना भी आना चाहिये। प्रवचन का अर्थ है दूसरों के साथ बाँट पाना।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। वे जो केवल व्याख्यान देते हैं और जो ऐसे व्याख्यान सुनते हैं, उन्हें यथार्थता उपलब्ध नहीं होती। मेधा, बुद्धि तत्त्व का एक भाग है। बुद्धि, मेधा, प्रज्ञा, स्मृति इत्यादि बुद्धि तत्त्व के सात भाग हैं। बुद्धि तत्त्व एक विशाल शक्ति है। फिर भी ऋषि कहते हैं, केवल बुद्धि तत्त्व द्वारा, केवल विद्वत्ता द्वारा यथार्थता तक नहीं पहुँचा जा सकता। मात्र बुद्धि द्वारा यथार्थता बोधगम्य नहीं होती, उसका अनुभव नहीं किया जा सकता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्मांड एवं पिंड में यज्ञ

यथार्थता के बोध के लिये किसकी आवश्यकता होती है ? अब उपनिषद् की भूमिका आती है। जैसे ब्रह्मांड एक यज्ञ है, आप भी जीवन को एक यज्ञ मानिये। अपने सत्त्व से आवरण को हटा अव्यक्त ब्रह्मांड के स्तर पर यज्ञ करता है। ब्रह्मांड शक्तियों के स्वयं को व्यक्त करने का, सजीव एवं निर्जीव जगत के पोषण का क्षेत्र है। ब्रह्मांड एक यज्ञ है, जो चलता आ रहा है। हमारे चारों ओर, हमारे ऊपर घूमते हुये सूर्य एवं चन्द्रमा दिन एवं रात का, धूप एवं छाँव का खेल करते हैं। जो इस ग्रह पर रहते हैं, उनके पोषण के लिये अपनी शक्तियों को उंडेल कर वे यज्ञ करते हैं। अव्यक्त यज्ञ करता है और अपने ही सत्त्व से, अस्थियों से व्यक्त जगत् को जन्म देता है। उसी प्रकार हमारा शरीर, यह पिंडब्रह्मांड ,यह छोटा सा जगत् यज्ञ करने का क्षेत्र है।

यदि उपनिषदों के इस संदेश से पहचान हो गयी हो तो हम समझ सकेंगे, क्यों बौद्धिक ज्ञान अथवा वाणी में उसका प्रयोजन, या फिर उसका श्रवण मात्र जीवन के रहस्यों का, जीवन के मर्म का प्रकटन नहीं करता। *रहस्यों का प्रकटन अथवा गुह्य का रहस्योदघाटन, आपकी निम्न शक्तियों का उच्च शक्तियों में रूपांतरण की माँग करता है।* जब तक आप उस बिन्दु पर नहीं पहुँच जाते जहाँ उससे आगे और कुछ नहीं होता, तब तक यह रूपांतरण आवश्यक होता है। शक्तियों के रूपांतरण द्वारा, जिसे प्रतीकात्मक भाषा में यज्ञ कहते हैं, उसीके द्वारा रहस्य का प्रकटन होता है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम्॥

वह व्यक्ति जिसे सत्य से प्रेम हो जाता है, वह परम सत्य को मस्तिष्कीय महत्वाकांक्षा के लिये नहीं खोजना चाहता। वह सत्य को इसलिये नहीं चाहता, क्योंकि दूसरों द्वारा ऐसा किया गया है तो उसे भी अवश्य करना चाहिए। उसे सत्य से प्रेम हो जाता है। उसका भले जो भी परिणाम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो, अपना प्रयास अपनी शक्ति लगाने का जो भी फल हो उसे इसकी परवाह नहीं होती। वह सत्य इसलिये खोजता है क्योंकि उसे सत्य से प्रेम हो जाता है । *वह सत्य को जानना चाहता है, एक अनिवार्यता के रूप में नहीं, एक महत्त्वाकांक्षा के रूप में नहीं, परन्तु वह खोज उसके सम्पूर्ण सत्त्व को प्रज्वलित करने वाली मूल प्रेरणा बन जाती है।* 'यमेवैष वृणुते'; वह जिसे ब्रह्मन् से, सत्य से प्रेम हो जाता है, प्रकृति की अनेकता उसे आकर्षित नहीं करती, वह अनेकता उसका मार्ग नहीं रोकती । प्रेम की शक्ति के साथ वह दृश्य का, व्यक्त का भेदन करता है तथा उसके स्रोत तक, मूल तक पहुँचना चाहता है। ऐसे व्यक्ति को जीवन रहस्य प्रकट करता है । वह व्यक्ति जो सत्य से प्रेम करता है, उसकी संवेदनशीलता के समक्ष सत्य अपनी गौरवमय अनावृत केवलता में आ खड़ा होता है। यह समय नहीं है, यह अवसर नहीं है अज्ञात के साथ तथा अज्ञेय के साथ रोमांस के वर्णन में जाने का । उसे यज्ञ कहा गया है ।

समन्वय एवं सुव्यवस्था का अमृत

पिंडब्रह्मांड के क्षेत्र में, अपने शरीर, मस्तिष्क इत्यादि के क्षेत्र में यज्ञ करना कैसे आरम्भ किया जाये ? *ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके, छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति।** ये दो पंक्तियाँ नितांत महत्वपूर्ण हैं । सीमित समय में, संक्षेप में इन का अर्थ आप तक पहुँचाना मेरे लिये कुछ कठिन हो रहा है। 'ऋतम्' एक सुन्दर शब्द है । हमारे ध्येय के लिये ऋतम् का अर्थ ब्रह्मांड की व्यवस्था है । ब्रह्मांड में विशिष्टता युक्त एवं विशिष्टता रहित अभिव्यक्तियाँ होती हैं । पृथ्वी,जल, अग्नि, वायु, आकाश अविशिष्ट हैं; ये व्यक्त जगत में सर्वव्यापक तत्त्व हैं । विशिष्टता युक्त अथवा व्यक्तित्व युक्त क्या है ? विशेष पदार्थ, जैसे पर्वत, नदियाँ, सागर, खनिज, वनस्पति साम्राज्य, पक्षी, पशु, मनुष्य इत्यादि व्यक्तित्व युक्त हैं; इनकी

* *पहले अध्याय की द्वितीय वल्ली को समाप्त कर अब हम तीसरी वल्ली आरम्भ कर रहे हैं।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशिष्टता है। इनकी एक प्रकार की पृथक्ता है, आप इनकी गणना कर सकते हैं। आप इनको माप सकते हैं, इनमें गुणात्मक, गणनात्मक भेद कर सकते हैं। इस प्रकार ब्रह्मांड में अव्यक्त जीवन के तत्त्व हैं तथा जीवन के व्यक्त स्वरूप हैं। इन अविशिष्ट तत्त्वों में तथा विशिष्ट स्वरूपों में एक आन्तरिक व्यवस्था एवं समन्वय होता है, जिसे ऋतम् कहा जाता है, जिसे अनश्वरता का अमृत कहा जाता है। ऋतम् अमृतम् इति। शंकराचार्य, वेदान्त अथवा अद्वैत के संस्थापक एवं व्याख्याता, ऋतम् शब्द का भावार्थ अमृत से लगाते हैं; वह जो शाश्वत है, सुव्यवस्थित है, समन्वय का अमृत है।

सुव्यवस्था एवं समन्वय असंख्य ऊर्जाओं के नृत्य पर नियंत्रण रखते हैं, उन्हें यथास्थान रखते हैं, उन्हें क्रियाशील होने का क्षेत्र देते हैं। वही वैश्विक व्यवस्था एवं वैश्विक समन्वय हमारे शरीर में भी समाये हैं। जैसे हम उसे अपने चारों ओर विश्व में देखते हैं, यदि हम अपने अन्तर में देखें तो हमें वही सुव्यवस्था एवं समन्वय का तत्त्व मिलेगा, जो संयम है। समन्वय संयम की सुगन्ध है, सुव्यवस्था संयम की भाषा है। हमें यह अपने शरीर में मिलेगी। ऋषि कहते हैं, यह उपनिषद् कहता है, जब कोई आकृति अव्यक्त से व्यक्त होती है, वह उस सुव्यवस्था एवं समन्वय के तत्त्व को लिये रहती है। प्रत्येक प्राणी जो जन्म लेता है, वह समन्वय एवं व्यवस्था के पहलुओं को समाये रहता है।

लोक का अर्थ है ब्रह्मांड। दूसरी ओर इसका अर्थ है आपका शरीर, जो एक लोक है। यह शरीर, जिसमें समन्वय एवं व्यवस्था के तत्त्व क्रियाशील रहते हैं, उसमें द्वैत का आभास होता है। कौन कहता है यह ? ब्रह्मविदो वदन्ति। वह जिसने बोध कर लिया है, जान लिया है। जो वैश्विक सुव्यवस्था एवं समन्वय के साथ सहभागिता में जिया है। ऋषि, जिन्होंने इस उपनिषद् का ग्रन्थ लिखा है, उनकी विनम्रता देखिये। वे कहते हैं 'ब्रह्मविदो वदन्ति'। ऐसा उनके द्वारा कहा गया है, जो बोद्धि हैं, मुक्त हैं, रूपान्तरित मनुष्य हैं। क्या कहते हैं वे? वहाँ प्रकाश एवं छाया के दो तत्त्व हैं। छाया है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्धकार तथा आतप: है प्रकाश। सुव्यवस्था एवं समन्वय तत्त्व, वैश्विक व्यवस्था तथा समन्वय प्रत्येक जन्मे हुये स्वरूप में समाविष्ट हैं। वह प्रकाश एवं अन्धकार के तत्त्वों के रूप में क्रियाशील रहते हैं। मूल संस्कृत भाषा में यह एक अद्‌भुत, एक सुन्दर अभिव्यक्ति है।

छाया तत्त्व एवं प्रकाश तत्त्व

अब हमें देखना है, हमारे शरीर में यह छाया तत्त्व तथा प्रकाश के तत्त्व क्या हैं ? वहाँ ब्रह्मांड में सूर्य एवं चन्द्रमा की गतिविधि प्रकाश एवं छाया का खेल करती है। इसी मूल को समस्त सौर परिवार, चौबीस सूर्यों,चौबीस सौर परिवारों, अन्तरग्रहीय पारस्परिक संबन्धों पर, तारामंडलों पर लागू कर देखिये। उपनिषद् जीवन के विज्ञान हैं। आप भौतिक विज्ञान को अ-भौतिक विज्ञान से अलग नहीं कर सकते। उनको अलग-अलग विभाग मान कर, उनका अलग-अलग अध्ययन नहीं कर सकते। वह एक सम्मिलित सम्पूर्णता में, जीवन की अविभाज्यता में गूंथे हैं। एक प्रतीकात्मक उदाहरण देते हुये ऋषि कहते हैं, ब्रह्मांड में प्रकाश एवं अन्धकार का खेल होता है। आपने देखा नहीं है,आकाश में क्रियाशील हो सूर्य कैसे दिन का प्रकाश देता है तथा पृथ्वी ग्रह के साथ परस्पर संबन्ध से रात का अन्धकार लाता है।

मनुष्य शरीर में वह सूर्य क्या है और वह छाया तत्त्व, वह रात का अन्धकार क्या है ? इसके लिये अपने दैनिक जीवन के एक सच्चे, सरल, प्रत्यक्ष अवलोकन की आवश्यकता होती है। आप जानते हैं, जिन्हें आप जीवन के छोटे-बड़े विवरण कहते हैं, उन्हींमें रहस्य का प्रकटन होता है। हमारे अन्दर हो रही सूक्ष्म गतिविधियों से जीवन का रहस्य पकड़ा जा सकता है। *प्रकाश के लिये हमें शरीर से दूर जाने की, शरीर से बाहर जाने की आवश्यकता नहीं होती।*

जब तक पहले मंत्र की सहायता से तीसरे अध्याय का आधार सही ढंग से नहीं बना लिया जाता, हम अन्य किसी मंत्र की ओर नहीं बढ़ सकते। जागृत चेतना प्रकाश तत्त्व का स्वरूप है। जब आप जागृत होते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं, आप सचेतन कर्म की क्षमता रखते हैं। आप जीने का प्रयास, दूसरों के साथ पारस्परिक कर्म का प्रयास बुद्धि की सहायता से, सचेतन कर्म से करते हैं। परन्तु आपके ही अन्तर, आपकी चेतना में धुँधले अंश भी होते हैं। सचेतन कर्म में, जागृत अवस्था में आप अपना सर्वश्रेष्ठ स्वरूप दिखाते हैं। परन्तु आपके मन की गुह्य गहराईयों में एक धुँधला अंश भी होता है, जिसे आप दूसरों की नज़र में नहीं आने देना चाहते। आप नहीं चाहते कि आपकी प्रज्ञा की भी नज़र उस पर पड़े। काम, लोभ, संशय, निर्दयता, क्षुद्रता, कितने ही ऐसे विषय पड़े हैं वहाँ; वे भी आपके मन के अंश हैं। आपकी जागृत चेतना में प्रकाश एवं छाया का नृत्य चलता रहता है। आप उसे छुपाने का प्रयास करते हैं, आप दमन का भी प्रयास करते हैं। आप छुपा नहीं सकते क्योंकि आप के कर्म तथा संबन्ध वह क्षेत्र हैं, जहाँ सब कुछ प्रतिबिम्बित होता है। संभव है आप उनसे अवगत न हों। ऋषि कहते हैं यह छायातपौ, यह छाया एवं प्रकाश के तत्त्व, आपकी ऐन्द्रिय एवं मानसिक स्तर की प्रत्येक गतिविधि में प्रतिबिम्बित होते हैं। छाया तत्त्व सुव्यवस्था एवं समन्वय के विरुद्ध विद्रोह का प्रयास करता है। आपके अधिमान, पूर्वग्रह, आपकी रुचियाँ, अरुचियाँ, समन्वय के विरुद्ध विद्रोह का प्रयास करती हैं।

भूख का आवेग शरीर में समायी एक शक्ति है, प्यास का आवेग एक अन्य शक्ति है, निद्रा में भी शक्ति है, काम में शक्ति है। ज्ञानेन्द्रियों में प्रबल आवेग के रूप में जो शक्तियां हैं उन्हें शिक्षित करना पड़ता है, उन्हें उचित व्यवहार सिखाना पड़ता है। मन एवं बुद्धि को उन पर नियंत्रण रखना सिखाना पड़ता है, उनका तिरस्कार किये बिना उनकी शक्तियों का समन्वय करना पड़ता है। पाँच ज्ञानेन्द्रियों एवं उनकी शक्तियों में समाये समन्वय तत्त्व को व्यक्त होने देना पड़ता है, अन्यथा ज्ञानेन्द्रियों में समाये आवेग तूफान उठा सकते हैं। वे आपको एक साथ पाँच विभिन्न दिशाओं में खींच सकते हैं। ऐसे में होगी विध्वंसता, एक उपद्रव, एक अव्यवस्था। इसलिये बुद्धि प्रकाश का तत्त्व होती है, क्योंकि वह समझ सकती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बुद्धि की सहायता के लिये मन है क्योंकि उसमें प्रेरणा शक्ति है। बुद्धि विश्लेषण करती है तथा निर्णय लेती है तथा मन गति प्रदान करता है। बुद्धि एवं मन में समाये प्रकाश के इस संयुक्त तत्त्व को ज्ञानेन्द्रियों के नियंत्रण, उनकी शक्तियों के समन्वय केलिये, एक आंतरिक व्यवस्था बनाने में शिक्षित करना पड़ता है। कृपया इसकी सुन्दरता को पहचानिये।

समझ एवं समन्वय की वेदी पर, ज्ञानेन्द्रियों में समाये नैतिकता रहित आवेगों का परित्याग करना पड़ता है। इससे आप दोनों को शिक्षा देते हैं। एक ओर आप मन एवं बुद्धि को शिक्षित करते हैं,तो दूसरी ओर ज्ञानेन्द्रियों को शिक्षित करते हैं। इससे, जीने के कर्म में कोई संकट लाये बिना छाया तत्त्व एवं प्रकाश तत्त्व मिल कर काम करते हैं। शारीरिक आवेगों की निन्दा करने से, उनको कोसने से, उनको पाप कहने से कोई लाभ नहीं होता। कितने ही धर्मसंघ काम की ईश्वरता, भूख की ईश्वरता, निद्रा एवं प्यास की ईश्वरता को नहीं समझते, वे कहते हैं शरीर एक पार्थिव वस्तु है, सांसारिकता है। परन्तु आप तो उसमें हैं, आप उस शरीर में हैं; शरीर आपका आवरण है। अव्यक्त एवं व्यक्त को एक साथ रहना होता है। यह है 'छायातपौ' का दूसरा पहलू। यहाँ प्रकाश एवं छाया का अर्थ ऐन्द्रिय एवं मानसिक के संबन्ध में है।

आईये, अब इसे तीसरे पहलू से देखें। मैं स्वयं को तीन दृष्टिकोणों तक ही सीमित रखूंगी, अन्यथा हम पूरा दिन विविध पहलुओं को देखने में व्यतीत कर सकते हैं, क्योंकि विभिन्न पहलुओं को देखने से स्पष्टता आती है। तीसरे पहलू के अनुसार, वह प्रकाश का तत्त्व, जागरुकता का तत्त्व, सुसंस्कृत, परिष्कृत, शिक्षित मस्तिष्क अथवा बुद्धि से भी परे है। ऋषि कहते हैं इन्द्रियों की तुलना में बुद्धि प्रकाश तत्त्व है परन्तु प्रेम, शान्ति, जागरुकता की लौ एवं मुक्ति तत्त्व की तुलना में बुद्धि छाया तत्त्व है। वह बोध, जो भौतिक ऊर्जा का भाग नहीं है, उसकी तुलना में बुद्धि तत्त्व धुँधला होता है। यह जागरुकता न तो ऐन्द्रिय ऊर्जा है न ही वह मस्तिष्कीय ऊर्जा है। यह तांत्रिकीय रसायनिक ऊर्जा तो है ही नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह वैश्विक शक्ति का सार है, जो शुद्ध एवं सहज है।

बुद्धि द्वारा, मस्तिष्क द्वारा प्राप्त किये गये ज्ञान को प्रेम की वेदी पर अर्पित करना पड़ता है। जब बोध की आवाज़, अन्तर आत्मा की आवाज़ आपसे कहती है कि आप कुछ गलत कर रहे हैं, तो आपकी बुद्धि उसका बचाव करना चाहती है, उसकी सफाई देना चाहती है। उपनिषद् कहता है हेर-फेर का त्याग कर, उन रूखे बौद्धिक सिद्धान्तों का अन्तर आत्मन् की वेदी पर परित्याग कीजिये। अन्तर आत्मन् की आवाज़ बोध की आवाज़ है, आन्तरिक विश्व की सुव्यवस्था की, 'ऋतं' की, समन्वय तत्त्व की आवाज़ है। प्रेम समन्वय करता है। मस्तिष्क एवं बुद्धि असमन्वय एवं अव्यवस्था पैदा कर सकते हैं। क्या आप देखते नहीं है, कैसे लड़ाइयाँ- झगड़े, दंगे चतुर मस्तिष्कों द्वारा पैदा किये जाते हैं। परिवारों में, संस्थाओं में, राज्यों में, राष्ट्रों में, धर्म के, राजनीति के नाम से हेर-फेर, फेर-बदल किये जाते हैं। आप जानते हैं, जहाँ कहीं भी मस्तिष्क स्पर्श करता है, वहाँ वह संघर्ष पैदा कर सकता है, वह अलगाव पैदा कर सकता है। जहाँ कहीं अधिमान एवं पूर्वग्रह, पसंदगियाँ व नापसंदगियाँ स्पर्श करती हैं, वहाँ वे विभाजन पैदा करती हैं। देखा, क्यों इन्हें छाया तत्त्व कहा जाता है?

प्रेम विभाजन नहीं करता, वह जोड़ता है। प्रेम बाँधता नहीं, वह मुक्त करता है। हमारे अन्दर समन्वय का वैश्विक तत्त्व, शान्ति के लिये उत्कंठा पैदा करता है। *वह समन्वय एवं व्यवस्था का वैश्विक तत्त्व है, जो प्रेम के लिये एक अकथित उत्कंठा पैदा करता है, जो प्रेम चाहता है, उसे अभिव्यक्त करता है। यह उस समन्वय एवं व्यवस्था के तत्त्व की भूख है।* इसलिये शारीरिक, जैविक आवेगों के परित्याग का आशय, मन एवं मस्तिष्क की सहायता से सुमिलित होनेसे है। ज्ञान के, अनुभवों के, बुद्धि एवं मन की भावनाओं के बलिदान आवश्यक होते हैं। इसका अर्थ है अन्दर समायी बोध की, प्रेम की शक्ति से, संयोजक अनुभव की सहायता से जीवन में समन्वय लाना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब यदि यह तीन पहलू स्पष्ट हैं, तो हम पुनः मंत्र पर ध्यान देते हैं। ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके; शरीर में समायी इस वैश्विक व्यवस्था एवं समन्वय के अमृत पर ज्ञानेन्द्रियां अधिकार करना चाहती हैं, वे उस अमृत का पान करना चाहती हैं। पिबन्तौ के मूल शब्द पिब् का अर्थ है पीना। इन्द्रियाँ, ऐन्द्रिय सुख, आपके शरीर को, सम्पूर्ण मन-मस्तिष्क को, सर्वस्व को बन्दी बनाना चाहते हैं और फिर समझ एवं बोध भी उनको पकड़ना चाहते हैं। दोनों एक साथ वहाँ होते हैं। आपके लिये एक द्वैत है, द्वैत भी नहीं, आपकी सत्ता का यह एक द्विगुण पहलू है। यह मनुष्य की नियति है क्योंकि आप हाड़-मांस के साथ जन्मे हैं, आपने मनुष्य देह में जन्म लिया है, जो एक पशु रूप है। केवल जब पशुता का रूपांतरण होता है, तब आप वास्तव में मनुष्य नाम के योग्य बनते हैं। ऐन्द्रिय आवेग, जिनमें ज़बरदस्त संवेग रहते हैं, वे आपको बाध्य कर सकते हैं। बाध्यकारी यौनसंबन्ध, बाध्यकारी भक्षण, बाध्यकारी निद्रा, बाध्यकारी वाणी का उपयोग, इनमें भयंकर बल होता है। इसलिये ऐन्द्रिय ऊर्जाओं को मन एवं बुद्धि की सहायता से शिक्षित एवं सुमिलिंत करना पड़ता है, तथा मन एवं मस्तिष्क के विषयों में प्रेम एवं बोध की सहायता से समन्वय लाना होता है। यह त्रिविध अग्नि है, नचिकेता अग्नि है, जिसे दैनिक जीवन में प्रज्वलित करना होता है। हमें, हम सब को प्रतीकात्मक ढंग से गृहस्थ कहा जाता है, क्योंकि हमें एक घर की व्यवस्था देखनी होती है, घर के कितने ही सहवासियों की देख-भाल करनी होती है। एक गृहस्थ को पञ्चाग्नि प्रज्वलित करनी पड़ती है, उसे यज्ञ करना पड़ता है। उसे पाँच प्रकार की अग्नि तथा त्रिविध अग्नि-त्रिणाचिकेता अग्नि- प्रज्वलित करनी होती है। यह पञ्चाग्नि क्या है ? पाँच इन्द्रियाँ तथा उनमें समायी ऊर्जायें अग्नि हैं।

त्रिणाचिकेता अग्नि द्वारा पञ्चाग्नि पर संयम

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके, छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति। पाँच इन्द्रियों की वेदी पर, पाँच प्रकार की अग्नि से परिचित, आप उन्हें उचित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ढंग से संभालते हैं, आप उन्हें पूरे स्थान को नहीं जलाने देते। आप एक गृहस्थ हैं, आपको उन ज्वालाओं की देख-भाल करनी है। पूर्व काल के हिन्दू घरों में पाकघर की अग्नि को गार्हपत्य अग्नि कहा जाता था, अन्य हैं दक्षिणाग्नि, आहवनीयाग्नि, अवस्थाग्नि, सभ्याग्नि। एक गृहस्थ को इन पाँच प्रकार की अग्नि की देख-भाल करनी होती थी। पाकघर की अग्नि पवित्र होती है। आपको उसे संभालना पड़ता है, वह आपके लिये भोजन पकाती है वह आपका भरण-पोषण करती है। एक गृहस्थ के रूप में हम इन्द्रियों की पञ्चाग्नि की देखभाल बुद्धि, मन, एवं बोध की त्रिविध अग्नि की सहायता से करते हैं। यह कहने का काव्यात्मक ढंग है,ताकि विषय बहुत दुर्बोध न हो जाये।

यदि मैं पहला मंत्र स्पष्ट करने में सफल हुयी हूँ, तो चलिये दूसरे मंत्र की ओर। पाँच इन्द्रियों के स्तर पर अग्नि जलायी जाती है और फिर अपनी बुद्धि एवं मन के स्तर पर अग्नि के सेतु बनाये जाते हैं। कृपया, ऋषियों की संवेदनशीलता का विस्तार देखिये। वे क्लेश एवं दु:ख के सागर को पार करने के लिये, अग्नि कें सेतु बाँधने की बात कर रहे हैं। *वे जो सत्य की खोज में अभिरुचि रखते हैं, उन्हें अपने शरीर में अग्नि के सेतु बांध, पीड़ा एवं दु:ख के सागर पार करने होते हैं।* यमराज अब हमें सिखा रहे हैं, कैसे उस निरन्तर वेदना एवं दु:ख को पार किया जाये जो हमारे दिन-प्रतिदिन के जीवन का सूचक है। संबन्धों की गतिविधियों में मानसिक पीड़ा से मुक्त होने के सिवा मुक्ति और कुछ नहीं है। यमराज, नचिकेता से कह रहे हैं, आओ अपने ही शरीर में अग्नि प्रज्वलित करने का साहस करें।

मुझे एक दो क्षण और दीजिये। ऐन्द्रिय स्तर पर, अग्नि जलाने के लिये आप के श्वासों का लेना एवं छोड़ना ईटें हैं। पाँच इन्द्रियों की अग्नि श्वास की ईंटों द्वारा सुरक्षित रहती है। एक दिन में आप हज़ारों श्वास लेते और छोड़ते हैं। आप श्वासोच्छवास का उपयोग शरीर की अग्नियों की सुरक्षा के लिये करते हैं। यह धारणा एवं ध्यान संबन्धित प्राणायाम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। मुक्तजनों के शब्दों से एकत्रित विचारों एवं आदर्शों का ईंटों स्वरूप उपयोग कीजिये। मुक्तजनों के संदेशों का मानसिक स्तर पर, बोध की अग्नि के संरक्षण के लिये उपयोग कीजिये। मुक्तजनों के प्रवचनों का ईंटों स्वरूप क्यों उपयोग किया जाये ? क्योंकि, इन्द्रियों के आवेग पुनः आपके मन को खींच ले जा सकते हैं। मन की प्रेरणा शक्ति की सहायता के बिना आवेग गति नहीं ले सकते। इसलिये वे मन को निचले स्तर पर खींचने का प्रयास करेंगे। मन को ऐन्द्रिय आवेगों के प्रहार से बचाने की आवश्यकता है, नहीं तो वे मन को खींच ले जायेंगे, शरीर को ऐन्द्रिय विषयों की ओर खींच ले जायेंगे। आप प्रवाह में बह जाते हैं; आपकी समस्त समझ, जो आपने शाब्दिक ज्ञान द्वारा एकत्रित की थी, एक क्षण में बिखर जाती है। राग, द्वेष, अभिनिवेश, आपकी बुद्धि को भी खींच ले जाते हैं। आपकी समझ, आपके निश्चयों, आपके संकल्पों को हवा मे फेंक दिया जाता है। मुक्तजनों के वचनों द्वारा उनका संरक्षण कीजिये, उस समझ द्वारा, जो आपने उनसे प्राप्त की है। *हे नचिकेता, आओ हम इन अग्नियों के संरक्षण का साहस रखें। ताकि हम निर्भयता से उस अग्नि का उपयोग, दुःख एवं पीड़ा के पार जाने के लिये, सेतु बनाने के लिये कर सकें।*

पाश्चात्य साहित्य में भी रहस्यानुभवी रहे हैं, जिन्होंने अग्नि के सेतु बनाने का वर्णन दिया है, जिन्होंने अग्नि की बात का ऐसा स्वरुप प्रकट किया है। ऐसे रहस्यानुभवी हैं, जिन्होंने इस अग्नि की भाषा का उपयोग किया है-अग्नि का पोषण करना, अग्नि का पान करना, स्वयं को तथा संतान को अग्नि का पोषण कराना इत्यादि, इत्यादि। हम उस सब में नहीं जाते। आप हेरिक्लायटस को पढ़ सकते हैं, प्लॉटिनस एवं प्लेटो की सहायता ले सकते हैं। संभवतः आपको यहूदी धर्म में संदर्भ मिलें, जहाँ इस पवित्र अग्नि के प्रसंग आते हैं, अग्नि द्वारा दीक्षित होना, जल द्वारा दीक्षित होना। सत्य की ओर संकेत करने के ये प्रतीकात्मक ढंग हैं। जब सत्य को अन्योक्तियों द्वारा, प्रतीकात्मक भाषा द्वारा ढक दिया जाता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, तब हमारे जैसे सामान्य जन इस सत्य की दीप्ति को सहन कर सकते हैं।

सेतु बाँध लिया गया है। अग्नि प्रज्वलित कर ली गयी है, काम-शक्ति को मानसिक में, मानसिक को मस्तिष्कीय में, बौद्धिक में, तथा बौद्धिक को बोध एवं प्रेम की अग्नि में रूपांतरित करने का मार्ग भी दिखा दिया गया है।

ईश्वर के साथ सक्रिय सहभागिता में विकसित होना

मेरे विचार से, तीसरे मंत्र में कठोपनिषद् के ऋषि पाठकों के साथ थोड़े दयालु हैं। अभी तक हम ही ब्रह्मांड थे, पिंड में प्रकाश एवं छाया तत्त्वों को समाये हुये थे, इत्यादि, इत्यादि। अब वे कहते हैं, हमारा यह शरीर एक रथ है, बुद्धि उस रथ का संचालन कर रही है, बुद्धि के हाथों में मन की लगाम है तथा इन्द्रियाँ अश्व हैं। एक रथ की उपमा है। वैश्विक सत्य, ऋतम्- समन्वय एवं सुव्यवस्था -उस रथ में सवार हैं। समन्वय एवं सुव्यवस्था की वैश्विक शक्तियाँ, उसमें आरोही हैं। बुद्धि रथ का संचालन कर रही है, ज्ञानेन्द्रियाँ अश्व हैं, और मन की प्रेरणा शक्ति वह लगाम अथवा बागडोर है। नचिकेता, हमें अपने शरीर को एक रथ के रूप में देखना है। वह जो उस रथ की सवारी कर रहा है, वह भी हमारे शरीर में है, जो उसका संचालन करता है वह भी हमारे शरीर में है। ज्ञानेन्द्रियों के विषय वे मार्ग हैं, जिन पर इन्द्रियों के अश्व दौड़ रहे हैं।

बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।
आत्मान ँ रथिनं विद्धि शरीर ँ रथमेव तु॥

ग्रह शब्द मन के लिये है, लगाम के लिये है। एक सुन्दर शब्द है। वह, जिसके द्वारा आप अश्वों की शक्तियों का अतिक्रमण अथवा तिरस्कार किये बिना नियंत्रण करते हैं। आप उन पर मात्र नियंत्रण रखते हैं,एक योगी बहुत शालीनता से उन पर नियंत्रण करता है, उसने समन्वय कर लिया है। यदि आपने कभी घुड़सवारी की है तो आप यह उपमा समझ लेंगें। आपके शरीर की क्रिया तथा अश्व की गति सुमेलित हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाती है।*

ज्ञानेन्द्रियों को अश्व कहा गया है- इन्द्रियाणि हयान आहु:। अश्व को हय कहा जाता है। *ज्ञानेन्द्रियाँ अश्व हैं, जिन्हें आत्मा के लिये, रथ के स्वामी के लिये, बुद्धि के निर्देशन में मन द्वारा नियंत्रित किया जाता है।* यदि मन बुद्धि के निर्देशों का पालन नहीं करता, तो अश्व उपद्रवी हो जाते हैं, अनियंत्रित-दुष्टाश्वा-हो जाते हैं और रथ को जहाँ चाहें खींच ले जाते हैं। बुद्धि रथ को जहाँ ले जाना चाहती है वे वहाँ नहीं ले जाते। क्योंकि मन मस्तिष्क की बात,ज्ञान की, समझ की बात नहीं सुनता। ज्ञानेद्रियाँ मनं के नियंत्रण में नहीं रहतीं। सब कुछ अव्यवस्थित हो जाता है। इसे समझने के लिये आप भारतीय राष्ट्र के जीवन को देख सकते हैं। उसके राजनीतिज्ञों, अधिकारी वर्गों, नागरिकों को देखिये और आप समझ जायेंगे कैसी दुर्व्यवस्था होती है; कोई समायोजन नहीं होता।

यमराज नचिकेता से कहते हैं-युक्तेन मनसा। यदि मन को मस्तिष्क से जोड़ दिया जाये और मस्तिष्क को बोध रहे कि वह रथ का संचालन उसके लिये कर रहा है जो रथ में बैठा है, तो वहाँ समन्वय रहता है। जागरुकता, प्रेम, शान्ति पीछे बैठे होते हैं, रथ उनके लिये होता है, उनके उपयोग के लिये। यदि बुद्धि यह बोध खो देती है तो वह उचित निर्देश नहीं देती। इसलिये यदि वे एक दूसरे की सुनते हुये समायोजन में जुड़े रहते हैं, तब रथ की गति वैश्विक सुव्यवस्था एवं समन्वय व्यक्त करती है। आपका मनोभौतिक व्यवहार, आपकी उपस्थिति, दूसरों के साथ आपके संबन्धों का ताना-बाना, आपके व्यक्तित्व का स्वरूप, सब कुछ ललित हो उठता है, समन्वय एवं सुव्यवस्था प्रकाशमान हो जाते हैं। मनुष्य

* *मिलेटरी स्कूल में घुड़सवारी सीखना मेरे लिये आनंदायक था। हमारी सैकेडंरी स्कूल की विद्या के रूप में मैंने गोरील्ला मिलेटरी ट्रेनिंग का कोर्स किया था। घोड़े पर बैठ कर सवारी करना, उस पर खड़े हो कर सवारी करना, मुँह में लगाम पकड़ कर दांतों से नियंत्रण करते हुये सवारी करना, खड़े हो कर पीछे की ओर मुहँ कर के सवारी करना, इत्यादि। आप घोड़े की गति पर नियंत्रण करते हैं, आपकी गति एवं घोड़े की गति एक संगीत बन जाती है।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह पृष्ठभूमि है जहाँ ब्रह्मांड की सुव्यवस्था, समन्वय, प्रेम प्रतिबिम्बित होते हैं। हम उस प्रकटन के सचेतन सहभागी हो सकते हैं।

नचिकेता, अपने शरीर को जीवन को रथ समान जानो, यह योग का रहस्य है। अश्व मन के साथ जुड़े हैं। 'युज्यते इति योग:'; योग के अभ्यासों के वर्णन का यह एक काव्यात्मक ढंग है। वे दोहराये जाने वाली कोई यांत्रिक क्रिया नहीं है; आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान कोई आवृत्तीय, यांत्रिक क्रियाएं नहीं हैं। योग का अभ्यास, हठ-योग की शिक्षा राज-योग की नींव रखती है तथा राजयोग-ध्यान का विज्ञान-योगी के जीवन में प्रेम, समन्वय एवं आनंद का रहस्य खोलता है। क्या आप कठोपनिषद् एवं योग के अध्ययन के बीच का संबन्ध देख रहे हैं। ' तस्मात् योगी भव अर्जुन '; मनुष्य विकास की पूर्णता योगावस्था में है, अर्जुन इस परिपूर्ति में विकसित हो जाओ। अर्जुन तुम ऐन्द्रिय उत्कर्षताओं, बौद्धिक, मस्तिष्कीय उत्कर्षताओं, मन की उत्कर्षताओं, अनुभवों, अतीन्द्रिय अनुभवों, गुह्य शक्तियों से ही संतुष्ट न हो जाओ। मनुष्य जीवन सुख एवं प्राधिकारों के अनुसरण के लिये नहीं है। यह न केवल सत्य को खोज निकालने का परन्तु ईश्वर के साथ सक्रिय सहभागिता में विकसित होने का भी सुअवसर है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दसवाँ संवाद

यह संवाद मित्रों तथा उनकी मित्र विमला के बीच हैं। आप चाहें तो इन्हें आचार्य एवं शिष्य के बीच के संवाद कह सकते हैं। एक आचार्य कहलाने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है, उस उपाधि के योग्य होने का प्रयास करती हूँ।

कुछ शब्द उन मित्रों के लिये, जो हमारे वर्गों में उपस्थित हैं परन्तु जिन्होंने न तो योग विज्ञान का अध्ययन किया है, न ही उपनिषद् संबन्धित साहित्य का। संभवत: उनका प्राचीन भारतीय प्रज्ञा से पर्याप्त परिचय भी नहीं है। विदेश से आये योग अध्यापकों पर विशेषत: ध्यान केन्द्रित कर, मैं अपने प्रवचन उनको संबोधित कर रही हूँ। संभव है कि दिये गये उल्लेख अन्य मित्रों के लिये ग्रहण कर पाना अथवा उन्हें समझ पाना कठिन हो। यदि ऐसा है तो मैं उनसे क्षमा माँगती हूँ। क्योंकि जैसे-जैसे हम यम एवं नचिकेता के संवाद की गहराई में उतरते हैं, हमें पिछले दिनों की अपेक्षा योग की गहराईयों का अधिक स्पर्श करना होगा।

भारतवर्ष में प्रचलित विभिन्न शाखाओं के सैद्धान्तिक एवं आचरण संबन्धित स्तोत्र उपनिषदों में पाये जाते हैं। ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरिय, बृहदारण्यक इत्यादि, पहले ग्यारह उपनिषद् भारतीय दर्शनशास्त्र के, हिन्दू, बौद्ध, जैन तथा कुछ हद तक इस्लाम धर्मविज्ञान के आत्मिक आधार हैं। जिन्होंने विश्व के धर्म विज्ञानों का तुलनात्मक अध्ययन किया है, उन्होंने इस आधार को पहचाना है।

योग के विद्यार्थी तीन सूत्रों से परिचित हैं। उनमें से एक योग सूत्रों में से है-' योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:'। चेतना से इच्छा की बर्हिगामी गतिविधि का सहज एवं सम्पूर्ण विलोपन अथवा समापन योग है। अन्य दो सूत्रों का उल्लेख भगवत्-गीता में है। 'समत्वं योग उच्यते'; अनुभव के समस्त स्तरों पर, अस्तित्व के समस्त स्तरों पर समचित्तता अथवा संतुलन ही योग है। आईये, अब इस शब्द 'स्तर' पर अर्थात् अस्तित्व के स्तरों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर ध्यान दें। आधुनिक भाषा में हम कहते हैं, ऐन्द्रिय स्तर, शाब्दिक स्तर, मानसिक स्तर, बौद्धिक स्तर। उपनिषदों की भाषा में प्रत्येक स्तर को एक लोक कहा जाता है। वह एक आयाम है, उस आयाम में स्वतंत्र ऊर्जा क्रियाशील होती है। जैसे ऐन्द्रिय लोक अथवा ऐन्द्रिय आयाम है। वाक् लोक, वाणी, शाब्दिक अभिव्यक्ति एक अन्य आयाम है, जिसके अपने नियम एवं ऊर्जायें हैं, जो स्वतंत्र रूप से उस स्तर पर अथवा उस लोक में क्रियाशील हैं। मानस लोक मन का आयाम है, जो क्रिया के लिये प्रेरणा शक्ति प्रदान कर सकता है। बुद्धि लोक बुद्धि का आयाम अथवा क्षेत्र है। आत्म लोक है परम सत्य का क्षेत्र अथवा आयाम। यदि यह स्पष्ट हो तो मेरा साथ दीजिये।

व्यक्तित्व के परे का आयाम

ऐन्द्रिय, शाब्दिक, भावनात्मक, बौद्धिक, इन समस्त लोकों अथवा स्तरों को सांख्य दर्शनशास्त्र-सांख्य योग- प्रकृति कहता है। ऐन्द्रिय से लेकर मस्तिष्कीय तक प्रकृति है; वेदान्तियों की 'माया', सांख्यों की 'प्रकृति' है। बुद्धि से, मस्तिष्क से परे अधिमानसिक में, उस पार के, मानसिकता के ऊपर के लोक में सांख्य के पुरूष का आवास है। बुद्धि एवं मस्तिष्क से परे अधिमानसिक, अधिमस्तिष्कीय पुरूष है। जैसे ब्रह्मांड में, वैसे हममें पुरूष एवं प्रकृति का निवास है। योग विज्ञान की भाषा में, योग सूत्रों में, ऐन्द्रिय से मस्तिष्कीय तक को प्रकृति कहा जा सकता है परन्तु उससे परे, अधिमानसिकता को ईश्वर कहा जाता है। योग विज्ञान में एक सूत्र है- 'ईश्वरप्रणिधानाद्वा' अर्थात् एक स्तर, एक लोक, एक आयाम है, जिसे ईश्वर कहा जाता है। भक्ति योग की भाषा में, मानसिकता से परे वैष्णवों का विष्णुलोक तथा शैवों का शिव-लोक और कैलाश है।

आप भले उसे शिव-लोक, विष्णु-लोक, ईश्वर अथवा पुरूष कहें, इसका आशय है कि हमारी सत्ता में, हमारी चेतना में एक आयाम है, जो व्यक्तित्व से ऊपर उठ जाता है। सीमित व्यक्तित्व चेतना के साथ, हमारे पास सीमित ज्ञानेन्द्रियाँ तथा इन्द्रियाँ हैं। हममें ही असीमित, अप्रतिबन्धित,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अव्यक्तिक ब्रह्मांड है। *ब्रह्मांड के समान हम भी प्रतिबन्धित ऊर्जाओं एवं अप्रतिबन्धित ऊर्जाओं के क्षेत्र हैं। हम बहुआयामी प्राणी हैं।*

'समत्वं योग उच्यते'। अपने अस्तित्व के प्रत्येक स्तर को शिक्षित कर, अस्तित्व के समस्त स्तरों की समस्त ऊर्जाओं को शिक्षित कर, उनकी गतिविधियों का समन्वय कर हम हृदय में एक सहज स्वाभाविक संतुलन पर पहुँच सकते हैं। इसे समचित्तता कहा जाता है, इसे शान्ति कहा जाता है, इसे समन्वय कहा जा सकता है। यह आपके अस्तित्व की सम्पूर्णता की सुगन्ध है। समन्वय सम्पूर्णता को जन्म देता है, नहीं, जन्म नहीं देता अपितु सम्पूर्णता को जागृत करता है, जो हमारी सत्ता में प्रसुप्त है। इस प्रकार समस्त स्तरों की शिक्षा, ऊर्जाओं का समन्वय योगावस्था में परिणत होता है।

चलिये, ऊपर कहे गये तीन सूत्रों से अब तीसरे सूत्र को देखें- 'योगः कर्मसु कौशलम्'। योगावस्था का अनुमान आपके अस्तित्व के समस्त स्तरों की वास्तविक गतिविधियों से होता है। कर्म अर्थात् गतिविधि, जब आप किसी शब्द का उच्चारण करते हैं वह एक कर्म होता है, जब आप कोई विचार करते हैं वह एक कर्म होता है, जब आपके हृदय में भावनायें उठती हैं वह एक कर्म होता है। कृपया, कर्म शब्द का अनुवाद केवल बाह्य तक, ऐन्द्रिय स्तर की क्रिया तक सीमित नहीं रखियेगा। इसलिये 'योगः कर्मसु कौशलम्' का आशय है कर्म में कौशलता; समचित्तता के विज्ञान, समन्वय के विज्ञान, सुव्यवस्था के विज्ञान की समझ से उत्पन्न कौशलता। इससे अस्तित्व के प्रत्येक स्तर की गतिविधि में एक निपुणता आ जाती है।

यदि आप ऐन्द्रिय स्तर पर अभ्यास करते हैं तथा इन्द्रियों का अनुशासन करते हैं परन्तु अन्तर में, मानसिक स्तर पर अव्यवस्था अथवा दुर्व्यवस्था है, अराजकता है, तब बाह्य ऐन्द्रिय व्यवहार का अनुशासन एक आडम्बर बन जाता है। यह बहुत हानिकारक होता है। क्योंकि अन्दर से आप तुष्टीकरण खोजते हैं और बाहर से स्वयं को, औरों को दिखाने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का प्रयास करते हैं मानो सब कुछ व्यवस्थित हो। परन्तु अव्यवस्था को, दुर्व्यवस्था को किन्हीं आडम्बरों से ढका नहीं जा सकता। इसलिये अपने अनुभवों के समस्त स्तरों पर समन्वय, समचित्तता, संतुलन का कौशल योग है। वह जो स्वयं एवं दूसरों के साथ संबन्धों की गतिविधियों में झलकता नहीं, वह यदि भ्रम नहीं तो मात्र एक इच्छा जनित विचार है। ऊर्जा का रूपांतरण केवल सैद्धान्तिक अथवा केवल अभ्यास द्वारा नहीं होता, दोनों का योग करना पड़ता है।

यह कठोपनिषद् के उस लेखांश की भूमिका थी, जिसका अध्ययन हमने आज प्रातः आरम्भ किया था।

शरीर रूपी रथ का निर्विघ्न संचालन

सविज्ञानः, समनस्कः सदा शुचिः। कठोपनिषद् अब वर्णन दे रहा है, किस प्रकार वह रथ, वह शरीर, बिना किसी दुर्घटना के निर्विघ्न दौड़ सकता है। उपनिषद् विस्तृत, बहुस्तरीय वर्णन दे रहा है। वह कहता है, संयम एवं समन्वय के विज्ञान की समझ को अपने रथ का वाहक बनने दीजिये। सविज्ञानवान अर्थात् आपको ज्ञान होना चाहिये कि शरीर को किस प्रकार का आहार दिया जाये, शरीर को किस प्रकार का व्यायाम दिया जाये, शरीर को कितनी निद्रा दी जाये। यह सब विज्ञान है। आपकी ज्ञानेन्द्रियाँ उतनी ही पवित्र हैं, जितनी आपकी आत्मा। वे परम तथ्य एवं व्यवहारिक तथ्य उसी परम सत्य से जन्मे हैं; वे पवित्र हैं। उनका दुरूपयोग, दुर्व्यवहार, उपेक्षा, दमन, निग्रह नहीं किया जा सकता अथवा अतिभोग द्वारा उन्हें बिगाड़ा नहीं जा सकता। एक वैज्ञानिक ढंग होना अनिवार्य है, ऐन्द्रिय एवं वाणी के स्तर पर वैज्ञानिक मार्ग का होना अनिवार्य है।

बहुत कम लोग जानते हैं वे क्या कहते हैं, कैसे कहते हैं, क्यों कहते हैं। फिर वे कहते हैं मेरा यह मतलब नहीं था और वह मतलब नहीं था। यदि चेतन स्तर पर नहीं, तो अचेतन स्तर पर उनका वह मतलब था। जब तक अन्दर कुछ न चल रहा हो, वह शब्दों में व्यक्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं होता। इसलिये वैज्ञानिक शैली की आवश्यकता होती है। *इन्द्रियों के स्तर पर, वाणी के स्तर पर, मानसिक गतिविधियों के स्तर पर, संयम के विज्ञान को रथ का सारथी बनने दीजिये।* आपकी समझ अर्थात् बुद्धि की जीवन के प्रति, बहुआयामी जीवन के प्रति वैज्ञानिक शैली में शिक्षा होनी चाहिये। किसी भी स्तर को असभ्य, अशिक्षित अथवा अशुद्ध नहीं छोड़ना चाहिये।

दूसरा विषय है, 'समनस्कः'। आप जो भी करें उसे एकाग्रता से करें। मन को पूरी तरह उसमें रहना चाहिये जो आप कर रहे हैं, नहीं तो उसमें कोई सूक्ष्मता, कोई परिशुद्धता, कोई सुव्यवस्था का लालित्य, कोई ताज़गी का सौन्दर्य नहीं होगा। वह केवल किसी कम्प्यूटराईज़ड रोबोट (Computerised Robot) समान कोई यांत्रिक क्रिया को दोहराने की गतिविधि होगी। जीने का कर्म यांत्रिकता से दोहराये जाने वाली गतिविधि नहीं हो सकती। वह सदा नवीन रहता है। प्रातःकाल की ओस के समान, प्रत्येक दिन के सूर्य-प्रकाश समान या फिर वर्षा समान वह सदा नूतन, सदा निर्मल होता है। यदि आपको बौद्ध धर्म से कुछ परिचय हो, तो वह इसे सम्यक् स्मृति कहते हैं, एकाग्रता में ध्यान करना, सचेत रहना कहते हैं। हम जीते हैं अवचेतनता में, अमनस्कता में, उद्विग्नता में, हमारे कर्म मन के साथ जुड़े हुये नहीं होते, हम आदतों से जीते हैं। इसलिये हमारे कर्म, हमारी गतिविधियाँ 'समनस्कः' नहीं होतीं, वह अमनस्कः होती हैं, मन अनुपस्थित रहता है। आंशिक उपस्थिति में हम पूर्णतः जागृत नहीं होते। इसलिये बुद्धि को व्यवस्थित रहने में, समन्वय, सूक्ष्मता, परिशुद्धता के विज्ञान में शिक्षित करना चाहिये। मन को पूर्णतः उपस्थित रहने में, सतर्क रहने में, संवेदनशील रहने में, सदा सावधान रहने में शिक्षित करना चाहिये। क्योंकि समय का प्रत्येक क्षण एक सघन अनंतता है। कालातीत वर्तमान ही अनंतता की एकमात्र अभिव्यक्ति है। यदि हम इस क्षण को चूक जाते हैं तो वह हमें कभी वापिस नहीं मिलेगा, वह नदी के बहते जल के समान चला जाता है। वह चला जाता है, इसलिये सदा मनस्कः,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समनस्कः ।

योग का विज्ञान हमसे इस प्रशिक्षण एवं एकाग्र रहने की, सतर्क रहने की शिक्षा की माँग करता है । फिर हम कभी नहीं कहेंगे, मैं नहीं जानता मैंने ऐसा क्यों कहा ? मुझे नहीं मालूम मैंने ऐसा क्यों किया ? मुझे मालूम नहीं मैंने यह कैसे किया ? लोगों को ऐसा कहने की आदत होती है, क्योंकि वे जो करते हैं, उसमें वे पूरी तरह एकाग्र नहीं होते। इससे मनुष्य शरीर अतीत को दोहराने का यंत्र बन जाता है, वशांगति के प्रक्षेपण का यंत्र बन जाता है । इन्द्रियों के अश्व आपको यहाँ-वहाँ खींच सकते हैं, क्योंकि ऐन्द्रिय स्तर अस्तित्व का अधोनैतिक (Sub-Moral) स्तर है । अस्तित्व का नैतिक स्तर मन एवं मस्तिष्क के स्तर से आरम्भ होता है । ऐन्द्रिय स्तर नैतिकता से नीचे का स्तर होता है, मानसिक एवं बौद्धिक स्तर नैतिक स्तर होते हैं तथा वह जो मस्तिष्क से परे है, वह नैतिकता के परे का (Transmoral) स्तर है ।

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः । वह जिसका मन सदैव सतर्क एवं एकाग्र रहता है, उसमें असावधानी का, मलिनता का, बेमनी का, अन्यमनस्कता का अन्धकार नहीं रहता। वहाँ आधे जिये क्षणों एवं आधे जिये कार्मों की, आधे-अधूरे कार्मों की अव्यवस्था नहीं रहती; समस्त पूर्ण रहता है । आपका सम्पूर्ण अस्तित्व प्रत्येक अभिव्यक्ति में उंडेल दिया जाता है, जैसे अव्यक्त ब्रह्मांड अपने अस्तित्व को व्यक्त जगत् में उंडेल देता है । तब वह जीवन 'शुचि' बन जाता है, शुचि का अर्थ है शुद्ध, पवित्र, निर्मल । जैसे वैश्विक जीवन सुव्यवस्था एवं समन्वय के कारण ईश्वरता की सुगंध लिये हुये है, इस पिंड ब्रह्मांड में भी जीवन पवित्र बन जाता है, वह निर्मल बन जाता है, वह पावन बन जाता है ।

आधुनिक जीवन की असंतुलित, एक आयामी सभ्यता में, जहाँ कुछ स्तर विकसित होते हैं तथा अन्य अविकसित रहते हैं, वहाँ हमने उस पवित्रता का आभास खो दिया है । इसलिये हम विभाजित रह, एक खंडित जीवन जीते हैं और अपने अन्दर की अव्यवस्थाओं को ढकने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का प्रयास करते हैं। जब इन्द्रियाँ मन के नियंत्रण में नहीं रहतीं तथा मन बुद्धि के संयोजक अनुभव द्वारा निर्दिष्ट नहीं होता, तब मनुष्य पशुओं और जानवरों से भी निम्न स्तर पर विकृत हो जाते हैं। इसलिये उपनिषद् कहता है 'विज्ञानसारथिर्यस्तु', अपनी बुद्धि, अपने रथ के सारथी को विज्ञान की समझ होने दीजिये। *सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ।* अध्वन का अर्थ है दुःख का सागर। केवल ऐसा व्यक्ति, जिसके बहु-स्तरीय अनुभव समन्वयपूर्ण हों, जिस के बहु-स्तरीय जीवन का कर्म व्यवस्थित हो, कौशलपूर्ण हो, ललित हो, वही दुःख एवं पीड़ा के सागर को पार कर सकता है।

इच्छायें एवं निरंतर जन्म-मरण

पीड़ा एवं दुःख क्यों हैं ? क्योंकि इच्छा की गतिविधि अत्यंत सूक्ष्म होती है, विचारों, भावनाओं, संवेदनाओं की गतिविधियाँ अशान्त सागर पर लहरों केसमान होती हैं। इन्द्रियों से ले कर बुद्धि तक कुछ भी शिक्षित नहीं होता, सुसंस्कृत नहीं होता। प्रत्येक क्षण एक इच्छा आन खड़ी होती है, इससे पहले कि आप उसकी पूर्ति कर सकें एक अन्य इच्छा उभर आती है। आशायें उठती हैं, महत्त्वाकांक्षायें तेज़ी से बढ़ती हैं; आप के अन्दर एक भीड़ रहती है। आप उन सब की तुष्टि नहीं कर सकते, इसलिये जीवन की बाह्य सफलता के नीचे अपूर्णता के, अधूरेपन एवं उदासी के अनुभव का अन्तःप्रवाह बना रहता है। इस नश्वर देह में, मनुष्य को दी गयी सौ वर्षों की अवधि में सभी इच्छाओं की कभी तुष्टि नहीं हो सकती। आप एक इच्छा की सफलता का, तुष्टीकरण का पीछा करते हैं, वही परितोषण दस अन्य इच्छायें उत्पन्न करता है। एक महत्त्वाकांक्षा की तुष्टि होती है, तो उस सफलता से दो-तीन अन्य महत्त्वाकांक्षायें उत्पन्न हो जाती हैं। आपको दौड़ना पड़ता है, आपको खींचा जाता है। आपकी समस्त ऊर्जायें इन इच्छाओं के आकर्षण द्वारा खिंचती रहती हैं, जो प्रभुत्व में, अपनाने में, स्वामित्व में तुष्टीकरण चाहती हैं। इसी को संसार कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इच्छा का अर्थ पुनः जन्म लेना है। प्रत्येक चाह, प्रत्येक इच्छा के साथ आप जन्म लेते हैं और जब उसकी तुष्टि नहीं होती तो आप मरते हैं। इच्छाओं, भावनाओं, संवेदनाओं का उठना एवं शान्त होना ही जन्म एवं मरण है। आप अन्दर बहुत क्रोधित होते हैं, आपको लगता है आप इतने क्रोधित हैं कि किसी को जान से मार सकते हैं। आप मारते नहीं, क्योंकि आप एक सभ्य इन्सान हैं, एक समाज के सदस्य हैं। आपके अन्तर की अमुक व्यक्ति को हानि पहुँचाने की यह इच्छा चाहे वह व्यक्त हो अथवा अव्यक्त-देह अन्त पर अवश्य ही एक अन्य शरीर धारण करेगी। इच्छाओं का जन्म ही संसार है। वैश्विक व्यवस्था में, इच्छा को अपने विषय की प्राप्ति के लिये एक आकार अथवा एक देह ढूँढने की आवश्यकता पड़ती है। संसार शब्द का उपयोग इच्छाओं के जन्म के लिये किया गया है, वही जन्म है एवं वही मृत्यु। आप अदृश्य जन्म लेते हैं, आप अन्तर में अदृश्य स्वरूपों में प्रवेश करते हैं। जब कोई संबन्धों में धूर्तता करना चाहता है तो उसीके साथ, धूर्तता की इच्छा ने एक लोमड़ी का रूप धारण कर लिया है। क्योंकि उस शरीर में धूर्तता को बिना नैतिकता अथवा अनैतिकता के जिया जा सकता है।

नहीं, अब मैं और सूक्ष्मता में नहीं जाना चाहती, आपको और गहराई में नहीं ले जाना चाहती। मैं आपको बताने का प्रयास कर रही थी, 'संसार अधिगच्छति', 'अमनस्कः', 'सदाऽशुचिः' 'अविज्ञानवान्' इत्यादि शब्दों के क्या आशय हैं। जिसकी इन्द्रियाँ मन के नियंत्रण में नहीं होतीं, मन बुद्धि के निर्देश में नहीं होता तथा बुद्धि ब्रह्मांड में ईश्वरीय समन्वय से अवगत नहीं होती, ऐसा व्यक्ति चिरकालिक असंतुलन की अशुद्धता में जीता है। एक छोटी सी घटना होती है और ऐन्द्रिय, मानसिक, वाचिक, बौद्धिक असंतुलन हो जाता है। *यदि योग समचित्तता एवं संतुलन है तो असंतुलन अशुद्धि है, वह जीवन की ईश्वरता का उल्लंघन है।* इसलिये मेरे मित्रों, असंतुलन जीवन के समन्वय के प्रति अपराध है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

असंतुलन जीवन की पवित्रता, उसकी पावनता के प्रति अपराध है।

सम्पूर्णता एवं परिपक्वता का संतुलन

क्या आप योग के व्यापक एवं गहरे अर्थ को समझ रहे हैं ? यह आवश्यक है कि हठ-योग आपको राज-योग की ओर ले जाये, आप धारणा के स्तर पर नहीं अटक सकते, ध्यानावस्था में एक Quantum Jump लेनी ही होती है, जहाँ अधिमानसिकता है, ईश्वर है । ईश्वर को श्रद्धा अर्पित करने के लिये आपका ईश्वर लोक में होना अनिवार्य है । सांख्य के अचल पुरूष की उपस्थिति में होने के लिये, आपको अधिमानसिकता के आयाम में परिपक्व होना पड़ता है । सांख्य का पुरुष न तो ज्ञाता है, न तो कर्ता है न ही वह द्रष्टा है। क्या आप योग विज्ञान के सौन्दर्य को देख रहे हैं ? यदि हम वास्तव में गहराई में जा पायें तो यह अद्भुत है ।

वे जो समनस्कः हैं, सदा शुचिः एवं विज्ञानवान् हैं, उनके संदर्भ में क्या होता है ? वहाँ इन्द्रियों रूपी अश्व, ऐन्द्रिय विषयों के मार्ग पर समन्वय के लालित्य में चलते हैं। वहाँ किसी विवशता की आवश्यकता नहीं होती, किसी बने-बनाये अनुशासन को लागू करने की आवश्यकता नहीं होती । अश्व वश में होते हैं, इन्द्रियों की आपके साथ मित्रता हो जाती है, वह आपको सहयोग देने लगती हैं। ऐसा होता है कि इन्द्रियाँ, इन्द्रियों का वह अधोनैतिक तत्त्व, आन्तरिक समन्वय एवं व्यवस्था को प्रकट करने के कर्म में आपका सहयोगी बन जाता है ।

व्यक्ति इन्द्रियों से ले कर मानसिक से बौद्धिक तक, समन्वय एवं व्यवस्था के कारण परम सत्य तक पहुँचता है । समन्वय आत्मलोक के रहस्यपूर्ण द्वार खोलता है, वह ईश्वरत्व के रहस्यपूर्ण द्वार खोलता है। किसी प्रयास की आवश्यकता नहीं होती, किसी प्रयासशील साधन की आवश्यकता नहीं होती। उपनिषद् कहता है- स परमं पदम् आप्नोति यदक्षरं परं ब्रह्म । ऐसा व्यक्ति परिपक्वता में विकसित होता है । परिपक्वता चेतना का एक आयाम है। केवल जब आप पूर्ण होते हैं, आप अपनी सम्पूर्णता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में जीते हैं, तब वहाँ परिपक्वता होती है। जब आंशिक, खंडित, एकपक्षीय विकास होता है तो वहाँ विभक्त परिपक्वता होती है, जिसे वास्तव में परिपक्वता नहीं कहा जा सकता। विभक्त संवेदनशीलता, आंशिक अथवा विभक्त समझ प्रकृति के विचित्र गुण होते हैं। वे कोई शक्ति नहीं प्रदान करते। वे जीवन में एकात्मता का प्रजनन नहीं करते।

ऊर्जाओं का समन्वय

एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व ध्यानावस्था की परिपक्वता में विकसित होता है। सभी स्तरों पर सुमिलित ऊर्जायें, आपके कर्मों में विश्रांति एवं शान्ति के रूप में परिणत होती हैं। इसलिये जब आप विश्राम के लिये बैठते हैं तो किसी अतिरिक्त प्रयास की आवश्यकता नहीं होती; व्यवस्थित एवं सुमिलित, मानसिक, बौद्धिक, ऐन्द्रिय स्तर स्वयं ही अक्रियाशीलता में शान्त हो जाते हैं। वे विश्रांति की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं। योग का विद्यार्थी ध्यानावस्था में प्रवेश करता है। *ध्यानावस्था अथवा ध्यान, बौद्धिक, मानसिक एवं ऐन्द्रिय स्तर पर ऊर्जाओं के समन्वय का उपफल होता है।* यदि ऊर्जाओं का समन्वय न हो, तो फिर चाहे आप वहाँ दिन के दस घंटे बैठें अथवा चेतना विस्तारण के लिये संवेदन मंदक (Drugs) इत्यादि लें, मन शान्त नहीं होता। आप चाहे उस अवस्था का रसायनों द्वारा फेर-बदल करने का प्रयास करें, चाहे आप स्वयं को कुछ देर के लिये सम्मोहित (Hypnotise) कर शान्ति के अनुभव का दिलासा दिलायें, परन्तु शान्ति का वास्तविक सार जागृत नहीं होता। जब तक ऐन्द्रिय, मानसिक एवं बौद्धिक स्तर पर समन्वय एवं योग नहीं होता, वह सार हृदय में प्रकट नहीं होता। आयुर्वेद समान, योग अन्तर एवं बाह्य ऊर्जाओं के समन्वय का विज्ञान है। एक होता है भौतिक विज्ञान, यह है ऊर्जाओं का विज्ञान तथा उनके समन्वय की शैली।

सर्वव्यापक तत्त्व का आयाम

अब हमारा संबन्ध एक पेचीदा अभिव्यक्ति से है। स तत् परमं पदम् आप्नोति; हृदय की गुफ़ा में छुपा वह वैश्विक आयाम साध्य होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इतना तो समझ में आता है। इतना समझने में कठिनाई नहीं है कि ध्यानावस्था में व्यक्तिक चेतना ने गतिविधि बंद कर दी है। वह अक्रियाशील हो गयी है इसलिये अप्रतिबन्धित, वैश्विक क्रियाशील हो जाता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। परन्तु उपनिषद् अब 'विष्णो' शब्द का उपयोग करता है - विष्णो परमं पदम् आप्नोति- यह एक पेचीदा शब्द है। भारतीय भाष्यकारों ने विष्णो शब्द का आशय एक देवता अथवा एक पूज्य-देवता के अर्थ में लिया है। मध्वाचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य समान महान विद्वानों ने भी निष्कर्ष निकाला है कि कठोपनिषद् द्वैत का स्वीकार करता है। उनका कहना है कि उपनिषद् ने विष्णो परमं पदम् की बात कर के विष्णुलोक की, उस स्वर्ग की बात की है जहाँ विष्णु रहते हैं। उनके अनुसार उपनिषद् ने स्वीकार कर लिया है कि अद्वैत यथार्थता का सार नहीं है, वहाँ द्वैत है। यह तो उपनिषदों पर द्वैतवाद थोपना होगा।

उपनिषद् दूरवर्ती प्राचीन काल में, हजारों वर्ष पूर्व लिखे गये थे। इतिहास में गीता बहुत बाद में आती है, वह कुछ पाँच हजार साल पूर्व लिखी गयी हो सकती है, इससे अधिक पहले नहीं। अदृश्य ऊर्जाओं के मानवीकरण के लिये देवी-देवताओं की कल्पना भी बाद में आती है। वेद एवं उपनिषद् तो इतिहास से पूर्व के साहित्य हैं। इसलिये, हमें विष्णो शब्द का अनुवाद उस की निरुक्ति (Etymology) के अनुसार करना होगा। मूल, जिससे यह शब्द बनता है, वह है विश्। इस क्रियावाची शब्द का अर्थ है व्यापना। विष्णु शब्द भी ईश्वर समान है- 'ईशते राजते सर्वत्र इति ईश्वरः।'

ईश्वर वह मूलतत्त्व है जो सर्व व्यापक है। ईश्वर एक मूलतत्त्व है, वह कोई देवी देवता नहीं है। इसी प्रकार विष्णु सर्वत्र व्याप्त है। थोड़ी सी अलग छटा है। साधारणत: उनका अर्थ एक ही होता है परन्तु सुन्दरता अन्तर-छटाओं की सूक्ष्मता में है, भावार्थों की छटाओं में है। इसके अनुसार विष्णु लोक का अर्थ है जीवन का सर्व व्यापक मूलतत्त्व।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैसे ही ऊर्जाओं का समन्वय हो जाता है, जैसे ही समन्वय के द्वि-परिणाम शान्ति, विश्रांति एवं ध्यानावस्था हृदय में, इस नन्हें से ब्रह्मांड में प्रकट होते हैं, आपका जीवन के सर्व व्यापक मूलतत्त्व के साथ, जीवन के प्रकाश, समन्वय के प्रकाश के साथ मेल हो जाता है। आपका सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान चैतन्य, आत्मन् के साथ मेल हो जाता है। इसलिये समस्त विनम्रता के साथ, मैं उन आचार्यों, उन व्याख्याकारों, उन भारतीय भाष्यकारों के साथ असहमति की याचना करती हूँ। मैं अद्वैत के व्याख्याकार शंकराचार्य के साथ कुछ सहमति के लिये प्रवृत्त हूँ; फिर भी एक कदम आगे लेना चाहूँगी। वह व्यक्ति स्वयं को सर्व व्यापकता के आयाम में पाता है। मनुष्य काया में रहते हुये, नश्वर देह में रहते हुये, वहाँ शाश्वत का अमृत रहता है।

जन्म एवं मरण का संबन्ध जीवात्मा से

यमराज नचिकेता के प्रश्न का उत्तर दे रहे हैं कि भौतिक काया की मृत्यु पश्चात् क्या बना रहता है? आपके शरीर से स्पन्दनों के रूप में निकलती हुयी वासनायें अथवा विषय-विचार संभवत: बने रहते हैं। आप चाहें तो इसे जीवात्मा कहें। पश्चिमी शब्दावली में इसे 'सोल' कहते हैं। यहाँ, भारत में लोग इसे जीवात्मा कहते हैं। स्पन्दनों के रूप में इच्छाओं, विचारों इत्यादि का मिश्रण, आपसे प्रसर्जित हो ईथर में ही नहीं बल्कि ईथर से भी परे जा घुलमिल जाता है। हमारे अस्तित्व निरंतर एक दूसरे में मिश्रित होते रहते हैं, पृथकता का भाव एक भ्रम है। इसलिये देहान्त पश्चात् भी बौद्धिक एवं मानसिक, जो इन्द्रियों संग जुड़े हुये थे तथा भावनाओं, संवेदनाओं, विचारों इत्यादि की निरंतर गतिविधियों में लीन थे, वे सतत रहते हैं। व्यक्ति को जो भी प्रिय रहता है, उसके स्पन्दन सतत रहते हैं, विचार धारा सतत रहती है।

मनुष्य चेतना के दायरे में एक निरंतर विचार धारा रहती है। संभव है कि आप इससे निकल आये हों; ध्यान मार्ग के माध्यम से आपका मौन में आवास हो। संभव है आपने उस विश्रांति को मौन की शून्यता में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थापित कर लिया हो, जहाँ सर्वव्यापी आत्मन्, ब्रह्मन्, चैतन्य शक्ति, चाहे आप उसे जो भी नाम दें वह है। यदि आप हिमालय पर स्थिर हो गये हो, यदि आप अपने अस्तित्व के ऊपरी भाग में स्थिर हो गये हों, यदि आप ध्यान द्वारा अपने अस्तित्व के अधिमानसिक आयाम में बस गये हों, तब शरीर की मृत्यु पर कुछ शेष नहीं रहता जो सतत रह सके।

हम यमराज द्वारा दिये गये उत्तर तक पहुँच रहे हैं। यमराज एक निपुण आचार्य, नचिकेता को धीरे-धीरे वहाँ तक ला रहे हैं। यह कोई गणित के प्रश्न का सीधा उत्तर नहीं है; यह धीरे-धीरे एक रहस्य से आवरण हटाना है।

जीवन सर्वव्यापी तत्त्वों द्वारा बना है। आकाश की शून्यता सर्वस्व में व्याप्त है, गति की शक्ति सर्वस्व में व्याप्त है, ब्रह्मांड के आन्तरिक समन्वय एवं व्यवस्था में अभिव्यक्त संपूर्णता एवं प्रज्ञा सर्वस्व में व्याप्त हैं। वैसे ही वह यहाँ भी व्याप्त है। उसकी कोई मृत्यु नहीं होती। *जन्म एवं मरण मानसिक एवं बौद्धिक तक सीमित रहते हैं, जिसे भारत वर्ष में जीवात्मा कहा जाता है, पश्चिम में 'सोल' कहा जाता है। बौद्ध धर्मी उसे अनंत कहते हैं।* वे जीवात्मा के अस्तित्व को, अहम् के अस्तित्व को एक पृथक मान्यता नहीं देते। वे कहते हैं अहम् एक कल्पित विषय है, यह केवल संकल्पना के स्तर पर है; शरीर एवं इन्द्रियों समान इसकी कोई वास्तविक सत्ता नहीं है। इसलिये वे जीवात्मा के अस्तित्व को नहीं मानते। अन्य भारतीय धर्मविज्ञान इसे स्वीकार करते हैं। परन्तु यदि आप उनके जीवात्मा के प्रत्यय को देखें, तो वह बौद्धिक एवं मानसिक को मिला कर बना है, जो ऐन्द्रिय से संबन्धित है, ऐन्द्रिय संग जुड़ा है, उनके माध्यम से क्रियाशील है। अनगिनत इच्छाओं, वासनाओं, विचारों इत्यादि का जन्म आपके चारों ओर एक वातावरण बनाता है। आपके चारों ओर एक अदृश्य परिधि की रचना करता है। जब देह का अन्त होता है तो वह ऊर्जा नहीं मरती। भौतिक का स्वरूप बदलता है, ऊर्जा अपनी अभिव्यक्ति का वाहन बदलती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अस्तित्व का गुह्य सोपान

हम एक अन्य महत्त्वपूर्ण विषय पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। इस वल्ली के दसवें श्लोक में कहा गया है,

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः॥

इन्द्रियाँ, जिन्हें अश्व कहा गया है, वह सोपान का सबसे निचला भाग हैं। उपनिषद् का यह एक अति आश्चर्यजनक कथन है। ज्ञानेन्द्रियों के विषयों को ज्ञानेन्द्रियों से ऊँचा दर्जा दिया गया है। वह धन-संपत्ति, वे विषय, जिन का पीछा ज्ञानेन्द्रियाँ करती हैं, वे ऐन्द्रिय विषय ज्ञानेन्द्रियों से ऊँचे हैं। मन ऐन्द्रिय विषयों से उच्च है तथा बुद्धि मन से ऊँची है। यह एक सोपान है, जिस पर हम कुछ देर ध्यान केन्द्रित करने जा रहे हैं।

उपनिषद् ऐन्द्रिय विषयों को क्यों अधिक महत्त्व देता है ? क्यों उन्हें ज्ञानेन्द्रियों से भी उच्च स्थान देता है ? चलिये एक ठोस उदाहरण लेते हैं- नेत्र विषयों को, पत्थर, वृक्ष इत्यादि को देखते हैं। तो उपनिषद् क्यों उन्हें इन्द्रियों से उच्च कहता है ? क्योंकि पत्थर में, वृक्ष में परब्रह्मन् का, परम सत्य का, जीवन का प्रकाश समाविष्ट है, वहाँ जीवन की सर्जनशीलता समाविष्ट है। ज्ञानेन्द्रियाँ, बाह्य इन्द्रियाँ तथा अन्तर इन्द्रियाँ बोध करने के साधन हैं। परन्तु वे जिन्हें आप बाह्य विषय कहते हैं वे उसी ईश तत्त्व की अभिव्यक्ति हैं, जिसकी अभिव्यक्ति आप हैं।

जब आपके नेत्र एक वृक्ष देखते हैं, तो आप दो ढंग से उसके साथ संबन्धित हो सकते हैं। आप उसे एक नाम दे सकते हैं। उसे सेब का वृक्ष अथवा आम का वृक्ष कह सकते हैं, फल को देख उसे तोड़ सकते हैं, उसे खा सकते हैं, और इसीके साथ संबन्ध का अंत कर सकते हैं। यह उसे देखने का एक ढंग है। आपका अनुभव एक सेब के वृक्ष अथवा आम के वृक्ष का है; संबन्ध वृक्ष के फल अथवा फूल से है। ऐसे में, उस विषय को अपनी भूख की तुष्टि के साधन में परिवर्तित कर दिया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गया है। वह भूख को शान्त करता है, यह एक तथ्य है; इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। यह विषयों को देखने का भौतिकवादी ढंग है। हमारे पास कार्ल मार्क्स द्वारा दी गयी इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या है। ऐंजल्स इत्यादि द्वारा दिया गया द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है।

देखने का एक अन्य ढंग भी है, जिससे आप वृक्ष के तने में स्थिरता की शक्ति देखते हैं, फलों एवं फूलों में ईश्वरीय शक्ति तथा सर्जनशीलता की अभिव्यक्ति देखते हैं। वे फल जिसे आप तोड़ते हैं, उसमें आप ईश्वरीय शक्ति की उदारता देखते हैं। इसलिये जब आप फल खाते हैं, फल का वह सेवन सर्जनशीलता एवं उदारता को ग्रहण करता है; वह मात्र भूख को तृप्त करना नहीं है। कृपया देखिये, ऐसे में कर्म वही रहता है परन्तु नेत्रों ने कुछ भिन्न देखा है। नेत्रों ने नाम का, आकार का, रंग का वेधन कर ईश्वरता के साथ संबन्ध जोड़ा है। भूख की तुष्टि करते हुये नेत्रों ने देखने के कर्म में यज्ञ कर्म किया है। यह केवल एक उदाहरण था। रंग, रूप, फल, साग-सब्ज़ी सहित, पृथ्वी, जल इत्यादि समस्त ऐन्द्रिय विषय अव्यक्त ब्रह्मांड की अभिव्यक्तियाँ हैं। वे ब्रह्मांड की अभिव्यक्तियाँ हैं, वह सगुण ब्रह्मन् हैं, वह आकार ब्रह्मन् हैं। जैसे आप साकार ब्रह्मन् हैं, स्वयं सगुण ब्रह्मन् हैं, वे भी सगुण ब्रह्मन् हैं। ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविः ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणाहुतम। ब्रह्मैव तेन गन्तव्य ब्रह्मकर्म समाधिना॥ *प्रत्येक कर्म जब एक ब्रह्म समाधि बन जाता है, तब वहाँ पवित्रता का भान आता है तथा अन्य के साथ पारस्परिक संबन्ध का आनंद होता है।* देखने की पहली पद्धति में विभाजन पर बल दिया जाता है और यह पृथक्कारी अनुभव सदा दुःख की ओर ले जाता है। वहाँ व्यक्ति एवं विषय का एक द्वैत रहता है । वहाँ आप विषय को उपयोग की दृष्टि से देखते हैं, वह आपकी शारीरिक आवश्यताओं की ही नहीं, आपकी मानसिक इच्छाओं के ध्येय की सेवा के लिये समझा जाता है। इससे अभिव्यक्त जगत् का ब्रह्मांडीय ईश्वरता के साथ का संबन्ध दूषित हो जाता है।

उपनिषद बहुत उपयुक्त एवं भव्य ढंग से कहता है कि ज्ञानेन्द्रियाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सोपान की सबसे निचली सीढी हैं। फिर अगले स्तर पर हैं ऐन्द्रिय विषय, वे उच्च हैं, वे ईश्वरता की अभिव्यक्तियाँ हैं। यदि उन्हें जानने के लिये मन नहीं होता, तो इन अभिव्यक्तियों का बोध नहीं हो सकता। इसलिये मन और भी ऊँचा है, जो समस्त मानव संस्कृति, ज्ञान एवं अनुभवों का भण्डार है। उसमें विषयों में समायी शक्तियों से अधिक शक्तियाँ समायी होती हैं। परन्तु मन विभाजन भी करता है। वह 'मैं' पर बल देता है, मैं देखता हूँ , मैं चाहता हूँ, मेरे पास है इत्यादि, इत्यादि। अगले स्तर पर है बुद्धि, जो एकता का अनुभव पैदा कर सकती है। वह एक में समस्त को तथा समस्त में एक को देख सकती है। इसलिये वह एक कर सकती है । *मन द्वारा पृथक्कारी अनुभव पर दिये गये महत्त्व को बुद्धि द्वारा, ज्ञान द्वारा यथास्थान रखा जा सकता है। बुद्धि से भी उच्च है आप के हृदय की गुफ़ा में समायी वैश्विक प्रज्ञा।* बुद्धि को इसका भान नहीं होता। इसकी उपस्थिति का भान होता है जब आप गहरी निद्रा में होते हैं। जब आपके हृदय में प्रेम प्रकट होता है तथा अहम् रहित होने की अवस्था, आपको आनंद से विभोर करती है, तब आपके अन्दर ईश्वरत्व की उपस्थिति का भान होता है। तब आप स्वयं को भूल अपने प्रियतम के लिये सब कुछ करने में पूर्ति का अनुभव करते हैं। चाहे वह अल्पकालिक ही क्यों न हो परन्तु अहम् रहित होना ईश्वरता की उपस्थिती का, नि:स्वार्थता का प्रमाण है । इसका भान होता है निद्रा में, प्रेम की निष्पापता में अथवा जब आप किसी की पीड़ा को देख करुणा का अनुभव करते हैं।

आजकल हमें प्राय: करुणा का भान नहीं होता, बस एक सरसरी क्रिया होती है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने प्रति दिन की ऐसी हत्याओं, हत्याकांडों, निदर्यताओं, शोषणों को हमारे समक्ष ला दिया है कि यदि कोई शैतान होता तो उस शैतान को भी मनुष्य जाति की पाशविकता देख, निर्दयता देख लज्जा आ जाती। ये सब देख हमारे पास विशेष करुणा नहीं है। फिर भी, करुणा की उपस्थिति, प्रेम की उपस्थिति, सत्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एवं पवित्रता की प्यास उस अदृश्य की उपस्थिति के, अव्यक्त ब्रह्मन् के, हमारे अन्तर की ईश्वरता के प्रमाण हैं।

उपनिषद् ने इस विषय पर बल दिया है कि सबसे निचले स्तर पर इन्द्रियाँ हैं, फिर आते हैं इन्द्रियों के विषय। उससे उच्च स्तर पर है मन और फिर बुद्धि, बुद्धि से भी ऊपर है आत्मन्।

आपने देखा, कैसे प्राचीन काल के ऋषि उच्चकोटि के वैज्ञानिक थे। अध्यात्म जीवन का विज्ञान है। भौतिक विज्ञान सत्य का अन्वेषण भौतिक तत्त्वों तथा उनमें समायी ऊर्जाओं की सहायता से करता है। अध्यात्म यथार्थता के स्वरूप की खोज, मनुष्य शरीर में पाये जाने वाली शक्तियों द्वारा करता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग्यारहवाँ संवाद

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः॥

उपनिषद् हमारा ध्यान शरीर में समाविष्ट अदृश्य सोपान की ओर आकर्षित कर रहा है। इस सोपान का सबसे निम्न भाग इन्द्रियाँ हैं। इन्द्रिय शब्द का आशय दोनों बाह्य एवं अंतर इन्द्रियों से है। ऐन्द्रिय विषय इस स्तर से ऊंचे हैं। बाह्य इन्द्रियों के भौतिक विषय हैं तथा आंतरिक इन्द्रियों के विषय हैं विचार, भावनायें, आदतों के प्रतिमान, रक्षात्मक प्रतिक्रियायें इत्यादि। आन्तरिक इन्द्रियों से उपनिषद् का संकेत मन एवं बुद्धि की ओर है।

इन्द्रियों से उच्च हैं इन्द्रियों के विषय। बाह्य भौतिक विषय जीवन की वैश्विक शक्ति की अभिव्यक्तियाँ हैं। आन्तरिक विषय मनुष्य की चेतना शक्ति की अभिव्यक्तियाँ हैं। इनसे विचारों, अनुभवों, आदतों के प्रतिमानों, प्रतिक्रियाओं के प्रतिमानों, मूल्यों के ढाचों, रक्षात्मक प्रतिक्रियाओं इत्यादि का, हममें समाविष्ट समस्त मानसिक उपकरणों का निर्माण हुआ है। भौतिक विषयों की शक्तियाँ होती हैं, संकल्पनाओं के जगत् में भी शक्ति समायी होती है। विचार एक शक्ति है, भावना एक शक्ति है; यह मनुष्य चेतना में उपजी हुयी शक्तियाँ हैं। ऐन्द्रिय विषयों की इन आंतरिक एवं बाह्य शक्तियों से उच्च है मन, जो गति का मूलतत्त्व समाये हुये है। मनको हमें इच्छा तत्त्व के रूप में समझना चाहिये। यह इच्छा तत्त्व ही है, जो हमें ऐन्द्रिय शक्तियों तथा ऐन्द्रिय विषयों की शक्तियों के परस्पर संबन्ध का सामर्थ्य देता है। मन से ऊँची है बुद्धि, जो मन द्वारा संबन्ध रखने वाले तत्त्व को यथाशक्ति निर्णय लेने की, संकल्प लेने की, विकल्प की, चयन की शक्ति देती है। इस प्रकार बुद्धि की शक्ति मन की शक्ति से ऊँची है। ये हमने पिछले वर्ग में देखा था। मनुष्य देह में प्रकृति का तथा ब्रह्मांड में मूल प्रकृति का क्षेत्र है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बुद्धि से उच्च है महान आत्मन्; बुद्धेरात्मा महान्परः। बुद्धि तत्त्व से उच्च है अव्यक्त आत्मन्, मनुष्य शरीर में समाया 'महत्' तत्त्व। हिरण्यगर्भ अव्यक्त को, महत् तत्त्व को, अव्यक्त ईश्वरीय प्रज्ञा को समाये है। मनुष्य देह में बुद्धि से उच्च, मौन के आकाश में, हृदय की गुफ़ा में पुरूष छुपा है। ब्रह्मांड में भी, मूल प्रकृति से परे, माया से परे, वह पुरूष, वह परब्रह्मन् छुपा है। देह में वह आत्मन् है तथा ब्रह्मांड में उसे परमात्मा अथवा परब्रह्मन् कहा जाता है। उपनिषद् कहता है- *पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः।* मनुष्य के इस सोपान में उच्चतम स्तर पर है आन्तरिक मौन का आकाश, जिसमें छुपी है आत्मन् की ईश्वरीय शक्ति, अनुबोधक प्रज्ञा, अनुबोधक संवेदनशीलता अथवा महत्। आत्मन् के लिये महान विशेषण का उपयोग किया गया है। ऐसा कहिये कि वह महातत्त्व, जो महत् का प्रतीक है। महत् अव्यक्त है; प्रकृति तक व्यक्त का क्षेत्र है तथा प्रकृति से परे है अव्यक्त। अव्यक्त को पुरुष का, परब्रह्मन् का पात्र कहा जाता है। उससे परे कुछ नहीं है। पुरुष तक पहुँचने पर गति तत्त्व की समस्त क्षमता समाप्त हो जाती है; उसके आगे कोई गति नहीं होती। वहाँ होता है केवल एक 'होनापन'; स्पंदन मुक्त, गति मुक्त, अपनी तेजस्वी भव्यता में विद्यमान।

तदात्मीकरण की राख से पुनः जन्म

हमारे ही शरीर में, ऐन्द्रिय स्तर से बुद्धि तक और फिर महत् तक, आत्मन् तत्त्व तक एक सीढ़ी है, जो हमारा मार्ग बनती है। यह मार्ग हमारे ही शरीर में गुह्य है। मुक्ति के मार्ग, उद्धार के मार्ग अपने बाहर खोजने की आवश्यकता नहीं है। *यह मृत्यु का मार्ग है; मृत्यु के कर्म में छुपा है जीवन का अमृत। निम्न मरता है उच्च को जीवन प्रदान करने के लिये, उच्च मरता है ताकि सर्वोच्च जी उठे।* यह मरण का मार्ग है, जो आपको ईश्वरीय अमरत्व प्रदान करता है, उससे भर देता है। मृत्यु अमरत्व की ओर जाने का मार्ग है।

कठोपनिषद् को मृत्यु का मार्ग, मरण का मार्ग कहते हैं। हमारे लिये,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

योग के विद्यार्थियों के लिये, अस्मिता का, गलत तदात्मीकरण का अन्त करना ही मृत्यु का सार है। हमें मृत्यु अथवा मरण शब्द को, स्वयं को शरीर के साथ तदात्मीकरण तथा उसके द्वारा प्रस्तुत किये गये सुखों से मुक्त करने के आशय में समझना है। *अतदात्मीकरण ही मरण का कर्म है। तदात्मीकरण की भस्म से, उसकी राख से उच्च शक्ति के स्पन्दनों का जन्म होता है। अपनी ही राख से हम पुनः जन्म लेते हैं।*

यह मार्ग है अपने आपसे अतदात्मीकरण का। हम मान लेते हैं कि जीवन का अर्थ है अर्जन, संग्रहण, भौतिक वस्तुओं, ऐन्द्रिय सुखों एवं मानसिक सुखों को प्राप्त करना। परन्तु अब आरम्भ होती है तीर्थयात्रा। बाह्य, ऐन्द्रिय विषयों के आकर्षण के साथ वियोजन कीजिये, उनका उस आंतरिक प्रकाश के साथ वियोजन कीजिये, जो आपको ऐन्द्रिय विषयों के सात्मीकरण की क्षमता देता है। कृपया देखिये यहाँ दो विषय हैं, वह विषय जिसे देखा जाता है तथा द्रष्टा, दृश्य एवं द्रष्टा के बीच है देखने की क्रिया, उसकी गतिविधि। यदि वहाँ द्रष्टा न हो, जीवन का ईश्वरीय प्रकाश न हो तो दृष्टांत नहीं होता। एक मृत शरीर समस्त ज्ञानेन्द्रियों के, बाह्य ज्ञानेन्द्रियों के होने पर भी अपने ऐन्द्रिय विषयों के साथ सम्पर्क नहीं बना सकता। वह संबन्ध, वह सम्पर्क, वह पारस्परिक क्रिया जीवन के आंतरिक प्रकाश के कारण संभव है, जो गतिविधि का कारण है, जो प्रेरणा का कारण है, जो चयन शक्ति का कारण है, जो सात्मीकरण की शक्ति का कारण है।

द्रष्टा के स्वरूप की जिज्ञासा

योग का विद्यार्थी एक जिज्ञासु है, वह प्रकाश के, उस द्रष्टा के स्वरूप का जिज्ञासु है, दृश्य विषयों का नहीं; वे तो वैसे भी दिखने ही हैं। इस प्रकार बाह्य एवं आंतरिक ऐन्द्रिय विषयों के साथ संबन्ध में परिवर्तन आता है। अतादात्म्य संबन्धों को नष्ट नहीं करता, अतादात्म्य से नया संबन्ध जन्म लेता है। 'इदं धर्म्यम् अमृतम्'; अब आपका संबन्ध धर्म पर आधारित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होता है। यह संबन्ध इच्छा पर, सुख की लालसा तथा दुःख से बचने पर आधारित नहीं होता। ऐसे संबन्ध में चाहना, अपनाना, पाना, खोना इत्यादि नहीं होता। यह एक अलग संबन्ध है, धर्म पर आधारित है। धर्म का अर्थ है अपने मूल के साथ पुनर्मिलन। जब आप शारीरिक अथवा मानसिक सुख खोजते हैं तो आप कट जाते हैं। अपने मूल के साथ आपका सम्पर्क टूट जाता है, क्योंकि आप पाने की गतिविधि में लग जाते हैं। इससे आप धर्मनिष्ठ नहीं रहते, आप अपने मूल के साथ एक नहीं रहते। *योग है, बाह्य विषयों के साथ संबन्ध रखते हुये, परस्पर रूप से क्रियाशील होते हुये अपने मूल के साथ एक रहना।* कृपया देखिये यह योग की दोहरी भूमिका है।

सुख की खोज हमें प्रकाश से, ज्ञाता से, द्रष्टा से परे हटा देती है, उससे दूर खींच ले जाती है। हम पूछते भी नहीं वह द्रष्टा क्या है? द्रष्टा कौन है? वह प्रकाश कहाँ से आता है? यह गतिविधि कहाँ से आती है? हम उखड़ जाते हैं। कठोपनिषद् कहता है, योग का विज्ञान कहता है, ऐन्द्रिय स्तर पर अविद्या एवं अस्मिता को हटा देने से आप स्वयं को राग, द्वेष, अभिनिवेश से बचा ऊपर उठ सकते हैं। यह ऊपर उठना है, भौतिक का उत्थान है। योग- विज्ञान हमें यह क्रमशः करना सिखाता है, एक-एक कदम उठा सीढ़ी चढ़ना सिखाता है। इसे पिपीलिका पथ कहा जाता है। दो मार्ग होते हैं; विहंगम मार्ग उड़ान लेता है तथा चींटी का मार्ग आहिस्ता-आहिस्ता, क्रमशः प्रगतिशील क्रमविकास का है। वेदान्त का मार्ग क्रान्तिकारी है, तात्कालिक है। इस मार्ग पर आप समझ एवं बोध के पंखों से उड़ान भरते हैं, आप सीढ़ी नहीं चढ़ते। योग विज्ञान तथा कठोपनिषद् शिक्षाप्रद दर्शनशास्त्र हैं। वेदान्त शिक्षा नहीं देता, वह संकेत करता है और शेष आप पर छोड़ता है, आपकी शक्ति पर, आपकी तितिक्षा पर, आपकी जिज्ञासा की प्रबलता एवं गहराई पर। यहाँ कठोपनिषद् शिक्षा प्रदान कर रहा है। क्योंकि यमराज नचिकेता से, एक बाल-जिज्ञासु से बात कर रहे हैं, उनके पास प्रत्येक कदम वैज्ञानिक रीति से समझाने
Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का धैर्य है।

अतीत के साथ अतादात्म्य

हमने इन्द्रियों तथा ऐन्द्रिय विषयों के साथ अतादात्म्य देखा है। बाह्य विषय निरंतर बदलते रहते हैं, इसलिये उनके प्रति आसक्ति बुद्धिहीनता होगी। निर्वाह के लिये उनका उपयोग उनके प्रति सम्मान, जीवन के प्रति सम्मान के साथ हो। अपनी ऊर्जाओं की तुष्टि उनके विषयों की आहुति के साथ करें परन्तु वह नश्वर हैं, वह सदा परिवर्तनीय हैं। प्रकृति में परिवर्तन का प्रवाह हमें अनासक्त होने की शिक्षा देता है।

भौतिक विषयों के साथ तादात्म्य समाप्त हुआ। फिर हैं आंतरिक ऐन्द्रिय विषय, ज्ञान, विचार, भावनायें, आदतों के प्रतिमान इत्यादि। वह हमारी रचनायें नहीं हैं। हमने उन्हें जन्म से पाया है। वे अतीत हैं, वे बासी वस्तुयें हैं, जिनके साथ हम जन्म लेते हैं। *हम अतीत का क्रूस अपने कंधों पर ढोये हुये जीते हैं, जब तक हम स्वयं को अतीत की पकड़ से मुक्त नहीं करते, वर्तमान के साथ सम्मिलन संभव नहीं होता।* क्योंकि अतीत आक्रमकता से मन को अपना वाहन बना प्रक्षेपण करता है, आपको असंतुलित करता है। प्रत्येक गतिविधि के साथ वह आपको वशीभूत करता है। इसलिये उस अतीत की खान के स्तर पर, सम्पूर्ण मनुष्य जाति के संस्कारों की खान के स्तर पर अतादात्म्य कर, आप अतीत के प्रति मर जाते हैं। ऐसे मर कर आप अतीत को मिटा नहीं रहे हैं। जीवन की अनंतता में विनाश जैसा कुछ नहीं है। परन्तु आप तादात्म्य के बन्धनों को, बेड़ियों को तोड़ रहे हैं। आप अविद्या पर, अस्मिता पर प्रहार कर रहे हैं। योग के अध्ययन द्वारा आप स्वयं को उन बन्धनों से मुक्त कर रहे हैं, जो आपको वशीभूत करते हैं। कैसे करते हैं आप यह ? बुद्धि के, विवेक के, बुद्धिसंपन्नता के उच्च तत्त्व की सहायता द्वारा करते हैं।

जब विवेक का उपयोग मन की गतिविधियों को देखने में किया जाता है, तो वह उसका आवृत्तिमूलक, यांत्रिक स्वरूप दिखाता है। वह अतीत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की नीरसता एवं उसका प्रक्षेपण दिखाता है। संपूर्ण दशा स्पष्ट हो जाती है, इसलिये आप स्वयं को तादात्म्य के पंजों से मुक्त कर लेते हैं। मेरे विचार, मेरी भावनायें, मेरे मूल्य, मेरी पीड़ा, विवेक आपको दिखाता है कि वह न आप हैं न मैं। वह 'मेरी' वेदना नहीं है, वह तो जीवन का ढंग है, मस्तिष्कीय, रासायनिक, नाड़ी-तंत्रीय ढंग है; जिसकी रचना की गयी है। जिसे हमने विरासत में पाया है। आपका अहम्, मेरा अहम् तथा आपका मन एवं मेरा मन नहीं है, वह तो एक तत्त्व है। मन वस्तुओं के पारस्परिक संबन्ध बनाने का, उनका संग्रहण करने का, उनका प्रक्षेपण करने का मूलतत्त्व है। अहंकार सहित मनस तत्त्व अहम् तत्त्व है, जो ज्ञान के, अनुभवों के खण्डों को जोड़े रखता है तथा स्मृति का प्रबोधक है। विवेक की सहायता द्वारा उससे मुक्ति मिलती है; विवेक विश्लेषण तत्त्व है, संश्लेषण तत्त्व, संघटन तत्त्व है। वह लगभग समन्वय तत्त्व का, वैश्विक समन्वय का प्रतिबिम्ब है। विवेक एवं बुद्धि ही जीवन की एकता की ओर संकेत करते हैं। वह आपको दिखाते हैं कि प्रत्येक मनुष्य दुःखी है; जो संबन्धों की चुनौतियों के प्रति प्रतिक्रिया का ढंग है। वे व्यक्तिक नहीं हैं, अनन्य रूप से व्यक्तिक नहीं हैं। वे तो सब के लिये समान हैं।

व्यक्तित्व के भ्रम की ध्यान में आहुति

अहम् व्यक्तित्व को शून्य में विलयन होना है। उसमें विलयन होना है जिसे बुद्धजनों ने 'शून्यम्' कहा है, जिसे पाश्चात्य के रहस्यानुभवियों ने रहस्यपूर्ण 'ज़ीरो' कहा है, जिसे प्राच्य रहस्यानुभवियों ने ॐकार कहा है, शून्यता का नाद कहा है। अब, भला वह व्यक्तित्व का भाव स्वयं को उस रहस्यपूर्ण शून्यता को कैसे अर्पित करेगा ? *व्यक्तित्व के साथ जुड़ी हुयी बुद्धि बहुत दुराग्रही बन सकती है। संभवतः वह स्वयं को ध्यान की, उस शून्यता, उस मौन की वेदी पर समर्पित करने से भयभीत हो।*

कठोपनिषद् ने इस विषय में कुछ विशेष नहीं कहा है। परन्तु हमने गीता का अध्ययन किया है, गीता में कृष्ण प्रेम की शक्ति का, श्रद्धा की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सहायता का सुझाव देते हैं। वे कहते हैं समर्पण करो। यदि बुद्धि स्वयं से इसके लिये प्रवृत्त नहीं होती, तब भक्ति, प्रेम की शक्ति, संपूरक अथवा अनुपूरक तत्त्व के रूप में सहायक होती है। क्या आपको स्मरण है उपनिषद् ने कहा था- 'वे जिन्हें सत्य से प्रेम हो जाता है।' यह सम्पूर्ण यात्रा प्रेम के कारण ही प्रारम्भ हुयी थी। उसी प्रेम की शक्ति का उपयोग एक संपूरक तत्त्व, एकअनुपूरक तत्त्व के रूप में किया जाता है। वह बुद्धि को व्यक्तित्व के भाव से मुक्त होने की क्षमता देती है। व्यक्तित्व के उस भ्रम की ध्यान में आहुति दी जाती है।

'ईश्वरप्रणिधानाद्वा'। प्रणिधान अर्थात् झुक कर, निष्ठा रखते हुये समर्पण करना। यह एक सुन्दर सूत्र है। यहाँ किसी विशिष्ट देव को अथवा किसी विशेष अभिव्यक्ति को समर्पण करने की बात नहीं है। यह अव्यक्त ईश्वरीय तत्त्व को, अपने अन्दर के पुरुष को समर्पण करना है। वह अव्यक्त है परन्तु हम किसी व्यक्त स्वरूप को समर्पण करना चाहते हैं। *इस बिन्दु पर उपनिषद् इसे अहम् का क्रूसिफिकेशन* **(Crucification)** *कहता है। अहम् बहुत प्रेम से यह क्रूसिफिकेशन होने देता है और अपने परम् स्वरूप के, पर-ब्रह्मन् के प्रति जागरूक हो रेज़रेकट* **(Resurrect)** *होता है।* समस्त भ्रम एवं तादात्म्य समाप्त हो जाते हैं। अंतिम बाधा को अब पार कर लिया गया है।

महत: परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुष: पर:।
पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गति:॥

ब्रह्मांड को ईशावास्य उपनिषद् में हिरण्यगर्भ कहा गया है। कठोपनिषद् ने इसे शून्यता (ज़ीरो) कहा है, कुछ उपनिषदों ने इसे अंडे की आकृति का कहा है। कुछ उपनिषदों ने इस ब्रह्मांड को अंतरिक्ष की मूल प्रकृति का गर्भ कहा है, जहाँ अव्यक्त वैश्विक परब्रह्मन् गुह्य है। ईश्वरीय तत्त्व से, जीवन के ईश्वरीय प्रकाश से, चित्ति-शक्ति के मूल से, जिसमें समझ का, बोध का प्रकाश, ईश्वरीय प्रज्ञा का प्रकाश सम्मिलित है, उससे उच्च है ब्रह्मांड की शून्यता में गुह्य वैश्विक प्रज्ञा। 'महत: परं अव्यक्तम्';

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस ब्रह्मांड को अव्यक्त विराट अव्यक्तम्, वैश्विक अव्यक्तम् कहा जाता है। 'अव्यक्तत् पुरुषः परः'। इस वैश्विक अव्यक्त में छुपा है परम सत्य, जिसे आप परब्रह्मन् कहते हैं, जिसे आप सांख्य का पुरुष, योग का ईश्वर, वेदान्तियों का परब्रह्मन्, भौतिक वैज्ञानिकों का परम तथ्य कहते हैं, जो आधार है, समस्त अस्तित्व का उत्पत्ति स्थान है। आपकी मित्र विमला इसे 'होनापन' कहती हैं।

प्रेम एवं करुणा की लौ का जन्म

अहम् के क्रूसिफिकेशन पश्चात् ध्यान द्वारा, बोध के प्रकाश द्वारा बोध की वह अग्नि, वह अन्तिम अग्नि, सर्वोच्च अग्नि जिसके हम योग्य हैं वह प्रज्वलित हो उठती है, वह दीप्तिमान होती है। वह प्रकाश वैश्विक को, अव्यक्त को समर्पित कर दिया जाता है। इसलिये यदि आपने प्रबुद्ध जनों की जीवनियाँ पढ़ी हैं, तो उनमें आप अवर्णनीय विनम्रता का अमृत पायेंगे, आत्मविलोपन व निराग्रह पायेंगे। *बोध की लौ अब प्रेम की, करुणा की लौ बन जाती है। यह बोध की लौ एक अति कोमल अग्नि होती है, वह तेज दीप्तिमान होती है परन्तु जलाती नहीं, वह प्रकाश देती है परन्तु झुलसाती नहीं। एक व्यक्ति के मनुष्य देह में घटित वह घटना, वैश्विक यथार्थता की वेदी पर एक अर्पण होती है।* इसलिये आप उन्हें हाड़-मांस के रूप में विनम्रता पाते हैं। वे अस्वाग्रही होते हैं, अनाग्रही होते हैं, किसी पर प्रभाव नहीं डालते। यह कोई परिष्कृत विनम्रता नहीं होती, यह तो प्रज्ञा का स्वभाव होता है।

सा काष्ठा सा परा गतिः। अब इसके आगे और कोई गति संभव नहीं होती। आपने परम् का स्पर्श कर लिया है, आपने अस्तित्व के आधार का स्पर्श कर लिया है। यदि इस सोपान को, इस मार्ग को शब्दों द्वारा सुझाया जा सकता है, तो लोग उसका अनुसरण क्यों नहीं करते ? वह अतादात्म्य के इस कर्म का-जो मरण का कर्म है-मृत्यु के इस मार्ग का अनुसरण क्यों नहीं करते ? अगले श्लोक में उपनिषद् हमें यही बताने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जा रहा है।

सहज जिज्ञासा को रहस्योद्घाटन

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोऽऽत्मा न प्रकाशते। जीवन का यह प्रकाश, बोध का प्रकाश, जो स्वयं ही विवेक का कर्म है, जिसमें बोध की सुगंध है, वह प्रकाश विद्यमान रहता है। फिर भी वह 'गूढोऽऽत्मा' है, छुपा हुआ है। यह प्रत्येक व्यक्त रूप में प्रवेश करता है, परन्तु अत्यंत निपुणता से उस रूप में स्वयं को गुप्त रखता है। यह स्वयं को उस आकार में छुपाये रखता है, जैसे काष्ठ में अग्नि स्वयं को छुपाये रखती है। आप जानते ही हैं कि काष्ठ में अग्नि समाविष्ट रहती है परन्तु क्या आप उस अग्नि को देख पाते हैं ? आप अपने हाथ में, अपने कंधे पर, अपने सिर पर उसे उठाते हैं। परन्तु क्या आप उस अग्नि को देखते हैं? आपके लिये यह जानना आवश्यक है, किस प्रकार लकड़ी में समायी अग्नि को व्यक्त होने में सहायता दी जाये। वह अव्यक्त है। जैसे माँ के स्तनों में दूध छुपा रहता है परन्तु वह वहाँ होता है। उसी प्रकार परब्रह्मन्, वह आत्मन्, वह संवेदनशील ईश्वरीय ज्योति बोध की सुगंध लिये हुये है; वह ज्योति, जीवन का वह मूलतत्त्व, जिसमें इच्छा, ज्ञान, क्रिया, सब घुल-मिल जाते हैं।

इस जीवन-ज्योति ने प्रत्येक व्यक्त स्वरूप में प्रवेश किया है। वह उसमें निवास करती है परन्तु गुह्य रहती है। *जब तक आप उसकी ओर उन्मुख नहीं होते, जब तक आप उसे खोजना नहीं चाहते वह अपने होने का अनुमान भी नहीं होने देती।* जिज्ञासा को बाधित नहीं किया जा सकता, उस पर अनुशासन नहीं लगाये जा सकते। उसका सर्वत्र विद्यमान होना, उसका अस्तित्व उनके लिये एक रहस्य रहता है, जो विभेदमूलक बोध के लिये, वास्तविकता जानने के लिये कष्ट नहीं करना चाहते। खाना, पीना और मौज में रहना ही उनके जीवन का विषय बन जाता है। सुख एवं दु:ख के झूले पर पीड़ा एवं उत्तेजना का अनुभव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करना और जब मृत्यु मारे तो बस मर जाना। विवेकपूर्ण प्रत्यक्ष बोध एक सहज जिज्ञासा का परिणाम है। 'अथातो आत्म जिज्ञासा अथातो सत्य जिज्ञासा'। उपनिषद् एवं वेद हमें बताते हैं, जब तक कोई शरीर, मन एवं बुद्धि को विभेद मूलक अनुभव में शिक्षित नहीं करता, तब तक प्रकटन नहीं होता; परन्तु वह वहाँ है।

यह कथन सत्य है कि मनुष्य जन्म से स्वतंत्र है। परन्तु वह स्वयं को बेड़ियों, बन्धनों एवं बाधाओं से घेरे रहता है। कुछ बन्धनों का निर्माण समाज द्वारा किया जाता है और कुछ का निर्माण स्वयं किया जाता है। *उस आत्मन्, उस परब्रह्मन् का प्रत्यक्ष बोध नहीं होता, वह दृश्य नहीं होता, उसका स्पर्श नहीं होता, क्योंकि हमें बन्धनों के तानों-बानों से प्रेम होता है।* हम अपने चारों ओर बन्धनों के जाल बनाते रहते हैं। इच्छा तत्त्व द्वारा प्रेरित तथा सुख तत्त्व द्वारा प्रोत्साहित रहते हैं। सुख तत्त्व में निमग्नता हमें जीवन की यथार्थता के प्रति जागृत नहीं होने देती। इसलिये नचिकेता, केवल वे जो स्वयं को बोध के सूक्ष्म तत्त्वों के बोध में शिक्षित करते हैं, जो स्थूल जगत्, स्थूल विषयों में तल्लीन नहीं रहते, उन्हें शाश्वत के अमृत का प्रकटन होता है। इन्द्रियों से ले कर विचार संरचनाओं तक सब स्थूल पदार्थ हैं; विचार एक पदार्थ है, विचार करना एक भौतिक गतिविधि है। क्योंकि लोग उससे संतुष्ट हो जाते हैं, वे अन्दर झाँक कर पूछते नहीं कौन भोग कर रहा है ? कौन है वह भोगता ? कौन सोच रहा है ? सोचना क्या है ? भौतिक विषयों, विचारों, भावनाओं से कैसे सुख प्राप्त किया जाता है ? यह प्रश्न कोई पूछता नहीं। इसलिये बोध एवं अनुक्रिया ऐन्द्रिय अथवा मानसिक स्तर पर अटक जाती हैं। विभेदात्मक बोध एक जिज्ञासु, एक साधक का विशेषाधिकार है। वह इन्द्रियों का शुद्धिकरण करना है, वह मन का, मस्तिष्क का शुद्धिकरण करना है। योग शुद्धीकरण का विज्ञान है, प्रबोधन शुद्धीकरण का उपफल है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनोभौतिक के शुद्धीकरण की आवश्यकता

दृश्यते त्वग्रयया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः। दूसरी पंक्ति में उपनिषद् कहता है, यद्यपि वह गुह्य है वह उनके द्वारा देखा जाता है, जिन्होंने सूक्ष्म के बोध की तैयारी की है। प्रत्येक शुद्धीकरण के साथ सूक्ष्म का बोध सरल हो जाता है। जो देखना चाहते हों कि बोध कैसे तीक्ष्ण तथा अधिक सूक्ष्म हो जाता है, वे पूर्ण अन्धकार में देखने का अभ्यास कर सकते हैं। जब आप बिजली इत्यादि द्वारा दिये गये स्थूल प्रकाश से हट जाते हैं अथवा उसे बुझा देते हैं तो कुछ नहीं देख पाते। फिर बोध-इन्द्रियों के साथ आपका संबन्ध आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ता है और आप अन्धकार में देख पाते हैं। इसके लिये आपको बिल्ली की आखों की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि अन्धकार में सूक्ष्म प्रकाश गुह्य रहता है। यह एक उदाहरण मात्र था, एक स्थूल जगत् के उदाहरण के रूप में यह दिखाता है किस प्रकार बोध को अन्धकार देखने के लिये तथा अन्धकार में देखने के लिये तैयार किया जा सकता है।

शिक्षा खेल-खेल में सीखना, प्रयोग करना, अन्वेषण करना, प्रमाणित करना है। सीखना अति आनंददायक होता है। जो व्यक्ति स्व-शिक्षा का क्रम बनाये रखता है वह सदा ओजस्वी एवं अभिनव रहता है, क्योंकि अतीत पर उसकी निर्भरता समाप्त हो जाती है। 'आज' के साथ, 'यहीं' तथा 'अभी' के साथ, शरीर की अनेकों शक्तियों के साथ उसका एक जीवन्त संबन्ध रहता है। वर्तमान के साथ उसका सम्मिलन होता है। जैसे ही आप अतीत की गतिविधि को विलम्बित होने देते हैं, वहाँ एक अद्भुत आनंद रहता है। आप जीवन के साथ कालातीत वर्तमान में, 'अभी' एवं 'यहीं' के साथ अकेले होते हैं। आप जीवन की ईश्वरता के संग अकेले होते हैं। आरम्भ में उसका आभास मात्र रहता है, फिर आप उसे देखने लगते हैं और फिर उसके साथ जीने लगते हैं। सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः; यद्यपि वह प्रत्येक व्यक्त स्वरूप में गुह्य है, वह उनके लिये गोचर होता है जो सूक्ष्म तत्त्वों के प्रत्यक्ष बोध के लिये स्वयं को शिक्षित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करते हैं। स्थूल से हट मूलतत्त्वों की ओर जाईये, फिर आपको शक्तियों के उत्पत्ति-स्थान का गुह्य मार्ग दिखता है।

सूक्ष्म जगत् के साथ सम्पर्क का मार्ग

कल्पना कीजिये एक ऐसा व्यक्ति है, जो इस विभेदात्मक बोध शक्तियों के सूक्ष्म जगत् तथा तत्त्वों का बोध करना सीखना चाहता है। वह कहाँ से प्रारम्भ करे ?

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि॥

योग विज्ञान मूल के साथ पुनः एक हो जाने का विज्ञान है। बाह्य के साथ संबन्धित रहते हुए, स्थूल के साथ सम्पर्क रखते हुए, जीवन के मूल के प्रति जागृत रहना योग है। एक साधक, एक योग विद्यार्थी, पहले कदम पर वाणी का मन में विलयन करना सीखता है। यह लय योग है। तकनीकी भाषा में इसे लय योग कहते हैं; लय विलयन है। यदि आप आधुनिक विज्ञान के शब्द का उपयोग करना चाहते हैं तो इसे डिस्टीलेशन कहिये। जैसे आप पानी को डिस्टिल करते हैं, वैसे ही यहाँ प्रत्यक्ष बोध को शुद्ध किया जा रहा है। इसके लिये उपनिषद् एवं प्राच्य रहस्यानुभवियों द्वारा विलयन शब्द का उपयोग किया गया है। लय योग, मृत्यु योग, ध्यान योग, ये एक ही विषय के तीन नाम हैं।

वाक् अर्थात् वाणी समस्त ऐन्द्रिय क्रियाओं की प्रतीक है। वाणी अन्य ऐन्द्रिय क्रियाओं से उच्च है, वह कैसे समस्त ऐन्द्रिय क्रियाओं की प्रतीक हो सकती है ? क्योंकि वाणी में आप नाद के साथ संबन्ध रखते हैं।* जब आप बोलते हैं, आप अपने अस्तित्व के नाद तत्त्व में रहते हैं तथा नाद तत्त्व आकाश की शून्यता में रहता है। आत्मन्: आकाशः संभूतः। आकाशात् वायुः। शब्दः आकाशस्य गुणः। नाद तत्त्व, जो अग्नि

---

* *आप नाद का शब्द में निर्माण करते हैं। यह एक भिन्न विषय है। यह मनुष्य प्रतिभा की सर्जनशीलता है, जो नाद से शब्द का निर्माण करती है, शब्दों को क्रमबद्ध कर प्रत्यय बनाती है और फिर उन प्रत्ययों से निष्कर्ष निकालती है। संस्कृति का पूर्ण सारांश आप जानते ही हैं।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्त्व है, वह आकाश की शून्यता में समाया है। आकाश तत्त्व के साथ यह रोमांस, आपके शरीर में शून्यता का तत्त्व सर्वोच्च क्रिया है। इसलिये वाणी को, वाक् को समस्त ऐन्द्रिय क्रियाओं का प्रतीक बना दिया गया है।

इस वाणी का जन्म मन में होता है, इसलिये उसका विलयन मन में कीजिये। विलयन का अर्थ विनाश नहीं है, यह रूपांतरण है। सभी ऐन्द्रिय क्रियाओं को कम से कम कर दिया जाता है, वाणी को भी अल्पतम कर दिया जाता है। उसे वापिस लौटने दिया जाता है, नाद को अपने स्रोत, अपने शरीर की शून्यता में लौटने दिया जाता है। सभी स्तरों में समायी क्रिया शक्ति के संरक्षण के साथ शुरुआत होती है। केवल वाणी ही नहीं, इसका अर्थ है सभी ऐन्द्रिय क्रियाओं का उपयोग शरीर की सभ्य, स्वस्थ, उत्तरजीविका के लिये किया जाता है, शरीर के सभ्य, स्वस्थ, भरण-पोषण के लिये किया जाता है। गति तत्त्व का, गति की शक्ति का उपयोग भरण-पोषण के लिये किया जाता है। उसे अल्पतम कर दिया जाता है। इसीलिये एक साधक के लिये एक सादा जीवन उच्च रहता है।

अल्पतम व्यय दमन नहीं है। यह विवेक से किया जाता है, बिना किसी दमन के, बिना किसी वंचन के किया जाता है। आप देखिये, संयम का मूल वैश्विक मूल है। केवल संयम ही समन्वय का संगीत पैदा कर सकता है। वंचन एवं अभाव के कष्ट अस्तित्व को संकुचित कर देते हैं; उनसे वह सूख जायेगा। अतिभोग से वह एक अत्यंत शिथिल उपकरण बन जायेगा, बिना किसी तितिक्षा के, बिना किसी प्रतिरोध शक्ति के। इसलिये अतिभोग के संप्रदाय, दमन एवं वंचन के संप्रदाय से बच कर संयम एवं समन्वय बीच का मार्ग है। यह शक्तियों के व्यय में संयम एवं शक्तियों के समन्वय का मार्ग है। सुमिलित शक्तियों का भी अत्यधिक उपयोग किया जा सकता है परन्तु वह योग का मार्ग नहीं है। सुमिलित शक्तियों का अत्यधिक उपयोग उन्माद पैदा कर सकता है। भक्ति के नाम से, मंत्र योग, तंत्र योग इत्यादि के नाम से ऐसा उन्माद होता है। इन उत्तेजनाओं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की प्रशंसा की जाती है, उन्हें सम्मान दिया जाता है, उन्हें प्रतिष्ठा का स्थान दिया गया है। अब, अणु-परमाणु के युग में, आध्यात्मिक साधना को वैज्ञानिक होना पड़ेगा। योग हमें वह मार्ग दिखलाता है। सुमिलित शक्तियों का भी अतिशय व्यय नहीं करना चाहिये। समस्त ऐन्द्रिय क्रियाओं को आहुति स्वरूप मन की वेदी पर अर्पित कर दिया जाता है। यह 'यच्छेद्वाङ्मनसी' का अर्थ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बारहवाँ संवाद

सचेतन विलयन का मार्ग

इससे पहले कि हम ग्रन्थ के साथ आगे बढ़ें, दो-एक विषयों को स्पष्ट कर दिया जाये। यह विस्तारपूर्वक बता दिया गया था कि आत्मिक पथ सचेतन मृत्यु का मार्ग है अथवा अस्तित्व के निम्न स्तरों* के साथ तादात्म्य के विलोपन का मार्ग है। अतादात्म्य की यह चेतन क्रिया, जिसे प्रतीक स्वरूप मरण अथवा मृत्यु कहते हैं, यह आध्यात्मिक जीवन की ऐल्किमी है। यह एक ऐल्किमिक क्रिया है। क्योंकि विलयन द्वारा मनोभौतिक शक्तियों का रूपांतरण होता है, उनका उच्च स्तर पर शक्ति के भिन्न रूप में पुनर्जन्म होता है। विलयन, मरण एवं जन्म पृथक् क्रियायें नहीं रहतीं, वे एक दूसरे में घुल-मिल जाती हैं। इसलिये इसे आत्मिक पथ की सुवर्ण ऐल्किमी कहा जाता है। यह एक क्रमिक विलयन है।

सभी योग के विद्यार्थियों को मैं बताना चाहूँगी कि जब कोई व्यक्ति संसार का परित्याग कर संन्यासी बनता है, जब कोई व्यक्ति संन्यास में दीक्षित होना चाहता है,तो वह विरजा होम करता है। वह एक प्रकार का यज्ञ करता है। अग्नि, जो परम ईश्वरत्व अथवा जीवन ज्योति का प्रतीक है, उसे साक्षी बना वह कहता है, नामाय स्वाहा, देहाय स्वाहा, गुणाय स्वाहा, भावाय स्वाहा, कुलाय स्वाहा, इत्यादि, इत्यादि। यह क्रिया है, जिससे पुन: एकात्मीकरण में लौटना नहीं होता। यह एक अनिवार्य प्रक्रिया होती है । विरजा होम करते हुये वह कहता है, नाम के साथ एकात्मीकरण, शरीर के गुणों के साथ, मन के गुणों के साथ का तादात्म्य छोड़ा। ज्ञानाय स्वाहा; वह ज्ञान जिसे मैंने अपनी बुद्धि द्वारा, विवेक द्वारा पाया था, मैं उसे अर्पित करता हूँ। सर्वस्व अर्पित कर दिया जाता है, इसे आत्म-श्राद्ध करना कहते हैं। आप अपनी अन्त्येष्टि स्वयं करते हैं।

* *कृपया, निम्न अथवा उच्च शब्दों का अर्थ किसी नैतिक मूल्यांकन करने के भाव से नहीं लगाईयेगा। ये शब्द केवल भौतिक तथ्यों के विवरण देते हैं। यदि आप शरीर पर नज़र डालें और ऐन्द्रिय अथवा भौतिक को निम्न स्तर कहें, तो वह तथ्य का विवरण मात्र है।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आप अपना श्राद्ध स्वयं कर, एक संन्यासी के रूप में पुन: जन्म लेते हैं। यह वेदान्त की प्रक्रिया है,वेदान्त का मत है, प्रत्येक दीक्षित व्यक्ति इससे गुज़रता है। कठोपनिषद् में यमराज, वह मूलतत्त्व, विलयन तत्त्व के स्वामी, नचिकेता को मृत्यु के द्वार से गुज़रने का, भौतिक के उत्थान की कठिन चढ़ाई पर कदम दर कदम बढ़ने का परामर्श दे रहे हैं । मैंने आपके साथ यह विषय बाँटना आवश्यक समझा।

दूसरा विषय है, जिसे हमने लययोग कहा है अथवा विलयन योग कहा है। हमारे प्रतिदिन के चौबीस घंटों में एक प्रकार की अनिवार्य लय रहती है अथवा रात्रि में प्रलय रहता है। जब आप जागृत चेतना से गहरी निद्रा में जाते हैं, तो अस्तित्व के विभिन्न स्तरों - भौतिक एवं मानसिक - के साथ का तादात्म्य विलीन हो जाता है। निद्रा के उस रहस्यपूर्ण मौन में व्यक्तिक आत्म तत्त्व अथवा अहम् व्यक्ति के साथ एकात्मीकरण का विघटन हो जाता है। प्रत्येक रात्री एक प्रकार से यह मृत्यु का अभ्यास होता है। यह विघटन नहीं होता, विनाश नहीं होता। आप जल में एक चुटकी नमक छोड़ते हैं, पूरे जल में नमक का स्वाद आ जाता है परन्तु वह नष्ट नहीं होता, वह घुल जाता है। उसी प्रकार जागृत चेतना का सुप्तावस्था में लुप्त होना उसका नष्ट होना नहीं होता । भोर के साथ वह निद्रा की रहस्यपूर्ण गुफ़ा से पुन: लौट सकती है। यह एक अनिवार्य जैविक लय योग होता है । जिससे हम गुज़रते हैं परन्तु बिना समझने के प्रयास के कि निद्रा क्या है, जागृत चेतना क्या है ? निद्रावस्था में जागृत चेतना का विलयन कैसे संजीवन कर देता है ? वह क्यों नव-जीवन का संचार करता है ? क्यों कुछ घंटों की गहरी नींद पश्चात् आप एक नवजात होने का अनुभव करते हैं, आप ताज़ा एवं सक्रिय होने का अनुभव करते हैं ? यह भी एक प्रकार का जैविक लय-योग है, एक अनिवार्य लय है , जिससे हम गुज़रते हैं । *कठोपनिषद् में विषय है चेतन लय योग का, यह विलयन की चेतन प्रक्रिया है।*

आज सुबह हमने देखा, वाणी अथवा समस्त ऐन्द्रिय क्रियाओं को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनके मौन के स्रोत में विलीन कर दिया जाता है। मन को ईश्वरत्व के प्रकाश में, जिसे बुद्धि अथवा विवेक कहा जाता है, उसमें विलीन कर दिया जाता है। हमें यहाँ एक क्षण रुक कर बुद्धि अथवा बुद्धिशक्ति की भूमिका पर नज़र डालनी होगी। उपनिषद् कहता है कि बुद्धि एक तत्त्व है, विवेक एक तत्त्व है, जिसमें ईश्वरत्व का प्रकाश मनोभौतिक रूप में प्रतिबिम्बित होता है। शंकराचार्य इसे प्रतिभासिक सत्ता, एक प्रतिबिम्बित सार कहते हैं। जैसे आप चंद्र अथवा सूर्य को सरोवर के शान्त जल में प्रतिबिम्बित देखते हैं, उसी प्रकार मनोभौतिक संरचना अनुभवातीत ईश्वर को, ब्रह्मांडीय वैश्विक प्रज्ञा के प्रतिबिम्ब को मनुष्य देह में लिये हुये है। इसे बुद्धि कहते हैं।

जब ऐन्द्रिय क्रियाओं तथा उनके साथ तादात्म्य को मन में विलीन कर दिया जाता है, तो अगला कदम मन के विलोपन का होता है। उसके समस्त अनुभवों को, स्मृतियों को ज्ञान के साथ, चेतना के पूर्ण सारांश को विवेक के प्रकाश के साथ विलीन कर दिया जाता है। जहाँ द्रष्टा-दृश्य का विभाजन भी विलीन हो जाता है तथा जीवन के एक होने का, संयोजक होने का, अपनी समस्त अभिव्यक्तियों में जीवन के ईश्वरत्व के होने का भान प्रकट होता है। समस्त पृथक्कारी अनुभव, विचार, भावनायें इत्यादि, इत्यादि, जीवन के पृथक्कारी बोध के परिणाम होते हैं। बुद्धि अथवा विवेक के स्तर पर वह संयोजक बोध में विलीन कर दिये जाते हैं।

हमारे चेतन जीवन में व्यक्तिनिष्ठ तथा वस्तुनिष्ठ ध्रुवता के दो छोर होते हैं। जीवन की समस्त अभिव्यक्तियों के परस्पर संबन्धित होने के अनुभव पर भी, बुद्धि में एकात्मता का अनुभव होने पर भी, उस समझ के वैयक्तिक तत्त्व में व्यक्तिनिष्ठा का भान रहता है। बुद्धि के लिये अभी यह देखना शेष होता है कि ज्ञान के, समझ के जिस प्रकाश को वह लिये हुये है, वह ईश्वरीय प्रकाश का प्रतिबिम्ब है अन्यथा वह मस्तिष्क की केवल एक कार्यक्षमता है। अभी उसका यह देखना शेष है। वह अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साथ एक व्यक्तित्व होने की धारणा लिये हुये है। उपनिषद् कहता है, बुद्धि में समाया है व्यक्तिनिष्ठा का एक छोर तथा बाह्य एवं आंतरिक इन्द्रियों में समाया है वस्तुनिष्ठा का दूसरा छोर। व्यक्तिनिष्ठा एवं वस्तुनिष्ठा के ये दो ध्रुव मौन की वेदी पर अर्पित कर दिये जाते हैं, जिसमें आत्मन् का ईश्वरीय प्रकाश गुह्य रहता है।

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि। ज्ञान को, बोध को, समझ को आत्मन् की वेदी पर, मौन की गुफ़ा में गुह्य इस वैश्विक ईश्वरीय किरण में विलीन कर दिया जाता है। वस्तु-सापेक्ष अहम् तथा व्यक्ति-सापेक्ष अहम् का एक चुटकी भर नमक समान, मौन के सागर में विलोपन हो जाता है। आत्मा मौन होती है, वह आग्रही नहीं होती। एक द्रष्टा समान वह मौन की गुफ़ा में निवास करती है तथा मन एवं मस्तिष्क को दु:ख-सुख के अनुभवों से गुज़रने देती है। जब तक कोई उसकी ओर उन्मुख नहीं होता, वह स्वयं को प्रकट नहीं करती। क्या विलयन की प्रक्रिया यहाँ समाप्त हो जाती है? उपनिषद् कहता है नहीं; तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि। शरीर के आवरण में रखा वास्तविकता का, ईश्वरत्व का वैयक्तिक सार अभी भी मर्यादित है। क्योंकि उसने देह को अपना निवासस्थान बनाया है, वह देश एवं काल में केन्द्रित है। इसलिये वह देश-काल की संरचना अथवा सीमाओं में मर्यादित है। वह बुद्धि में प्रतिबिम्बित है और बुद्धि मन का निर्देशन करती है, मन इन्द्रियों का नियंत्रण करता है। यह सब वहाँ घटित होता है।

व्यक्तित्व की मृत्यु से अव्यक्तिक प्रकाश का जन्म

व्यक्तित्व की धारणा का विलयन कर दिया जाता है, व्यक्तिनिष्ठता को मौन में विलीन कर दिया जाता है। उस विघटन से, व्यक्तिक अहम् अथवा व्यक्तित्व की धारणा की भस्म से एक अति कोमल बोध की लौ प्रकट होती है। वह एक अव्यक्तिक, व्यक्तितत्वहीन लौ है, उसमें व्यक्तित्व का कोई भान नहीं होता। वहाँ किसी प्रकार की कोई प्रतिमा नहीं होती। वह मौन से जन्म लेती है, ध्यान से जन्म लेती है अर्थात् अहम् की व्यक्तित्व

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के रूप में मृत्यु हो जाती है। एक अव्यक्तिक प्रकाश के रूप में उसका पुन: जन्म होता है। एक मोमबत्ती अथवा लालटेन में प्रकाश की लौ लालटेन की संपत्ति नहीं होती। उसका अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व होता है। वह किसी छाप, किसी कम्पनी, किसी धातु, किसी बनावट पर निर्भर नहीं करती। उसी प्रकार बोध की लौ, जो अहम् के मौन और ध्यान में विलोपन पश्चात् जागृत होती है, वास्तव में वह पृथ्वी पर उसी अव्यक्तिक वैश्विक ईश्वरत्व की किरण है। जैसे एक सूर्य-किरण पृथ्वी पर आ कर पृथ्वी को प्रकाशमय करती है और फिर भी सूर्य के साथ जुड़ी रहती है, वैसे ही यह अव्यक्तिक बोध की लौ वैश्विक प्रकाश के साथ जुड़ी रहती है। वेदान्त की भाषा में, उसकी शब्दावली में अहम् मरता है पुन: आत्मन् अथवा ब्रह्मन् के रूप में जन्म लेने के लिये। 'अहम् ब्रह्मास्मि'; अपने अस्तित्व के सार के तथ्य का बोध जागृत हो उठता है। अहम् की मृत्यु आत्मा का, ब्रह्मविद, ब्रह्मविद्या, आत्मविद्या का जन्म है। कठोपनिषद् हमें ऐन्द्रिय स्तर पर, शाब्दिक स्तर पर, मानसिक एवं बौद्धिक स्तर पर स्वेच्छा से मृत्यु के द्वार से गुज़रने का मार्ग सिखा रहा है।

ईश तत्त्व का अनुग्रह

एक बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न है यदि आत्मा के, चेतना के, यथार्थता के स्वरूप के बोध की लौ जागृत हो जाती है तो बोध की लौ का वैश्विक प्रज्ञा में आगामी विलयन किस प्रकार होता है ? स्वयं अहम् द्वारा मनोभौतिक संरचना की सूली पर अहम् का स्वेच्छिक क्रूसिफिकेशन हो गया है। व्यक्तिक धारणा का अव्यक्तिक लौ में पुनरुत्थान (Resurrection) भी हो गया है। अब आगे और क्या ? आगे है ईश तत्त्व का अनुग्रह, अधिमानसिकता का अवतरण। जैसा श्री अरविन्द कहते हैं, सभी उपनिषद् कहते हैं, अब ईश तत्त्व का अनुग्रह होता है। कहने का अर्थ है, सम्पूर्ण ईश्वरत्व, चेतना अथवा परम वैश्विक प्रज्ञा इस विशिष्ट प्राणी में निवास कर लेती है। इससे चेतना के स्वभाव में, आत्मन् के स्वभाव में, उसे देखने में, जानने में,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन एवं बुद्धि के माध्यम से उसकी सक्रियाशीलता में कोई अन्तर नहीं होता। अब परम् वैश्विक प्रज्ञा के स्वरूप तथा इस व्यक्ति के माध्यम से अभिव्यक्त प्रज्ञा के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं होता।

कठोपनिषद् का यह अध्ययन हमें नज़रथ के ईसामसीह को समझने का, उनके कथन को समझने का सामर्थ्य देता है। वे कहते हैं मैं ही वह पथ हूँ। वे कहते है, मैं और मेरे पिता एक हैं। वे कहते हैं कौन मेरे पिता के घर को दूषित कर रहा है ? वह बौद्धिक ज्ञान है जो निर्दोषिता के घर को दूषित करता है, वह मौन के घर को दूषित करता है। वह ध्यानावस्था का प्रतिरोध करता है, क्योंकि वहाँ ज्ञान आग्रह नहीं कर सकता; ज्ञान आग्रह करना चाहता है। वह किसी को, कम से कम स्वयं को बदलना चाहता है, वह चाहता है क्रिया, आग्रह, अभिपुष्टि, नकारना, कुछ करना।

उस अव्यक्तिक बोध के प्रकटन के साथ- जिसमें न तो व्यक्तिनिष्ठा है और न ही वस्तुनिष्ठा- मनुष्य ईश्वरीय अनुग्रह के आयाम में प्रवेश कर जाता है। वह व्यक्ति अन्य व्यक्तियों समान दिखता है, क्योंकि उसका एक शरीर होता है, इन्द्रियाँ इत्यादि होती हैं परन्तु चेतना का सार पूर्णत: परिवर्तित हो गया होता है। वहाँ एक प्रकार की वैश्विकता होती है। बोध का स्वरूप, अनुक्रियायें इत्यादि सब कुछ बदल गये होते हैं। इस प्रकार उपनिषद् एक व्यक्ति पर अनुग्रह के अवतरण की संभवना को स्वीकार करता है।

भौतिक के उत्थान के विषय में बहुत कुछ कहा जा सकता है। शुद्धीकरण तथा अतदात्मीकरण द्वारा अहम् व्यक्तित्व के एक अव्यक्तिक बोध की लौ में रूपांतरित होने के विषय में बहुत कुछ कहा जा सकता है। एक काव्य के रूप में नहीं परन्तु निजी अनुभव से कहा जा सकता है। हृदय की गुफ़ा में श्यामल नीर के मौन में जगमगाते, उस सहस्त्रपंखुड़ीय अव्यक्तिक बोध की लौ का वर्णन दिया जा सकता है। फिर भी वह काव्य समान जान पड़ेगा। इसलिये मुझे संयम का उपयोग कर आगे बढ़ना चाहिये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि। ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ॥ ब्रह्मन् को, परम् सत्य को शान्त आत्मा कहा जाता है। शान्त का अर्थ है जहाँ समस्त क्रियाओं ने स्वयं को विलीन कर दिया है, जहाँ स्पंदनों की क्रिया भी नहीं होती। उपनिषद् इसे नि:स्पंदन कहते हैं, वह जो स्पंदनों के अस्तित्व से परे है। पहला स्पंदन नाद का रहता है परन्तु अब वह नाद रहित मौन है। ऐल्किमी अथवा शक्तियों के रूपांतरण के मार्ग का वर्णन करने पश्चात्, यमराज, नचिकेता के माध्यम से विश्व की मनुष्य-जाति के सभी जिज्ञासुओं से कहते हैं-

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।
*क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥**

उत्तिष्ठत अर्थात जागो। क्यों जागो ? क्योंकि हम ऐन्द्रिय सुखों की गहरी निद्रा में हैं। हम दृश्य को, स्पर्शनीय को, वह जो इन्द्रियों की पकड़ में है उसे परम् सत्य के रूप में देखते हैं। यह अविद्या की गहरी निद्रा है, उससे जाग उठो। ऋषि कहना चाहते हैं विद्या की ओर उन्मुख हो जाओ। उसे जाग्रत करो, जाग्रत अर्थात् अपने स्वभाव की ओर चेतन हो जाओ। *गहरी निद्रा से, अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश की नींद से जागो। अपने सत्त्व, अपने अस्तित्व के सत्त्व के प्रति जागो, अपने अन्तर एवं चारों ओर के जीवन के ईश्वरत्व के प्रति जागो।* समझने के ध्येय से उनके पास जाओ, जो समझ चुके हैं। जिन्होंने अस्तित्व के सभी स्तरों पर इसे समझ लिया है। जिनकी परम् सत्य की समझ व्यवहार के समस्त स्तरों पर झलकती है। जब समझ आती है, जब किसी जीव को बोध होता है, तो यह असंभव है कि वह बोध व्यक्त न हो अथवा व्यवहार में प्रतिबिम्बित न हो। एक नज़र में, एक शब्द में, एक गतिविधि में, क्रिया में, अनुक्रिया में, विश्राम

---

* *यह मंत्र स्वामी विवेकान्द को विश्व की किसी भी अन्य वस्तु से प्रिय था। वे सदा इसका उदाहरण दिया करते थे। आपमें जो विवेकानन्द के प्रवचनों का अध्ययन करेंगे अथवा जिन्होंने उनका अध्ययन किया है, वे इस मंत्र से परिचित होंगे।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में, विश्रांति में वह झलक उठता है। ऐसा न होना असंभव है। वरान् एक अर्थपूर्ण शब्द है, एक अर्थगर्भित शब्द है। वर का अभिधार्थ है एक वरिष्ठ व्यक्ति, वर वह है जो आपसे उच्च है, जिसके जीवन का स्वरूप आपके जीवन से श्रेष्ठ है। वह व्यक्ति जिसके साथ आप संबन्ध रख सकते हैं, जो सहचारिता के लिये उचित है। प्राप्य वरान् अर्थात् ऐसे व्यक्ति के पास जाईये।

एक सच्चे गुरु की भूमिका

अब एक सचे गुरु की, एक आचार्य की भूमिका आती है। *यमराज नचिकेता से कहते हैं इस पथ पर चलने के लिये, जो तलवार की धार पर चलने समान है, उनके द्वार पर जाना होता है जिन्होंने समझ लिया है और उस समझ को जी रहे हैं।* 'प्राप्य वरान्निबोधत' अर्थात् उनके पास जाईये जिन्होंने उसे समझ लिया है, जो उसे जी रहे हैं। उनसे सीखिये ताकि आपकी शिक्षा बोध में खिल उठे। सीखना तीन स्तरों पर होता है। शाब्दिक संवाद के श्रवण से, श्रवण की सम्पूर्ण क्रिया से सीखना होता है, क्योंकि श्रवण के लिये सम्पूर्ण अस्तित्व की ग्रहणशीलता की आवश्यकता होती है। यह मात्र शब्दों को सुनना नहीं होता, शब्दों को सुनना तो श्रवण करने का मात्र आरम्भ होता है, श्रवण का कर्म उससे कहीं गहरा होता है। पूर्ण अस्तित्व की ग्रहणशीलता के लिये अनिवार्य है कि आपका अवधान बँटा हुआ न हो, आपका मन विभ्रांत न हो, उसमें चिन्ताओं का, तनाव का, परेशानिओं का विष न हो, वह विचारग्रस्त न हो। श्रवण करना अस्तित्व का पूर्ण रूप से खुला होना होता है, उसकी सम्पूर्ण ग्रहणशीलता होती है।

सीखने का दूसरा स्तर है निरीक्षणम्। आप उस व्यक्ति का निरीक्षण करते हैं, जिसे बोध हो गया है, जो प्रबुद्ध है अथवा मुक्त है। वह जो बुद्ध है, वह व्यक्ति कैसे आचरण करता है ? वह ऐन्द्रिय संरचना का, मानसिक संरचना का कैसे संचालन करता है ? एक संचालक के रूप में वह इन संरचनाओं का कैसे संचालन करता है ? वह इन्द्रियों के आवेगों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के साथ क्या करता है ? गीता के कथन अनुसार- स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव। स्थितधी: किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ।। एक स्थितप्रज्ञ कैसे बात करता है, गतिविधियों की अभिव्यक्ति में उसका अस्तित्व कैसे व्यक्त होता है ? वह कैसे संबन्धों में रहता है ? कैसे वह अनुक्रिया करता है ? यह सीखने का दूसरा ढंग है। शब्दों का मात्र श्रवण शुरुआत होती है । उसके पश्चात् वह निरीक्षण करता है ।

तीसरे ढंग से भी सीखना होता है। यदि व्यक्ति ग्रहणशील है, यदि वह बँटा हुआ नहीं है तो वह उपस्थिति की भाषा के प्रति संवेदनशील होता है । यदि उसके समक्ष सच्ची मुक्ति है, यदि कोई वास्तव में चेतना की अव्यक्तिक अवस्था में, अप्रतिबन्धित चेतना की, सर्वथा मुक्त चेतना की अवस्था में आनंद-विभोर है, तब उस व्यक्ति की उपस्थिति आपमें कुछ संचरित करती है। यह संचरण बिना आपकी अथवा उसकी जानकारी के होता है। इस प्रकार शाब्दिक संवाद द्वारा, निरीक्षण द्वारा तथा अचेतन निरीक्षण व ग्रहणशीलता द्वारा सीखना होता है ।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत। भारतीय आध्यात्मिक अभ्यास के सभी सम्प्रदायों में गुरु-शिष्य के इस संबन्ध का परामर्श दिया गया है । गुरु एवं शिष्य संबन्ध के आयाम हैं । वे कोई व्यवसाय नहीं । गुरु एवं शिष्य के संबन्ध के कारण एक अपनापन, एक सान्निध्य रहता है। उस निकटता अथवा आत्मीय सान्निध्य के उत्साह का एक अहसास रहता है। उस संबन्धित होने के भान में एक प्रकार की शक्ति का अनुभव रहता है। उपनिषद् का कहना है कि गुरु एवं शिष्य के बीच की आत्मिक संगति अनिवार्य है। क्योंकि मृत्यु के द्वार से गुज़रने का यह मार्ग, विलयन का यह मार्ग तलवार की धार पर चलने समान है । यह बहुत कठिन है। इस पथ पर अकेले ही चलना होता है; जहाँ विचारों एवं ज्ञान को भी समर्पित करना अथवा विलीन करना पड़ता है । यह अति कठिन होता है। इसलिये यह आत्मीयता का भाव, यह आत्मिक संबन्ध तथा उपस्थिति के सान्निध्य का स्नेह भौतिक के उत्थान में बहुत सहायक सिद्ध होता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है ।

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति। कवयोः अर्थात बुद्धिमान । बुद्धिमान लोगों ने हमें बताया है कि यह बहुत तीक्ष्ण पथ है, यह केवल कठिन चढ़ाई ही नहीं परन्तु तेज़ धार पर चलने समान है । क्यों ? क्योंकि जन्म से ही शरीर के साथ तादात्म्य का भाव विरासत में मिलता है। विचारों, स्मृतियों, ज्ञान इत्यादि के साथ संबन्धित होने का भाव मानसिक विरासत होता है । वह आपके हाड़-मांस में होता है, आपके जीवद्रव्य में, खून में होता है । हमें उसके साथ संबन्ध तोड़ना होता है, एक अनिवर्त्य वियोजन करना होता है। आखिरकार मृत्यु और क्या है ? शरीर के साथ ऐसे संबन्ध तोड़ना ही तो मृत्यु है । यहाँ, आप यह अंत सचेतन रूप से कर रहे हैं । शरीर में रहते हुये ऐन्द्रिय स्तर पर, मानसिक स्तर पर, बौद्धिक स्तर पर तादात्म्य के साथ संबन्ध तोड़ रहे हैं। इससे पीड़ा होती है !

यद्यपि आप स्वेच्छा से इस पथ का अनुसरण करते हैं, ऐसे क्षण आते हैं जब आप कहते हैं- यह शरीर दुर्बल है, हे प्रभु यदि तुम्हें मान्य हो तो अब इस वेदना को दूर करो । ऐसा क्षण आता है जब ऐसा कहने का प्रलोभन होता है परन्तु फिर हम संभल जाते हैं और कहते हैं- 'जो तेरी इच्छा'। प्रत्येक ईश तत्त्व के तीर्थयात्री, सत्य एवं यथार्थता के तीर्थयात्री के जीवन में ऐसे क्षण आते हैं । यदि गुरु के साथ एक संगति का सान्निध्य रहता है, आत्मिक सहचारिता का भाव होता है, तो ऐसे कठिन क्षणों में कुछ आसानी होती है । उपनिषद् केवल यह नहीं कहता कि उसके प्रति जाग्रत हो जाओ, उसके प्रति चेतन हो जाओ और उसका बोध पाओ । 'प्राप्य वरान्' कह कर वह हमें एक उद्धारक अनुग्रह देता है ।

इन विषयों के अतिरिक्त, मैं आपके ध्यान में लाना चाहती हूँ कि जब कोई स्वेच्छा से एक आचार्य एवं विद्यार्थी अथवा एक गुरु एवं शिष्य के संबन्ध को स्वीकार करता है, तो उसमें एक अन्य सुरक्षा का भी भाव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहता है।* जैसे यमराज द्वारा नचिकेता की जिज्ञासा, उसकी सत्यनिष्ठा को पहचान लिये जाने पर, उसका मूल्यांकन कर लेने पर, उसे एक अन्य वर भी प्रदान किया गया। हर संभव ढंग से यमराज ने उस की सहायता करनी चाही। एक सच्चा आचार्य, जिज्ञासु को हर संभव ढंग से सहायता प्रदान करना चाहता है। यदि आचार्य जान जाता है कि वह जिज्ञासु, वह तीर्थयात्री डगमगा रहा है, लड़खड़ा रहा है, तो वह तुरंत उसका ध्यान उस ओर आकर्षित करता है, उसे सावधान करता है। *यदि अहम् व्यक्तित्व पुनः आने का प्रयास करता है और किसी भी स्तर पर आग्रह की चेष्टा करता है, तो आचार्य उसे वह दिखा देता है।* यह एक बिन माँगी सहायता रहती है। क्योंकि यह संबन्ध, इस संबन्ध की तर्कसंगति, इस संबन्ध का रसायन आचार्य में ध्यान रखने की प्रवृत्ति पैदा करता है, ताकि वह तीर्थयात्री लड़खड़ाये नहीं, वह डगमगाये नहीं, वह भय से विचलित न हो। *जब आचार्य देखता है कि काया कमज़ोर पड़ रही है, तो वह शिष्य को याद दिलाता है-'अमृतस्य पुत्रा', तुम अमरत्व की सन्तान हो।* वह शिष्य को जीवन के ईश्वरत्व का स्मरण कराता है। वह उसे अनुभवातीत ईश्वरत्व के सर्व विद्यमान होने की याद दिलाता है। ताकि भय दूर हो और वह साधक, वह जिज्ञासु पुनः उत्थान के मार्ग पर चले।

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति। बुद्धिमान लोग कहते हैं यह बहुत कठिन मार्ग है, इसलिये किसी प्रबुद्ध के पास जाना उचित है। क्योंकि यह जानने का, अनुभव करने का ऐन्द्रिय अथवा मानसिक मार्ग नहीं है। यह उस सबसे परे है, यह दृश्य एवं स्पृश्य से परे है। कठोपनिषद् के इस मंत्र से यह सिद्धान्त बनाया गया है कि आपका कोई गुरु होना आवश्यक है। ऐसा नहीं कि आपका कोई गुरु होना ही

---

* *शिष्य वह है जिसमें सीखने की इच्छा है और जो उस शिक्षा को अपनी सम्पूर्ण जागृत चेतना में पालन करने को तैयार है। यह शिष्य शब्द का मूल अर्थ है, जिससे अनुशासन शब्द बना है।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चाहिये परन्तु यदि कोई योग के मार्ग का अनुसरण करना चाहता है, तब उसे इस सहायता की आवश्यकता होती है। यह आपकी आवश्यकता पर निर्भर करता है। यदि कोई इस गुह्य पथ का अनुसरण करना चाहता है, ऊर्जाओं के रूपांतरण की ऐल्किमी सीखना चाहता है, तो उसे इस सहायता की आवश्यकता होती है। यदि वह सीखना चाहता है कैसे विलयन हो, कैसे निम्न स्तर पर मर कर वह सचेतन रूप से पुनः उच्च स्तर पर जन्म ले, तो ऐसे व्यक्ति को किसी मुक्तजन के पास जाना चाहिये। उसे किसी मुक्त व्यक्ति के पास जाना चाहिये, जो इस मार्ग पर चल चुका हो, जो समस्त प्रतिमाओं के प्रति, समस्त एकात्मीकरणों के प्रति मर चुका हो, वह जो निरपेक्ष रूप से मुक्त हो। *जिसके अस्तित्व के प्रत्येक स्तर पर, प्रत्येक क्षण, प्रत्येक गतिविधि में वह सहज मुक्ति दिखायी पड़ती हो वह 'वरान्' है, वह उत्कृष्ट जीव है।* वह मात्र एक दार्शनिक नहीं होता, वह मात्र व्याख्यानों में निपुण व्यक्ति नहीं होता। यदि उसमें ऊर्जाओं का रूपान्तरण हुआ है, तो आप यह उसके जीवन के स्वरूप से जान जाते हैं।

अब अन्तिम विषय है। कोई साधक, कोई विद्यार्थी कैसे पहचाने कि ऐसा रूपांतरण किसी व्यक्ति में हुआ है ? प्रथम अध्यांय के तीसरे भाग में, दो श्लोकों में इस का उत्तर मिलता है।

सत्य के प्रेम द्वारा मुक्तजनों की पहचान

कैसे जाना जाये कि कोई व्यक्ति मुक्त है अथवा उसमें रूपांतरण हुआ है। यमराज द्वारा दिया गया यह एक अद्भुत उत्तर है। यमराज कहते हैं, क्या तुम भूल गये हो- 'आत्मा गूढः अनुप्रविष्टः'। पत्थर से ले कर मनुष्य जीव तक, प्रत्येक स्वरूप में, प्रत्येक अभिव्यक्त रूप में ईश्वरीय चेतना है। वह ब्रह्मन, वह वैश्विक प्रकाश, वह ईश्वरीय प्रज्ञा प्रत्येक स्वरूप में प्रवेश किये हुये है। हो सकता है वह मूक हो, वह स्वयं से अवगत न हो परन्तु वह है वहाँ; साधक के हृदय में, विद्यार्थी में भी वह है। वह चेतन नहीं है, वह जागरुक नहीं है, इसलिये वह उसे समझ नहीं पाता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परन्तु उसे उसका आभास होता है, जैसे हमें सौन्दर्य का आभास होता है, जैसे एक छोटे बालक की पवित्र अबोधता आपको आकर्षित करती है। यदि आपके अन्दर अबोधता का कोई अनुभव नहीं होता, यदि आपके अन्दर सौन्दर्य का कोई भान, उसकी कोई पहचान नहीं होती, तब आप सौन्दर्य की सराहना नहीं कर पाते। आप भले एक कलाकार न हों परन्तु यदि कोई पूछे कि आप अमुक कलाकृति को क्यों सुन्दर कहते हैं, तो आप कहेंगे मैं नहीं जानता। आप संगीत सुनते हैं, उसकी सराहना करते हैं। आप भले ही संगीतकार न हों परन्तु आपमें वह अहसास होता है, प्रेम का अहसास होता है, सौन्दर्य का स्पर्श होता है, विनम्रता का, अबोधता का, शान्ति का अनुभव होता है। अपने अन्तर के उस मूक स्पर्श की सहायता से जो अभी तक एक कली है, जिससे चेतन समझ एवं बोध खिलेगा, उस स्पर्श के कारण आपको पहचान होती है। इसी कारण, जब एक सच्चा विद्यार्थी, जो यथार्थता की ओर उन्मुख हो गया है, जिसे आत्मन् से प्रेम हो गया है, वह उस स्पर्श के द्वारा पहचान कर लेता है। वह अनुभव कर सकता है कि रूपांतरण विशुद्ध है अथवा एक नकल है। वह उसका विश्लेषण नहीं कर सकता, उसको समझ नहीं सकता परन्तु हृदय में नकली एवं असली के अन्तर का अनुभव कर सकता है। हमारे अन्तर समायी सहज प्रज्ञा प्रतीति में हमारी सहायक होती है। साधना द्वारा वह प्रतीति से बोध की ओर बढ़ता है। बोध के बिन्दु से वह आत्मानुभूति की ओर बढ़ता है, उसे अपने दैनिक जीवन में जीता है। यह है वह सोपान; हमारे उत्थान का मार्ग।*

अनिवर्त्य रूपांतरण

यमराज कहते हैं, यदि आप एक प्रबुद्ध व्यक्ति के पास जाते हैं तथा शिक्षा ग्रहण कर लेते हैं, तो आप मृत्यु की पकड़ से मुक्त हो जाते हैं।

---

* उपनिषद् शिक्षा प्रदान करना चाहते हैं, वे सिद्धान्तों के प्रचार नहीं हैं। वे आचार्यों एवं शिष्यों के बीच के संवाद हैं, इसलिये क्रिया प्रणाली शिक्षा की है, पद्धति सुझाव की है तथा कथन शैली काव्यात्मक है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्योंकि ऐसा व्यक्ति स्वेच्छा से मर जाता है, कोई मृत्यु उसे मार नहीं सकती। 'मृत्युमुखात् प्रमुच्यते' शब्दों का क्या अर्थ है ? मृत्यु की पकड़ से, उसके पंजों से छूटने का भला क्या अर्थ है ? इसका अर्थ है कि फिर कभी वह अभिज्ञा, वह अव्यक्तिक बोध एवं प्रज्ञा, ऐन्द्रिय सुखों, मानसिक सुखों, अहम् व्यक्तित्व के सुखों के साथ तादात्म्य के प्रलोभन का शिकार नहीं होती। फिर कभी वह अपनी प्रतिमायें बनाने तथा उनका प्रक्षेपण करने में, उस संसार में पुनः व्यस्त नहीं होती। ऐसा होने से पुनः उसमें लौटना नहीं होता।

जन्म लेना क्या है ? इच्छा का उठना ही जन्म लेना है। अब ऐसा नहीं होता। ऐन्द्रिय एवं मानसिक की देख-भाल की जाती है परन्तु इच्छा का अंश, अर्जनशीलता का तत्त्व, स्वामित्व का अंश, अपनाने की इच्छा इत्यादि, पृथकता का भाव इत्यादि समाप्त हो जाते हैं। यह एक शाश्वत रूपांतरण होता है, वह व्यक्ति तादात्म्य की क्रिया में पुनः कभी नहीं लौटता। ऐसा व्यक्ति सदा के लिये 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणम्' के बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वितीय अध्याय

सत्य प्रकटन

ध्यानावस्था से, उस ऐल्किमी के आसन से, यज्ञ वेदी की पवित्र स्थलि से सब शुद्ध हो जाता है, परिष्कृत हो जाता है।

अब वह यथार्थता, वह ब्रह्मन्, वह शुद्ध चेतना, सांख्य एवं योग का पुरुष, ईशोपनिषद का ईश, छन्दोग्य का ओंकार, बृहदारण्यक का अमृतं, बिन्दूपनिषद एवं नादोपनिषद का बिन्दु अथवा अमरत्व की वह बूँद जल में प्रतिबिम्बित होती है।

नचिकेता ने पूछा था- अस्ति इति एके, न अस्ति इति एके? यमराज कहते हैं, अस्ति इति; वह है वहाँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तेरहवाँ संवाद

ग्रन्थ के साथ आगे बढ़ने से पूर्व पहले अध्याय के विषय में कुछ शब्द कहना चाहूँगी। नचिकेता ने प्रश्न किया था मृत्यु के विषय में, शरीर में समाविष्ट किसी तत्त्व के शरीर से उत्तीर्ण होने के विषय में; मृत्यु पश्चात् उसके अस्तित्व के विषय में। आचार्य यम ने भौतिक, मानसिक तथा आत्मिक स्तर पर मृत्यु का आशय बता दिया है। आज हम दूसरे अध्याय का अध्ययन आरम्भ कर रहे हैं, जो पहले अध्याय समान कठिन नहीं है। दूसरे अध्याय में श्लोकों की गिनती भी पहले अध्याय से लगभग आधी है। आईये आशा रखें यहाँ उतनी कठिनाई नहीं लगेगी, जितनी पहले सप्ताह लगी थी।

प्रतीकात्मक भाषा

कृपया स्मरण करें कि यमराज विवस्वत के पुत्र वैवस्वत हैं। आकाश में आप जो सूर्य देखते हैं, उसके नामों में से एक नाम विवस्वत है। आकाश का सूर्य जीवन के दिव्य प्रकाश का, परब्रह्मन् का, परमात्मा का प्रतीक है। सभी उपनिषदों द्वारा, ईश्वरत्व को प्रकाश के प्रतीक के रूप में सुझाया गया है। सूर्य ईश्वरत्व का, परब्रह्मन का प्रतीक है, तथा यमराज उसी सूर्य की सन्तान हैं। प्रतीकात्मक रूप से पृथ्वी पर वैवस्वत अर्थात् यम सूर्य की सन्तान हैं। *ईश्वरत्व का, परब्रह्मन् का सूचक होने के नाते यमराज आत्मा के सूचक हैं, तथा नचिकेता मनुष्य की सत्य एवं मुक्ति की आकांक्षा का सूचक है।*

क्या आपके ध्यान में आया है कि संपूर्ण भगवत्गीता कठोपनिषद् का विस्तरण है, उसका परिष्कार है? गीता में यमराज नहीं अपितु श्री कृष्ण आत्मिक दिव्यता के प्रतीक हैं तथा अर्जुन सत्य एवं मुक्ति की आकांक्षा का प्रतीक है। पांडव एवं कौरव जीवन की असंख्य मानवीय अभिवृत्तियों एवं मनोवृत्तियों के, उनमें से उत्पन्न हुयी उलझनों के सूचक हैं। यह एक प्रतीकात्मक भाषा है, कोई नहीं जानता कि नचिकेता तथा यम थे भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

या नहीं, न ही कोई जानता है कि कृष्ण तथा अर्जुन थे । यह मिथिकशास्त्र नहीं हैं। उपनिषद् कोई धार्मिक ग्रंथ नहीं हैं, वे तो अध्यात्म के, विज्ञान के, जीवन एवं जीवन शैली के विज्ञान के ग्रन्थ हैं। रेखागणित में बिंदु एक प्रतीक होता है, जिसे खींच कर आप एक रेखा बनाते हैं और फिर कोण। परन्तु जब तक आप एक बिन्दु - जिसकी कोई लंबाई एवं चौड़ाई नहीं होती- की कल्पना नहीं करते, रेखागणित, त्रिकोणमितीय, अभियांत्रिकी इत्यादि का विज्ञान संभव नहीं होता। आपको कुछ प्रतीक मानने पड़ते हैं। यहाँ, यम एवं नचिकेता के नाम तथा सम्पूर्ण संवाद प्रतीकात्मक भाषा में है। जब गुह्य मूलों को समझना होता है तो प्रतीकों का उपयोग करना पड़ता है । फिर शब्द भी तो एक प्रतीक ही है; शब्द वह विषय नहीं होता जिसे वह सूचित करता है। कोई भी वर्णन वह नहीं होता जिसका वह वर्णन करता है। अब यदि प्रतीकों की, उपमाओं की भाषा को, इस रूपक, लाक्षणिक काव्य शैली को समझ लिया गया हो, तो चलिये ग्रन्थ का अध्ययन करते हैं।

द्वैत का अस्वीकार

कठोपनिषद् दो वास्तविकताओं के होने को स्वीकार नहीं करता । वह एक ही सर्वव्यापी पारगम्य सत्य अथवा दिव्यता को स्वीकार करता है, उसे प्रस्तुत करता है, उस पर प्रकाश डालता है। यदि आप कोई देवत्व देखना चाहते हैं तो व्यक्त विश्व ही वह देवत्व है। अव्यक्त ईश्वरत्व है तथा व्यक्त है देवत्व । व्यक्त देवत्व में, ब्रह्मांड के असंख्य विविध विषयों में, स्वरूपों में ईश्वरत्व अंतर्भूत है। व्यक्त विश्व में ईश्वरत्व का प्रकाश, सत्य का दिव्य प्रकाश, जीवन का प्रकाश, प्रेम का प्रकाश समाविष्ट है। वह परब्रह्मन्, वह चैतन्य, वह ब्रह्मन् घास के तिनके से ले कर सर्वस्व में अंतर्भूत है; फिर भी वह उसके परे है। सर्वव्यापकता उस अनन्त ईश्वरत्व को बन्दी नहीं बनाती । वह रूप को निवास बनाती है, फिर भी वह उससे परे है। आगे बढ़ने से पहले हमे इस मूलतत्त्व को ध्यान में रखने की आवश्यकता है कि आत्मन्, वह परमात्मन्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वव्यापी तथा अनुभवातीत है। जैसे अव्यक्त एवं व्यक्त, ईश्वरत्व के दो पहलू, जीवन के एक ही प्रकाश को समाये हुये हैं, उसी प्रकार मनुष्य देह में जीवात्मा तथा आत्मा दो भिन्न तत्त्व नहीं हैं। द्वित्व का स्वीकार न तो ब्रह्मांड के स्तर पर और न ही पिंड के स्तर पर किया जाता है।

जीवात्मा अथवा अहम् व्यक्तित्व क्या है?

यह जीवात्मा क्या है ? पाश्चात्य परम्परा की 'सोल' क्या है ? मनोवैज्ञानिकों द्वारा सुझाया गया यह 'अहम् व्यक्तित्व' क्या है ? हिन्दु जीवात्मा किसे कहते हैं ?

जिस प्रकार अनुभवातीत सत्य प्रत्येक विषय में, प्रत्येक पदार्थ में, वस्तु में, प्रत्येक व्यक्त तत्त्व में व्याप्त है तथा व्यक्तिक तथा अव्यक्तिक रूप से प्रत्येक वरिष्ठ रूप में समाविष्ट है, उसी प्रकार मनुष्य देह में वह अनुभवातीत शक्ति, वह परब्रह्मन्, वह परमात्मन् है। उस पराशक्ति ने मनुष्य देह में प्रवेश किया है, वह सर्वव्यापी है।

चैतन्य अथवा परब्रह्मन् का यह प्रकाश मनुष्य देह में क्या करता है ? जिसे आप बुद्धि कहते हैं, जो ऐन्द्रिय स्तर पर सर्वोच्च तत्त्व है, उस में वह प्रकाश प्रतिबिम्बित होता है। आत्मा अथवा परमात्मा का यह प्रतिबिम्बित प्रकाश, बुद्धि को,बुद्धिशक्ति को सामर्थ्य देता है कि वह ऐन्द्रिय विषयों से सम्पर्क रखने के लिये, इन्द्रियों से जुड़े मन का मार्गदर्शन कर सके। बुद्धि में प्रतिबिम्बित यह प्रकाश, निरंतर मन के साथ संबन्धित रहने में, उसका मार्गदर्शन करने में व्यस्त रहता है। मन इन्द्रियों के सम्पर्क में तथा ज्ञानेन्द्रियों द्वारा लाये गये संवेदनों के सम्पर्क में रहता है। बुद्धि उन संवेदनों के अर्थ लगाने में, प्रत्येक घटना को अनुभव अथवा ज्ञान के रूप में परिवर्तित करने में व्यस्त रहती है। ज्ञानेन्द्रियों द्वारा लाये गये संवेदनों को मन द्वारा स्वीकार करने तथा बुद्धि द्वारा मन का मार्गदर्शन करने की प्रवृत्ति अनुभव में परिणत होती है। दीर्घकाल तक उसका उपयोग, एक लम्बा संबन्ध तदात्मीकरण में परिणत होता है। जिसे आप जीवात्मा कहते हैं, अहम् व्यक्तित्व कहते हैं, इस तदात्मीकरण के सिवा वह और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुछ नहीं है। उसका एक मानसिक अस्तित्व, एक संकल्पनात्मक अस्तित्व है। आपके यकृत समान, हृदय अथवा फेफड़ों के समान उसका कोई अस्तित्व नहीं है; यह एक स्पंदनिक अस्तित्व है। चाहे आप इसे अहम् कहिये अथवा जीवात्मा, यह केवल लगाये गये अर्थ का, प्रतिपादनों का सम्मिश्रण है, यह कोई ठोस विषय नहीं है।

ऐसा भी संभव है कि बुद्धि मन का मार्गदर्शन करे और मन स्पन्दनों को लेकर, उनका अर्थ लगा कर शान्त हो जाये; कोई तदात्मीकरण व एकात्मीकरण न करे। जिस प्रकार जल स्पंज में समाया रहता है और उसे स्पंज से निचोड़ दिया जा सकता है, उसें बह जाने दिया जाता है, उसी प्रकार घटनाओं को ऐन्द्रिय, मानसिक, बौद्धिक स्तर पर घटित होने दिया जाता है। इन घटनाओं से उपजे ज्ञान अथवा अनुभवों का निजीकरण अथवा संग्रहण नहीं किया जाता। उन्हें मन के स्तर पर, एक ठोस अस्तित्व में रूपांतरित नहीं किया जाता। ऐसा होने से यह तदात्मीकरण रहित अभिवृत्ति, अहम् के , जीवात्मा के शान्त होने में, उसके लुप्त होने में, उसके विलयन में परिणत होती है ।

मनुष्य देह में अहम् के रूप में जीवात्मा तथा आत्मन् के रूप में उच्च आत्मा कहे जाने वाले दो अस्तित्व नहीं हैं। जिस प्रकार ब्रह्मांड में व्यक्त तथा अव्यक्त का कोई द्वैत नहीं है, आपका शरीर जो अव्यक्त ईश्वरत्व को समाये हुये व्यक्त है, उसमें भी कोई द्वैत नहीं है। कृपया इस मूलतत्त्व को ग्रहण कीजिये। कठोपनिषद् ने अपनी शिक्षा यथार्थता के इस अद्वैत पर केन्द्रित की है, ईश्वरत्व के सर्वव्यापी तथा अनुभवातीत होने पर केन्द्रित की है। यदि यह उचित रूप से स्पष्ट हो गया है तो आगे बढ़ते हैं।

जीवन ही ईश्वरत्व है

पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भू-
स्तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्मन्।

स्वयम्भू अर्थात् जीवन का स्वयं से जन्मा तथ्य, ईश्वरत्व का स्वयं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से जन्मा तथ्य। सभी उपनिषद् जीवन को ही ईश्वरत्व मानते हैं; ऐसा नहीं कि जीवन ईश्वरत्व है। यह कोई गुण नहीं परन्तु यह सार है, यह तो उसका सत्त्व है। जीवन स्वयं ही ईश्वरत्व है। हम स्वयम्भू, स्वयंभवती, शब्द का अध्ययन कर रहें हैं। वह जो स्वयं से जन्म लेता है, उसे ईश्वरत्व कहते हैं। वह जो मानवीय विचार अथवा मानवीय कर्म से उत्पन्न नहीं होता, वह जो मनुष्य द्वारा संकल्पित नहीं होता। हम आराध्य की, देवी-देवताओं की कल्पना कर सकते हैं। स्वयं पर नियंत्रण इत्यादि रखने के लिये उनका उपयोग कर सकते हैं। हम उनका उपयोग अपनी मानसिक आवश्यकताओं की तुष्टि के लिये कर सकते है। यही तो करते आये हैं धर्मसंघटन, परन्तु यहाँ हमारा संबन्ध विज्ञान से है। जिसे आप जीवन का स्वयम्भू तथ्य कहते हैं, उसीको उपनिषद् ईश्वरत्व अथवा ब्रह्मन् कहते हैं। ब्रह्मन् शब्द बृहत से बना है। वह जो अपने सत्त्व की क्षति किये बिना अपना विस्तार कर सकता है। वह जो स्वयं को खंडित किये बिना स्वयं को बहुविध अभिव्यक्तिओं में विस्तृत तथा व्यक्त कर सकता है। उसकी प्रत्येक अभिव्यक्ति, उसके सत्त्व से वंचित हुये बिना अव्यक्त को समृद्ध करती है।

व्यक्त एवं अव्यक्त का नृत्य-

ईश्वरत्व के इस स्वयम्भू तथ्य ने एक अति रुचिकर लीला की रचना की है। वह क्या है ? जब वह ईश तत्त्व मनुष्य देह में व्यक्त होता है, तो वह स्वयं को अनेकों कोष्ठों- जिन्हें छिद्र कहा जा सकता है- से अलंकृत करता है, जिनसे वह बाहर देख सकता है। ख से बने खानि शब्द को कोष्ठ अथवा छिद्र में अनूदित किया जा सकता है। नाक, आँखें, कान, मुँह इत्यादि ज्ञानेन्द्रियाँ वे छिद्र हैं, वे झरोखे हैं, जिनसे छुपा हुआ अव्यक्त ईश्वर बाहर देख सकता है। होता क्या है कि ईश्वरत्व का प्रकाश, जो एक चेतना है, जो अनन्त चेतना है, अप्रतिबन्धित चेतना है, जिसमें उन्मुक्तता स्वाभाविक है, जो स्वयम्भू है, स्वयं प्रेरित है, स्व-नियंत्रित है, स्व-व्यवस्थित है, वह इन छिद्रों से प्रवाहित होती है। वह बाहर प्रवाह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करती है; मानो अपना श्वास इन ज्ञानेन्द्रियों से बाहर छोड़ रही हो। चेतना का प्रकाश बाहर प्रवाहित हो ऐन्द्रिय विषयों को प्रकाशमान करता है। सूर्य पृथ्वी पर वस्तुओं को प्रकाशमान करता है। आकाश का सूर्य सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशमान करतां है, उसी प्रकार हमारे शरीर में ईश्वरत्व के सूर्य का प्रकाश, ज्ञानेन्द्रियों से प्रवाहित हो ऐन्द्रिय विषयों को प्रकाशित करता है। जब वह नेत्रों के छिद्रों से हो कर ऐन्द्रिय विषयों को प्रकाशित करता है, तो वह रंग, आकार, माप, रूप इत्यादि देखता है। जब वह कानों के छिद्रों से प्रवाहित होता है तो वह शब्द सुनता है। जब वही चेतना नाक से प्रवाहित होती है तो आप उसे गन्ध कहते हैं। जब वह आपकी त्वचा से बाहर जाती है तो आप उसे स्पर्श कहते हैं। वह शरीर में समायी एक ज्योति, एक ऊर्जा, एक आत्मा, एक ही चैतन्य अथवा परम प्रज्ञा है, जो बाहर प्रवाहित होती है।

पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भूः । परा का अर्थ है बहिर्गामी। यहाँ बाह्य गति का वर्णन दिया जा रहा है। यदि आप मुझे अनुमति दें तो मैं कहूँगी कि यह श्वास बाहर छोड़ने की क्रिया है और जब स्पन्दनों को वापस लिया जाता है तो वह श्वास अन्दर लेना होता है। *जब अव्यक्त व्यक्त होता है तो उपनिषद् उसे श्वास बाहर छोड़ने की क्रिया कहता है; उसे निःश्वास कहता है। जब व्यक्त को अन्तर में समा लिया जाता है, तो उपनिषद् उसे श्वास अन्दर लेना अथवा उच्छ्वास कहता है।* यह है ब्रह्मांडीय निःश्वासो- उच्छवास की क्रिया। प्रतीकात्मक, सांकेतिक भाषा में कठोपनिषद् अब लीला का, अव्यक्त तथा व्यक्त के बीच की सहज क्रीड़ा का वर्णन कर रहा है।

पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भूः। स्वयंभू ईश्वर जीवन तथा जीने की लीला कर रहा है। वह ज्ञानेन्द्रियों से, छिद्रों से बाहर प्रवाहित हो, शरीर के चारों ओर के क्षेत्र को प्रकाशित करता है; जैसे सूर्य धरती को प्रकाशित करता है। फिर क्या होता है ? यह चेतना, जो ज्ञानेन्द्रियों से बाहर प्रवाहित होती है , वह स्वयं द्वारा प्रकाशित विषयों द्वारा मोहित हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाती है। उनके सम्पर्क के स्पन्दनों में वह स्वयं को भूल जाती है। अपने ही द्वारा प्रकाशित विषयों के सम्पर्क से, उनके स्पन्दनों से, उनके साथ क्रीड़ा में वह भूल जाती है कि वही उन विषयों को प्रकाशित कर रही है। गन्ध, स्वाद, शब्द इत्यादि, एकमात्र उनके विषयों में नहीं होते। वह ऊर्जा है, चेतना है, वह जीवन का प्रकाश है, दिव्य आत्मा है, जो शब्द, स्वाद, गन्ध, उंडेल रही है, उन्हें वस्तुओं को प्रदान कर रही है।

यदि वह प्रकाश न हो तो मृत शरीर तथा ज्ञानेन्द्रियाँ असहाय हो जाती हैं। प्रकाश के दूत, प्राण सम्पूर्ण शरीर में समाये रहते हैं, रक्त के प्रवाह समान, ऊर्जाओं की धारा समान, प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान की विभिन्न धारायें शरीर में प्रवाहित रहती हैं। *यदि ईश्वरीय प्रकाश के ये दूत, प्राण, चेतना से बाहर प्रवाहित न हों तो कुछ भी नहीं हो सकता। चेतना यह भूल जाती है।* ज्ञानेन्द्रियों, मन, बुद्धि, तथा बाह्य जगत् में विषयों की पृथकता, रंगों, गन्धों, सुगन्धों, स्वादों, स्पर्श के अनुभवों इत्यादि में व्यस्त चेतना स्वयं को भूल जाती है।

क्या हम स्वयं को भूल नहीं जाते? बात करने की साधारण क्रिया में भी हम भूल जातें हैं कि हम क्यों बोल रहे हैं; बोलने का सुख ही हमें बुलवाता जाता है। खाते समय हम भोजन लेने का उद्देश्य ही भूल जाते हैं; इन्द्रियों द्वारा विभिन्न स्वादों से पाया हुआ सुख ही हमें व्यस्त रखता है। भोजन तथा हमारे बीच की परस्पर-क्रिया के उद्देश्य को ही भुला दिया जाता है और हम स्वाद के बंदी बन जाते हैं। फिर, मन उन आस्वादों के लिये आतुर होने लगता है, आँखें उन आकृतियों के लिये, उन विषयों के लिये आतुर होने लगती हैं जिनके हम आदी हो जाते हैं। फिर स्वयम्भू ईश्वर द्वारा रचित यह समस्त साधन अपने होने के सार को भूल जाते हैं। वह उनकी क्रिया का उद्देश्य भूल जाते हैं अत: तदात्मीकरण की शुरुआत होती है। उन्हें लगने लगता है कि ऐन्द्रिय विषयों के साथ की निरंतर क्रिया ही जीवन है। चेतना भूल जाती है कि उसका सत्त्व, उसका होनापन ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन है। जैसे गीता में कहा गया है- आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते। उसी होनेपन में ही परिपूर्ति है; अव्यक्त तथा व्यक्त का नृत्य ही पूर्णता है।

तदात्मीकरण का आरम्भ

ये आकर्षण तथा प्रतिकर्षण बीच में कहाँ से आ जाते हैं? यह तदात्मीकरण कहाँ से आ जाता है। इन्द्रियों द्वारा एकत्रित प्रभावों तथा मस्तिष्क द्वारा उन्हें प्रदान किये हुये अर्थ को मन की संपत्ति माना जाता है। इसलिये हम कहते हैं 'मेरा ज्ञान', जब कि वह तो मात्र जानना है। मैंने देखा है! नहीं, ऐसा नहीं, आपने नहीं देखा, आपके माध्यम से देखना हुआ है। ईश तत्त्व ने आपके शरीर का उपयोग अपनी देखने की क्षमता, अपनी सुनने की क्षमता को व्यक्त करने के लिये किया है। उस देखने की, जानने की क्रिया को तथा उसके परिणामों को मानसिक सम्पत्ति में रूपांतरित कर दिया जाता है। मेरे अनुभव! मेरा ज्ञान! केवल इतना ही नहीं, आकर्षणों तथा प्रतिकर्षणों से, रूचि-अरूचियों से, पूर्वाग्रह, आवेश, द्वेष इत्यादि भी बनाये जाते हैं। मनुष्य अन्तर्मुखी हो नहीं देखता कि उसका होना तथा उसकी अभिव्यक्ति ही परिपूर्ति है। ज्ञान, अनुभवों, अर्जन इत्यादि द्वारा वह संपन्न नहीं होता और न ही हो सकता है। यदि कोई भौतिक विषय खो जाये तो उसका कुछ नहीं घटता, न ही उसका कुछ बढ़ता है। क्योंकि चेतना के लिये कोई लाभ, कोई हानि नहीं होती। वह तो देखने, सुनने अथवा जानने की एक क्रिया है।

चेतना का अन्तर्मुखी प्रवाह

मनुष्यों में से कोई विरल व्यक्ति, जिसके पास अपरिमित धैर्य है। कोई ऐसा व्यक्ति ही कहता है, जरा रुको तो, यह क्या हो रहा है ? वह स्वयं से कहता है- मेरी जीवन शक्ति ज्ञानेन्द्रियों के भौतिक विषयों की ओर प्रवाहित रहती है। ज़रा विचार कर लूँ, यदि यह शक्ति, यह चेतना अन्तर्मुखी हो जाये तो ? यदि इसके प्रवाह को मोड़ दिया जाये तो? *चेतना के प्रवाह को पलटने के सिवा साधना और कुछ नहीं है।* बाह्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषयों पर केन्द्रित होने की जगह, चेतना का प्रवाह स्वयं को स्वयं के ही 'होनेपन' पर केन्द्रित करता है। जैसे आप अपने शरीर को दर्पण में देखते हैं, बाहर जाता हुआ चेतना का प्रवाह अन्तर्मुखी हो, मौन के दर्पण में स्वयं पर केन्द्रित हो जाता है। 'कश्चित् धीरः' अर्थात विवेकी दृष्टि तथा असीम धैर्य सम्पन्न कोई विरल व्यक्ति अग्निशिखा का रुख मोड़ता है। खेल-खेल में, जीवन लीला में वह कहता है, चलो मैं ऐसा प्रयास कर देखूं। अभी तक के जीवन में मैं बाह्यगामी रहा हूँ, अब क्यों न अन्तर्मुखी हो कर देखूं। जब कभी कोई धैर्यवान, कोई विवेकी व्यक्ति ऐसा करता है, तो वह देखता है कि वहाँ तो एक ही प्रकाश है- चेतना का प्रकाश। वह प्रकाश बुद्धि की ओर जाता है, जो मन तक पहुँचता है, जो ज्ञानेन्द्रियों से हो ऐन्द्रिय विषयों की ओर बाहर प्रवाहित होता है। वह देखता है कि उस प्रकाश का अस्तित्व बाह्य क्रिया के न होने पर भी पूर्ण है। ध्यान में ठीक ऐसा ही होता है, प्रवाह को मोड़ दिया जाता है और वह अपने ही होने का आनंद लेता है। बाहर प्रवाहित हो कुछ बनने की क्रीड़ा को कुछ समय के लिये स्थगित कर दिया जाता है।

ध्यान एक मानसिक कुंभक है। हठयोग में आप श्वास अन्दर ले उसे रोकते हैं, इस क्रिया को अंतर-कुंभक कहा जाता है। इसी प्रकार ध्यान एक मानसिक अंतर-कुंभक है। हठ योग में, शारीरिक स्तर पर श्वास को अन्दर रोकने अथवा उसकी अवधि बढ़ाने से आपके प्राण छूट नहीं जाते। श्वास रोकने की अवधि को बढ़ाया जा सकता है, यदि कोई हठ योगी इसमें विशिष्टता पाना चाहे तो वह इस अवधि को मिनटों, घंटों, दिनों तक बढ़ा सकता है। इसी प्रकार जब व्यक्त पुनः अव्यक्त में विलीन होता है, तो वह एक प्रकार की मृत्यु होती है। वह वैश्विक जीवन का अन्दर जाता हुआ श्वास होता है। बाहर जाता हुआ श्वास जन्म लेना है तथा अन्तर जाता श्वास मृत्यु है। इन लोगों के दर्शन का ऐश्वर्य देख रहे हैं आप ! मनुष्य शरीर एवं मस्तिष्क को उड़ान भरने का माध्यम बना, कैसे वे गरुड़ के समान ब्रह्मांडीय सत्ता में उड़ान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भरते हैं। वे उसे शब्दों में व्यक्त करने की क्षमता भी रखते हैं।

यमराज कहते हैं, नचिकेता तुम वह विरल धैर्य सम्पन्न व्यक्ति हो। तुम मुझसे पूछ रहे हो, 'अस्तीत्येके नायमस्तीति चैके'? तुम मुझसे पूछ रहे हो, कुछ व्यक्ति कहते हैं वहाँ आत्मा है और कुछ कहते हैं कि वह नहीं है। तुम उसे देखना चाहते हो, तुम समझना चाहते हो। आत्मन् वह दिव्य प्रकाश है जिसे ब्रह्मांड में ब्रह्मन् अथवा परमात्मा कहते हैं। मनुष्य शरीर में उसे आत्मन् कहते हैं। वह एक ही हैं। मनुष्य शरीर के आवरण में, मनुष्य शरीर में इसके व्यक्त होने का अर्थ इसका जन्म लेना नहीं होता। मनुष्य शरीर का जन्म होता है, एक अभिव्यक्ति होती है, मनुष्य शरीर की एक विशिष्टता होती है। क्योंकि सूर्य की किरण पृथ्वी पर पहुँच उसे प्रकाशमान करती है, वह अपने स्रोत से विच्छिन्न नहीं हो जाती। इसी प्रकार वह प्रकाश जो तुम्हारे शरीर में आत्मन् के रूप में आया है, वह वैश्विक तत्त्व से अथवा ईश तत्त्व से भिन्न नहीं है।

वह एक है, परन्तु हम बाहर जाने की क्रिया में व्यस्त रहते हैं तथा आकर्षण एवं प्रतिकर्षण से तदात्मीकरण करते हैं अथवा मुँह मोड़ लेते हैं। यदि ऐसा न हो तो हम जानेंगे कि जीवन किसी मृत्यु को नहीं जानता। *जिस प्रकार अंतरिक्ष नहीं मरता, विशिष्ट अथवा अविशिष्ट ईश्वरत्व की भी मृत्यु नहीं होती। अव्यक्त द्वारा व्यक्त को समा लेना भौतिक मृत्यु है। पतझड़ के पत्ते धरती पर झड़ जाते हैं ताकि बसंत जन्म ले सके।* वे पत्ते नष्ट नहीं हो जाते। पर्णहीन वृक्ष, बसंत अथवा ग्रीष्म के सम्पन्न वृक्ष से कुछ कम नहीं होते। अनावृत्तता का अपना ही सौन्दर्य है। इसी प्रकार, इस सचेतन मरण की अपनी ही सुन्दरता होती है। चेतन जन्म लेना, सचेतन निद्रा तथा चेतन मृत्यु संभव है। यदि कोई योग-विज्ञान की गहराई में उतरे तो ऐसा संभव है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति में चेतना का प्रकाश

जागृत चेतना व्यक्त विश्व है, जहाँ आपकी समस्त ऊर्जायें व्यक्त होती हैं। जब आप निद्रावस्था में होते हैं तो वे विलीन हो जाती हैं। आपकी सभी क्रियाएं, आपकी सभी बाह्यगामी गतिविधियां उसी चेतना द्वारा पुनः समा ली जाती हैं, और जिसे आप निद्रा कहते हैं उसका आगमन होता है। निद्रावस्था का अर्थ चेतना के प्रकाश का वहाँ न होना नहीं है। यह उसीका प्रकाश है, जिस के द्वारा आप स्वप्न तथा विभिन्न आकार देखते हैं। आप जो स्वप्न में देखते हैं उनका कोई ठोस तथ्य नहीं होता, फिर भी आप उनका अनुभव करते हैं। वे कितने वास्तविक जान पड़ते हैं। आप देखते हैं द्वन्द्व, लड़ाई-झगड़े, घर, सड़कें, सागर, नदियाँ इत्यादि। स्वप्नों में आप सब कुछ देखते हैं। आप अपने बिछौने पर गहन अंधेरे में सो रहे होते हैं, फिर वह देखना कैसे होता है ? देखना होता है, क्योंकि चेतना का प्रकाश वहाँ होता है। आप जो देखते हैं वे मानसिक चित्र होते हैं; आप प्रतिरूप देखते हैं। क्या आप उन्हें अवास्तविक कह सकते हैं ? आप ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि आप वास्तव में डर जाते हैं। यदि आप कुछ ऐसा देखते हैं, जो अचानक होता है, जो भयभीत कर देता है, तो आप चीख उठते हैं, चिल्लाते हैं। यदि आप कुछ देखते हैं, जो आप को प्रसन्नता देता है, तो आप नींद में भी मुस्कुराते हैं, आप संवाद इत्यादि करते हैं। यह सब होता है।

यदि अहम् सो रहा होता है और इन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों की समस्त गतिविधियाँ प्रसुप्तावस्था में चली जाती हैं, तो यह सब कैसे होता है ? ऐसा होता है, क्योंकि चेतना का दिव्य प्रकाश वहाँ रहता है। जैसे निद्रा में आप चेतना के उस प्रकाश द्वारा देखते हैं, वैसे ही जागृत अवस्था में आप उस प्रकाश द्वारा देखते हैं। वहाँ कोई 'मैं' और 'आप' मत बनाईये। जैसे निद्रा में देखना होता है, प्रतिक्रिया करनी होती है, वैसे ही जागृत अवस्था में देखना होता है, वहाँ भी अनुक्रियाएँ अथवा प्रतिक्रियाएँ होती हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आपमें से जिन्होंने प्लेटो को पढ़ा है, वे जानते होंगे प्लेटो किस लालित्य से वर्णन देते हैं कि सम्पूर्ण विश्व एक व्यक्तिनिष्ठ प्रत्यय है। जैसे निद्रा में मानसिक चित्र होते हैं, जागृत अवस्था में भी हम जो देखते हैं वे मानसिक चित्र होते हैं। उदाहरणत: वृक्ष एक नाम है, जो मनुष्य द्वारा, मनुष्य जाति द्वारा उस वस्तु को दिया गया है। हम विस्तार में नहीं जायेंगे। दूसरे अध्याय का पहला श्लोक उसकी नींव है, इसलिये मैं इस पर इतना समय लगा रही हूँ।

यहाँ हमने पढ़ा है कि एक धीर:, विवेक दृष्टि वाला एक विरल व्यक्ति, चेतना के प्रवाह को अन्दर की ओर मोड़ देता है। वह उस प्रकाश को देखता है, जिसके द्वारा जागृत अवस्था तथा निद्रा अवस्था में देखना संभव होता है। इसलिये वह जानता है कि कोई मृत्यु नहीं होती। प्रकाश नहीं मरता, शरीर चाहे नष्ट हो जाये परन्तु आत्मा का न तो जन्म होता है, न ही वह मरती है। तो फिर सतत रहने का प्रश्न ही कहाँ है ?

तादात्म्य : यमराज का फन्दा

यमराज बहुत लालित्य से प्रश्न का उत्तर दे रहे हैं। दूसरे श्लोक में वे कहते हैं- *पराच: कामाननुयन्ति बालास्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम्।* वे जो मानसिक रूप से अपरिपक्व हैं, जो असंवेदनशील हैं, वे ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से चेतना के इस बहिर्गामी तथा अन्तर्गामी क्रिया के शिकार बनते हैं, अथवा उसके धोखे में आ जाते हैं। वे इस क्रिया के लिये एक भूख, एक लालसा, एक प्यास पैदा कर लेते हैं। वे इस क्रिया को एक क्षण के लिये भी नहीं छोड़ सकते । उनके लिये अनिवार्य होता है कि वे कुछ देखें, कुछ सुनें, कुछ बोलें, भौतिक अथवा मानसिक रूप से उन्हें कुछ मिले। वे सम्पूर्ण जीवन को चेतना के बाह्यगामी प्रवाह तथा प्रभावों के अन्तर प्रवाह तुल्य मान लेते हैं । उनका जीवन उसी तक सीमित हो जाता है । ऐसे सीमित होना एक बन्धन है। आप अपने ही द्वारा खींची हुयी सीमाओं में बंध जाते हैं। वे इन्द्रियों के अन्तर एवं बाह्य विषयों के पीछे भागते हैं। कुछ लोग विचारों, प्रत्ययों, धारणाओं के पीछे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक दर्शनशास्त्र से दूसरे, एक धर्म संघटन से दूसरे के पीछे भागते हैं। वे अन्तर इन्द्रियों के विषयों, विचारों, अनुभवों इत्यादि एवं बाह्य इन्द्रियों के विषयों के पीछे भागते हैं। वे अपने ही द्वारा निर्मित बन्धनों के शिकार बन जाते हैं। वे अपने ही बहिर्गामी तथा अन्तर्गामी खेल के धोखे में आ जाते हैं;. यही क्रम निरन्तर चलता रहता है।

मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम्। बाहर जाने व अन्दर लाने का यह खेल, प्राप्त करने व उससे सुख लेने का खेल दुःख एवं दुर्गति के लिये उपजाऊ भूमि बन जाता है। क्योंकि भौतिक विषयों की हानि हो सकती है, वह व्यक्ति जिन्हें आपने अपने सूक्ष्म सुख का, मानसिक सुख का, तदात्मीकरण का विषय बना लिया है, उसे खोना हो सकता है। लोग मर जाते हैं, विषय खो जाते हैं तथा दुःख एवं क्लेश घर कर लेते हैं। आन्तरिक प्रकाश में कुछ उतार-चढ़ाव नहीं होता, वह बदलता नहीं, परन्तु बाह्य विषय परिवर्तन के निरंतर बहाव में रहते हैं। पदार्थ एवं ऊर्जा का पारस्परिक खेल होता है। ऊर्जाओं की पारस्परिक क्रिया से, ज़िन्हें आप भौतिक विषय कहते हैं उनका घनीकरण होता है। इनका विघटन होने पर विभिन्न ऊर्जाएँ पुनः बिखर जाती हैं, जिसे आप मरण, मृत्यु तथा विनाश कहते हैं। यह सब होता रहता है । लोग इस मृत्यु के, मरण के, दुःख एवं क्लेश के फन्दे में आ जाते हैं। यमराज कहते हैं, वे मेरे जाल में, मेरे फन्दे में आ जाते हैं।

मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम्। विततस्य अर्थात सदा फैलता हुआ, पाशम् अर्थात एक फन्दा, एक जाल। नचिकेता, वे जो विवेकशील बोध-शक्ति विकसित नहीं करते, जिनके पास जानने का धैर्य नहीं होता कि क्या परिवर्तनीय है और क्या अपरिवर्तनीय है, वे मृत्यु के शिकार होते हैं। उनके पास रुक कर सोचने का समय नहीं होता कि वह अन्दर का प्रकाश क्या है, जो हमें सभी ज्ञानेन्द्रियों से हो गुज़रने की, अनुभव की, भोग की, सुख की क्षमता देता है । ऐसे लोग मृत्यु के शिकार हो जाते हैं। वे दुःख एवं पीड़ा के शिकार बन जाते हैं। यदि वे किसी सम्पर्क

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से कोई तदात्मीकरण न उत्पन्न करें तो ऐसा न हो । मनुष्य देह में रह कर संबन्ध तो बनाने पड़ते हैं, चेतना के प्रकाश को बाहर जा जीविका के लिये आहार का सेवन तो करना होगा, उसके बिना नहीं चलेगा। आप सभी ज्ञानेन्द्रियों को, नेत्रों को, कर्णों को वंचित नहीं रख सकते। उनका उपयोग करना पड़ता है, आकर्षण अथवा प्रतिकर्षण, घृणा अथवा मोह रखे बिना ऐन्द्रिय विषयों के सम्पर्क में आना पड़ता है । इससे प्रकाश कभी नहीं मरता।

विरोधाभासों का समाधान

नश्वर शरीर में अनश्वरता का अमृत समाया है। लोग इनको अलग कर देते हैं, मानो यहाँ नश्वरता है और मर जाने पर किसी अनश्वर स्थान को जाना होता है। मानो यहाँ कालिक जगत् है और फिर आप काल को पार कर किसी अनंतता को प्राप्त करते हैं। *यदि कोई शाश्वतता है तो वह यहाँ और अब है। यदि कोई अनश्वरता का अमृत है तो वह इसी नश्वर शरीर में है।* ब्रह्मांड से अलग कोई पृथक ईश्वरत्व नहीं है। ईश्वर अथवा ईश्वरत्व कोई कुम्हार नहीं है जो माटी ले बर्तन बनाता है । वह कोई बढ़ई नहीं जो एक लकड़ी का टुकड़ा ले उसमें से देव प्रतिमा नक्काशता है।

ब्रह्मांड से अलग कोई पृथक ईश्वर नहीं हैं। जीवन की दिव्यता के केवल व्यक्त तथा अव्यक्त स्वरूप हैं । अपनी अन्तःशक्ति का निःशेष किये बिना ईश्वरत्व व्यक्त को अपना घर बनाता है। मैंने कहा था, यह विरोधाभासों का नृत्य है। जब तक कोई विद्यार्थी चेतना के प्रवाह को ध्यान द्वारा मोड़ नहीं देता, जब तक वह अन्तर के प्रकाश को नहीं देखता, तब तक विरोधाभासों का समाधान नहीं होता। वह प्रकाश सूर्य अथवा चन्द्रमा के प्रकाश के समान नहीं है। उस प्रकाश की तुलना तारा मंडल के प्रकाश के साथ नहीं की जा सकती। वह किसी भौतिक विषय से रिसता हुआ प्रकाश अथवा ऊर्जा नहीं है। वह तो जीवन की ही अनिर्वचनीय अरुणिमा है। जैसे आकाश में सूर्य प्रकाश फैलाता है, जीवन प्रदान करता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, जीवन को पोषित करता है, वैसे ही ईश्वरत्व का सूर्य आपकी सत्ता में चेतना का प्रकाश प्रदान करता है, आपकी इन्द्रियों को प्रकाश, जीवन, उष्मा तथा पोषण देता है।

केवल यमराज ही सूर्य की सन्तान नहीं है; हम सभी उसी प्रकाश की, उसी सूर्य की, जीवन के दिव्य प्रकाश की सन्तानें हैं। इसीलिये सन १८९३ में, स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो के सम्मेलन में 'अमरत्व की सन्तानों' के सम्बोधन का उपयोग किया था। उन्होंने भाईयो और बहनों अथवा महिलाओं एवं सज्जनों नहीं कहा था; कहा था- 'अमृतस्य पुत्राः।' तुम्हारा जन्म पाप में से नहीं हुआ है, तुम आनंद से जन्मे हो।

सर्जन शक्ति के प्रतीक

तीसरे श्लोक में उपनिषद कहता है- *येन रूपं रसं गन्धं शब्दान् स्पर्शांश्च मैथुनान्।* उस प्रकाश के कारण हमारे लिये देखना, गंध लेना, स्वाद लेना इत्यादि संभव होता है। आप देखने, गंध लेने, श्रवण करने इत्यादि का ही उपभोग नहीं करते परन्तु उसीसे मैथुन-क्रिया भी संभव होती है। ईश्वर की रचना यह प्रत्यक्ष सहभागिता इस प्रकाश के कारण संभव होती है। प्रारम्भ से अन्त तक वेदों तथा उपनिषदों के साहित्य में यौन संबंध सर्जनात्मक शक्ति का प्रतीक है। प्राचीन काल के ऋषियों-मुनियों द्वारा यौन एवं वाणी एक ही स्तर पर रखे गये हैं। वाणी में नाद की सर्जना की मूल-शक्ति समायी है और नाद में समाया है प्रकाश। इसलिये वाणी सर्जन शक्ति की प्रतीक है । वैसे ही यौन , यौन-क्रिया एवं संबंध कठोपनिषद् द्वारा सर्जन शक्ति के प्रतीक माने गये हैं। यदि कोई केवल क्षणिक सुख पाने के लिये उसे विकृत नहीं करता, उसका कुप्रयोग अथवा दुरूपयोग नहीं करता, तो उस क्रिया में उस के ईश्वरत्व होने के भान के साथ भागी होने से, वह ईश्वर की आराधना हो जाती है। उपनिषद् के वर्णन के अनुसार वह भी एक यज्ञ है। किसी भी अन्य यज्ञ कर्म अथवा होम समान वह पवित्र है।

देखिये, मैंने पहले अध्याय के आरम्भ में कह दिया था कि ऋषियों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को जीवन से प्रेम था, परन्तु वह आनंद और सुख में भेद करते थे। *सुख वह है जिसमें पुनरावृत्ति होती है तथा आनंद सर्जनात्मक होता है।* वह आनंद जिसका आप शब्द में , नाद में, स्पर्श में, गन्ध में, मैथुन क्रिया में, यौन-संबन्ध में अनुभव करते हैं , वह उस दिव्य प्रकाश के कारण है। यदि इन कर्मों, इन गतिविधियों को ईश्वरत्व के बोध से अलग कर दिया जाये, तो वे क्लेश, पीड़ा एवं मृत्यु के जाल बन जाते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चौदहवाँ संवाद

प्रश्न १ :- योग साधना में इच्छा शक्ति व स्व-शिक्षा का स्थान? *

उत्तर : - ऐन्द्रिय ढाँचे के सुखों की पुनरावृत्तियों के बीच जीते हुये, मानव हृदय में सत्य-असत्य, तथ्य-मिथ्या, स्थायी-अस्थायी में अन्तर करने की एक अंत:प्रेरणा प्रकट होती है। हृदय में जानने की अंत:प्रेरणा जागृत होती है, क्या पुनरावृत्तियों के बिना कोई आनंद संभव है ? जब हृदय में अंत:प्रेरणा की ऐसी भोर होती है, तो वह व्यक्ति पहले मस्तिष्क की, शब्दों की, ज्ञान की सहायता से छानबीन करता है। फिर वह बिना शब्दों के अवलोकन, चिन्तन-मनन, ध्यान, इत्यादि द्वारा अन्वेषण करता है। मेरे विचार से इच्छा तत्त्व का इस खोज में होना अनिवार्य नहीं है। *अंत:प्रेरणा की प्रेरणा-शक्ति ही व्यक्ति के लिये निर्णय लेती है। यह हृदय में प्रेम जागृत होने समान है। जब हृदय में प्रेम जागृत होता है तो वही मार्ग निर्धारित करता है।* वही प्राय: आपके व्यवहार का ताना-बाना निश्चित करता है। वैसे ही, यदि अंत:प्रेरणा सच्ची व सहज हो, तो वही हमारे लिये निर्णय लेती है। यह साधना की उत्पत्ति है। यदि हम इच्छा शब्द का प्रयोग करते हैं, तो क्या इसका अभिप्राय यह नहीं है कि साधना करने के लिये अन्तर में एक विरोध है तथा इच्छा शक्ति का उपयोग उस विरोध के प्रतिकार में किया जा रहा है ? एक सच्चे साधक के जीवन में विरोध का प्रश्न नहीं उठता; कम से कम आरम्भ में तो नहीं।

प्रश्नकर्ता द्वारा दिया गया, दूसरे पहलू का वर्णन वास्तविक है। व्यक्ति अपने शरीर को शिक्षित करता है। इस शिक्षा के लिये योग-आसन अद्भुत सिद्ध होते हैं। वे केवल शारीरिक व्यायाम नहीं, वे शरीर के सभी स्वचलित तंत्रों (Autonomous Systems) में ताल-मेल ला देते हैं। त्वचा की सात

** प्रश्न के सभी शब्द स्पष्ट न होने के कारण केवल सार ही लिखा गया है।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परतों के बीच वे एक प्रकार की सुसंगति पैदा कर देते हैं। योगासनों से पेशी-तंत्र, ग्रन्थि-तंत्र, उनके स्त्राव, उनकी क्रिया और नाड़ी-तंत्र, गुरदों, यकृत, स्वादुपिंड, ग्रन्थियों इत्यादि द्वारा क्रियाशील रासायनिक तंत्र इत्यादि में ताल-मेल बैठ जाता है। प्राणायाम में शुद्धीकरण की शक्ति होती है, वह रक्त-प्रणाली को प्राणवायु तथा रक्त-संचार को शक्ति प्रदान करते हैं। प्राणायाम करने वाले व्यक्ति के शरीर में एक प्रकार की स्फूर्ति और दीप्ति होती है। जब आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, यम, नियम इत्यादि का पालन किया जाता है, तो ऐन्द्रिय विषयों के संबन्ध में शुद्ध ऐन्द्रिय तंत्र सूक्ष्म स्तर पर गुणात्मक रूप से भिन्न अनुभव पैदा करता है। यह किसी विशेष चेतन प्रयास का परिणाम नहीं होता, वह एक घटना होती है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम में आप सचेतन प्रयास करते हैं, प्रत्याहार या फिर धारणा तक भी। सत्य की, मुक्ति की, जीवन के अर्थ की खोज की अंत:प्रेरणा के कारण एक प्रयास बना रहता है।

जब शुद्ध तंत्र गुणात्मक रूप से भिन्न संबन्ध बनाते हैं, तो परिणाम भी भिन्न होते हैं; इसलिये गुह्य अनुभव होते हैं। गुह्य वह है जो छुपा हुआ है, गुप्त है, जो जागृत चेतना का अंग नहीं बना है। कभी वह अवचेतन और कभी उस से भी गहरे, अचेतन मन की गहराई में छुपा रहता है। वह अतीन्द्रिय दृष्टि (Clairvoyance) अतीन्द्रिय श्रवण (Clairaudience), विचार जानने की शक्ति, इत्यादि के रूप में प्रकट होता है। यदि आप और आगे बढ़ते हैं, तो धारणा से ध्यान में एक Quantum Jump होती है।

धारणा तक थोड़ी बहुत इच्छा शक्ति की, कुछ प्रयास की क्रिया होना संभव है, परन्तु ध्यान में समस्त ऐन्द्रिय एवं मानसिक गतिविधियां प्रसुप्तावस्था में चली जाती हैं। वहाँ कोई प्रयास, कोई परिश्रम नहीं होता, वह वास्तव में दूसरा छोर है, विश्रांति का छोर। आप वास्तव में एक अप्रतिबन्धित विश्रांति के आयाम में पहुँच

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाते हैं; केवल शारीरिक विश्रांति नहीं परन्तु एक सम्पूर्ण विश्रांति।* मन एवं शरीर की एक साथ सम्पूर्ण विश्रांति, उन अनुभवों को प्रेरित करती है जिनका आपके व्यक्तिगत वंशानुक्रम के साथ कोई संबंध नहीं होता। मानस तज्ज्ञ युंग(Jung) की भाषा में, वे अनुभव अप्रत्यक्ष अथवा अस्पष्ट रूप से प्रजातीय अचेतन मन (Racial Consciousness) से जुड़े होते हैं। संभव है कि उनका संबन्ध प्रजातीय अचेतन मन से भी परे,अन्य कहीं हो।

इस प्रकार साधना के दो भाग हैं परन्तु मैं इच्छा शब्द का प्रयोग करने में संकोच करूंगी। इच्छा हम में समायी एक शक्ति है परन्तु साधना के लिये इसका उपयोग अनिवार्य नहीं है।

उपनिषदों का वैज्ञानिक स्वरूप

प्रश्न २ :- जब आप कहती हैं कि पुरुष एक स्थायी शक्ति है, तो यह एक धर्मसिद्धांत है अथवा एक वैज्ञानिक अनुभव। अन्य शब्दों में, जब उपनिषदों को वैज्ञानिक कहा जाता है, तो विज्ञान शब्द का उपयोग किस अर्थ में किया जाता है ? क्योंकि साधारणत: विज्ञान एक संशोधन होता है, जिसमें प्रयोगों द्वारा पाये गये प्रमाणों को कई बारी दोहराये जाने की आवश्यकता होती है।

उत्तर :- प्रश्नकर्ता भारतीय इतिहास के वैदिक एवं उपनिषदिक काल से परिचित नहीं जान पड़ता है। उपनिषद् एक दिन में नहीं लिखे गये थे। अपने शरीर एवं मन को अनुसंधान की, परीक्षण की प्रयोगशाला बना देना प्राच्य ऋषियों का मूल सरोकार था। उपनिषदों मे जो लिखा गया है, वह उन प्रयोगों का परिणाम है। उन परिणामों की प्रमाणिकता आज भी उनके द्वारा जांची जा सकती है, जो अपने जीवन में वही अन्वेषण एवं परीक्षण करते हैं।

** संभव है शरीर शव-आसन में विश्राम कर रहा हो और मन ज़ोरों से गतिशील हो, ऐसे में ध्यानावस्था कोसों दूर रहती है।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुरुष के एक स्थायी शक्ति होने के विषय में मैं कुछ नहीं कह रही। विमला यहाँ वह समझाने के लिये बैठी हैं जो उपनिषदों में कहा गया है, क्योंकि अपने योग के अध्ययन की सहायता के लिये आप कठोपनिषद् का अध्ययन करना चाहते थे। यहाँ विमल की भूमिका संस्कृत भाषा में लिखे गये कठोपनिषद् को आप तक आधुनिक अंग्रेज़ी भाषा में पहुँचाने की है।

अब, आपका स्थायी शब्द से क्या अर्थ है? आपने वैज्ञानिक पद्धति के विज्ञान का उल्लेख किया है। क्या आप जानते हैं जिसे आप समय कहते हैं, वह मनुष्य मन की एक रचना है ? वास्तव में जीवन में समय जैसी कोई चीज़ नहीं है; जीवन कालातीत है। मनुष्य जाति उससे संबंध रखना चाहती है जिसे वह चारों ओर देखती है। इसलिये उसने एक मानसिक रचना का निर्माण किया है, जिसे दिक्काल कहा जाता है। प्रत्येक विषय को देश तथा काल के माप द्वारा नापा जाता है। *आपके वैज्ञानिक आविष्कार एवं अनुसंधान देश-काल की मानसिक रचना पर आधारित होते हैं, जो अपने में ही एक मानसिक रचना है।*

मनुष्य जाति द्वारा देश-काल के प्रत्यय की रचना से पहले भी जीवन था, इसलिये हम कहते हैं वह अनादि-अनंत है। स्थायी शब्द का उपयोग हमें भ्रमित कर सकता है कि मूलतत्त्व कोई गतिहीन वस्तु है। हाँ, यांत्रिक वस्तु में सातत्य होता है। जिन सूर्य के प्रकाश की किरणों को आप देखते हैं, क्या उनमें कोई सातत्य होता है ? भौतिक विज्ञान आपको बतायेगा, जिसे आप प्रकाश कहते हैं उसमें कोई सातत्य नहीं होता; हमें ऐसा जान पड़ता है। जब हम प्रकाशीय अविच्छिन्नता अनुभव करते हैं, तो वह एक दृष्टि-भ्रम होता है। निरंतरता अथवा अनुक्रमता भी मनुष्य के मन की देन है, जो देश-काल की रचना के प्रमाण पर आधारित है।

कृपया मेरा साथ दीजिये। अध्यात्म जीवन का विज्ञान है, इससे हमारा अर्थ है जो उपनिषदों में कहा गया है अथवा लिखा गया है, वह नहीं जो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विमला कह रही हैं ।* जब हम कहते हैं कि अध्यात्म एक विज्ञान है, तो इसका अर्थ है कि वह किसी मत पर आधारित नहीं है, वह किसी सिद्धांत अथवा हठमत पर आधारित नहीं है । धर्म संगठन ऐसी मान्यताओं पर आधारित होते हैं । व्यक्तिक अथवा अव्यक्तिक ईश्वर के होने की मान्यता से यदि अन्य परिणाम निकाले जाते हैं, तो वह अन्य विषय है । विज्ञान कहता है कि काल के जन्म से पूर्व, मनुष्य जाति के जन्म से पूर्व असंख्य ब्रह्मांड रहे हैं। वे जन्मे हैं और भुला दिये गये हैं, फिर भी उसकी सर्जनात्मक शक्ति की, अनादि-अनंत की संभावना है, जिसे हम ईश्वरत्व कहते हैं। ईश्वरता नश्वरता अथवा मानवता के विपरीत की कोई एक श्रेणी नहीं है। इसका अर्थ है, वह जिसका आदि नहीं, जिसका अंत संकल्पनीय नहीं।

पुरुष शब्द से हम यह अर्थ न लगा लें कि पुरुष नाम की कोई सत्ता है। यदि मैं कहूँ कि अंतरिक्ष मृत्युहीन है, तो क्या आप उसे हठधर्मी कहेंगे ? क्या अंतरिक्ष की शून्यता की कोई शुरुआत होती है ? क्या उसका कोई अंत होता है ? आप अंतरिक्ष को नष्ट नहीं कर सकते। आकाश का वर्णन है- 'अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे'; वह जन्मा नहीं, उसकी मृत्यु नहीं, उसको मारा नहीं जा सकता। यदि कोई आपके बाहर के आकाश की शून्यता के विषय में ऐसा कहे, तो क्या आप उसे हठमत कहेंगे ? जीवन का प्रकाश, चेतना, जिसे कठोपनिषद् में पुरुष कहा गया है, वह आकाश की दृश्य शून्यता से भी अधिक सूक्ष्म तत्त्व है।

जहाँ तक विमला अपनी आलोचनात्मक बुद्धि द्वारा देख सकती है, उपनिषद् किसी हठधर्मी अथवा सिद्धांत का प्रचार नहीं करते । वे प्रयोगात्मक हैं, उनका अन्वेषण किया जा सकता है। पुरुष शब्द का अर्थ कोई एक व्यक्ति से नहीं है। पुरा शेते इति पुरुषः; एक गुह्य शक्ति, मानो आकाश

** यह भिन्न विषय है, मैं आशा करती हूँ कि वह भी वही कहती हैं अथवा उसीका सूचन करती हैं, जो उन्हें अनुसंधान, परीक्षणों तथा अन्वेषणों द्वारा प्रकट हुआ है।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में सोई हुयी शून्यता। आकाश को पुरम् कहा गया है, पुरम् अर्थात् एक नगरी। मैंने आपसे शुरुआत में ही कहा था कि उपनिषद् काव्यात्मक शैली हैं उनमें प्रतीक हैं। वैसे ही पुरुष शब्द भी एक प्रतीक है। ब्रह्मांड की शून्यता में, सुप्तावस्था अथवा विश्रांति में जीवन का प्रकाश पुरुष है। मनुष्य शरीर भी एक पुरम् है, एक नगरी है, रहने का स्थान है। इसमें भी वह शक्ति, चेतना का वह प्रकाश हृदय की गुफ़ा में गुह्य है, इसलिये इसे पुरम् कहा जाता है। पुरुष का अर्थ कोई व्यक्तिक अस्तित्व नहीं है; देवत्व की संकल्पना भिन्न होती है। जब सांख्य के दर्शन में पुरुष अथवा प्रकृति शब्दों का उपयोग किया जाता है, तो उनका अर्थ नर एवं नारी से नहीं है, व्यक्तित्वों से नहीं है।

उपनिषदों का अध्ययन बौद्धिक मनोविनोद नहीं है, वह बौद्धिक उत्तेजना अथवा सैद्धांतिक चिंतन के लिये नहीं हैं। उपनिषद् परम् सत्य एवं यथार्थता के जिज्ञासुओं का पथ-प्रदर्शन करते हैं। वे जो उपनिषदों का अध्ययन करने के इच्छुक हैं, उनके लिये भगवत्गीता के अध्ययन से आरम्भ करना उचित होगा, जो उपनिषदों का सरल स्वरूप हैं। ईशावास्य एवं केन उपनिषद् के अध्ययन, उन्हें उपनिषदों की भाषा तथा उनमें उपयोग किये कूट शब्दों से परिचय करायेंगे। उदाहरणतः, ईशावास्य उपनिषद् हमें ब्रह्मांड में सर्वव्यापक जीवन तत्त्व के विषय में ज्ञान देता है। वह एकता के उस मूलतत्त्व का उद्घोषण करता है, जो स्वयं को वैश्विक जीवन की अनेकता में प्रकट करता है। एकता का यह तत्त्व अति सूक्ष्म एवं परिशुद्ध है, ग्रह-माला, सौर-परिवार तथा पृथ्वी पर दृश्य समस्त विषयों को वह सुव्यवस्थित रखता है। केन उपनिषद् में विषयों व प्राणियों को प्रकाशमान करने वाले प्रकाश तत्त्व की ओर ध्यान दिया गया है। छान्दोग्य में मूल नाद का तत्त्व है, जो असंख्य ऊर्जाओं की पारस्परिक क्रिया के रूप में प्रकट होता है, जिससे भौतिक कहे जाने वाले विषय उत्पन्न होते हैं।

यदि किसी ने इन प्रारम्भिक अध्ययनों द्वारा मन एवं मस्तिष्क को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तैयार कर लिया है, तब वह कठोपनिषद् के अध्ययन की ओर बढ़ सकता है। यह अग्नि-तत्त्व की पहचान करवाता है, जो विश्व में व्याप्त गति का सार है । कूट भाषा को समझना सरल नहीं है, उदाहरण के लिये कोई संदेह कर रहा है कि पुरुष शब्द का उपयोग किसी हठधर्मी अथवा सिद्धान्त का सूचक है। ऐसा जान पड़ता है कि यह व्यक्ति उपनिषदों की शैली से परिचित नहीं है, पुरुष का अर्थ कोई व्यक्ति नहीं है, इस का अर्थ भगवान नहीं है, वह किसी देवी-देवता का सूचक नहीं है। वह केवल उस तत्त्व का सूचक है, जो सर्वस्व जीवन में व्याप्त है। 'पुरम्' अर्थात् वह जिसका अस्तित्व है, चाहे वह ब्रह्मांड हो अथवा आपका शरीर; 'शेते' अर्थात् वह जो व्याप्त है । काव्यात्मक शैली में, वह जो सम्पूर्ण ब्रह्मांड में प्रसुप्तावस्था में है, वह जिसने अपने अस्तित्व को सम्पूर्ण ब्रह्मांड में फैला रखा है ।

जब पारगम्य के व्यापक तत्त्व को सूचित करना हो तो यथार्थता को पुरुष कहा जाता है । कभी उसे ब्रह्मन् कहा जाता है, जो उसकी समग्रता के विविध रूपों, रंगों, आकारों में विस्तृत होने की अनादि-अनंत क्षमता को सूचित करता है। जब विषयों में व्याप्त, उनको संगठित रखने की, उनको संप्रेषित करने की क्षमता, उनकी संभाविता को सूचित करना हो, तो उसे आत्मा कहा जाता है। आत्मा शब्द आपके शरीर में किसी अस्तित्व के होने का प्रतीक नहीं है, ब्रह्मन् अथवा पुरुष शब्द भी किसी देवी-देवता के प्रतीक नहीं हैं। उसका कोई देव स्वरूप नहीं है, वह ईश्वरत्व है देवत्व नहीं। *कठोपनिषद् जीवन के उस प्रकाश की ओर संकेत करता है, जो जीवन की अग्नि है, सर्वस्व को प्रकाशित करने वाली अग्नि है।**

यह सब काव्यात्मक अभिव्यक्तियाँ हैं। आखिरकार, वह यथार्थता जो सर्वस्व में व्याप्त है, जिसका वर्णन 'कुछ नहीं', 'कोई नहीं' कह कर

---

* *सोचती हूँ क्या आपने बाईबिल पढ़ी है, जिसमें ईश्वर समस्त को समा लेने वाली अग्नि है। आप* Old Testament *नहीं तो संभवत:* New Testament *से परिचित हों!*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किया जाता है, वह एक सिद्धान्त कैसे हो सकती है। यदि आप उसे समझने का विषय मानते हैं, तब एक सिद्धान्त का आरम्भ होता है। हिन्दु धर्म में अनेकों ऐसे सिद्धान्त हैं, हठमत हैं। कृपया उपनिषदों को हिन्दु धर्मशास्त्रों, मिथिक पुराण विद्या तथा हिन्दु धर्मग्रन्थों में पाये जाने वाले अनेकों ऐसे विषयों से भिन्न जानिये। उपनिषद् न तो हिन्दू हैं, न मुसलमान और न ही ख्रिश्चन।

विज्ञान के अध्ययन के लिये मस्तिष्क के अनुशासन की, मस्तिष्क की शिक्षा की आवश्यकता होती है। हम यहाँ एक पोस्ट-ग्रैज्युइट कोर्स कर रहे हैं। इस स्पष्टीकरण की उनके लिये आवश्यकता पड़ी, जो इन शब्दों को नहीं समझ पा रहे हैं। यह शब्द योग अध्यापकों को संबोधित किये जा रहे हैं, जो गत बीस-पच्चीस वर्षों से योग की शिक्षा दे रहे हैं। यह शब्द उनके अग्रवर्ती अध्ययन के लिये संबोधित किये जा रहे हैं। इसलिये, यह नितान्त स्वाभाविक है कि आरम्भक सभी छायार्थों एवं छटाओं को नहीं समझ पायेंगे। उन्हें हतोत्साहित नहीं होना चाहिये, अध्ययन के लिये उत्साहित हो अपनी चेतना में नींव डाल, आगे बढ़ना चाहिये।

प्रश्न- क्या बुद्धि पुरुष का बोध कर सकती है ? क्या वह कभी-कभी मन के साथ एकात्मीकरण कर लेती है ? क्या वह मन के पुरुष होने के भ्रम में पड़ सकती है ?

बुद्धि का भ्रम

उत्तर- बुद्धि संभ्रमित कर सकती है, गलत एकात्मीकरण द्वारा वह चक्कर में भी डाल सकती है। बुद्धि एक बोध तत्त्व है; यदि विभेदन एवं बोध की यह शक्ति न होती, तो मन एवं ऐन्द्रिय प्रणाली, बाह्य एवं अन्तर इन्द्रियां कुछ भी समझ नहीं पातीं। मन अनुभव करता है, वह इन्द्रियों द्वारा लाये गये प्रभाव एकत्रित करता है, बुद्धि उनका विश्लेषण करती है। मनुष्य प्राणी को बुद्धि-शक्ति भेंट स्वरूप मिली है। यह सत्य को असत्य से, तथ्य को मिथ्या से अलग करने की एक अंतर्जात क्षमता है। जब बुद्धि, वह बोध की, विश्लेषण की, संयोजन इत्यादि की क्षमता, मन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व इन्द्रियों के सम्पर्क में आने पर उनके साथ एकात्मीकरण करने लगती है, तब वह भ्रम पैदा करती है। फिर वह मन को पुरुष नहीं कहती, वह स्वयं को पुरुष कहने लगती है, वह व्यक्तित्व को, अहम् को, स्वयं को पुरुष कहने लगती है।

यदि समस्त गतिविधियाँ, आवेग, इन्द्रियों की ऐच्छिक गति, मन एवं बुद्धि अक्रियाशील हो जाते हैं, गतिहीन हो जाते हैं, पूर्णत: विश्राम कर लेते हैं तब मौन होता है। वह एक अन्धकार समान लगता है, क्योंकि कुछ दिखाई नहीं पड़ता, वहाँ भेद-विभेद करने के लिये कुछ नहीं रहता, देखने के लिये, तदात्मीकरण के लिये, नाम देने के लिये कोई विषय नहीं होता। इसलिये बुद्धि इसे अन्धकार कहती है; वहाँ अन्धेरा रहता है, कुछ नहीं होता वहाँ। यदि वह शीघ्रता से बोध के, विभेदन के, विश्लेषण के, विवरण के, संवेदन पाने के पूर्व क्षेत्र में नहीं लौट आती तथा अन्धकार में बनी रहती है, तब वह एक अन्य शक्ति का अहसास पाती है। यह संवेदन नहीं है, क्योंकि किसीसे परस्पर-क्रिया नहीं है, कोई गति नहीं है। उस निश्चलता में, उस पूर्ण विश्रांति में उसका अनुभव होता है जो अखंडित रहता है। संवेदन आंशिक होते हैं, विचार व भावनायें भी आंशिक गतिविधियां होती हैं परन्तु प्रतीति संवेदनशीलता की सम्पूर्ण गतिविधि होती है। सिर से ले कर पांव तक, पूरे शरीर में छिपी पड़ी मूलभूत बुद्धि (Organic Intelligence) को हम प्रज्ञा कहते हैं, हम इसे मूलभूत प्रज्ञा कहते हैं। इसका मस्तिष्कीय गतिविधि से कुछ लेना-देना नहीं होता है, किन्हीं शब्दों, शाब्दिक संकल्पनाओं से इसका कोई संबन्ध नहीं होता। यह पूर्णत: भिन्न संवेदनशीलता है। उसकी प्रतीति अब होती है।

आप मुझे पूछ रहे हैं, क्या बुद्धि देख सकती है ? क्या वह आत्मा का बोध कर सकती है ? *जब सब निश्चल हो जाता है, तब सम्पूर्ण अस्तित्व, ऐन्द्रिय प्रणाली, आंतरिक एवं बाह्य इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, सभी मिल कर अपनी विश्रांति में उस अन्धकार में अनुभव करते हैं कि उनके परे कुछ है।* उस विश्रांति में, अपने अस्तित्व

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की संपूर्णता के आयाम में उन्हें एक शक्ति का भान होता है, वह केवल एक प्रतीति मात्र होता है, जो सूर्य की किरण समान प्रकाश में विकसित होती है। उन्हें प्रतीत होता है कि एक शान्ति है, एक प्रकार का आनंद है जो किसी विषय से, पारस्परिक क्रिया से असंबन्धित है। वह सुख नहीं है। वहाँ कोई पारस्परिक क्रिया नहीं है, वहाँ कुछ जानना नहीं है, अनुभव करना नहीं है, पाना नहीं है, परन्तु फिर भी वहाँ एक आनंद है, एक शान्ति है।

पुरुष चेतना का आयाम

शान्ति की इस शक्ति, आनंद की इस शक्ति, पारस्परिक क्रिया-रिक्त, द्वैत-रिक्त, किसी व्यक्ति-विषय से असंबन्धित इस शक्ति को पुरुष की शक्ति कहते हैं। यह आत्मा की शक्ति है, यर्थाथता की शक्ति है। एक अकारण आनंद एवं अकारण शान्ति है। यह कोई जोड़-तोड़ कर बनाई 'चुप्पी' अथवा स्थिरता नहीं है, आप जिसे एक शान्त कमरे में शरीर, वाणी इत्यादि को स्थिर कर के पैदा करते हैं। यहाँ होती है एक अकारण शान्ति एवं आनंद; इस आनंद के प्रकाश, शान्ति के प्रकाश को पुरुष कहते हैं। पुरुष कोई अस्तित्व नहीं है। वह एक भिन्न प्रकार की चेतना है, जिसकी व्यक्ति को प्रतीति होती है। मानसिक एवं ऐन्द्रिय स्तर की समझ भिन्न होती है। उससे परे है विश्रांति द्वारा अथवा श्रद्धा द्वारा देखना।

प्रश्नः - कोई भी ध्येय, अधीरता अथवा महत्त्वाकांक्षा हमारे वास्तविक स्वभाव को पहचानने में बाधायें हैं, वे हमारी मुख्य अड़चनें हैं। हम मात्र सतर्क रह सकते हैं। शुद्धीकरण, जिसे आप शारीरिक व मानसिक व्यायाम कहती हैं, हम उसके लिये प्रयत्न नहीं कर सकते। इसके लिये कोई प्रयास करना संभवतः अपने चारों ओर ज़ंजीरें बाँधना है। क्या यह सोचना सही होगा कि या तो हम जागृत होने के लिये परिपक्व हैं अथवा अपरिपक्व ? जिस अवस्था में हम इस शरीर में प्रवेश करते हैं, उसमें परिवर्तन लाने के लिये क्या हम कुछ नहीं कर सकते ? अभी तक कठोपनिषद् ने इस विषय में कुछ नहीं कहा है, परन्तु यह प्रश्न इस ग्रन्थ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के संदर्भ में ही उठता है।

दूसरा प्रश्न- मैंने कभी बुद्धि को मन से भिन्न नहीं समझा था। अब मैं भली-भांति समझता हूँ कि बुद्धि विभेदीकरण का तत्त्व है तथा वह मन द्वारा संचित ज्ञान एवं स्मृति का उपयोग करती है। क्या आप मन एवं बुद्धि का अर्थ विस्तार में देंगी ?

उत्तर- ऐन्द्रिय सम्पर्क संवेदन पैदा करते हैं। इन्द्रियाँ जो संवेदन लाती हैं वह सुखद हो सकते हैं अथवा असुखद, क्योंकि वह उस तत्त्व के साथ जुड़े होते हैं जिसे हम मन कहते हैं। सुख एवं संवेदिता मन द्वारा अनुभव की जाती है, प्रभाव इन्द्रियों द्वारा लाये जाते हैं। यदि आप मुझे और गहराई में उतरने दें तो मैं कहूँगी, वे संवेदन शरीर में विद्युत् चुंबकीय स्पंदनों (Electromagnetic Impulses) में परिवर्तित हो जाते हैं, वे संवेदन के स्तर पर नहीं बने रहते। सम्पर्क, पारस्परिक क्रिया, संवेदनों में परिवर्तित हो संवेदिता तक पहुँचना, यह समस्त कितनी गति से होता है; यह है मन ! परन्तु वह वहीं ठहर नहीं जाता, वह विभेदन तत्त्व के उच्च स्तर पर पहुँचता है, जिसे उपनिषदों में बुद्धि अथवा तर्क-शक्ति कहा जाता है। वहाँ विश्लेषण किया जाता है कि इसे स्वीकार किया जाये अथवा अस्वीकार, उसे स्मृति में रख दिया जाये अथवा छाँट दिया जाये। यह समस्त क्रिया बुद्धि के स्तर पर होती है। प्रश्नकर्ता ने ठीक ही कहा है, लोग मनस् एवं बुद्धि को अलग नहीं मानते। सांख्य दर्शन उन्हें एक में संयोजित कर देता है परन्तु यह उपनिषद् उन्हें पृथक क्रिया तत्त्वों के रूप में, पृथक गति तत्त्वों के रूप में मानता है।

इस प्रकार हमारे पास पथ है, भौतिक एवं मानसिक है, बोध एवं प्रत्यय का संसार है और हैं बाह्य इन्द्रियाँ, आन्तर इन्द्रियाँ-मन एवं बुद्धि। क्योंकि बुद्धि विभेदीकरण का तत्त्व है, कठोपनिषद् इसे रथ का सारथी कहता है। क्योंकि संवेदन विद्युत-चुंबकीय स्पंदनों में होते हैं, संवेदिता मन द्वारा अनुभव की जाती है, मन को लगाम कहा जाता है। सारथी अश्वों को नियंत्रण में रखे हुये होता है, उसे लगाम की आवश्यकता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, इसलिये मन को लगाम कहा गया है। बुद्धि सारथी है, रथ के सारथी के पीछे है चेतना का अनादि-अनंत प्रकाश। *बुद्धि तक सब प्रतिबन्धित है, वह अतीत की देन है। वह व्यक्तिक, पारिवारिक, सामुदायिक, प्रजातिये उत्तराधिकारों के परिणाम का स्वरूप है। बुद्धि से परे है चेतना का प्रकाश, जो वैश्विक चेतना की किरण है।* संसार पाँच तत्त्वों का सम्मिश्रण नहीं है, वह एक संघटित सुव्यवस्थित सम्पूर्णता है, वह अविभाजनीय है, अखंडनीय है। वहाँ एक प्रज्ञा है। बिना प्रज्ञा के कोई सुव्यवस्था, कोई ताल-मेल नहीं होता। हमारे मनुष्य शरीर में बुद्धि से परे वैश्विक प्रज्ञा अथवा वैश्विक चेतना की किरण है, जिसे आत्मा कहा जाता है।

आत्मान रथिनं विद्धि शरीर रथमेव तु। आत्मा वहाँ है, वह रथ नहीं चलाती, कुछ भी नहीं करती; वहाँ बैठी है। बुद्धि मन को चलाती है, मन अश्वों को नियंत्रित करता है, ज्ञानेन्द्रियाँ अश्व हैं तथा ऐन्द्रिय विषय पथ हैं। कोई बाधा नहीं होती, जब तक हम इस सहज प्रणाली से कोई बंधन नहीं बनाते, नहीं कहते कि मुझे यह पसंद है और यह पसंद नहीं है। कुछ संवेदनायें तंत्र के लिये अनुकूल होंगी और कुछ प्रतिकूल, अनुकूलता अथवा प्रतिकूलता पसंदगी और नापसंदगी नहीं होतीं। परन्तु मन चयनात्मक हो जाता है, जब उसे एक प्रकार का सुख मिलता है, वह उसका चयन करता है, उसे छाँट लेता है, उसे दोबारा चाहता है। ऐसे ही पहले पसंदगी, फिर उसे दोहराने की, पाने की चाहत आदतों के प्रतिमान बनाती है। आदतों के प्रतिमानों से तदात्मीकरण होता है, उस पर निर्भरता हो जाती है। मन कहता है वह उसके बिना नहीं जी सकता, मुझे वह अवश्य चाहिये; मुझे वह आदमी, वह औरत, अथवा अन्य कोई चाहिये। ऐसे होती है रथ एवं एकात्मीकरण की क्रिया। क्या यह अब स्पष्ट है? क्या प्रश्नकर्ता यही पूछ रहा था?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शुद्धीकरण के लिये प्रयास

दूसरा प्रश्न शुद्धीकरण के लिये प्रयास के विषय में था। देखो, किसी भी कथन की उपयुक्तता के समझने में चूक करना बहुत आसान होता है। यहाँ हम उपनिषदों के साथ संबन्ध रख रहे हैं, वे कोई निबंध नहीं हैं। वे आधुनिक लेख नहीं हैं, वह प्राचीन धर्मग्रन्थ हैं। इसलिये मैंने कहा था, यदि किसी ने ईश, केन, अथवा अन्य दो-एक उपनिषदों एवं गीता का अध्ययन न किया हो, तो पहली बार इस उपनिषद् का श्रवण करने से कथन की उपयुक्तता पकड़ने में भूल हो सकती है।

आसन, प्राणायाम, यम, नियम इत्यादि को यदि उनके निहितार्थ समझे बिना किया जाये, तो वह शारीरिक अथवा मानसिक व्यायाम बन जायेंगे। यदि उनके ध्येय से अवगत हुये बिना उनको किया जाता है, तो वह व्यायाम बन जाते हैं। यह उपनिषद वाजश्रवस् द्वारा किये गये विश्वजित यज्ञ से आरम्भ हुआ था। यह यज्ञ, ये आहुतियाँ अग्नि को, जीवन के स्वामी को समर्पित की जाती हैं। पृथ्वी पर अग्नि सूर्य का प्रतीक है तथा आकाश का सूर्य ब्रह्मांड में व्याप्त चेतना के दिव्य प्रकाश का प्रतीक है। इसलिये जब आहुति दी जाती है, तब आप अग्नि प्रज्वलित करते हैं, आप मंत्रोच्चारण करते हैं और समर्पण करते हैं। यदि यह समझ के साथ किया जाये, उस कर्म का निहितार्थ जान कर किया जाये, तो वह एक सहायक मापदंड ही नहीं अपितु अंत:प्रेरणा को समृद्ध भी करता है, उसे और गहरा करता है। यदि उसे हड़बड़ी में, बेसुधी में, अन्यमनस्कता से किया जाये, तो वह मात्र कर्मकांड के स्तर पर ही रह जाता है। इसलिये उपनिषद् में इस बात पर महत्त्व दिया गया है कि आप जो भी करें, चाहे भोजन ग्रहण करें, वाणी का उपयोग करें, श्रवण करें अथवा यज्ञ करें, वह अन्यमनस्कता से, बेसुधी से, उद्विग्नता से न करें। *कर्म अपनी सत्ता की सम्पूर्णता से करना चाहिये। वह आंशिक कर्म नहीं होना चाहिये; वह एक पूर्ण कर्म, एक समग्र कर्म होना चाहिये। जब पूर्ण अस्तित्व बोध अथवा अनुक्रिया में सम्मिलित रहता है, तब वह एक यज्ञ बन जाता है।* बोध करने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में अपने अस्तित्व को उंडेल देने से, किसी अनुक्रिया में अपने अस्तित्व को उंडेल देने से यज्ञ होता है। जीवन एक यज्ञ है।

हाँ, हममें महत्त्वाकांक्षा होती है और होता है क्रोध तथा अन्य अनेकों विकृतियाँ। क्या हमने उनको निजी रूप से देखा है ? अपने जीवन में क्रोध की, स्पर्धा की, विकृतियों की, दोषों की गतिविधि को देखा है ? मैंने कैसे जाना कि यह सब मुझ में हैं ? क्या मैंने उनके हलनचलन का अवलोकन कर, उन्हें वहाँ पाया है ? आंतरिक गतिविधियों को देखने के लिये, क्या मैंने कभी अपने साथ समय व्यतीत किया है ? आंतरिक गतिविधियों का तो क्या, बाह्यगामी शारीरिक संचलन भी बिना अवधान के, अव्यवस्थित रूप से, असावधानी से किया जाता है। चलिये, हमने देखा और पाया कि स्पर्धा अथवा क्रोध या फिर महत्वाकांक्षा मेरे बोध को विकृत करती है, अनुक्रिया में विकार लाती है, उसे बिगाड़ देती है। क्या मैंने ध्यान दिया कि वह एक असंतुलन उत्पन्न करती है ? क्या वह असंतुलन मुझे चोट पहुँचाता है ? क्या उस असंतुलन को सुधारने की अंत:प्रेरणा होती है ? तब वह सुधारा जा सकता है !

प्रत्येक व्यक्ति किन्हीं न्यूनताओं, किन्हीं असंतुलनों, आनुवंशिक असंतुलनों, जन्म से पाये मानसिक असंतुलनों को ले कर जन्म लेता है। कोई भी परिशुद्ध नहीं पैदा होता। यदि मेरा ध्यान उनकी ओर गया है तथा उन्हें सुधारने की अंत:प्रेरणा है, तो मैं खुद की शिक्षा आरम्भ करता हूँ, स्वयं को सभी स्तरों पर शिक्षित करता हूँ। *शिक्षा केवल बौद्धिक नहीं होती, वह किन्हीं सिद्धान्तों को प्राप्त करना नहीं होती; शिक्षा एक समग्रता की गतिविधि होती है।* आप अपनी शिक्षा ऐन्द्रिय स्तर के व्यवहार में सुधार लाने से आरम्भ करते हैं। इसे हठयोग में शुद्धीकरण कहा जाता है। हम कहते हैं, यह आने वाले रूपांतरण की नींव डालना है।

क्या रोकता है मुझे आसन अथवा प्राणायाम सीखने से ? पातञ्जल योग में दिये गये, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच, अपरिग्रह इत्यादि यम,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नियम की भूमिका समझने से कौन रोकता है? यह कठिन नहीं हैं, यह कोई रहस्य नहीं है, यदि अंत:करण में सुधार लाने की, एक व्यवस्था लाने की प्रेरणा हो तो यह किया जा सकता है।

प्रश्नकर्ता पूछ रहे हैं, क्या हमें विकृतियों का स्वीकार कर लेना चाहिये? क्यों कर लेना चाहिये स्वीकार? उनके होने का इस अभिप्राय में समाधान कर लेना चाहिये कि हम स्वयं के प्रति अथवा अपने पूर्वजों के प्रति एक दुर्भाव न पैदा कर लें। हममें ऐसा भाव न आ जाये कि मुझमें महत्त्वाकांक्षा है, क्योंकि मेरे पिता ऐसे थे। 'मेरी माँ ईर्षालु थीं, इसलिये मैं बेचारा!' आप जानते हैं, यदि अपनी अनुवंशिकता के प्रति मन-मुटाव आ जाये तब वह एक बाधा बन जाती है। यदि आपको स्वयं से कोई शिकायत हो, तो आप अपने को तिरस्कार की नज़र से देखने लग जाते हैं और फिर एक हीन-भाव पैदा कर लेते हैं।

मुझे लगता है जीवन में ऐसा कुछ नहीं है, जिसे सुधारा नहीं जा सकता हो। कोई ऐसी अशुद्धि नहीं जो धोयी न जा सकती हो। इसलिये कहा गया है- मुझे शुद्ध करो और मैं उज्ज्वल हो उठूंगा (Wash me and I will be whiter than the snow)। शुद्धीकरण की क्रिया धोना है, शिक्षा द्वारा सुधार लाना है। यह किया जा सकता है। प्रश्नकर्ता ऐसा क्यों सोचता है कि कुछ नहीं किया जा सकता? यदि कुछ भी ध्येयपूर्वक किया जाये, ध्यान से किया जाये, जो हम कर रहे हैं उसके अर्थ को समझ कर किया जाये- इसलिये नहीं कि किसी ने दोहराने को कहा है -तो सब हो सकता है। कुछ भी किसी के प्रभुत्व अथवा मान्यता पर न स्वीकार कीजिये, आप प्रयास कीजिये आप प्रयोग कीजिये और यदि वह काम न आये तो अन्य ढंग खोजिये।

शून्यता रिक्तता नहीं है

प्रश्न- एक साधारण व्यक्ति के लिये मौन अथवा शून्यता का अर्थ होता है रिक्तता। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि आप शक्ति के एक अति विशुद्ध, सूक्ष्म स्वरूप, ब्रह्मन् की ओर संकेत कर रही हैं। उस अवस्था में समस्त व्यक्त एवं अव्यक्त का मूल सार क्या है? क्या ॐ कां नाद उस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शक्ति का सार है अथवा वह उससे भी सूक्ष्म है? क्या वह इस घर्षणरहित नाद ब्रह्मन् से भी परे है? संभव है यह प्रश्न सैद्धान्तिक जान पड़े फिर भी पूछने की आवश्यकता है। क्या इस शून्यता से परे कुछ है ?

उत्तर- पहले उस शून्यता तक पहुँच तो लें, जिससे परे कुछ नहीं है ! वहाँ पहचानने तथा नाम देने के लिये कुछ भी नहीं है। वह समस्तता है अथवा कुछ भी नहीं होना है। हाँ एक साधारण व्यक्ति को मौन की शून्यता रिक्तता समान जान पड़ती है।

क्या मैं उस साधारण व्यक्ति को भौतिक-विज्ञान की ओर ध्यान केन्द्रित करने को कह सकती हूँ ? १९९० का दशक शून्यता तथा उस शून्यता में समायी शक्तियों के अध्ययन व अनुसंधान का दशक है; विज्ञान उनके साथ व्यस्त है। रूप-विधानों में समायी शक्तियों की खोज कर उन्हें दिशा दे दी गयी है। उनका उपयोग किया गया है, जैसे परमाणु शक्ति, इलेक्ट्रॉन में समायी वह Quantum Energy, जिसका पूर्वानुमान लगाना संभव नहीं है। वैज्ञानिक शून्यता के आकाश में समाविष्ट शक्तियों के स्वरूप को खोज निकालने में व्यस्त हैं। शून्यता रिक्तता नहीं है, वह खालीपन नहीं है। हम इसे रिक्तता कहते हैं, क्योंकि वहाँ अपने अस्तित्व की पृथकता का आभास देते हुये कोई व्यक्त विषय नहीं होते। एक साधारण व्यक्ति उन्हें पृथक पदार्थ के रूप में देखता है। विज्ञान आप को बतायेगा कि वे शून्यता की शक्तियों द्वारा, अंतरिक्ष में समायी शक्तियों द्वारा अंतःसंबन्धित है। वहाँ कोई रिक्तता नहीं है, वहाँ कोई खालीपन नहीं है। हम इसे रिक्तता कहते हैं, क्योंकि अपनी जागृत अवस्था में हम विषयों को पहचानने में, उनको नाम देने में, उनको पृथक मान्यता देने में, उनके साथ पृथक विषयों के रूप में संबंध रखने में व्यस्त रहते हैं। हमारे बोध की पद्धति, पृथकता से बोध करने की है। वह एक संयोजक बोध नहीं है, शून्यता में समायी असंख्य ऊर्जाओं की अंतःसंबन्धित शक्ति के प्रति जागरूकता नहीं है।

क्या मैं प्रश्नकर्ता को Fritzald Capra की Tao of Physics पढ़ने का सुझाव दे सकती हूँ ? चीनी लोग उसे Tao कहते हैं; वह, जिसकी पहचान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं की जा सकती, जिसे नाम नहीं दिया जा सकता। यदि आप Lao Tze पढ़ेंगे, तो आप पायेंगे कि जीवन को Tao कहा गया है, क्योंकि इसे कोई नाम नहीं दिया जा सकता। आप उसमें से कोई प्रतिमा, कोई मूर्ति नहीं बना सकते, यह जीवन का Tao है। हमारे मित्र Fritzald ने इसे Tao of Physics कहा है, भौतिक विज्ञान का सार कहा है; वह जिसको नाम नहीं दिया जा सकता, जिसकी पहचान नहीं की जा सकती।

इसलिये, मेरे मित्रों जब आप अंतर्मुखी होते हैं, तो आप कहते हैं कि वहाँ मौन है। यदि आप वहाँ तक पहुँचते हैं, तो पाते हैं कि वहाँ विचार की कोई भी दृश्य अथवा शाब्दिक गतिविधि नहीं है। जागृत चेतना विचारों, प्रतिबिम्बों, स्मृतियों, धारणाओं से अस्त-व्यस्त रहती है; जागृत चेतना का आकाश इस भीड़ से लदा रहता है। *मौन में कोई संचलन नहीं होता, इसलिये हम इसे शून्यता कहते हैं; यह एक सापेक्ष शब्द है। परन्तु शून्यता को रिक्तता समझने की भूल नहीं करनी चाहिये, वह शून्यता भरी रहती है।* बौद्धों का निर्वाण, हिन्दुओं की मुक्ति अथवा मोक्ष, योगियों तथा जैनों का कैवल्य एक ही है; इन का अर्थ एक ही है। वे शक्तियाँ अति सूक्ष्म होती हैं परन्तु हमें स्थूल शक्तियों के साथ व्यवहार करने की आदत रहती है। ध्यान के माध्यम से, संवेदनशीलता को उन सूक्ष्म शक्तियों का बोध करने के लिये शिक्षित करना पड़ता है। तब तक विचारमुक्त चेतना को हम भूल से ऊर्जारहित मानेंगे। जैसे एक कमरे में बहुत सज्जा-सामग्री हो और एक अन्य कमरे में वह सब न हो, तो आप कहते हैं वह कमरा खाली है। पहले में सामग्री की भीड़ है इसलिये वह भरा है; परन्तु कमरा तो कमरा है। शून्यता एक सापेक्ष शब्द है।

बाह्य आकाश में समाविष्ट असंख्य सूक्ष्म शक्तियों का वैज्ञानिकों द्वारा अध्ययन किया जा रहा है। प्राचीनकाल में, प्राच्य देशों में चीनी, तिब्बती, भारतीय, मध्य पूर्व वासी, काकेशस भाग से ले कर मध्य पूर्व पर्शिया, ग्रीस इत्यादि के योगी अन्तर मौन का अन्वेषण करते थे। वे मौन में समाविष्ट उन शक्तियों के साथ संबन्ध रखते थे, जो अहम् व्यक्तित्व की खूँटी से बंधी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं होतीं। वे शक्तियाँ बुद्धि, मन या फिर इन्द्रियों से नहीं बंधी होतीं हैं, वे शरीर में लंगर डाले नहीं रहतीं। यद्यपि वे सक्रिय हो जाती हैं, वह बुद्धि, मन अथवा इन्द्रियों के साथ ज़ंजीर के साथ बंधी नहीं होती हैं।

प्रश्न- वह व्यक्ति, जो प्रेम की अग्नि से प्रज्वलित हो जाता है और जो प्रेम, करुणा एवं शान्ति के आयाम में घर कर लेता है, उसका क्या होता है। वह, जो जन्म एवं मरण से परे है, मृत्यु पश्चात् वह व्यक्ति इस पीड़ित संसार को कैसे योग देता है?

उत्तर- उसकी मदद उसके जीवित होते हुये क्यों नहीं ? परन्तु कौन चाहता है मदद ? कौन चाहता है मुक्ति ? कौन चाहता है प्रेम की अग्नि, मुक्ति की अग्नि ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पन्द्रहवाँ संवाद

पिछले वर्ग में हमने अध्ययन किया था- स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति। वह चेतना, चेतना का वह प्रकाश, जो आपकी जागृत अवस्था एवं निद्रावस्था में भी क्रियाशील रहता है, वह आपकी जागृत अथवा निद्रा अवस्थाओं से प्रभावित नहीं होता। एक निर्धूम अग्निशिखा समान, वह आपके समस्त स्तरों, आपकी समस्त अवस्थाओं में प्रज्वलित रहता है। जैविक एवं मानसिक स्तर पर, जागृतावस्था, स्वप्नावस्था एवं निद्रावस्था इत्यादि में भी वह दीप्त रहता है। नचिकेता, वह आत्मन् तत्त्व है। तुम मुझे से पूछ रहे थे-अस्तीत्येके नायमस्तीति चैके। नचिकेता ने यमराज से पूछा था, 'कृपया बताईये क्या आत्मन् नाम की कोई वस्तु है, जो मृत्युपरान्त विद्यमान रहती है ?' यमराज अब उत्तर दे रहे हैं।

दूसरा अध्याय आत्मन् तत्त्व के, जीवन के अनश्वर होने के वर्णन को समर्पित है। जहाँ तक शब्दों में ऐसा करना संभव है, यहाँ उस ओर संकेत किया गया है । *पहले भाग में अग्नि पथ का, विलयन के पथ का वर्णन था। अब व्यक्ति वास्तव में बुद्धि एवं मन की परिसीमा के बिन्दु पर है, उस काल्पनिक अहम् व्यक्तित्व का, काल्पनिक अहम्-केन्द्र का भी विलयन करने के बिन्दु पर है। उसका विलयन तो होना ही है।*

यमराज अब वर्णन देना चाहते हैं, वह काल्पनिक व्यक्तित्व किस में विलीन होता है। यह उस मूलतत्त्व का वर्णन है, जिसमें भौतिक एवं मानसिक स्तर के प्रतिबन्धनों से उत्पन्न सीमित व्यक्तित्व, अहम् , अब विलीन हो रहा है। अमरत्व में अंतिम मृत्यु का वर्णन दिया जा रहा है।

परम तत्त्व का प्रकाश

यमराज कहते हैं, नचिकेता, क्या तुम देखते नहीं कि आत्मा का एक प्रकाश है, जिससे तुम जागृत अवस्थाओं में देख पाते हो। तुम अपना शरीर देखते हो, अपने शरीर में संवेदनाओं को देखते हो, इन संवेदनाओं के प्रति अपने मस्तिष्क एवं मन में प्रतिक्रियायें उठते हुये देखते हो । वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाश, जिसके द्वारा तुम बाहर एवं अन्तर के विषय देख सकते हो, उस प्रकाश को आत्मन् कहते हैं; जो अमर तत्त्व है, अनंतता का तत्त्व है, एतद्वै तत् ।* यह आत्मन् है । यही है वह, जो भौतिक मृत्यु पश्चात् बना रहता है। क्योंकि यह सम्पूर्ण ब्रह्मांड में व्याप्त है, तुम्हारा शरीर भी उससे व्याप्त है । क्योंकि तुम उस ब्रह्मांड से जन्मे हो, उस ब्रह्मांड में रहते हो, इसलिये वह है वहाँ। शरीर भले मिट जाये परन्तु आकाश के विस्तार समान, आकाश की शून्यता समान यह तत्त्व जो जीवन में व्याप्त है, वह कभी नष्ट नहीं होता। भौतिक उपकरण का, मानसिक सहित भौतिक संरचना का भले विघटन हो जाये, आप उसे दफ़ना दें अथवा उसका दाह संस्कार कर दें परन्तु शून्यता के तत्त्व समान, उसमें समाये तत्त्व पर प्रभाव नहीं पड़ता।

य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात्।
ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते। एतद्वै तत्॥

अब यह स्पष्ट हो जाता है कि मूलतत्त्व एक है । आप भले उसे परम तत्त्व कहिये या उसे परम दृष्टिगोचर कहिये। ध्यान की गुफ़ा में, शून्यता की गुफ़ा में अथवा ध्यान के मौन में यह जान लिया जाता है कि चेतना एक है, जो निद्रावस्था में नहीं जाती, जो विक्षुब्ध नहीं होती, जो विभ्रांत नहीं होती। एक प्रकाश ऐसा है जो शरीर में सदैव प्रकाशमान रहता है, जो आपको उष्णता प्रदान करता है, आपको सजीव रखता है, जो आपको क्रियाशील होने की क्षमता देता है, जो आपको ऐन्द्रिय विषयों के साथ संबन्ध रखने की क्षमता देता है । वह प्रकाश, वह चेतना वास्तव में समस्त अनुभवों की मधुभक्षी है।

सुख एवं आनंद में अंतर

यहाँ पुनः एक अति महत्त्वपूर्ण शब्द का उपयोग किया गया है । यह कूट शब्द है, मध्वदं-मधु+अदम्-अर्थात् वह जो मधु का सेवन करता

** अब प्रत्येक श्लोक के अतं में आप यमराज को 'एतद्वै तत्' कहते सुनेंगे, अर्थात यही है वह, अथवा वही है यह।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। जीवन का वास्तविक उपभोक्ता मस्तिष्क नहीं है, जो यथार्थता के निष्कर्षों, विवरणों इत्यादि में लिप्त रहता है। वास्तविक उपभोक्ता मन नहीं है, जो सदैव पसंदगियों-नापसंदगियों में झूलता रहता है तथा संवेदनों को पाने के प्रयास में रहता है। नचिकेता, वास्तविक परम तत्त्व, ज्ञाता, उपभोक्ता यह आत्मन् तत्त्व है, जिसे मैंने चेतना का प्रकाश कह कर वर्णित किया है। ब्रह्मविद्या समान यह शब्द मधुविद्या भी उपनिषदों की विशिष्ट अभिव्यक्ति है।

उपनिषद् हमें संवेदन, सुख एवं आनंद में अन्तर समझा रहा है। संवेदन पाने में समर्थ शारीरिक इन्द्रियां, ऐन्द्रिय विषयों के साथ सम्पर्क करती हैं तथा वह पारस्परिक क्रिया संवेदन में परिणत होती है। नेत्र, कर्ण, जिव्हा, नासिका व त्वचा संवेदनों का अनुभव कर सकते हैं। संवेदनों को ग्रहण करने का सामर्थ्य रखना कोई सामान्य बात नहीं है; केवल एक जीवित व्यक्ति का शरीर ही संवेदन प्राप्त कर सकता है। शारीरिक संरचना एक पात्र है, जिससे मन सुख-दुःख प्राप्त कर सकता है। संवेदनाओं की मन एवं मस्तिष्क के साथ पारस्परिक क्रिया, प्रतिक्रिया में परिणत होती है। सुख संवेदना के तथ्य के प्रति मन की प्रतिक्रिया है, दुःख संवेदन के तथ्य के प्रति एक प्रतिक्रिया है। 'अनुकूलं संवेदनं सुखं, प्रतिकूलं सवेदनं दुःखम्।' वेदनं अर्थात् संवेदन ग्रहण करना। जब संवेदन प्रिय होते हैं तो आप उन्हें सुख कहते हैं, जब वह अप्रिय होते हैं तो आप उन्हें दुःखद कहते हैं।

मन सुख एवं दुःख का सामर्थ्य रखता है, वह आनंद की क्षमता नहीं रखता, क्योंकि वहाँ सदा एक द्वैत रहता है। संवेदनायें ऐन्द्रिय संरचना एवं विषयों के बीच की क्रिया है। आप किसी विषय को अनुकूल कहते हैं, जब आपको प्रतिकूलता का अनुमान रहता है। इस प्रकार सुख-दुःख द्वैत से जन्म लेते हैं, द्वैत द्वारा पोषित किये जाते हैं- मैंने सुख का अनुभव किया, मैंने दुःख का अनुभव किया। हम कुछ समय के लिये अपरिवर्तनीय वियोग का अनुभव करते हैं, उल्लास का, हर्षोन्माद का अनुभव करते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं। ऐसे, मन द्वैत के साम्राज्य में वरणात्मक प्रतिक्रियाओं को चयन करने का माध्यम होता है।

कठोपनिषद् कहता है, आपकी निद्रावस्था में वह चेतना का प्रकाश ही है जो जागृत अवस्था एवं निद्रा अवस्था के बीच आपको स्वप्न देखने का सामर्थ्य प्रदान करता है। तब अहम् क्रियाशील नहीं होता, वह विश्रांति में होता है। पूरा शरीर विश्रामावस्था में होता है, मन भी विश्राम में होता है, फिर भी आप स्वप्न देखते हैं। कौन देखता है यह स्वप्न? कैसे देखे जाते हैं ये स्वप्न? कठोपनिषद् कहता है, चेतना के प्रकाश द्वारा। *चेतना का वह प्रकाश वास्तविक उपभोक्ता है। बिना किसी द्वैत के, किसी पृथक विषय अथवा पृथक अस्तित्व के, किसी भी पारस्परिक क्रिया से मुक्त, अपने ही अद्वैत में, अपने ही होनेपन में वह आनंद लेता है।* यह रहस्यमय नहीं है। हम सभी जीवित रहना चाहते हैं। ऐसा है या नहीं ? कोई व्यक्ति कितना ही दरिद्री क्यों न हो, चाहे वह भूख से कितना ही पीड़ित क्यों न हो, जीवन चाहे कितना ही दुःखमय एवं दयनीय क्यों न हो। जब तक कि कोई स्व-पीड़ानंद की विकृति से ग्रस्त न हो अथवा जिसमें Freud द्वारा कथित मृत्यु -कामना प्रबल न हो, साधारणतः जीने की अंतःप्रेरणा रहती है। हमें जीवन से प्रेम रहता है, हमें सजीव रहने से प्रेम होता है। क्यों? क्योंकि सुख एवं दुःख का द्रष्टा सुख एवं दुःख के पीछे होता है।

उपनिषद् कहता है कि जीवन का मूलतत्त्व आनंद है- 'आनन्दात् इमानि भूतानि जायन्ते। आनन्दात् जातानि जीवन्ति। आनन्दे एव सर्वे प्रविलीयन्ते। आनन्दं ब्रह्मेति व्यजानात्'। क्यों होता है होनेपन का आनंद ? क्योंकि अस्तित्व स्वसंवेद्य है और वह अपने होनेपन का उपभोक्ता है। अपने आपमें, अपने ही द्वारा, अपने ही होनेपन में, स्वयं प्रकाश होने में, अवबोधक होने में वह आनंद लेता है। जीवन के सत्त्व का आनंद, उसके होनेका आनंद आत्मा लेती है, जब कि मन एवं मस्तिष्क केवल सुख एवं दुःख का अनुभव करते हैं। जीवन का सत्त्व संवेदनाओं के पीछे भागने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में नहीं है। जीने का सत्त्व सुख अथवा दुःख पाने की चेष्टा में नहीं है। जीवन का सार हृदय रूपी गुफ़ा की गहराई में है। जीवित होने का भान, उसका आनंद,जीवित होनेका वह अकारण आनंद है, वह मधुभक्षी है। वह मधुभक्षी अहम्-व्यक्तित्व नहीं होता, जो अनादि-अनंत जीवन तत्त्व एवं इन्द्रियों के बीच आता है। उपनिषद् कहता है, मन द्वारा प्रक्षेपित वह हस्तक्षेप करने वाला अहम्, आनंद का स्रोत नहीं होता।

आनंद द्वैत के क्षेत्र से परे

जीवन का अमृत, उसका सार, उसका मधु हमारे भीतर समाविष्ट प्रकाश -तत्त्व एवं जीवन-तत्त्व को ही प्राप्त होता है। वह उसे प्राप्त होता है जो जीवन का सर्वव्यापक तत्त्व है , जो स्वसंवेद्य है, जो स्वयं ही अवबोधक है। उसमें होता है आत्म-बोध, अवबोधकता अर्थात् किसी अन्य वस्तु से पारस्परिक क्रिया के बिना आनंद के भान की क्षमता। *आनंद अद्वैत के क्षेत्र में है, आनंद द्वैत के क्षेत्र को पार करने में है। य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात्।* वह जिसने बहुत समीप से ध्यान के आयाम में, मौन एवं शून्यता की गुफ़ा में जीवन के मूलतत्त्व के व्याप्त होने का अनुभव किया है, उसीने नित्य मधुभक्षी ब्रह्मन् को, पुरुष को, ईश्वर को, आत्मन् को देखा है।* उसने बहुत समीप से उस उपस्थिति का अनुभव किया है। वह जानता है कि एक तत्त्व है, एक उपभोक्ता है, ज्ञाता है, जो मानसिक से, अहम् व्यक्तित्व से भिन्न है। जिस व्यक्तित्व के विषय में सोचा गया था, जिसके विषय में सुना गया था, जिसके साथ तदात्मीकरण किया गया था वह उससे भिन्न है।

ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते। ध्यानावस्था में बहुत समीप से प्रत्यक्ष मिलन होता है। पहले एक अनुभूति द्वारा, फिर नाद एवं प्रकाश द्वारा, दोनों के एक साथ अथवा अलग-अलग होने से बोध

** आप भले उसे कोई भी नाम दीजिये। जिस दृष्टिकोण से वर्णन दिया जा रहा है, उसीके अनुसार नाम दिये जाते हैं। उपनिषद्, यह नाम मूलतत्त्वों की ऊर्जाओं के रूप में देते हैं। भारतीय संस्कृति में देवी- देवताओं की भाषा बहुत बाद में आयी। उनका जन्म मानसिक आवश्यकताओं से हुआ हैं।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होता है कि यह मध्वदं, यह मधुभक्षी ही ईश है। वह सर्वव्यापी तत्त्व अनादि है; भूतभव्यस्य अर्थात् कालातीत है। काल, जो मन एवं मस्तिष्क की रचना थी, उसका अब अन्त होता है। ध्यानावस्था में काल मौन में शान्त हो जाता है। यहाँ, यह उपभोक्ता, यह मधुभक्षी, यह परम तत्त्व एवं अनुभवकर्ता, यह बोधकर्ता काल से परे है; भूतकाल, वर्तमान एवं भविष्यकाल से परे है। 'ईशानं भूतभव्यस्य'-मानो वह भूतकाल, वर्तमान एवं भविष्य का स्वामी है। स्वामी शब्द भी प्रतीकात्मक है, अर्थात् वह जो समय द्वारा बंधा हुआ नहीं है। एक पराधीन व्यक्ति जैसे बंधा हुआ रहता है, वैसे ही मन विचार एवं काल के पराधीन होता है। वह उसके द्वारा बंधा हुआ होता है। आत्मन् को स्वामी कहा जाता है, क्योंकि वह काल से मुक्त होता है। उसका अस्तित्व, देश-काल के सिद्धान्त पर निर्भर नहीं करता, वह देश-काल की कल्पना पर आधारित नहीं होता। *नचिकेता, इसलिये मृत्यु, मरण एवं सतत रहने के विषय में तुम्हारा प्रश्न केवल मानसिक स्तर के प्रसंग में है, उससे परे नहीं।*

कृपया देखिये, किस निपुणता से आचार्य यम शिक्षा दे रहे हैं। ईशानं भूतभव्यस्य अर्थात् वह काल मुक्त है, आपके मन द्वारा रचित देश-काल की रचना से परे है। न ततो विजुगुप्सते अर्थात एक साधक को मृत्यु का, मरण का भय नहीं होता। न ततो विजुगुप्सते का यह अभिधार्थ है। इसके विभिन्न भावार्थ हैं; वह जो भयभीत नहीं होता, अपना मुहँ नहीं फेरता, जो संकोच नहीं करता। एक साधक अब भय नहीं करता, मृत्यु अथवा भौतिक मरण के नाम से घबरा कर वह पीछे नहीं हटता। अधिकतर व्याख्याकारों ने 'न ततो विजुगुप्सते' की ऐसी समालोचना की है, इसको इस रूप में अनूदित किया है।

हिरण्यगर्भ की गुफ़ा में गति तत्त्व

या प्राणेन संभवत्यदितिर्देवतामयी।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तीं या भूतेभिर्व्यजायत। एतद्वै तत्॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्मांड अव्यक्त जीवन की, अव्यक्त ईश्वरत्व की गुफ़ा है, आपके भीतर मौन का आकाश, आपके व्यक्त जीवन की गुफ़ा है। कृपया ध्यान दीजिये, सम्पूर्ण हिरण्यगर्भ, सम्पूर्ण ब्रह्मांड एक गुफ़ा है, जिसमें गति-तत्त्व, प्राण-तत्त्व व्याप्त है। पहले हमने आत्मन् का स्वसंवेद्य एवं आनंद स्वरूप देखा, अब हम उसके गति-तत्त्व पर, प्राण-तत्त्व पर पहुँचे हैं। हे नचिकेता, व्यक्त जीवन की समस्त अभिव्यक्तियों में, सजीव अथवा निर्जीव सत्ता में वह अनश्वर आत्मन् तत्त्व, वह यथार्थता विद्यमान है। जिस प्रकार उसमें आत्म-ज्ञान का तत्त्व, एकता का तत्त्व एवं उपभोक्ता का सामर्थ्य है, वैसे ही गति-तत्त्व भी उसमें समाविष्ट है।

जब हिरण्यगर्भ का जन्म हुआ, पुरुष एवं प्रकृति से महत् का जन्म हुआ, उसमें यह गति तत्त्व समाविष्ट था; इसे प्राण कहते हैं। ब्रह्मांड में आप इसे वायु-तत्त्व अथवा ईथर कहते हैं। पहले आत्मन् स्वयं को हिरण्यगर्भ के विस्तृत आकाश के रूप में अभिव्यक्त करती है। उस हिरण्यगर्भ में, आकाश में, ब्रह्मांड में, आत्म-ज्ञान, अद्वैत स्वानुभूति, अपने ही अस्तित्व में आनंद का सामर्थ्य समाये हैं। वह आनंद, वह होनेपन का आनंद, वह ज्ञान का प्रकाश, वह अवबोधकता अब गतिशील हो जाती है। पहले आकाश का, शून्यता का जन्म हुआ, उस शून्यता में अस्तित्व का सार उंडेल दिया गया और अब वह गतिमान हुई। आकाशात् वायुः, आत्मन्: आकाश संभूतः। आकाशात् वायु । अब उसमें प्राण का संचलन हुआ; वह अग्नि-तत्त्व है।

अब आपके सम्पूर्ण शरीर में, सम्पूर्ण पिंड में, आत्मन् स्वयं को गति के रूप में, गतिविधि के रूप में प्रकट करता है। आपके अंग चल सकते हैं क्योंकि उनमें वह अग्नि, वह प्राण तत्त्व है। *आपकी ध्यानावस्था की गुफ़ा में भी, मौन एवं शून्यता की गुफ़ा में भी वह प्राण हैं, परन्तु अब प्राण एवं उसकी गति अहम् के साथ, व्यक्तित्त्व की खूंटी के साथ बंधी नहीं है।* जब तक शरीर के साथ, संवेदनाओं के साथ, विचारों के साथ, मन के साथ तदात्मीकरण रहता है, प्राण-तत्त्व भौतिक एवं मानसिक के साथ संबन्धित रहते हैं; लगभग उन्हींके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साथ उनकी पहचान रहती है। परन्तु ध्यानावस्था में वह प्राण-तत्त्व, वह अग्नि एवं गति-तत्त्व लगभग अतदात्मीकरण की अवस्था में रहता है। शरीर के साथ, मन के साथ अब तदात्मीकरण नहीं होता। उस शून्यता में, उस मौन में एक स्पंदनिक गतिविधि है। वह बाहर विस्तृत नहीं होती, वह मन अथवा इन्द्रियों से हो कर बाहर नहीं जाती। वह आन्तरिक ब्रह्मांड में, आपके हृदय अथवा ध्यान की गुफ़ा में समायी रहती है। वहाँ वह अग्नि-तत्त्व के रूप में समायी है।

जब एक योगी शरीर का परित्याग करता है, तो उसके प्राण शरीर को शान्तिपूर्वक छोड़ते हैं; बिना पीड़ा के। वह व्यक्ति जो शरीर के साथ बहुत अनुरक्त होता है, प्राणों के शरीर से छूटने के समय उसे बहुत कष्ट होता है; प्राण शरीर में रहना चाहते हैं। ऐसे में अन्दर रहने तथा बाहर जाने में एक संघर्ष होता है, परन्तु समय तो आन खड़ा होता है। इसलिये भारतवर्ष में, संभवतः सम्पूर्ण एशिया में जब किसी व्यक्ति के प्राण छूट रहे होते हैं, तो निकट संबंधी उससे पूछते हैं यदि वह कुछ कहना चाहता है। वे पूछते हैं, क्या उसकी किन्हीं इच्छाओं की, कामनाओं की पूर्ति होनी शेष है? वे उसे पूर्ण करने का वचन इत्यादि देते हैं। उस मरते हुये व्यक्ति को वे उस आसक्ति से मुक्त करने का प्रयास करते हैं, जो उसे शरीर की ओर खींचती है और उसे छोड़ने नहीं देती। परन्तु एक योगी के प्राण- सभी पंच प्राण- सहजता से शरीर से निकल जाते हैं, क्योंकि वहाँ कोई प्रतिरोध नहीं होता।

ध्यानावस्था में वैश्विक प्राणों के साथ संयोजन

ध्यान शरीर के साथ आसक्ति से, उसके साथ तदात्मीकरण से मुक्ति का, उससे वियोजन का अध्ययन है। अब आप समझ रहें हैं क्यों यह मृत्यु का मार्ग है? ध्यानावस्था में जब मन के संवेगों का विराम होता है, वह प्राण वहाँ रहते हैं परन्तु शरीर से वियोजित होते हैं। फिर वे किस के साथ संयोजित रहते हैं? वे प्राण ब्रह्मांड के अग्नि तत्त्व के साथ संयोजित रहते हैं, वे वैश्विक प्राण के साथ संयोजित रहते हैं। हम अनुरक्त हैं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हमने मन एवं मस्तिष्क के प्रतिबन्धनों के साथ, ऐन्द्रिय प्रणाली की सीमाओं के साथ तदात्मीकरण कर रखा है। इसलिये चेतना के वैश्विक प्रकाश के साथ, आनंद के वैश्विक-तत्त्व के साथ, अग्नि के वैश्विक-तत्त्व के साथ हमारा सम्पर्क, हमारा सम्मिलन टूट जाता है। जब इस तदात्मीकरण का अंत होता है, तब वह मिलन होता है।

ध्यानावस्था में आपकी सम्पूर्ण मनोभौतिक संरचना को पुन: स्फूर्ति मिलती है, उसका नवीकरण होता है। निद्रावस्था में भी, सात-आठ अथवा पांच-छ: घंटों की निद्रा के पश्चात् भी ऐसा होता है; क्योंकि वहाँ एक वियोजन रहता है। परन्तु निद्रा में एक निश्चेष्टता रहती है । वह एक सचेतन कर्म नहीं होता, वह एक सचेतन गतिविधि नहीं होती। निद्रावस्था में शरीर एवं मन की आवश्यकताओं के लिये, सात एक घंटों के लिये अहम् व्यक्तित्व से एक वियोजन, एक पृथकता हो जाती है । उस समय विषयों के साथ ऐन्द्रिय गतिविधियों की पारस्परिक क्रिया थम जाती है परन्तु उसमें एक निश्चेष्टता रहती है। ध्यानावस्था में, चेतन रूप से आपने उसे लुप्त होने की अनुमति दी है । आपने सम्पूर्ण मनोभौतिक प्रणाली को तदात्मीकरण, व्यसन, आकर्षण, प्रतिकर्षण के वातावरण से, उस सम्पूर्ण द्वैत से पार जाने का अवसर दिया है। आपकी चेतना, निरावृत्त, ध्यान के गर्भ में होती है, आप पुन: अपने अस्तित्व के मूल के साथ, जीवन की यथार्थता के साथ एक हो जाते हैं। वह मिलन होता है, वह सम्मिलन होता है ।

इसी कारण योगियों को अन्य जनों से, भोगियों से कम निद्रा की आवश्यकता होती है। निद्रा से वे नव-स्फूर्ति पाते हैं । वे सदा अभिनव रहते हैं । वैश्विक बोध के मूल के साथ सम्मिलित, वे सदा सजीव एवं अभिनव रहते हैं। जब उन्हें किन्हीं परिस्थितियों में सक्रिय होना पड़ता है, किन्हीं चुनौतियों को स्वीकार करना होता है, तो वे सीमित प्रतिबन्धनों एवं मानवीय अतीत के ज्ञान से कर्म नहीं करते हैं । वे वैश्विक चेतना के साथ वर्तमान के सम्मिलन की अभिनवता से सक्रिय होते हैं। इस प्रकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तदात्मीकरण के साथ वियोजन और जीवन के मूल के साथ पुन:मिलन होता है।

ध्यानावस्था एक वैकल्पिक जीवन शैली

आपने देखा, ध्यान अथवा ध्यानावस्था या फिर समाधि कोई कल्पनायें मात्र नहीं हैं; वे तथ्य हैं। ज्ञानेन्द्रियों के स्तर पर, मानसिक स्तर पर, मानसिकता के परे के स्तर पर यह एक वैकल्पिक जीवन शैली है। जो व्यक्ति उस अवस्था में, आंतरिक शून्यता में जीते हैं, वे उसमें से मानसिक, शाब्दिक अथवा ऐन्द्रिय स्तर पर केवल आवश्यकता होने पर बाहर निकलते हैं। वे ध्यानावस्था की, मौन की, शून्यता की गुफ़ा से किसी आवश्यक कारण के होने पर ही बाहर आते हैं और फिर वहीं लौट जाते हैं। इसीलिये ऐन्द्रिय एवं मानसिक स्तर पर पारस्परिक क्रिया से उत्पन्न विघर्षण उन्हें निढाल नहीं कर देता। शरीर वृद्ध होता है परन्तु ऊर्जा एवं चेतना प्रभावित नहीं होती। शरीर की झुर्रियां चेतना की झुर्रियां नहीं हैं। सभी घाव, सभी खरोंचें, मौन के जल द्वारा धुल जाती हैं, मौन की सम्पूर्णता में व्यक्ति का अस्तित्व स्वस्थ हो जाता है।

वे जो अग्नि पथ पर, योग मार्ग पर, ध्यान मार्ग पर चलते हैं, उनकी शक्ति, उनकी सजीवता, उनके उत्कट होने में कोई रहस्य नहीं होता। यह तो उच्च स्तर पर जीवन का नियम है, ऐसा तो होता ही है, यह तो होना ही है। नचिकेता, वह अग्नि-तत्त्व, वह गति-तत्त्व, जो तुम ऐन्द्रिय एवं मानसिक स्तर पर देखते हो, वह ध्यानावस्था के स्तर पर भी रहता है। यह समझ लो कि वह आत्मन् का प्रकटन है; एतद्वै तत्। तुम उस तत्त्व के विषय में पूछ रहे थे जो मृत्यु उपरान्त जीवित रहता है, यही वह तत्त्व है; जो शरीर के जन्म-मरण उपरान्त भी विद्यमान रहता है।

छान्दोग्य में नाद तत्त्व पर बल था, ॐ पर, प्रणव पर, नाद-तत्त्व के होने पर महत्त्व था। संभवत: कठोपनिषद् भी इस विषय को बाद में उठायेगा। प्रणव उद्गत: स्तोत्र उस मूल नाद को समर्पित है, जो घर्षण से जन्म नहीं लेता। वह स्वयम्भू जीवन का नाद है, इसलिये हम इसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन का शब्द रहित शब्द कहते हैं। हम इसे शब्द-रहित शब्द कहते हैं, क्योंकि हम इसका श्रवण कानों से नहीं कर पाते। जब कोई ध्यानावस्था में विकसित होता है, तब अन्तर से इसका श्रवण होता है । अभी तो बहिर्गामी श्रवण है। जैसे बहिर्गामी दृष्टि एवं अन्तर दृष्टि होती है, वैसे ही अन्तर श्रवण होता है। हमने इस वाद्य को घर्षण से उत्पन्न स्वरों के स्तर पर मिलाया है। भारतीय शास्त्रीय संगीत में बाईस स्वरों का वर्णन दिया गया है, उन्हें मूर्च्छना कहा जाता है। प्रत्येक स्वरों के अधिस्वर एवं मंदस्वरों को मूर्च्छना कहा जाता है। देखा आप ने ! वे अनुसंधान करने वाले वैज्ञानिक थे। सम्पूर्ण प्रयास से वे स्वरों की भी सूक्ष्म मे सूक्ष्म छटाओं को देखना चाहते थे। इसलिये शास्त्रीय संगीत में आप प्रत्येक स्वर के अधिस्वरों एवं मंदस्वरों का अध्ययन करते हैं, केवल दीर्घ स्वर एवं लघु स्वर का नहीं। दो स्वरों के बीच के अन्तराल का नहीं परन्तु स्वरों के उन सूक्ष्म स्वरूपों का भी अध्ययन करते हैं, जो हमारे कानों के लिये अश्राव्य हैं। इसी कारण बेथोवन का स्वरसंगीत एवं स्पंदनों के सूक्ष्म स्वरों की अभिव्यक्तियाँ आपको परमानंद में ले जाती हैं।

छान्दोग्य नाद के मूलतत्त्व को श्रद्धा अर्पित करता है। कठोपनिषद् अपना ध्यान अग्नि-तत्त्व पर, प्रकाश तत्त्व, गति-तत्त्व पर केन्द्रित करता है; प्राण अग्नि-तत्त्व हैं।

अव्यक्त व्यक्त बना और ब्रह्मांड के अंतरिक्ष में विस्तृत हुआ। उसी विस्तरण की क्रिया में आत्म-बोध तत्त्व, उसकी ऊर्जा, चेतना की ऊर्जा समाविष्ट थी, संगुप्त थी। वह किसी गतिविधि द्वारा प्रभावित नहीं होती, वह आनंद तत्त्व है, गति तत्त्व है, वह प्राण है। भौतिक काया में समाये पृथ्वी एवं जल तत्त्वों को कठोपनिषद् में सम्मिलित नहीं किया गया है। उनको अस्तित्व का निचला स्तर कहा गया है; पथ पर उत्कृष्ट होने के लिये उन्हें सोपान की सबसे निचली सीढ़ी कहा गया है। वायु से ले कर, प्राण से ले कर, अग्नि से आगे उत्थान का आरम्भ होता है। हठ योग पृथ्वी-तत्त्व एवं जल-तत्त्व का यम, आसन इत्यादि द्वारा स्थिरीकरण से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आरम्भ करता है। प्राण-तत्त्व को आप प्राणायाम द्वारा शिक्षित करते हैं और फिर प्रत्यहार द्वारा एक समग्र संयम के स्तर पर पहुँचते हैं। धारणा से एकाग्रता को केन्द्रित करते हैं, जैसे एक अच्छे लैन्स वाले कैमरे को केन्द्रित किया जाता है। उत्थान के इस पथ पर, फिर आप ध्यानावस्था में एक Quantum Jump लेते हैं, जो समाधि में परिपक्व होती है। जिसके आगे और कुछ नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सोलहवाँ संवाद

यहाँ उपस्थित किसी व्यक्ति के ध्यान में ठीक ही आया है कि इन वर्गों का संचालन करते हुये, विमला बहुत प्रसन्न दिखती हैं। यह कथन सही है, क्योंकि उपनिषद् वन संस्कृति के, ऋषि संस्कृति के पुष्प हैं। उन्हें आरण्यक कहा जाता है, वन को अरण्य कहते हैं। वे वो फूल हैं, जो गृहस्थ ऋषियों-मुनियों के जीवन में खिलते हैं और शिष्यों के साथ बाँटे जाते हैं। आपकी मित्र, विमला, प्राचीन काल की वन संस्कृति के साथ एक प्रकार की आंतरिक निकटता का अनुभव करती हैं। वनों, पर्वतों एवं गुफ़ाओं के साथ मेरा सम्पर्क बचपन से है, जब मैंने अनेकों सप्ताह नर्मदा- जो रेवा के नाम से भी जानी जाती है- के किनारे एक योगी के साथ व्यतीत किये थे। वहीं मेरा परिचय योग विज्ञान से हुआ था। फिर विश्वविद्यालय की शिक्षा पश्चात् एक के बाद एक सप्ताह हिमालय की एक गुफ़ा में बिताये थे; जहाँ स्वामी रामतीर्थ ने निवास किया था।

साठवें दशक में एक विद्वान् जर्मन महिला, माँऊट आबू की नक्खी लेक के पास एक गुफ़ा में रहा करती थीं। उसने अपने लिये, सावित्री, एक भारतीय नाम लिया था। वह श्रीमद्भागवत का शास्त्रीय जर्मन भाषा में अनुवाद कर रहीं थीं। कुछ शब्दों के अनुवाद के स्पष्टीकरण के लिये वे मुझे आमंत्रित करती थीं। अनेकों दिन एवं रात मैं उसके साथ उसीकी गुफ़ा में रहती, जहाँ बिछावन के लिये एक सपाट पत्थर था। फिर सन १९७१ में, गंगोत्री वन विभाग के विश्राम गृह में रहना हुआ। वन एवं पर्वत मेरा प्रेम हैं, वन संस्कृति में मैं महानगरों से अधिक अपनेपन का अनुभव करती हूँ। बम्बई, दिल्ली, पेरिस, लंदन, ऐमसटरडम इत्यादि जैसे बड़े शहर मुझे भयभीत करते हैं। मेरा हृदय तो वन-संस्कृति का है।

वेद एवं उपनिषद् वनों में लिखे गये थे। ऋषियों-मुनियों की शिक्षा के लिये कोई पाठशालायें नहीं होती थीं, प्रकृति के साथ उनका सम्मिलन ही उनकी शिक्षा करता, अन्तर्वेधी, तीक्ष्ण दृष्टि ही उनकी शिक्षक होती। मेरे मित्रों, मैं एक एकांतवासी तपस्वी समान रही हूँ, लकड़ी इकत्रित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर, आग जला कर उस पर भोजन पका रातें घोर अन्धेरे में बितायी हैं। मैंने श्रीलंका के वनों में भ्रमण किया है, वहाँ के बौद्ध -विहारों में गयी हूँ, घने जंगलों में आनंद के लिये रही हूँ। मैं पुस्तकों से वर्णन नहीं दे रही। यह मेरी प्रतिज्ञा है, मैं एक भी ऐसा शब्द नहीं कहूँगी जिसे मैंने जिया न हो। यह प्रतिज्ञा लिये हुये अब आधी शताब्दी बीत गयी है।

ऋषि प्रकृति से सीखते थे; वे गायों से, बैलों से, पक्षियों से, नदियों से, चींटियों से, प्रत्येक वस्तु से सीखते थे। वे अपने शरीर की रासायनिक क्रियाओं से सीखते, ऋतुओं के कालचक्र से, सूर्य, चन्द्रमा, तारका-मंडल से सीखते। प्रत्यक्ष अवलोकन द्वारा, वैश्विक ऊर्जा के प्रत्यक्ष अभिग्रहण, चिन्तन-मनन एवं ध्यान द्वारा उनका सीखना होता। जिन्होंने कभी भी, किसी भी देश में पर्वतों के निकट एकांत में दिन बिताये हों, वे उपनिषदों को अधिक सुलभता से समझ पायेंगे। शहरों में रहते हुये जिन्होंने पृथ्वी के साथ, नदियों के साथ कोई सम्पर्क नहीं किया, लकड़ियों से अग्नि नहीं प्रज्वलित की, टिमटिमाते हुये सितारों के प्रकाश में रातें नहीं बितायीं हैं, जिन्होंने यह सब नहीं जिया है उनके लिये कठोपनिषद् का कथन संभवत: एक काल्पनिक विवेचन होगा। मैं उन्हें कहना चाहूँगी, उनके समक्ष निवेदन करना चाहूँगी कि यह काल्पनिक नहीं है। यह तो प्रत्यक्ष अनुभव एवं सम्मिलन की पुष्प-मंजरी है। ये केवल पृथ्वी-ग्रह के साथ सम्पर्क ही नहीं परन्तु सितारों इत्यादि के साथ आन्तरग्रहीय संवाद हैं; पृथ्वी पर, मनुष्य जीवन पर, अन्य जीवन-जन्तुओं पर उनके प्रभाव के अध्ययन के अनुभव हैं।

कृपया जान लीजिये कि हम एक अत्यंत पवित्र विषय के साथ सम्पर्क कर रहे हैं। यह आधुनिक काव्य के अर्थ में मात्र काव्य नहीं है। जब वेद लिखे गये, तब ऋषियों को लेखन सिखाने के लिये कोई वैयाकरण नहीं थे कि कैसे लिखा जाये। बाद में पाणिनि, सायण, यक्ष, प्रभाकर इत्यादि वैयाकरणों ने व्याकरण के कुछ निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया। संस्कृत व्याकरण बना क्योंकि वह वेदों एवं उपनिषदों के साहित्य से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निष्कर्षित है।

इस विषय को ऐसे आरम्भ किया गया, क्योंकि जिस सूत्र के साथ हम सम्पर्क करने जा रहे हैं, वह अति सूक्ष्म अनुभवों से संबन्धित है। आने वाले दिनों में हम जिन सूत्रों का अध्ययन करने जा रहे हैं, वे हमें अधिक गहराई में ले जायेंगे; केवल मनुष्य चेतना की गहराई में नहीं परन्तु स्वयं जीवन की गहराई में। ऊँची उड़ान भरते हुये गहराई में उतरना है।

प्रतिबन्धित एवं अप्रतिबन्धित चेतना द्वारा प्रज्वलन

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुभृतो गर्भिणीभिः ।
दिवे दिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः । एतद्वै तत् ॥

अरणि एक संस्कृत शब्द है। आपमें जो यज्ञों की भाषा से, यजुर्वेद के कुछ अंशों से परिचित हैं, वे जानते हैं कि कठोपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद का अंश है। इसलिये अग्नियों की, आहुतियों की, यज्ञों की भाषा इसकी पृष्ठभूमि है। 'अरणि' लकड़ी के दो टुकड़े होते हैं, एक को ऊपर के हाथ में रखा जाता है, दूसरे को निचले हाथ में। अग्नि प्रज्वलित करने के लिये, उन दो टुकड़ों को रगड़ते हुये ऋषि मंत्रों का उच्चारण करते थे। उस नाद शक्ति द्वारा अग्नि प्रज्वलित की जाती थी। संभवत: दक्षिण भारत में, श्रीलंका में ऐसे स्थान हैं, जहाँ पुजारी आज भी दियासिलाई इत्यादि के प्रयोग के बिना, नाद शक्ति द्वारा अग्नि प्रज्वलित करते हैं। अरणि के दो टुकडों में - ऊपरी तथा निचले टुकड़े में - जातवेद अग्नि होती है। जातवेद अग्नि का नाम है। जैसे सूर्य नमस्कार में सूर्य के बारह नाम हैं; उपनिषदों में अग्नि के अनेकों नाम हैं, जातवेद उनमें एक नाम है।

जातवेद शब्द का अर्थ रुचिकर है। वह, जो केवल अपने होनेपन द्वारा जाना जाता है; जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उसे जानने के लिये, आपको उसे जीना पड़ता है। यदि आप एक अग्निशिखा को रेखांकित कर, एक कागज़ के टुकड़े पर लौ के रंग भर कर देखें, तो वह आपको अग्नि के गुणों से परिचित नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करायेगा। जब आप अग्नि प्रज्वलित करते हैं तो वह एक भिन्न घटना होती है, वह जातवेद अग्नि होती है।

जैसे यज्ञ के अनुष्ठान में लकड़ी के ऊपरी एवं निचले टुकड़ों में अव्यक्त अग्नि सुरक्षित होती है, वैसे ही मनुष्य की अन्तर अग्नि, अध्यात्म के ऊपरी भाग एवं आधिभौतिक के, आधिदैविक के निचले भाग द्वारा सुरक्षित रहती है। ऐन्द्रिय एवं मानसिक निचली लकड़ी हैं, ऊपरी लकड़ी अप्रतिबन्धित चेतना है। ऐसा कह सकती हूँ कि मौन के अंतरिक्ष में समाविष्ट गुह्य अप्रतिबन्धित चेतना उच्च भाग है तथा मनोभौतिक संरचना से संबन्धित प्रतिबन्धित चेतना निम्न भाग है। *ध्यान में अहम् व्यक्तित्व अथवा काल्पनिक व्यक्तित्व की, अहम् चेतना की, मौन की वेदी पर आहुति दी जाती है। फिर अहम् व्यक्तित्व में समाविष्ट प्रतिबंधित चेतना एवं अप्रतिबन्धित चेतना के संवाद से आत्मा की लौ स्वंय को प्रकट करती है।* यह कोई मिथिक-कथा नहीं है, यह अहम् की आहुति के वर्णन की शैली है। जब ऐन्द्रिय संवेदनाओं तथा मानसिक निष्कर्षों द्वारा रचित, स्मृति की टोकरी में संजोकर रखा हुआ अहम् यज्ञ में अर्पित किया जाता है, तो प्रतिबन्धित एवं अप्रतिबन्धित एक दूसरे के साथ रगड़ते हैं। यह केवल वर्णन की शैली है, वरना आप मुझे पूछेंगे कौन रगड़ता है उन्हें, कौन उन दोनों को पकड़ता है। प्राच्य ऋषियों के पास अपने अनुभवों के वर्णन के लिये कोई अन्य ढंग नहीं था।

अभी तक मनुष्य शरीर के स्तर की, पिंड के स्तर की बात थी। ब्रह्मांड के स्तर पर, हिरण्यगर्भ में भी उच्च गोलार्ध एवं निम्न गोलार्ध की बात है। पृथ्वी ग्रह निम्न गोलार्ध है तथा अंतरिक्ष में, पृथ्वी के चारों ओर असंख्य नक्षत्र समूह, तारा मंडल, सौर-मंडल इत्यादि उच्च गोलार्ध हैं। वे ऊपरी अरणि हैं, पृथ्वी निचली अरणि है। इन दोनों ऊर्जाओं की पारस्परिक क्रिया द्वारा प्रबोधन की अग्नि प्रज्वलित होती है।

मौन एवं ध्यान के गर्भ में सत्य बोध

ऋषि एक ही उपमा से, एक ही तुलना से संतुष्ट नहीं हुये, वे अब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनुष्य जीवन के और समीप आते हैं। गर्भ इव सुभृतो गर्भिणीभि:; गर्भिणी अर्थात् एक गर्भवती स्त्री।* जैसे एक गर्भवती स्त्री अपने शरीर में विकसित हो रहे, प्रकट होने के इच्छुक जीवन का पालन-पोषण करती है, वैसे ही एक गृहस्थ एवं योगी, मौन की, ध्यान की गुफ़ा में उस अन्तर अग्नि की देखभाल करता है। क्योंकि वहाँ भी यथार्थता का बोध, सत्य का बोध, इन्द्रियों के संयम, मानसिक संरचना के अनुशासन एवं शिक्षण द्वारा परिपक्व हो रहा है। अदृष्ट रूप से, अव्यक्त रूप से, आंतरिक जीवन आप के मौन की गुफ़ा में, आपके हृदय की गुफ़ा में जन्म लेने का प्रयास कर रहा है। एक साधक अपने ही जीवन से गर्भित रहता है। वह अपना ही पिता और अपनी ही माता है, उसमें एक नया जन्म हो रहा है। *नचिकेता, तुम्हें भौतिक मृत्यु की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं, तुम अपने ही शरीर में पुन: जन्म ले सकते हो।*

दिवे दिवे ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्नि: । दो सादृश्यों, दो उपमाओं के पश्चात्, अब तीसरी उपमा अपने ही गृहस्थ जीवन से है। दिवे दिवे अर्थात् दिन प्रतिदिन; ईड्यो अर्थात् प्रशंसा करना, सराहना करना, आराधना करना। गृहस्थ दिन प्रतिदिन अग्नि की, उस सृष्टिकर्ता की, पोषक की, जीवन के रक्षक की यज्ञों के प्रतीकात्मक कर्मों द्वारा प्रशंसा करते हैं, उस की आराधना करते हैं**। वे दिन प्रतिदिन उस आंतरिक अग्नि का आदर बाह्य यज्ञ, हवन, होम द्वारा करते हैं। इन मंत्रों द्वारा वे आंतरिक अग्नि को अपने हृदय में जागृत करने का प्रयास करते हैं। योगीजन यही ध्यान इत्यादि द्वारा करते हैं। उच्च एवं निम्न गोलार्ध के सम्पूर्ण ब्रह्मांड में भी यही होता है।***

---

* *यह अर्थ मनुष्यों के अतिरिक्त अन्य प्राणियों के संदर्भ में भी ले सकते हैं, परन्तु यहाँ संकेत एक गर्भवती महिला की ओर है।*

** *यदि उनके अर्थ को, तात्पर्य को समझा कर, उनसे अवगत हो कर किया जाये, तो अग्निहोत्र, हवन,होम इत्यादि आवृत्तिमूलक, यांत्रिक क्रियाएं नहीं हैं।*

*** *काव्यात्मक रूप से उन्हें उच्च एवं निम्न में विभाजित किया गया है, जैसा ऋषियों को दिखा होगा। उनके पास तो कोई टेलिस्कोप नहीं थे। उनकी शुद्ध ऐन्द्रिय प्रणाली एवं स्वस्थ मन एवं मस्तिष्क टेलिस्कोप समान काम करते थे।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वेदों में आंतरग्रहीय संबन्धों का अध्ययन किया गया है। भारतीय खगोल-विज्ञान पर दसवीं शताब्दी की पुस्तकें पायी जाती हैं, जिनमें ज्योतिष विद्या इत्यादि का विज्ञान विकसित हुआ है। गणित के समान, वेद संगीत एवं नृत्य, विवाह एवं मातृत्व-पितृत्व इत्यादि के विषय में भी लिखते हैं। जीवन संबन्धित कोई भी विषय उनकी दृष्टि से छूटा नहीं था; वह एक समग्रता की दृष्टि थी।

देखा आपने, एक ही श्लोक में उन्होंने कितना विस्तार तय किया है, अग्नि की पवित्रता, ईश्वरत्व के दूत के रूप में अग्नि इत्यादि, इत्यादि। झरथुष्ट्र (Zarathustra) ने भी अग्नि के इस स्वरूप पर बल दिया है। वे केवल अग्नि के उपासक नहीं थे, जैसा कुछ लोग उन्हें समझते आये हैं। अग्नि ईश्वरत्व तक पहुँचने का माध्यम है, जो अनश्वर अग्नि है, ब्रह्मांड को जीवित रखे हुये है।

यह आंतरिक प्रज्वलन बाह्य प्रतीकात्मक कर्म अथवा ध्यान द्वारा होता है। कोई स्वयं को हृदय में यह अग्नि प्रज्वलित होने के लिये कैसे समर्थ करे ? अगले श्लोक में आचार्य वह मार्ग दिखाते हैं, जिससे शिष्य स्वयं को समर्थ कर सकता है।

ऐन्द्रिय विषयों एवं इच्छाओं के संबन्ध का अवलोकन

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानाऽस्ति किंचन । आचार्य कहते हैं, कठोपनिषद् कहता है, देखो, इन्द्रियों एवं ऐन्द्रिय विषयों के निरीक्षण द्वारा, उनसे जो सुख प्राप्त होता है, उनसे जो दु:ख प्राप्त होता है उसका निरीक्षण करना पड़ता है, उसे समझना पड़ता है। पहले विविधता को, अनेकता को देखो। नानात्व का अर्थ होता है अनेकता, एकत्व है एकता; उपनिषद् की, वेदान्त इत्यादि की भाषा में एकता एवं अनेकता। आचार्य कहते हैं, पहले आपको देखना है कि ऐन्द्रिय स्तर पर क्या होता है ? ऐन्द्रिय विषयों एवं इन्द्रियों के बीच जो परस्पर क्रिया निरंतर चलती रहती है, उसे देखना है। फिर देखना है अंत:इन्द्रियों को; जब आप सोचते हैं, संवेदन करते हैं अथवा प्रतिक्रिया करते हैं तब क्या होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'मनसैवेदमाप्तव्यं' अर्थात् प्राप्त मन-मस्तिष्क की प्रणाली द्वारा निरीक्षण करना है, अध्ययन करना है। सूक्ष्मता से निरीक्षण कीजिये, अध्ययन कीजिये कि शरीर में, बाह्य ऐन्द्रिय विषयों एवं शरीर के सम्पर्क से क्या हो रहा है।

ऋषि कहते हैं, ऐसा करने से आप पायेंगे कि वह चेतना का आंतरिक प्रकाश है, आपके अस्तित्व की अन्तर अग्नि की ऊर्जा है, जो ज्ञानेन्द्रियों से सदैव बाहर प्रवाहित होती रहती है। *यदि आप ऐन्द्रिय विषयों के साथ अथवा विचारों, कल्पनाओं, संवेदनाओं, भावनाओं के साथ निरंतर संबन्धित रहते हैं तो आप अन्तर अग्नि का, चेतना के प्रकाश का, आत्मा की अग्नि का, ऊर्जा का अपव्यय करते हैं।* आपने देखा वह बाहर प्रवाहित होती है और उसका व्यय होता है। यह तो एक भाग हुआ। दूसरे, आपके ध्यान में आयेगा कि ऐन्द्रिय विषय नश्वर हैं, वह परिवर्तनीय हैं, वह अस्थायी हैं। इसलिये इच्छा की माँग सदा नये विषयों के लिये, अधिक स्थायी विषयों के लिये रहती है। ऐन्द्रिय स्तर पर यह इच्छा, विषयों द्वारा, आकारों द्वारा, तुष्टिकरण के पीछे जाने की प्रवृत्ति बनाती है। मन के स्तर पर वह आदतों के प्रतिमानों से तुष्टि खोजती है।

आप देखिये, इस उपनिषद् में कितनी सूक्ष्मताओं को दर्शाया गया है। अत्यंत संयम के साथ, उनमें कुछ भी जोड़े बिना मैं इन शब्दों को आप तक पहुँचा रही हूँ। बीसवीं शताब्दी के संदर्भ में और बहुत कुछ कहा जा सकता है परन्तु यहाँ मैं उपनिषद् में जो आपके अध्ययन अथवा योग शिक्षा के संबन्ध में कहा गया है, वह कहने के लिये बैठी हूँ। इसलिये अन्य संदर्भों को बहुत सम्मान के साथ, एक उत्तरदायित्व के भान के साथ अलग छोड़ दे रही हूँ।

उपनिषद् कहता है, ऐन्द्रिय प्रणाली की हर घड़ी नवीन विषयों के पीछे भागने की प्रवृत्ति लगभग एक मूल वृत्ति बन जाती है। मन को लायी गयी संवेदनाओं का व्यसन हो जाता है, इसलिये वह आदतों के प्रतिमान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खड़े करता है। आकर्षण एक व्यसन बन जाता है, व्यसन से आदत के प्रतिमान बनते हैं। मन एवं इन्द्रियाँ कभी एक साथ चेतना के प्रकाश की ओर उन्मुख नहीं होतीं, वे कभी अन्तर्मुखी नहीं होतीं। वे सदा एक बहिर्गामी क्रिया, बहिर्गामी गतिविधि रहती हैं, जो बहुत थका देती है। ऐन्द्रिय प्रणाली के लिये 'जीर्ण-शीर्ण, थकी हुयी, निढाल, क्षत-विक्षत' विशेषणों का उपयोग किया गया है। इतना ही नहीं, यह भी कहा गया है कि नश्वर* एवं अस्थायी के सम्पर्क में जो एक घड़ी में, एक दिन में, एक क्षण में, कुछ क्षणों में नष्ट हो जातें हैं आपका मन जिनके पीछे भागता है , वह मन भी नश्वरता में चला जाता है। आत्मा में अपने स्रोत को भूल, वह विफलता का अनुभव करता है, अकेलेपन का अनुभव करता है। जब वह ऐन्द्रिय विषय के सम्पर्क में नहीं होता, उनसे संबन्धित नहीं होता, तो अकेलेपन का, अपर्याप्त होने का, एक अधूरेपन का आभास जाग उठता है।

नचिकेता, अवलोकन की सहायता से तुम जान सकते हो, जब तुम बाह्य विषयों अथवा विचारों, संकल्पनाओ एवं भावनाओं के संबन्ध में जीते हो तो तुम्हारे साथ क्या होता है। कैसे हर दूसरे क्षण मन एक नयी सनक, एक नयी इच्छा पैदा करता रहता है। हर दूसरे क्षण वह अपनी दिशा, अपने ढंग बदलता है, अपनी मन:स्थिति बदलता है और इसी कारण अपने शरीर की तांत्रिक-रासायनिक अवस्था को बदलता है। ऐसे, इन्द्रियाँ विषयों के पीछे जाती हैं और मन विचारों, भावनाओं, संवेदनाओं के पीछे। अशान्त जल समान वे कभी स्थिर नहीं रह सकते।

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह । जो भी यहाँ है वह वहाँ ब्रह्मांड में, हिरण्यगर्भ में है और जो वहाँ है वह यहाँ भी है; 'यथा पिंडे तथा ब्रह्मांडे'। इस सूत्र में भी यही कहा गया है। पिंडे का अर्थ है पिंड-ब्रह्मांड, साधारण भाषा में उसे शरीर कहिये। ब्रह्मांड में विद्यमान समस्त ऊर्जायें पहले से ही आपके अन्दर हैं। ईश्वर की खोज, समाधि अथवा मुक्ति

** आपको स्मरण होगा कि पहले अध्याय की पहली वल्ली में, स्थायी न रहने वाले विषय को श्वोभावा कहा गया था।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के नाम से अपने शरीर से, अपनी मनोभौतिक संरचना से भागने का प्रयास मत कीजिये। कुंजी यहीं है, वह कुंजी आपके अन्तर में है। समस्त प्रक्रियाओं में, ऊर्जाओं की पारस्परिक क्रियाओं में, ऊर्जाओं के रूपान्तरण में, नयी ऊर्जाओं के रूप धारण करने में एक चमत्कार होता है। मनुष्य जीवन एक चमत्कार है। श्लोक की दूसरी पंक्ति में और उससे अगले श्लोक में ऋषि कहते हैं; जो भी ब्रह्मांड में है, जो भी ऊर्जा वहाँ है, वह आपके शरीर में भी उपलब्ध है। आपको केवल अधिक से अधिक गहराई में जाना है। आपको अपने अस्तित्व की गहराई में अधिक से अधिक उतरना है; कुंजी आपके बाहर नहीं है। पिंड एवं ब्रह्मांड को एक जानने से, अपने से बाहर कुछ भी पाने का नहीं है, प्राप्त करने का नहीं है।

ऋषि ने ऐसा संकेत क्यों दिया है ? यह बहुत रुचिकर है। संभव है कि धर्म एवं अध्यात्म के नाम से एक भिन्न क्षेत्र बना हम उसके पीछे दौड़ेंगे। अपने पास जितनी भी महत्वाकांक्षा है, उसके साथ अध्यात्म को पाने के लिये, उसे अपनाने के लिये उसके पीछे दौड़ेंगे, ताकि हम कह सकें कि हम मुक्त हैं अथवा मैंने वह देखा है। वही खेल जो ऐन्द्रिय प्रणाली के स्तर पर चल रहा था, अथवा मन के स्तर पर जो सुख-दुःख का खेल चल रहा था, एक बार फिर वही खेल धर्म एवं अध्यात्म के नाम पर आरम्भ होगा। यही तो हो रहा है आज; गुह्य अनुभव, अतीन्द्रिय बोध, कुण्डलिनी जागृत करना, शक्तिपात करना इत्यादि, इत्यादि। *यदि मन साधना को, आध्यात्मिक जिज्ञासा को अर्जन की प्रक्रिया में बदल देता है, तो फिर दुखों का अंत नहीं होगा, जैसे द्वैत के साम्राज्य में अनंत दुःख हैं। तब आप साधना के नाम से अपने जीवन में एक नया द्वैत बना लेते हैं।* ऐसा नहीं है कि भगवान अथवा ईश्वरत्व वहाँ कहीं ऊपर स्वर्ग में है और आप यहाँ पृथ्वी पर हैं। जो वहाँ है वही यहाँ है।

वह आचार्य, वह ऋषि, कैसी निपुणता से बालक नचिकेता को अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही जीवन में लौटने के लिये सम्मत कर रहे हैं। *वे कहते हैं, यह जानने के बदले कि मृत्यु पश्चात् क्या अवशेष रहता है, अपने ही शरीर में शाश्वतता को खोज निकालो।* क्योंकि नचिकेता एक विरल व्यक्ति है, यमराज उसकी आलोचना, उसकी निंदा किये बिना बारम्बार उसे शरीर की पवित्रता, शरीर में समायी जीवन की पवित्रता पर वापिस लाते हैं। यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह; तुम जिसे स्वर्ग में मानते हो, वह तुम्हारे ही शरीर में है। यह भौतिकवाद का पाठ नहीं है, यह ऐन्द्रिय अतिभोग का परामर्श नहीं है; यह अपने जीवन के प्रति एक नया दृष्टिकोण है। यह संकेत है आपमें समाये एकता के तत्त्व, आत्मज्ञान के तत्त्व की ओर, जो किसी व्यक्तित्व के रूप में नहीं परन्तु मौन के रूप में है। वह एकत्व की, बोध की अथवा आनंद की एक मौन लौ के रूप में है।

यदि यह पकड़ में आ गया है, यदि यह पहचाना जा सका है, तो भौतिक एवं आध्यात्मिक जीवन, भौतिक तत्त्व एवं अंतरात्मा, मन एवं शरीर के बीच जो विभाजन बना हुआ है, वह मिट जाता है। कम से कम भारत वर्ष में तो भौतिक जीवन की निंदा करने का बहुत प्रचलन रहा है; यह सब 'माया' है, यह सब भ्रम है इसे छोड़ दो, इससे दूर भाग जाओ, इससे पीछे हट जाओ। यह सब गत ५००० वर्षों में प्रचलित हुआ है। वन संस्कृति में जीने के कर्म से हटना, स्वयं को वंचित करना, अतिभोग करना इत्यादि सब निरर्थक शब्द थे। जो शब्द अर्थ रखते थे, वे थे संयम, सुव्यवस्था एवं समन्वय।*

यज्ञ का वास्तविक अर्थ

उपनिषदों में विधि-विधानों की, यज्ञों के अनुष्ठान इत्यादि की निंदा नहीं की गयी है, केवल कहा गया है कि वह प्रतीकात्मक कर्म हैं। कृपया सचेत रहिये आप उन्हें क्यों कर रहे हैं, यदि आप उन्हें अपने आंतरिक

* *अब आप समझ सकते हैं मुझे उपनिषदों से क्यों प्रेम है। जब आप मुझे उनके विषय में बात करने का अवसर देते हैं, ऋषियों-मुनियों के प्राच्य प्रज्ञान के आन्तरिक सत्त्व को आपके समक्ष रखने का अवसर देते हैं, तो मुझे अपरिमित आनंद होता है।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन के साथ संबन्धित नहीं करते तब वह निरर्थक बन जाते हैं। जब वे आपके अपने आंतरिक जीवन के साथ संबन्धित होते हैं, तो आप अपने अन्दर कुछ प्रज्वलित करने का प्रयास करते हैं, आप उस अन्तर अग्नि में आहुति देते हैं।

मेरे विचार से मुझे यज्ञ अग्नि की अनुरूपता के विषय में बात करनी चाहिये। जब आप यज्ञ करते हैं, बाह्य यज्ञ कर्म करते हैं, तो चावल, तिल, घी इत्यादि अर्पित कर अग्नि को प्रज्वलित करते हैं। आप सरलता देखिये, ऋषि कहते हैं, अर्पित किये गये वे चावल ज्ञान के अंश है, तिल आप की भावनायें हैं, आपकी संवेदनायें हैं, घी आपके जीवन के समस्त अनुभव हैं। अब उन्हें अन्तर के मौन को, उस मौन में समायी अग्नि को अर्पित कर दीजिये।

एक आधुनिक, शिक्षित व्यक्ति को चावलों का ज्ञान के अंश होना, भावनाओं का तिल समान होना इत्यादि संभवत: बहुत बालोचित लगेगा। ऋषियों की अपनी ही शैली थी, उनके पास अभिव्यक्ति की अन्य कोई शैली नहीं थी। जैसे गर्भावस्था की, एक गर्भवती स्त्री द्वारा देख-भाल की उपमा दी गयी थी, वैसे ही यह उपमा है। अन्य उपनिषदों में पक्षियों के जीवन से उपमायें दी गयी हैं। उन उपमाओं में उपनिषदों के ऋषि कहते हैं, अंडे के आवरण को तोड़ दो ताकि उसमें से आत्मन् प्रकट हो सके। *इस उपनिषद् में वे कहते हैं विलयन कर दो, अग्नि में भस्म कर दो, ताकि निम्न की राख में से उच्चतर प्रकट हो सके।* यह सब व्यक्त करने की शैली है। बाह्य क्षेत्र प्रतीकात्मक क्रियाएं एवं गतिविधियाँ समाये है, अन्तर वह क्षेत्र हैं जहाँ मधुभक्षी के आनंद के लिये मधु एकत्रित किया जाता है। सुखों से, संवेदनाओं से, उनकी पारस्परिक क्रियाओं से आत्मन् सत्त्व का निचोड़ ले लेता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्रहवाँ संवाद

हिमावृत हिमालय हममें जीवन की तेजस्विता, जीवन की भव्यता एवं जीवन की पवित्रता का भाव जागृत करते हैं। उपनिषद् हममें जीवन के ईश्वरत्व का, जीवन की पावनता एवं सम्पूर्णता का भाव जागृत करते हैं; पूर्णता ही शुद्धता है। जीने के कर्म में जीवन के प्रत्येक स्तर पर पूर्णता को बनये रखना ही धार्मिकता का सार है। बाह्य विषयों अथवा आंतरिक ऊर्जाओं के बोध में जीवन को खंडित करना अपराध है; पूर्णता को बनाये रखना धर्म है।

समग्रता में साधना

कठोपनिषद् के पहले अध्याय में हमने देखा था कि जीवन एक त्रिविध अग्नि है, उसमें ज्ञान है, आत्म-बोध है, उसमें अविनाशी सत्य है, अनश्वरता है, उसमें ब्रह्मानंद है। ज्ञान, भक्ति, एवं कर्म की त्रिविध अग्नि के जीवन में हम जन्म लेते हैं और उसमें जीते हैं। *वास्तव में प्रत्येक उपनिषद् मनुष्य जाति के लिये संदेश लिये है कि ज्ञान को भक्ति से, भक्ति को कर्म से वियुक्त नहीं करना चाहिये।* दुर्भाग्यवश, वेदों एवं उपनिषदों के व्याख्याकारों एवं समीक्षकों ने त्रिविध अग्नि के तीन पक्षों, ज्ञान, भक्ति एवं कर्म को अलग-अलग कर दिया है। कहते हैं कि अमुक वेद अथवा अमुक उपनिषद् ज्ञान का पाठ देते हैं तथा अमुक कर्मकांड को अथवा भक्ति-कांड को समर्पित हैं। जहाँ तक मेरी समझ पहुँचती है, इस पृथकता का प्राच्य मनुष्य की मानसिकता पर विनाशकारी प्रभाव पड़ा है। प्रेम की ऊर्जा के मूल्य पर, भौतिक जीवन के मूल्य पर सैद्धान्तिक ज्ञान का अनुसरण किया गया है। कुछ लोग कर्म-योग के नाम पर भक्ति-रहित, प्रेम-रहित, ज्ञानरहित कर्म में लगे रहते हैं, कुछ केवल ज्ञान में रत रहते हैं और कुछ केवल भक्ति में।

दूसरे अध्याय में कठोपनिषद त्रिविध अग्नि पर, जीवन की नचिकेता अग्नि पर बल देता है और हमें पूर्णता में साधना करना सिखाता है। स्व-शिक्षा साधना है, एक पूर्ण साधना है, जिसमें आपको ऐन्द्रिय एवं मानसिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के साथ अतादात्म्य करते हुये परम सत्य को समझना है। आपको उस सत्य के प्रति गहरे प्रेम को जागृत करना है। अपने दैनिक जीवन में, अपनी मनोभौतिक संरचना द्वारा सत्य की उस समझ को, प्रेम को, प्रकट करना है। यदि वह समझ एवं बोध ऐन्द्रिय स्तर पर व्यक्त नहीं होता, तो वह मात्र अभिलाषा होगी। उपनिषद् कहता है, यदि सैद्धांतिक ज्ञान अथवा विचार हृदय को शुष्क कर देते हैं और उस समझ में सत्य के प्रति समर्पण की उष्णता नहीं होती, प्रेम की अरुणिमा नहीं होती तो वह साधना नहीं है। *साधना है जीवन की समग्रता में जीने के लिये स्व-शिक्षा, अस्तित्व की पूर्णता को समस्त गतिविधियों में, समस्त स्तरों पर बनाये रखना।* इसीलिये कठोपनिषद् के प्रत्येक श्लोक में आप अनावृत सत्य का, परम सत्य का उल्लेख पायेंगे। सत्य के प्रति एक अविभक्त प्रेम का उल्लेख तथा वह पथ आप पायेंगे, जिसके द्वारा एक जिज्ञासु, एक साधक, सत्य एवं प्रेम के आयाम में जीने के लिये स्व-शिक्षा कर सकता है। इसलिये प्रतीकात्मक भाषा का उपयोग किया गया है, अनुरूपताओं का, उपमाओं का उपयोग किया गया है।

आप और मैं, जो इक्कीसवीं शताब्दी की मनुष्य जाति के बीज हैं, हमें समग्रता में साधना करना सीखना है। हमें ऐसा नहीं कहना है कि हम कर्म-योग का अनुसरण करते हैं, ज्ञान-योग अथवा भक्ति-योग करते हैं। उन्हें अलग-अलग किया जा सकता है क्या ? हमें एक साम्प्रदायिक दृष्टि, एक आंशिक दृष्टिकोण नहीं रखना है, आंतरिक पूर्णता एवं बाह्य पूर्णता में विखंडन नहीं करना है। उपनिषदों का एक संदेश, उनकी एक उद्घोषणा है कि पूर्णता को प्राप्त हो कर उस पूर्णता के अनुभव को बनाये रखो। इसलिये कठोपनिषद् कहता है, विविधता के ताने-बाने में एकत्व के सूत्र का बोध करो।

कल दोपहर अध्ययन किये गये श्लोक का उल्लेख किया जा रहा है। *मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानाऽस्ति किंचन।* एकत्व को छोड़ कोई निरपेक्ष अनेकता अथवा विविधता नहीं है। इसलिये साधना का अर्थ है विविधता की बनावट में एकता के सूत्र का अनुभव करना, अनेकता की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मोहकता में एकता के सार का बोध करना। यह बोध करना है कि जिसे भौतिक अथवा भौतिक संसार कहते हैं, वह अव्यक्त आध्यात्मिक जगत् की अभिव्यक्ति है। आध्यात्मिक जगत् एवं भौतिक जीवन को अलग नहीं किया जा सकता। साधना द्वारा यह बोध करना है कि जो ब्रह्मांड में है, वही इस पिंड में भी है। ईश्वरत्व यहीं अपने अस्तित्व में है, वह हम से अलग नहीं है, हमसे दूर नहीं है। हमें यह अनुभव करना है कि स्वर्ग एवं नरक मनुष्य के मन में हैं, वह चाहे तो एक आनंदधाम की रचना कर सकता है अथवा अभी, दैनिक जीवन में नरक बना सकता है। ऐसी दृष्टि सम्पूर्णता की दृष्टि है। मृत्योः स मृत्युं गच्छति; उपनिषद् कहता है कि सम्पूर्णता के बोध के आधार बिना, जो अनेकता को एकता से, विविधता को एकत्व से, चेतना के प्रकाश को भौतिक अभिव्यक्ति से अलग करता है, वह मृत्यु से मृत्यु की ओर जाता है। कल अध्ययन किये हुये अन्तिम श्लोक का यह सार है।

पृथकता का भान एक भ्रम

यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति।

तं देवाः सर्वे अर्पितास्तदु नात्येति कश्चन। एतद्वै तत्।

उपनिषद् जो रूपक दे रहा है, उसका गौरव, उसकी उत्कर्षता तो देखिये। किस निपुणता से वह हमें अपने ही शरीर एवं दैनिक जीवन में साधना के विषय पर पुनः ले आता है। यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं; सूर्य आकाश की शून्यता में उदित हो उसी आकाश में अस्त होता है। यह सूर्य वैश्विक त्रिविध अग्नि का प्रतीक है, वह वैश्विक प्राण का प्रतीक है, वह ब्रह्मन् का प्रतीक है। इस सूर्य की, आदित्य की ज्वाला के चारों ओर सम्पूर्ण जीवन संचलित रहता है। दिन का प्रकाश एवं रात्रि का अन्धकार सूर्य से संबन्धित हैं। दिन के प्रकाश में सक्रियता का प्रकटन तथा रात्रि में निष्क्रियता में विलीन होना सूर्य में समाविष्ट प्राणों से संबन्धित हैं। वैसे ही मनुष्य शरीर में, वे प्राण जिनके साथ बालक का जन्म होता है, वे आपके अस्तित्व के सूर्य हैं। जन्म लेना वास्तव में मनुष्य देह में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राण-तत्त्व का प्रकटन है। जैसे वह सूर्य प्राण हैं, वैसे ही आपके शरीर में जीवन के प्रकाश को, सूर्य की, प्राणों की, पिंड में होने वाले सूर्य की अपनी ही सत्ता में आवश्यकता है। आकाश का सूर्य समस्त संचलन को जागृत करता है, जिससे सम्पूर्ण जगत् क्रियाशील जान पड़ता है। वैसे ही बालक के शरीर में प्राण संचलन को जन्म देते हैं। यदि उसमें प्राण न हों, यदि प्राणों का हलन-चलन पैदा न किया जा सकता हो, तो बालक को मृत घोषित किया जाता है। मनुष्य शरीर में, मनुष्य अस्तित्व के आकाश में प्राण सूर्य समान हैं। समस्त ऊर्जायें, जैसे दृष्टि, वाणी, श्रवण करने की, स्पर्श लेने की, गंध लेने की क्रिया, मनुष्य शरीर के आकाश रूपी सूर्य से संबन्धित है, जैसे रथ के पहिये के अर पहिये से जुड़े रहते हैं। यदि शरीर में प्राण न हों तो दृष्टि, श्रवण, पाचन इत्यादि की क्रिया नहीं हो सकती।

यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति। नचिकेता, कृपया देखो कि जीवन के प्रकाश के परे कुछ नहीं है। जीवन का प्रकाश, उष्णता का प्रकाश, चेतना का प्रकाश ब्रह्मन् है। इसलिये शरीर एवं ब्रह्मांड में वे ब्रह्मन् के प्रतीक हैं और उन्हें ऐसे ही देखना चाहिये। यत: भूत: पश्यति अर्थात् वह जो विषयों को वे जैसे हैं वैसा ही देखता है। संभवत: आपने ध्यान दिया होगा कि बौद्ध ग्रन्थों में विषयों को, वे जैसे हैं उन्हें वैसे ही देखने पर बल दिया जाता है। इस संज्ञान को वे शुद्ध दृष्टि कहते हैं। विषयों को वैसे देखना जैसे वे हैं; जीवन को अविभाजित सम्पूर्णता में, एकत्व एवं विविधत्व के सम्मिश्रण में देखना। *अनेकता एवं एकता को जीवन की अखंडता में एक साथ सम्मिश्रित देख पाना अमृतत्व का द्वार है।*

साधारणत: लोग ऐसे अनुभव में जीते हैं, मानो उनका पृथक व्यक्तित्व हो; यदि शेष जीवऩ से विभक्त नहीं तो पृथक। उन्हें उस पृथकता को बनाये रखना होता है। मन में यह एक ग्रन्थि होती है। फिर विषयों को अनेकता में देखना होता है और उन्हें भी पृथक किया जाता है। यह अबोधता, यह अशुद्ध बोध, पीड़ा का, दु:ख का द्वार है। यह दु:ख भोगने का मार्ग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, जिसका इन्द्रियों, तथा मन को बहलाने के नाम से परिष्कार किया जाता है। पृथकता के भान में तथा उसके तनाव में निर्गत, उस पृथकता के अहसास को उपलब्धियों, अधिकरण एवं अपनाने की क्रिया में भुलाने की इच्छा, दुःख का, पीड़ा का, मृत्यु एवं नरकलोक का द्वार है। एकता का, एकत्व का बोध, यह बोध कि अन्तर एवं बाहर एक ही प्रकाश है, यह अमृतत्व का द्वार है।

'नानाऽस्ति किंचन'; अनेकता एवं पृथकता एक भ्रम है। यदि आप को लगे कि उपनिषद् बहुत काव्यात्मक हो रहा है, तो आप कृपया भौतिक वैज्ञानिकों को पूछिये वे क्या कह रहे हैं । बीसवीं शताब्दी के अन्त में, भौतिक वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि पृथकता दृष्टि की कल्पना है, वह दृष्टि का भ्रम है। अंतरिक्ष की शून्यता में गुह्य ऊर्जायें समस्त विषयों को एक साथ जोड़े रखती हैं । वे वैसे ही संगठित रखी जाती हैं, जैसे सूर्य आस-पास के समस्त ग्रहों को संगठित रखता है। जैसे आपके शरीर में प्राण सभी मनोभौतिक ऊर्जाओं को एक साथ रखे हुये, उन्हें अपने-अपने क्षेत्र में सम्पूर्ण स्वायतत्ता से कार्य करने देते हैं। वह स्वायत्त तंत्र निजी क्षेत्रों में क्रियाशील रहते हैं। आपका शरीर उसके अन्तर की कितनी ही प्रणालियों का मिश्रण है। जीवन की प्रत्येक जीव इकाई भी अपने आपमें एक संसार है, उसका अपना स्थान है, उसकी अपनी ऊर्जायें हैं। कृपया देखिये, शरीर की प्रत्येक जीव इकाई एक स्वायत्त तंत्र है, जो एक दूसरे के साथ मिल सहयोग करती हैं तथा समन्वय से कार्य करती हैं। उनका समन्वय, उनकी सुव्यवस्था, उसका निर्माण करती है जिसे आप एक व्यक्ति कहते हैं ।

आपके ही शरीर में एकता एवं अनेकता है। वहाँ चेतना का प्रकाश है, वहाँ भावनाओं का अंश है, प्रेम की, स्नेह की, संबन्धों की उष्णता है। उदाहरणतः, इन्द्रियां वे अश्व हैं, जो सम्पर्क करना चाहती हैं और आपको गतिशील होने में सहायक होती हैं। इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया एक साथ कितने ही स्वायत्त तंत्रों में सम्मिश्रित हैं और फिर भी वहाँ समन्वय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एवं सुव्यवस्था रहती है। यदि हम अपनी ही मूर्खता अथवा विचारहीनता से शारीरिक एवं मानसिक स्तर पर अव्यवस्था न बना लें, तो मनुष्य शरीर एवं जीवन एकता एवं अनेकता के सम्मिश्रण की अद्भुत अभिव्यक्ति है।

यदि असीम ब्रह्मांड का, वैश्विक जीवन का बोध बहुत कठिन जान पड़ता है, तो चलिये अपनी ओर ध्यान केन्द्रित करें। उन्नीसवीं शताब्दी में मनोविज्ञान इत्यादि शरीर एवं मन को अलग-अलग करते थे, अब उन्होंने खोज निकाला है कि प्रत्येक रोग की उत्पत्ति मन में है। किसी न किसी विषय के साथ असमायोजन, मानसिक असमायोजन, शरीर में तंत्रीय अथवा रासायनिक विकार का कारण होता है, जिसे रोग कहा जाता है। वह एक अविभाजित सम्पूर्णता में एक साथ सम्मिश्रित होते हैं। यदि आप मन के निर्देशों पर चलते हैं, उसकी मौज, इच्छाओं एवं धुन का अनुसरण इन्द्रियों की, शरीर की उपेक्षा से करते हैं तो आप दु:ख भोगते हैं। यदि आप बुद्धि एवं विवेक की उपेक्षा कर शरीर की माँग पर अतिभोग करते हैं, तब भी दु:ख भोगना पड़ता है। उनका पृथक्करण नहीं किया जा सकता। विखंडन पाप है, वह शरीर एवं मन की अस्वस्थता का मूल कारण है। *उपनिषद् कहता है - मृत्यो: स मृत्युं। जो अनेकता को एकता से, अभी इस क्षण को उधर, ऊपर के ब्रह्मांड से पृथक करता है, वह एक मृत्यु से दूसरी मृत्यु को निरंतर जाता है।* जो भौतिक को अध्यात्म से तथा व्यक्ति को ब्रह्मांड से पृथक करता है, वह वेदना का, दु:ख एवं मृत्यु के मार्ग का अनुसरण करता है।*

पूर्णता में जीने की वैकल्पिक शैली

मेरे मित्रों, कुछ क्षणों के लिये अब उपनिषद् नहीं परन्तु आपकी मित्र विमला आपके साथ बात करना चाहती हैं। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि आज के परमाणु विज्ञान के युग में केवल प्रौद्योगिकी नहीं अपितु विज्ञान भी बहुत तीव्रता से उन्नति कर रहा है। किसी कारण से धार्मिक

---

* *मूल स्रोत अति सौन्दर्यपूर्ण है, न केवल काव्यात्मक शैली की दृष्टि से परन्तु उस संदेश की भी दृष्टि से, जिसे वे संप्रेषित करना चाहते हैं।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोग अथवा आध्यात्मिक जिज्ञासु कहे जाने वाले लोग, विज्ञान की उन्नति की समगति से नहीं चल पाये हैं। जो भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, अनुवांशिक अभियांत्रिकी अथवा स्वाथ्य चिकित्सा विज्ञान इत्यादि में खोजा गया है, वे उसके साथ नहीं चल पाये हैं। इन समस्त विज्ञान की धाराओं में परिवर्तन आ रहे हैं, उनमें अन्वेषण किये जा रहे हैं, जीने के वैकल्पिक ढंग, वैकल्पिक संस्कृति खोजी जा रही है। वैकल्पिक चिकित्सा विज्ञान, वैकल्पिक आहार नियमन, जीने की पूर्णत: वैकल्पिक शैली खोजी जा रही है। *मनुष्य चेतना में जीवन की सम्पूर्णता के संदेश एवं समग्रता में जीने की शैली के लिये एक प्रकार का मन्थन चल रहा है। यह आध्यत्मिकता का सार है।*

बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में रक्तपात, हिंसा, अस्थिरता, अव्यवस्था एवं अराजकता में, मैं जीवन के नवीन संयोगात्मक संदेश, जीवन की समग्रता के दर्शन एवं समग्रता में जीने की शैली का जन्म होता देख रही हूँ; मैं उसका आगमन देख रही हूँ। कुछ व्यक्ति इसका अनुभव कर रहे हैं, यहाँ-वहाँ कुछ विरल समूह उसके प्रयोग में लगे हैं। उस दर्शन की समग्रता की शाब्दिक अभिव्यक्ति, जीने की एक शैली का निरूपण क्षितिज में हैं। आज की पीड़ा एवं असह्य वेदना उसीके लिये है। मनुष्य जाति विखंडित, आंशिक, विभाजित जीवन शैलियों एवं विभाजक विचार धाराओं, समुदायों, रूढ़िवादों, मतों, राज्यों, राष्ट्रों, जातियों इत्यादि के अलगाव की कल्पनाओं से मुक्त हो रही है। वे सब पीड़ा का, वेदना एवं दु:ख भोगने का, मृत्यु का भाग था। मनुष्य जाति ने जान लिया है कहाँ उससे भूल हुयी थी, कहाँ वह पथ-भ्रष्ट हुयी थी।

यहाँ, आप और मैं जो अध्ययन कर रहे हैं, वह कोई मानसिक बौद्धिक मनोरंजन अथवा उत्तेजना नहीं है। मैं आपके साथ वह खोजने के प्रयास में हूँ, जो कल होने जा रहा है। यदि हम स्वयं को नये युग के, सुनहरे युग के संयोजन के दूत के रूप में प्रशिक्षित नहीं कर रहे, तो कम से कम हमारे जीवन नयी मनुष्य जाति के बीज तो बन सकते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं। सन १८६९ में, जब मैडम ब्लाव्हाटस्की ने, कैलिफोर्निया की ओहाय घाटी में, एक नयी मनुष्य जाति के जन्म की उद्घोषणा की थी, तो मेरे विचार से वे उस विषय पर बहुत गलत नहीं थीं; उनका प्रत्यक्ष बोध सत्य था। इसीलिये ब्रह्मविद्या, थिऑसफी, विश्व बंधुत्व का थिऑसॉफिकल संघ, उनका प्रत्यक्ष बोध था, उनकी संकल्पना थी। ब्रह्मविद्या के दिन आ रहे हैं, यह ब्रह्मविद्या एक व्यक्तिगत उपलब्धि के रूप में नहीं, एक सामाजिक शक्ति, एक वित्तीय शक्ति के रूप में होगी। इस विषयांतर के लिये आपसे क्षमा माँगते हुये, अब हम ग्रन्थ के अध्ययन की ओर लौटते हैं।

जीवन की समग्रता में जन्म एवं मरण सम्मिश्रित

यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति ।
तं देवाः सर्वे अर्पितास्तदु नात्येति कश्चन।।

ब्रह्मांड की समस्त ऊर्जायें सूर्य के साथ, जीवन के उस दिव्य प्रकाश एवं चेतना के प्रतीक के साथ संबन्धित हैं, वे उसे समर्पित हैं । देव शब्द का उपयोग विभिन्न ऊर्जाओं के लिये, वाक् अग्नि, श्रुति इत्यादि के लिये किया गया है। वाक् अग्नि, वाणी, अग्नि की वह ज्वाला सम्पूर्ण श्वास प्रणाली में समाविष्ट है। श्रुति वह देवी, वह ऊर्जा है, जो आपको कर्णों द्वारा श्रवण करने का सामर्थ्य देती है*। जैसे ही प्राण शरीर का त्याग करते हैं, ये समस्त शक्तियां भी शरीर का त्याग कर देतीं हैं। ये समस्त शक्तियाँ सूर्य का अनुसरण करती हैं। सूर्य के ढलने पर उसकी किरणें उसीमें समा जाती हैं तथा सूर्य भी आकाश की शून्यता में समा जाता है। वैसे ही शरीर की मृत्यु पर ये समस्त देवियाँ, ये समस्त शक्तियां प्राणों का अनुसरण करती हैं। प्राणों के बिना उन्हें शरीर में रहना नहीं सुहाता।

शरीर की मृत्यु पर प्राण कहाँ जाते हैं ? जैसे सूर्य अंतरिक्ष की शून्यता में उदित होता है और अंतरिक्ष की ही शून्यता में अस्त होता है, प्राण अंतरिक्ष से प्रकट हो उसीमें पुनः समा जाते हैं। आपका शरीर, वह वाहन

** यह एक भाषा है, लोग भले उनकी प्रतिमायें बना लें। वह एक भिन्न विषय है।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो उन्हें समाये हुआ था, अब उनके योग्य नहीं रहता। इसलिये शरीर के एक अथवा अन्य छिद्रों-नेत्र, नाक, मुँह इत्यादि-से निकल कर, प्राण अंतरिक्ष की शून्यता में मिल जाते हैं। वे जहाँ से प्रकट हुये थे शान्ति से वे पुन: उसमें घुल-मिल जाते हैं; वे मरते नहीं। जैसे अंतरिक्ष के अन्धकार में अस्त होने पर सूर्य नहीं मरता, वैसे ही प्राण नहीं मरते। नचिकेता, ऐसी कल्पना नहीं करना कि मृत्यु समान कोई विषय है, जिसके पश्चात् कुछ अवशेष रहता है। जीवन एवं जीने की समग्रता की प्रक्रिया में मरण एवं जन्म साथ-साथ हैं।

प्राण अंतरिक्ष में पुन: मिल जाते हैं, जहाँ से वे प्रकट हुये थे। वे नष्ट नहीं होते। उपनिषदों को नष्ट होने का सिद्धान्त स्वीकार नहीं है। रूप का परिवर्तन, ऊर्जाओं का रूपांतरण, प्रकटन, पुन: विलयन इत्यादि, उनकी भाषा है; न तो वह शैतान के पृथक अस्तित्व को पहचानते हैं,न ही वे मृत्यु के एक पृथक अस्तित्व का स्वीकार करते हैं।

साधना का अर्थ

यदि यह पर्याप्त रूप से स्पष्ट हो गया हो, तो चलिये आगे बढ़ते हैं। हम समग्रता में साधना की, समग्रता में स्व-शिक्षा की बात कर रहे हैं। कृपया यह जान लीजिये कि साधना कुछ नया प्राप्त करने के लिये नहीं है। वह कुछ ऐसा पाने के लिये नहीं है,जो आप के शरीर में विद्यमान नहीं है। वह प्राप्ति की क्रिया कदापि ही नहीं है। *आपको मुक्ति, मोक्ष, निर्वाण, कैवल्य इत्यादि प्राप्त नहीं करना है। वह तो है ही वहाँ, वह तो आपका स्वभाव है।* आपको उसका विस्मरण हो गया है, आपका उससे उन्मूलन हो गया है। अपनी स्व-शिक्षा कर पुन: अपने मूल तक जाना है; इतना ही करना है आपको। साधना शब्द का यह अर्थ है। दुर्भाग्य से लोगों ने इसका गलत अर्थ लगाया है और फिर बनाये हैं विशेष मार्ग, एकमात्र हठ-योग के, राज-योग के, कर्म-योग के मार्ग। उन्होंने सिद्धियाँ प्राप्त करने के, मुक्ति पाने के विशेष मार्ग बनाये हैं। साधना के नाम से प्राप्ति की समस्त काल्पनिक गतिविधियां की जाती हैं। साधना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन सब के लिये नहीं है, साधना का यह अर्थ नहीं है। 'प्रत्यवाय विक्षेप निवारणार्थे साधना न तु प्राप्यर्थे।' साधना स्वयं से अलग कुछ भी पाने के लिये नहीं है, क्योंकि सर्वस्व आपमें ही है। आप ही मनुष्य देह में संघनित सर्वस्व हैं। *साधना तो असंतुलन के दोषों के निराकरण के लिये है, उनको धो डालने के लिये है। अशुद्धियाँ, असंतुलन, अव्यवस्था आपके मार्ग की बाधायें हैं। उन्हें हटा दीजिये।*

अब हम एक कठिन श्लोक पर पहुँचे हैं। हम पुनः ऊर्जा के रूपांतरण के, ऐल्किमिक प्रक्रिया के संदर्भ में लौटते हैं, जिसका अध्ययन हमने पहले अध्याय में किया था। उसी विषय को हम एक भिन्न दृष्टि से देखेंगे। जब समग्रता की साधना पूर्ण होती है तो शरीर के साथ तदात्मीकरण का, मैं शरीर हूँ का भान छूट जाता है। तब तादात्म्य, अविद्या, अस्मिता पूर्णतः मिट जाती है। तब भौतिक काया, बाह्य एवं आंतरिक इन्द्रियाँ जीवन को व्यक्त करने के साधन मात्र होते हैं, न कि विषयों के पीछे जाने के। हम पहले ही देख चुके हैं कि अनेकता का सार एकता है, विविधता का सत्त्व एकत्व है। उस सब का स्मरण कर कृपया मेरे साथ चलिये।

जब गलत तदात्मीकरण का, अविद्या का निराकरण हो जाता है, तब राग, द्वेष, आकर्षण एवं प्रतिकर्षण आपको कष्ट नहीं देते। क्योंकि अब आपको विषयों के पीछे जाने की इच्छा नहीं है। आप विषयों की ओर अपने भरण-पोषण के लिये, जीवित रहने के लिये, स्वास्थ्य के लिये जाते हैं परन्तु वे विषय आपकी इच्छा के विषय नहीं होते। आपकी इच्छा का अब एक ही विषय होता है, और वह है पूर्ण सत्य, परम सत्य। इच्छा है जीवन के मूल में लौट जाने की, जीवन के स्रोत में लौटने की। इच्छा अब उस ओर उन्मुख हो गयी है। अविद्या, अस्मिता के निराकरण के साथ राग, द्वेष, अभिनिवेश लुप्त हो जाते हैं।

अब आता है मानसिक पहलू। हमारी स्मृति में विचारों के, भावनाओं के, सिद्धान्तों के संग्रहालय रहते हैं और रहती हैं विचारों एवं संकल्पनाओं की प्रतिमायें एवं कल्पनायें। हम मृत विचारों के संग्रहालयों में रहते हैं;

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वे संग्रहण, जिस ने अहम् का, एक व्यक्तित्व का निर्माण किया है। हम उसकी आराधना करते हैं। अब उस स्तर पर भी अतदात्मीकरण होता है। ऐसा कहिये, सत्य का बोध होता है कि वह चेतना का दिव्य प्रकाश ही है, आत्मा ही है जो हमें विचार करने का सामर्थ्य देती है। वह आत्मा की शक्ति है, जो बुद्धि एवं मन से हो कर, संवेदनाओं को संगठित एवं व्यवस्थित कर उनका अर्थ लगाने में हमारी सहायक होती है। मानसिक स्तर पर कोई अस्तित्व नहीं होता; अस्तित्व एक ही है, वह है आत्मा का। वह ही परम विषय है, एकमात्र सम्पूर्णता एवं एकमात्र व्यक्तिनिष्ठता है। फिर ज्ञान, अनुभव इत्यादि के साथ अतदात्मीकरण होता है।

आधुनिक मनोविज्ञान के स्तर पर जिसका आप मस्तिष्कीय व्यवहार पद्धति कह कर वर्णन करते हैं, उससे अतदात्मीकरण होता है। विचार, भावनायें, ज्ञान इत्यादि, जिनके द्वारा आप प्रतिबन्धित रहते हैं, उन्हें प्रतिबन्धन, जातीय प्रतिबन्धन, जातीय अचेतना, अवचेतना इत्यादि कहा जाता हैं। अब इस स्तर पर अतदात्मीकरण होता है। आवश्यकता पड़ने पर विचार शक्ति क्रियाशील होती है परन्तु मानसिक स्तर पर कोई आसक्ति, आकर्षण अथवा प्रतिकर्षण नहीं होता। वहाँ कोई अहंकार एवं गर्व नहीं होता, वहाँ प्रतिमायें गढ़ने का व्यवसाय हर पल नहीं चलता। 'मैं यह हूँ', 'मैं वह हूँ' , 'मुझे यह चाहिये' और 'वह नहीं चाहिये', 'यह ऐसा ही होना चाहिये' इत्यदि समस्त व्यक्तिगत उपकरण जो मिथ्या आत्मभाव द्वारा रचे जाते हैं, वे वहाँ नहीं होते। मैं इन्हें मिथ्या आत्मभाव कहती हूँ, मिथ्या आत्मनिष्ठा कहती हूँ, क्योंकि वह कोई तत्त्व नहीं है। वह मात्र परम तत्त्व के प्रकाश को प्रतिबिम्बित करता है। जब वह अतदात्मीकरण भी हो जाता है, तब मानसिक प्रक्रियाओं, मस्तिष्कीय प्रक्रियाओं के साथ जुड़ा 'मैं' एवं 'मेरा पन' जाता रहता है। तब इच्छा का एक अन्य क्षेत्र, विचारों के, सिद्धान्तवाद के, व्यवहार के प्रतिमानों के पीछे जाने का क्षेत्र भी जाता रहता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवधान की अग्नि में मनोभौतिक ऊर्जाओं का रूपांतरण

साधना है गलत एकात्मीकरणों का विलयन। समस्त मिथ्या तदात्मीकरण ध्यान की शून्यता के आकाश में, हृदय की गुफ़ा के अन्धकार में, ध्यान के अन्धेरे कक्ष में विलीन हो जाते हैं। मैं यहाँ भौतिक कक्ष की बात नहीं कर रही हूँ, मैं हृदय के आंतरिक आकाश की बात कर रही हूँ; काव्यात्मक, प्रतीकात्मक शैली में कह रही हूँ कि मौन एवं विश्रांति के आन्तरिक आकाश में सब मिथ्या तदात्मीकरण पिघल जाते हैं। इस एल्किमी को देखिये, हम मनुष्य शरीर में ऐल्किमी के मार्ग की बात कर रहे हैं।

ज्ञानेन्द्रियों की अपनी क्रिया पद्धति होती है, विचारों एवं भावनाओं की ऊर्जा का अपना वेग होता है। वे ऊर्जायें, अतदात्मीकरण द्वारा, मौन एवं विश्रांति की शून्यता में लायी जाती हैं और वहाँ बोध की अग्नि द्वारा पिघला दी जाती हैं। यत: भूत: दर्शनम्- विषयों को वे जैसे हैं, उन्हें वैसा ही देखने से उनकी पकड़, उनका दबाव, उनका तनाव छूट जाता है। जब वे छूटते हैं, केवल तब आंतरिक आकाश के अन्धकार में, आपके अस्तित्व के पवित्र गर्भ-ग्रह में वे ऊर्जायें, वे मनोभौतिक ऊर्जायें अवधान की अग्नि में पिघल कर रूपांतरित हो जाती हैं। एक नये जीवन का जन्म होता है, प्रत्यक्ष बोध द्वारा विलयन होता है। बोध की अग्नि मनोभौतिक ऊर्जाओं को जला कर विलीन कर देती है। उपनिषद् का यह कथन बहुत प्रामाणिक है। इस आंतरिक ऐल्किमी की क्रिया को तीन श्लोक समर्पित हैं।

आपने देखा है बाह्य पदार्थों में समायी ऊर्जाओं को कैसे जलाया जाता है। यह एक आंतरिक प्रक्रिया है। इसलिये सिद्धों एवं योगियों को ऐल्किमिस्ट कहा जाता था। कुछ भी नष्ट नहीं होता, विलयन की प्रक्रिया द्रवित होना है, एक नये जन्म की तैयारी है। *विलयन की प्रक्रिया गलत तादात्म्य की मृत्यु है; वह अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश की मृत्यु है।* इससे रिक्तता नहीं होती। लोग कहते हैं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदि अहम् क्रियाशील नहीं होगा, यदि 'मैं' और 'मेरा' वहाँ नहीं होगा, तो क्या होगा ? उन्हें लगता है एक रिक्तता आ जायेगी। जीवन में कोई रिक्तता है ही नहीं; एक शून्यता है, जो जीवन से भरी है। वह खालीपन नहीं है, वह रिक्तता नहीं है।

जब विलयन की रासायनिक प्रक्रिया के सम्पूर्ण होने पर नव जन्म होता है। जब इच्छाओं की पकड़ का, उन ऊर्जाओं का जिनका विचारहीनता से दुरूपयोग किया गया था, जिनके साथ दुर्व्यवहार किया गया था, जब उनके विलयन की प्रक्रिया सम्पूर्ण होती है, तब मौन एवं अंतरिक्ष के अन्धकार में एक नव जीवन का जन्म होता है। आप पुनः जन्म लेते हैं। अवधान की उस अमर लौ का जन्म होता है, जो आपके शरीर के भौतिक सूर्य-प्राण तत्त्व-से वरिष्ठ है। कृपया ध्यान दीजिये, क्योंकि भौतिक प्राण-भौतिक सूर्य-चेतना के मूल प्रकाश के प्रतीक हैं, वे ईश्वरत्व के द्योतक हैं। अब अवधान की दिव्य लौ का, जो मनुष्य के अतीत से असंबन्धित है, जो मनुष्य ज्ञान, विचार, मस्तिष्क, देश-काल से असंबन्धित है, जो जीवन के अस्तित्व का सार है, जो ब्रह्मांड में, सर्वस्व में विद्यामान है, उस लौ का आपके हृदय में जन्म होता है। *नचिकेता, उसके पार कुछ नहीं है, तुम मुझसे पूछ रहे हो भौतिक मृत्यु पश्चात्, उसके आगे परलोक में क्या सतत रहता है ? वह परलोक तुम्हारे अन्तर में है। मृत्यु से परे जाना इन्द्रियों एवं मन से परे जाना है परन्तु वह पार जाना तुम्हारे ही अन्तर में होता है।* वह ईश तत्त्व जो संभाव्य था, जो उस आकाश की शून्यता में गुह्य था, अब वह स्वयं को प्रकट करता है।

ज्ञान, भक्ति एवं कर्म का सम्मिश्रण

क्या आप उपासना, भक्ति अथवा समर्पण पद्धति द्वारा दिया गया वर्णन देख रहे हैं। उदाहरणतः आप जो सूर्यनमस्कार करते हैं, संभवतः वे इस मंत्र से परिचित हों - ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती नारायणः सरसिजासन संनिविष्टः। केयूरवान् मकरकुण्डलवान किरीटी हारी हिरण्मयवपुः धृतशंखचक्रः॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूर्यनमस्कार करते समय, सर्व प्रथम इस मंत्र का उच्चारण किया जाता है। एक भक्त, एक प्रेमी, काव्यात्मक शैली में कहता है- सवितमंडलमध्यवर्ती नारायणः। सूर्य के अन्दर, उस पूर्ण गोलाकार प्रतीक में, सूर्य के मध्य में उसका नारायण है। वह उस विष्णु को, नारायण को संबोधित करना चाहता है। विचारों का अमूर्तीकरण उसे संतुष्ट नहीं करता, वह उसे एक पूर्ति का भान नहीं देता। *भक्ति से वियुक्त ज्ञान तथा कर्म से वियुक्त भक्ति पूर्णता नहीं प्रदान करती। जब तीनों एक साथ मिले रहते हैं, तब आपके अस्तित्व की समग्रता में एक पूर्णता का भान आता है।* सम्पूर्णता को किसी एक भाग अथवा अंश द्वारा तृप्त नहीं किया जा सकता, एक भाग कभी पूर्णता नहीं हो सकता। इसलिये एक भक्त कहता है, सूर्य में मेरा नारायण है, उसके हाथ में वह चक्र, धर्म का चक्र है तथा धर्म के सार की उद्‌घोषणा करता हुआ एक शंख है। ये सब सूर्य में देखा जा रहा है, उसका कोई भौतिक अस्तित्व नहीं है। आप जिन सात चक्रों की चर्चा करते हैं, शरीर रचना के संदर्भ में कोई चिकित्सक वहाँ कोई चक्र नहीं देख पायेगा। वह तो एक दृष्टिकोण है, वह एक बोध है, एक ऐन्द्रिय पद्धति का बोध नहीं एक मानसिक पद्धति का बोध नहीं, अपितु एक भिन्न शैली का बोध है।

ऐल्किमी की प्रक्रिया में अब ऊर्जाओं का विलयन हो गया है। जहाँ इच्छाओं की पकड़ ने उन्हें जटिल बना रखा था, चेतना के प्रकाश को लिये वे सदैव इन्द्रियों के, ज्ञानेन्द्रियों के दसों द्वारों से विषयों की ओर बाह्यगामी रहती थीं, अब उनका विलयन हो गया है। शुद्ध बोध द्वारा एकता-अनेकता के, आध्यात्मिक एवं भौतिक के एक साथ होने के बोध से, उस बोध की उष्णता से अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष अब पूर्णतः विलीन हो गये हैं। केवल जब ऐल्किमिक प्रक्रिया द्वारा मिथ्या धारणाओं, मिथ्या तदात्मीकरणों का विलयन सम्पूर्ण होता है, आपके अस्तित्व के आकाश में तब जीवन की लौ का प्रकटन होता है।

आज शाम हम जिस रहस्यपूर्ण भाग का अध्ययन करने जा रहे हैं, यह उसकी नींव रखना है। क्योंकि आने वाले श्लोक में उस लौ को पुरुष

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहा गया है, जीवन के प्रकाश की उस लौ को पुरुष कहा गया है। *अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति ।* आप के अस्तित्व के आकाश में, आपके अस्तित्व के मध्य बिन्दु में, हाथ के अंगूठे समान पुरुष आपके ध्यान के अन्धकार में जागृत होता है। वहाँ जहाँ एकांत में, विश्रांति एवं मौन के पवित्र एकांत में, जहाँ कोई अन्यमनस्कता नहीं है, वहाँ निःशब्द, जीवन की एक लौ, जीवन की एक अभिव्यक्ति, अंगूठे परिमाण जीवन का प्रकाश स्वयं को प्रकट करता है।

आगामी सत्र में हम देखेंगे कि एक अंगूठे परिमाण लौ का क्या अर्थ है ? उसका क्या अर्थ है ? अस्तित्व का वह मध्य बिन्दु कहाँ है ? क्या वह शिरोशिखर है ? क्या वह भ्रू-मध्य है ? क्या वह हृदय में है ? जिसे आप माँस का एक टुकड़ा कहते हैं, क्या वह उसमें है ? जिसकी चर्चा यह उपनिषद् कर रहा है, वह मध्य-बिन्दु कहाँ है ? उस अङ्गुष्ठमात्र पुरुष से उपनिषद् का क्या अर्थ है ? उसके लिये हमें प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। तीन श्लोक इस विषय को समर्पित हैं, उनका अध्ययन कर हम दूसरे अध्याय की पहली वल्ली सम्पूर्ण करेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अठारहवाँ संवाद

यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति ।
एवं धर्मान् पृथक् पश्यंस्तानेवानुविधावति ॥

जब किसी पर्वत पर वर्षा होती है, तो जल समस्त दिशाओं में बह निकलता है। वैसे ही चेतना का, परम प्रज्ञा का दिव्य प्रकाश, जो ब्रह्मांड के अस्तित्व का सार है, जीवन का मधु है, वह हम पर बरसता है परन्तु वह बह जाता है । जैसे पर्वत शिखर से जल समस्त दिशाओं में बह जाता है, वैसे ही ऐन्द्रिय वासनाओं की तुष्टि के लिये वह चेतना, वह प्रज्ञा, बाह्य एवं आंतरिक इन्द्रियों से व्यर्थ बह जाती है ।

ईश्वरीय शक्ति का मनुष्य चेतना में प्रवेश

योग आचार्यों से मैं वह स्मरण करने का अनुरोध करूँगी, जो हमने एक साथ भगवत्गीता में पढ़ा था- 'ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्व प्राहुरव्ययम्' । ऊर्ध्वमूल अर्थात् जिस की जड़ें ऊपर आकाश में हैं। जीवन का वृक्ष, विशेषतः मनुष्य जीवन का वृक्ष औंधा है । इस पृथ्वी पर हम जो वृक्ष देखते हैं, उनकी जड़ें नीचे पृथ्वी में होती हैं, परन्तु यह मनुष्य जीवन, जो चेतना का वृक्ष है, उस की जड़ें ऊपर आकाश की शून्यता में हैं । आत्मन्: आकाशः संभूतः । ब्रह्मन् का प्रथम प्रकटन आकाश है, इसलिये हमारे जीवन का मूल आकाश में है । वह परम प्रज्ञा, जो देश-काल द्वारा सीमित नहीं है, आकाश की वर्षा समान वह हम पर सर्वदा बौछार करती है । *वह परम प्रज्ञा मूलतः सिर से प्रवेश करती है और सिर के अगले भाग में, आंखों में, पीछे मेरुदंड में, कंठ के मध्य भाग, छोटी जिह्वा के पीछे इत्यादि से प्रवेश करती है ।* बहुत विस्तार से वर्णन दिया गया है, कैसे वह अप्रतिबन्धित चेतना, हमारे जीवन की मूल ऊर्जा, प्रत्येक क्षण हमारे रोम-रोम में व्याप्त होने का, हममें प्रवेश कर हमारे अस्तित्व को ओत-प्रोत करने का प्रयास करती है । जिसे ऊपर आकाश में स्थित जड़ों वाले वृक्ष का बोध नहीं होता, वह व्यक्ति नीचे पृथ्वी में तथा इन्द्रियों की क्रियाओं में अनुरक्त हो जाता है । यह विस्तृत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होने वाली क्रियाएँ हैं। हमारा जीवन समतल प्रसरण में व्यतीत होता है; भले वह भौतिक वस्तुओं का अर्जन हो अथवा मनुष्य क्रियाओं के क्षेत्र के विचारों व अनुभवों का अर्जन। वह नित बढ़ने वाली प्रसरण की गतिविधि होती है। इससे चेतना कभी ऊर्ध्व धाम की यात्री नहीं बनती। वह शीर्ष-शिखर पर नहीं पहुँचती, जहाँ वह अप्रतिबन्धित चेतना का पान कर सके, उसका पान कर सकें जो हमारे अन्दर प्रवाहित होने का प्रयास कर रही है।

हमारी दशा दुःखद है। *ऐसा नहीं कि ईश्वरीय शक्ति किसी मनुष्य जीवन में प्रवेश नहीं करती। भले वह संत हो अथवा दुष्कर्मी, वह सदा उसके अन्दर निवास करती है।* देश-काल के बन्धनों से मुक्त, वह अतीत, भविष्य अथवा वर्तमान को नहीं जानती। वह तो जीवन स्वरूप है, वह वैश्विक चेतना के अस्तित्व का सार है। वह मनुष्य जाति के जन्म से पूर्व भी थी। मनुष्य जाति यदि अपना विनाश करने में सफल हो जाती है, तब भी वह वहीं होगी। मनुष्य जीवन की दशा यही है।

योग आचार्य स्मरण करें, ईशावास्योपनिषद में हमने अध्ययन किया था- हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये। पूषन अर्थात् सूर्य। सूर्य से यह प्रार्थना है- हे सूर्य, मैं परम सत्य का, सत्यधर्म का जिज्ञासु हूँ, मैं सत्य की, यथार्थता की खोज के सिवा अन्य कोई धर्म नहीं जानता। कृपया मेरे लिये हिरण्यगर्भ का आवरण हटा दो, मुझे परम सत्य का दर्शन करने दो। जब वह आवरण हट जाता है तो सत्य धर्म का, सत्य का खोजकर्ता आनंद सहित कह उठता है- 'योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि'; वह प्रकाश जिसे मैं ब्रह्मांड में देखता हूँ, मैं वही प्रकाश हूँ। 'अहम् ब्रह्मास्मि, सर्वं खल्विदं ब्रह्म'। सम्पूर्ण आकाश ब्रह्मन् से, ईश्वरत्व से परिपूर्ण है।

ईशावास्य वही कहता है, भगवत्गीता उसी सत्य को उद्घोषित करती है। यहाँ कठोपनिषद् में भी यमराज नचिकेता को उसी सत्य को विभिन्न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ढंग से, अनेक दृष्टिकोणों से समझा रहे हैं। चेतना का वह दिव्य प्रकाश, वह अप्रतिबन्धित ऊर्जा, देश-काल से अप्रतिबन्धित ऊर्जा मनुष्य विचार को एक ओर छोड़ देती है। वह अलौकिक सत्ता है इसलिये हम उसे अमर कहते हैं। उसे नश्वरता का स्पर्श नहीं है इसलिये हम उसे अनश्वर अथवा अमरत्व कहते हैं। यह ऊर्जा हमें प्राप्य है, वह हममें प्रवेश करने के प्रयास में हैं परन्तु हम उसका दुरूपयोग करते हैं। हमारी ऊर्जा-धाराओं में, बाह्य एवं आंतरिक इन्द्रियों में जितना भी पहुँचता है, उसका हम इच्छाओं के विषयों का पीछा करने में दुरुपयोग करते हैं। इससे हमारे हृदय में उस प्रकाश की दीप्ति बनी नहीं रहती। चेतना के उस प्रकाश की दुगुनी, तिगुनी अथवा सौगुनी तेजस्विता नहीं बनी रहती, दिन-प्रतिदिन वह मंद पड़ती जाती है।

अप्रतिबन्धित चेतना का ध्यानावस्था में ग्रहण एवं प्रतिधारण

जिन्होंने ऐल्किमी की क्रिया, निम्न को उच्च में विलयन करने की साधना सम्पूर्ण कर ली है, उनके जीवन में कृपा जल बह नहीं निकलता। उनके जीवन में चेतना के प्रकाश का कुप्रयोग एवं दुरुपयोग नहीं होता। वह व्यर्थ नहीं जाती, उसे हृदय में प्रतिधारण किया जाता है। वह प्रकाश मन-मस्तिष्क अथवा देह की इच्छाओं के परितोषण का साधन नहीं बनता। उसे ध्यान की सहायता से हृदय में बनाये रखा जाता है। ईश्वरीय ऊर्जा केन्द्रित हो जाती है, ऐन्द्रिय स्तर तक जाकर वह शरीर से बाहर नहीं बह निकलती। *एक योग विद्यार्थी अथवा एक योगी जिसने अध्ययन सम्पूर्ण कर लिया है, जो उस सीख को जी रहा है, उस योगी के जीवन में वह ऊर्जा मौन की गुफ़ा में ग्रहण की जाती है। उसे ध्यानावस्था में ग्रहण किया जाता है तथा उसका प्रकाश उज्ज्वल रहता है।*

वर्णन का एक अति सुंदर ढंग है, कैसे अप्रतिबन्धित चेतना प्रतिबन्धित जीव में प्रवेश कर उसे प्रति क्षण सजीव रखती है, उसे नव स्फूर्ति प्रदान करती है। आप भले सुप्तावस्था में हों, चेतना का वह प्रकाश सुप्तावस्था
Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में नहीं जाता। भले आप जागृत हों अथवा निद्रा में, वह जागृत, अवबोधक प्रज्ञा नींद नहीं लेती। भले आप उसके प्रति सचेत हों अथवा नहीं, वह आपमें प्रवेश करने का प्रयास करती है परन्तु आप उसे धारण नहीं कर सकते। आप उसे व्यर्थ जाने देते हैं। *यमराज नचिकेता को बताने का प्रयास कर रहे हैं कि अमरत्व का रहस्य, उस वैश्विक चेतना को, उस परब्रह्मन् को हृदय पात्र में, अपने ध्यानावस्था के पात्र में ग्रहण कर उसे बनाये रखने में है।* जब उसे ऐसे ग्रहण किया जाता है, तो वह प्रकाश एक निर्धूम लौ समान उज्ज्वल रहता है। उस प्रकाश को ध्यान में अथवा ध्यानावस्था में धारण किया जाता है। आपकी चेतना की ध्यानावस्था, उस ईश्वरीय प्रकाश को, सूर्य की, सविता की सावित्री शक्ति को ग्रहण करने का पात्र बन जाती है*।

उसे केवल ध्यानावस्था में ग्रहण तथा प्रतिधारण किया जा सकता है, अन्यथा, मन उसे ऐन्द्रिय स्तर पर ला कर उसे व्यर्थ कर देता है। जब आप अनावश्यक विचार करते हैं, तो आप उस ऊर्जा को व्यर्थ करते हैं। जब आप विचारग्रस्त होते हैं तब आप तनाव पैदा करते हैं। जब आप चिंता करते हैं, जब आप उन विषयों से भय-ग्रस्त होते हैं जिनका कोई अस्तित्व नहीं होता-जो जीवन के तथ्यों के प्रति व्यक्तिक प्रतिक्रियायें मात्र हैं -तब वह प्रकाश दिन-प्रतिदिन धूमिल पड़ता जाता है, उसकी सजीवता कम होती जाती है। तब सम्पूर्ण अस्तित्व की शक्ति क्षीण पड़ती है, वह शक्तिमान नहीं होती। हम जीवन एवं जीने के विज्ञान के साथ संबन्ध रख रहे हैं। एकं योगी नवीनता, सजीवता, सरलता के लालित्य से परिपूर्ण रहता है। यह जीने की एक वैकल्पिक शैली है। यह पूर्णत: भिन्न मानसिकता है जो चयापचय (Metabolic States) पर भी प्रभाव डालती है।

अङ्गुष्ठमात्र पुरुष

यदि यह अप्रतिबन्धित चेतना ध्यानमय चेतना के पात्र में धारण

** वही गायत्री शक्ति, जिसका आप मंत्रोच्चारण करते हैं।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की जाती है, तब उस मौन में, उस शून्यता में आपको अंगूठे के परिमाण एक निर्धूम लौ की प्रतीति होती है। अब हम यमराज के इस कथन पर पहुँचे हैं -

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति।
ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते। एतद्वै तत्॥

नचिकेता, तुम मुझे उस अनश्वर आत्मा के विषय में पूछ रहे थे, जो देह की मृत्यु पश्चात् भी रहती है, वह यही है। क्या है वह ? वह जिसका बोध ध्यानावस्था में, आपके अस्तित्व के मध्यबिन्दु में होता है। यही संदर्भ मैत्री उपनिषद् में भी आता है, यही प्रसंग विभिन्न उपनिषदों में पाया जाता है। निर्धूतकल्मषः अर्थात् वह योगी जिसका अस्तित्व शुद्ध है। कल्मष का अर्थ है अन्धकार, अशुद्धि, गंदगी; निर्धूत अर्थात् जिसका सम्पूर्णतः निराकरण हो गया हो। जिसके अस्तित्व के समस्त स्तरों- मस्तिष्कीय, भावात्मक, शाब्दिक, ऐन्द्रिय-से समस्त अशुद्धियों का निराकरण हो गया हो; मानो वह धुल गयी हों। ऐसे योगी के लिये उस प्रकाश को देखने की संवेदनशीलता होती है। एक योगी के लिये 'निर्धूतकल्मष' एक सुन्दर विश्लेषण है।

अस्तित्व का मध्य बिन्दु

अब हम एक विवादात्मक कथन पर पहुँचे हैं- अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषः। इस का शब्दशः अनुवाद है, आपके अंगूठे के समान प्रकाश की लौ। मध्य आत्मनि अर्थात् आप के अस्तित्व के मध्यबिन्दु में। प्राच्य एवं आधुनिक भारतीय व्याख्याकारों के लिये भी यह विवादात्मक विषय रहा है कि अस्तित्व का मध्य कहाँ है, अस्तित्व का मध्य क्या है ? अद्वैत के महान भाष्यकार शंकराचार्य सहित, अधिकतर व्याख्याकारों ने हृदय भाग को अस्तित्व का मध्य कहा है। उनके अनुसार मध्यपट (Diaphragm) से ले कर शीर्ष-शिखर तक ऊपरी भाग है, निचला भाग मध्यपट के नीचे से है, जिसमें ग्रन्थियां (Pancreas Glands) इत्यादि आती हैं। इस मत के अनुसार अंगूठे के समान निर्धूम लौ का अनुभव हृदय में किया जाता है, जिसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फेफड़ों के बीच, हृदय के पीछे स्थित माना जाता है; आयुर्विज्ञान द्वारा मान्य हृदय के पीछे। वह ऊर्जा जो आपके शरीर के नगर में पड़ी थी, अब वह जागृत हो वहाँ स्वयं को प्रकाश की लौ के रूप में व्यक्त करती है। इसलिये भारतवर्ष में हृदय पर ध्यान केन्द्रित करने का सुझाव दिया जाता है। तंत्र योग के विद्यार्थी एवं आचार्य, इस मध्य बिन्दु को और भी नीचे, पेट के छिद्र में, नाभि चक्र में स्थित मानते हैं। वह बावन पंखुड़ियोंवाले नाभि कमल का वर्णन देते हैं, जो मनुष्य जीवन में नाद का केन्द्र है। इस प्रकार, यह विवादात्मक विषय है कि मनुष्य देह में निचला भाग कहाँ से आरम्भ होता है, उसका मध्य बिन्दु कहाँ है ? यदि आप मनुष्य देह को, मनुष्य काया को आत्मनि शब्दों द्वारा सूचित समझते हैं, तो मध्य आत्मनि का अर्थ है शरीर के मध्य में। शंकराचार्य आत्मनि शब्द का अनुवाद, उसका अर्थ शरीर से करते हैं।

सभी शंकराचार्यों, मध्वाचार्यों, रामानुजाचार्यों, कृष्णप्रेमों, विनोबा व विवेकानंदों के प्रति पूर्ण सम्मान रखते हुए, मेरा देखना उनसे कुछ भिन्न है।* मेरे अनुभव से ऊपरी भाग कंधों से ऊपर आरम्भ होता है, तथा कंधों से नीचे का शरीर निचला भाग है। मध्य आत्मनि, अस्तित्व का मध्य सिर में है कि पेट में, हृदय में है अथवा कौल-तंत्र के कथन अनुसार यौन-अंगों में है ? इसलिये मैं कहती हूँ यह एक विवादात्मक विषय है। मैं आपको योग की विभिन्न शाखाओं द्वारा दिये गये मंत्र के व्याख्यानों में नहीं ले जाऊँगी। क्योंकि यहाँ योग के अध्यापक उपस्थित हैं, जिनमें से कुछ ने राजयोग, हठयोग, मंत्रयोग का अध्ययन दीर्घ काल से किया है, इसलिये यदि मैं इस विषय का उल्लेख नहीं करती, तो उनके साथ अन्याय होता।

शीर्ष मध्य में मध्यबिन्दु

मध्य आत्मनि शब्द की व्याख्या अधिकतर शरीर के संदर्भ में की

** ऐसा आज इस वर्ग का संचालन करते हुये नहीं, अपितु यह मान्यता संभवत: आधी शताब्दी से है, जब मैं वेदों, उपनिषदों के सम्पर्क में आयी और उनके संसर्ग में जीना हुआ। उपनिषदों के साथ एक दीर्घकाल का संबन्ध रहा है।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गयी है। मेरे अनुसार आत्मनि का अर्थ अस्तित्व से है। अस्तित्व एवं 'होनेपन' का संबन्ध भौतिक संरचना से अधिक चेतना से है। चेतना का पात्र और उसका संचालक शीर्ष में है। आत्मिक अस्तित्व का मध्य बिन्दु शीर्ष में है। आप मस्तिष्क से पीछे की ओर जाईये, अग्रीय भाग से दोनों नेत्रों के बीच से पीछे की ओर मध्य में जाईये। यह शीर्ष-शिखर कहे जाने वाले ब्रह्मरंध्र से नीचे है। उस मध्य केन्द्र में प्रकाश की लौ देखी जाती है। यह वह पुरुष है, वह अंगूठे के समान लौ है, जिसे तीसरी आँख कहा जाता है। आपने संभवत: तीसरी आँख के विषय में पढ़ा होगा, कुछ लोग आँख के समान आकार भी अंकित करते हैं। वे कहते हैं तीसरी आंख वहाँ है। परन्तु वहाँ नहीं, ठीक वहाँ नहीं, आपको अन्दर जाना होता है।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मध्य आत्मनि का अर्थ अस्तित्व का मध्य है और अस्तित्व का आशय आत्मिक अस्तित्व से है; आत्मिक अनिवार्यत: ऊपर शीर्ष में है। बहुत विनम्रता से मैं यह अपरम्परागत, अरूढ़िवादी व्याख्या प्रस्तुत कर रही हूँ। मुझे आशा नहीं है कि कोई भारतीय व्याख्याकार मुझ से सहमत हो। यह कोई सिद्धांन्त नहीं अपितु एक प्रत्यक्ष बोध है, जो सम्पूर्ण उत्तरादायित्व के साथ बाँटा जा रहा है।

आत्मिक अस्तित्व के मध्य में, जिसका प्रतीक शीर्ष है, उसकी असंख्य मस्तिष्कीय इकाईयों में से कुछ प्रतिबन्धित कर दी गयी हैं। अधिकतर अभी प्रतिबन्धित नहीं हैं। मस्तिष्क के अग्रीय भाग तथा पीछे के आधे भाग का अभी भी उपयोग नहीं किया गया है। बाहर अंतरिक्ष में अनेकों ऊर्जायें हैं, जिन्हें अभी प्रतिबन्धित करना एवं उपयोग में लाना शेष है, वैसे ही हमारी चेतना में अनेकों ऊर्जायें समायी हैं, वह गुह्य हैं, वह अज्ञात हैं, हमारा अज्ञात सार उनमें समाविष्ट है।

ध्यानावस्था में एक अंगूठे समान लौ का, अंगूठे के परिमाण लौ का आत्मिक मध्य बिन्दु में अनुभव होता है। यदि आप पारम्परिक भारतीय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्याख्याओं तथा भाषांतरणों को स्वीकार करना चाहें, तो इस मध्य बिन्दु को हृदय केन्द्र में स्थित मानिये। आयुर्विज्ञान द्वारा, आधुनिक चिकित्सा विज्ञान द्वारा मान्य दो फेफड़ों के बीच, हृदय के पीछे, मेरूदंड एवं फेफड़ों के बीच की गुफ़ा के पीछे जीवन के स्रोत का, मध्य बिन्दु का स्थान माना जाता है। ध्यानावस्था में उसका बोध होता है परन्तु वह प्रकाश आपके नेत्रों द्वारा नहीं देखा जाता; यह दृष्टि तो बाह्यगामी दृष्टि है। उस अन्तर्गामी दृष्टि को आपके नेत्रों के साधनों की आवश्यकता नहीं। इसे तीसरी आँख कहते हैं, इसका स्वतंत्र अस्तित्व है। चेतना द्वारा आंतरिक बोध को मैं अवबोधक संवेदनशीलता कहती हूँ। अवबोधक संवेदनशीलता हममें समायी एक प्रकार की आंतरिक दृष्टि है, जो ध्यान द्वारा क्रियाशील होती है। हमारे अध्ययन का मात्र इसीसे संबन्ध है।

कठोपनिषद् का अध्ययन साधना के लिये

हम कठोपनिषद् के प्रत्येक शब्द का अध्ययन नहीं कर रहे। प्रत्येक मन्त्र के, प्रत्येक शब्द के संदर्भ, वेदों में, उपनिषदों में, भारतीय मिथिक गाथाओं की पृष्ठभूमि के अध्ययन में महीनों लगेंगे। वह बहुत व्यापक अध्ययन होगा। यहाँ हम योग के अध्ययन अथवा शिक्षा से संबन्धित कठोपनिषद् के महत्त्व का अध्ययन कर रहे हैं; वह भी पश्चिमी जगत् के संदर्भ में। इसलिये जो कुछ भी विज्ञान की कसौटी पर उतरता है, वही पश्चिम में संप्रेषित किया जाना चाहिये। कथन की वैधता प्रयोगों द्वारा, अन्वेषण द्वारा परख लेनी चाहिये, उनकी प्रामाणिकता जान लेनी चाहिये। निजी अनुभव के सम्मिलन के प्रामाणिक तथ्यों को ही दूसरों को कहना चाहिये। कठोपनिषद् साधकों के लिये है, वह साधक जो समग्रता की साधना करना चाहता है; जो समग्रता की स्व-शिक्षा चाहता है, एक साथ ऐन्द्रिय की, वाणी की, मन एवं मस्तिष्क की शिक्षा चाहता है। सत्य की खोज एवं सत्य का स्पर्श कोई सामान्य क्रिया नहीं है, वह काल्पनिक विचार में लिप्त होना नहीं है, वह भावनाओं से भड़क उठना नहीं है। आप जानते हैं न वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशालाओं में कैसे काम करते हैं। वे सब कुछ भूल कर अपना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन समर्पित कर देते हैं, अपनी ऊर्जाओं को केन्द्रित कर लेते हैं।

हमने देखा है कि साधना एक ऊर्ध्वगामी आरोहण है, यह एक सपाट विस्तृत होने वाली क्रिया नहीं है, वह उत्थान का पथ है, ऊर्ध्व यात्रा है। आपको स्मरण है जब पहले दिन हमारी भेंट हुयी थी, तो हमने कहा था कि हम ईश-तत्त्व के तीर्थयात्री हैं, हमारा जीवन पथ है। हम स्वयं ही यात्री हैं, निज स्वरूप का बोध ही हमारा तीर्थस्थान है।

जिन्होंने उपनिषदों अथवा भगवत् गीता का अध्ययन नहीं किया है, उनके लिये यह सब काल्पनिक और परियों की कथाओं समान जान पड़ेगा। जब मैं इन मंत्रों की व्याख्या करती हूँ तो मेरे हृदय में बहुत संकोच होता है। यह काल्पनिक अथवा अव्यावहारिक विवेचन नहीं है। हम संघनित ब्रह्मांड हैं। हमें अपने लिये, अपने जीवन के लिये, हमें प्रदान ऊर्जाओं के लिये, हमें प्राप्त चेतना के प्रकाश के लिये श्रद्धा नहीं है। *यदि जीवन के प्रति श्रद्धा की अभिवृत्ति आ जाये, अपने प्रति एक संघनित ब्रह्मांड होने की श्रद्धा आ जाये, समस्त ऊर्जाओं के लिये हृदय में सम्मान के साथ जिज्ञासा जागृत हो जाये, तो अपने अस्तित्व से पथ बनाना सरल हो जाता है।* तब बहिर्गामी खोज का, अपने से बाहर खोज का अन्त हो जाता है; आप अंतर्मुखी हो जाते हैं। यही इसका सौन्दर्य है। यह अहम् से आत्मन् की तीर्थयात्रा है। यह उस निर्धूम लौ का, अङ्गुष्ठमात्र पुरुष की लौ का बोध है, जो देश-काल से असंबन्धित है। अब अमरत्व शब्द का अर्थ समझ में आता है।

यदि आप मुझे अनुमति दें, तो मैं आपको पुन: ऋग्वेद के दसवें मंडल के नासदीय सूक्त पर ले जाऊँ। यह एक अति सुन्दर परमानंददायक सूक्त है।'न तत्र सत् आस्ते, न असत् आस्ते, न तत्र मृत्युहे, न अमृत न तत्र दिवा न निशा।' शिष्य आचार्य से पूछता है, सृष्टि की रचना के पूर्व वहाँ क्या था ? वेदकालीन ऋषि कहते हैं, प्रकटन से पूर्व, जीवन के किसी प्रकटन से पूर्व न तो सत्य था न ही असत्य, रात और दिन नहीं थे, मृत्यु एवं अमरत्व नहीं थे। वहाँ केवल जीवन का अनावृत्त 'होनापन'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

था। अपनी अद्भुत नीहारिकामय अवस्था में, उस धुंधलेपन से पहले एक रहस्यमय अंतरिक्ष का, हिरण्यगर्भ का, महत् का प्रकटन हुआ। न है सत्य न ही असत्य, न है मृत्यु न ही अमरत्व; ऐसी अभिव्यक्तियों का क्यां आशय यह नहीं है कि मृत्यु एक कल्पना मात्र है? *मनुष्य ने विलयन की क्रिया का वर्णन मृत्यु कह कर किया, इसलिये उसके बने रहने की सनक ने अमरत्व के प्रत्यय की रचना अमरत्व कह कर की है।* वैसे ही बने सत्य-असत्य, वास्तविक-अवास्तविक; मानो ये भिन्नतायें, ये भेद, अलग-अलग कक्ष हों। वास्तव में उनका अस्तित्व नहीं है। वे सब मन के स्तर पर, कल्पना के स्तर पर हैं, जहाँ उनकी उपयोगिता है परन्तु वे जीवन के सार का वर्णन नहीं करते। ईश तत्त्व मृत्यु-अमरत्व, सत्य-असत्य, प्रकाश-अन्धकार नहीं जानता।

यदि आप उपनिषदों का अध्ययन वास्तव में उन्हें समझने के प्रयास से करते हैं, उनके साथ सम्मिलन के लिये करते हैं, तो वे आपको ईश्वरत्व की प्रतीति की सुगंध देते हैं। हमें लगता है कि प्रत्येक विषय ऐहिक है, हमें लगता है कि सब कुछ शुष्क एवं विचार शक्ति द्वारा निर्मित है, या फिर भावनाओं एवं भावुकताओं की झाग है अथवा ऐन्द्रिय प्रणाली की खींचा-तानी है। यह जीवन का सत्त्व नहीं है, यह जीवन का सार नहीं है। ईश्वरत्व जीने की एक शैली है, जिसका संदेश स्वामी विवेकानंद ने सन १८९० में विश्व को दिया था। शिक्षा बालक को अपनी अन्तर की ईश्वरता व्यक्त करने में सहायता के लिये है, अनंतता के बोध के लिये है, अमरत्व के बोध के लिये है। जब प्रत्येक कर्म के पीछे यह बोध रहता है, तो ऐन्द्रिय क्रियाओं का स्वरूप भिन्न होता है। तब शब्दों में, वाणी में एक भिन्न गुण होता है; दूसरों के साथ के संबन्ध का स्वरूप भिन्न होता है। यमराज, नचिकेता को वह गुण सिखा रहे हैं।

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति। ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते। एतद्वै तत्॥ नचिकेता, तुम मुझसे पूछ रहे थे क्या मृत्यु पश्चात् कुछ सतत रहता है। हाँ, वहाँ प्रकाश की यह लौ होती है। जब आपकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काया सूख जाती है, शरीर नष्ट हो जाता है, तब भी वह लौ वहाँ रहती है। वह अव्यक्त में विलीन हो जाती है; स्वयं को पुन: किसी अन्य मनुष्य रूप में व्यक्त करने के लिये।

पहली वल्ली का सारांश

मित्रों, कठोपनिषद् के दूसरे अध्याय की प्रथम वल्ली समाप्त हुयी। कल और आज हमने इस वल्ली से सीखा है कि जीने के दो ढंग हैं। एक है जहाँ व्यक्ति स्वयं को शारीरिक एवं मानसिक रूप से एक पृथक तत्त्व मानता है। अपने चारों ओर वह जो देखता है, उन्हें भी वह पृथक विषय मानता है, जिनके पीछे शारीरिक आवश्यकताओं के लिये ही नहीं परन्तु अन्य समस्त इच्छाओं के परितोषण के लिये दौड़ना पड़ता है। शारीरिक आवश्यकताओं से कोई हानि नहीं होती, परन्तु इच्छाओं द्वारा प्रेरित एवं उत्तेजित की गयीं मानसिक माँगें विनाशक होती हैं, वे अंतहीन, अथाह खाई होती हैं। जीनेके इस ढंग में आत्मा सहित समस्त उपलब्ध ऊर्जाओं का उपयोग सदा बढ़ती रहने वाली क्रियाओं में किया जाता है; हम इनसे बाहर नहीं निकल पाते। विषयों की क्षणिकता हमारी इच्छाओं को रंग देती है और वे भी क्षणभंगुर बन जाती हैं। क्षण-प्रतिक्षण परिवर्तनशील, अपना स्वरूप बदलती हुयीं, वे हमें एक साथ विपरीत दिशाओं में खींचती हैं। यह मृत्यु का मार्ग है। यह दु:ख एवं पीड़ा का मार्ग है।

जीने की एक अन्य शैली भी है, जहाँ आप अनेकता के साथ, असंख्य विविध अभिव्यक्तियों के साथ जीते हैं और साथ ही साथ विविधता के ताने-बाने में एकता देखते हैं। आप एकता को अनेकता का सार जानते हैं और समस्त अभिव्यक्तियों में पारस्परिक संबन्ध देखते हैं। आप वह स्रोत देखते हैं, जिससे इन सब का उद्‌गमन हुआ है। एकत्व का यह बोध आपको विविधता अथवा अनेकता का बन्दी नहीं बनाता।

ये दो मार्ग हैं। एक है अमरत्व का मार्ग, एकता के बोध का, अनंतता का, कालातीत में, आत्मन् में, ब्रह्मन् में सुदृढ़ होने का मार्ग। दूसरा है भिन्नता में, पृथकता में, विविधता इत्यादि में बंध जाने का मार्ग।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐल्किमी की आन्तरिक क्रिया एवं ऊर्जाओं के रूपांतरण की क्रिया का वर्णन विस्तार में, विभिन्न दृष्टिकोणों एवं अनेक ढंग से दिया गया है। देखिये, जब हम विज्ञान में, रसायन में, दो भिन्न तत्त्वों के मिश्रण से तीसरे तत्त्व को उत्पन्न होते देखते हैं, तो हमें आश्चर्य नहीं होता। हम उसे स्वीकार कर लेते हैं परन्तु इस आंतरिक रूपांतरण की क्रिया को एक परिकल्पना माना जाता है। *बोध का स्पर्श आसक्ति की ऊर्जा का रूपांतरण कर देता है। यदि बोध की ऊर्जा एवं आकर्षण-प्रतिकर्षण की ऊर्जा का संवाद होता है तथा बोध की ऊर्जा को काम करने दिया जाता है, तो परिवर्तन आ जाता हैं, विलयन हो जाता है।* ऊर्जाओं का तत्त्वांतरण एक रहस्यमय क्रिया नहीं है, यह मूलतः वैज्ञानिक क्रिया है। यह ऊर्जाओं का विज्ञान है, यह चेतना का विज्ञान है। आप चाहें तो इसे आत्मिक विज्ञान कह सकते हैं।

उपनिषदों ने इस विज्ञान को गुह्य विद्या से, मिथक विद्या से, गुह्य जगत् के अनुभवों से मुक्त रखा है। वे उल्लेख करते हैं कि परामानस ऊर्जाएं हैं परन्तु सुव्यवस्था एवं समन्वय के तत्त्व पर, संयम के मूलतत्त्व पर बल देते हैं। इसके फलस्वरूप, वे एक जिज्ञासु को, एक साधक को परामानस जगत् के अनुभवों के लिये प्रलोभित नहीं होने देते। यह उपनिषद् उनका उल्लेख कर उनसे हट जाता है, आपको सीधा एकत्व के मूल स्रोत में, अद्वैत में ले जाता है। वह हठ योग द्वारा भौतिक जीवन में दीर्घायु के विषय से हट जाता है। वह मंत्र योग, तंत्र योग, लय योग में उल्लेखित तीन स्तरीय सिद्धियों- अणिमा, महिमा, लघिमा के विषय से बच निकलता है। ऐसा नहीं कि इन सब का महत्त्व नहीं है परन्तु ईश्वरत्व के तीर्थयात्री, सत्य एवं यथार्थता के यात्री का यह मार्ग नहीं है। पहले भाग में, उपनिषद् भिन्न लोकों का उल्लेख कर, उनके अस्तित्व का स्वीकार कर, बहुत लालित्य एवं निपुणता से आपका हाथ पकड़ सीधे एकता के, एकत्व के स्रोत को ले जाता है। उपनिषदों के अध्ययन का यह सौन्दर्य है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरे अध्याय की दूसरी वल्ली में ,विभिन्न उपमाओं एवं रूपकों द्वारा यमराज समझाने का प्रयास करते हैं कैसे एक अनेक बनता जान पड़ता है। इससे एक के अनेक जान पड़ने के रहस्य का समाधान हो जाता है। अभी तो मात्र यह कहा गया है कि एकत्व ही सार है। अब इस कथन का विस्तार दिया जायेगा।

साधना का वास्तविक मार्ग पहले अध्याय में दिया गया है। दूसरे भाग में साधक को बताया जाता है कि निम्न के उच्च में विलयन होने की क्रिया पश्चात् क्या प्रकट होता है। अब इसका वर्णन है। पहले भाग का अध्ययन करना अनिवार्य है। यदि उसका ग्रहण नहीं किया जाता है, तो आगे का भाग किसी सैद्धान्तिक दर्शन समान जान पड़ेगा; जो वास्तव में वह नहीं है। यह कोई कपोल कल्पना नहीं है, संभव है कि दिये गये वर्णनों से, दिये गये सादृश्य से यह दर्शन-शास्त्र के अंश समान जान पड़े। आपमें से जिन्होंने दूसरे भाग का अध्ययन किया है, वे इस कथन के सत्य को पहचानेंगे। उदाहरणत:- वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो, रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव। वायु, वह समीर, वह पवन एक होती है, वह सम्पूर्ण ब्रह्मांड में व्याप्त होती है परन्तु जब वह किसी भुवन में, किसी घर में प्रवेश करती है तो वह अलग जान पड़ती है। जब आप खिड़कियां-दरवाज़े खोलते हैं, तो आप कहते हैं 'मेरे घर की हवा'। वह साथ वाले घर की हवा से पृथक जान पड़ती है परन्तु है तो वह एक ही। सूर्य का प्रकाश घर में प्रवेश करता है और वह पृथक जान पड़ता है, स्वतंत्र जान पड़ता है। उस घर के निवासी उसे उनका होने का दावा करते हैं, उसे अपना कह कर वे उस पर अधिकार बनाते हैं। एक होते हुये भी वह अनेक जान पड़ता है। पर्वतों एवं पहाड़ों से नीचे बहता जल एक नदी बनता है और आप कहते हैं यह गंगा है, यह ओलगा और यह है यमुना इत्यादि, इत्यादि। ये नाम आप के द्वारा दिये जाते हैं। वह वर्षा का एक ही जल है और धरती में भी वही जल है।

एक ही जल होता है परन्तु हिन्दू उसे गंगा कहते हैं, उसे माँ कहते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं। ऐसे ही कुछ नदियां रूसियों के लिये, कुछ चीनियों के लिये और कुछ पाकिस्तानियों के लिये हैं। उनके निर्धारित स्थानों के अनुसार तथा उनसे आपको जो लाभ प्राप्त होते हैं, उनके अनुसार उन्हें नाम दिये जाते हैं। उनका अस्तित्व आपके उपयोग के लिये होता है। परन्तु यदि हम जल की उस अभिव्यक्ति के साथ, उस गंगा, यमुना अथवा मिसीसिपी के साथ के उस संबन्ध को भूल जाते हैं, तो ? यदि हम भूल जाते हैं कि सम्पूर्ण ब्रह्मांड में एक ही जल तत्त्व है, तो तदात्मीकरण का आरम्भ होता है, तब आरम्भ होता है दावों का, स्वामित्व का और झगड़ों का। तब ईसा-मसीह को ईसाई अपना लेते हैं, पैगंबर मुहम्मद पर मुसलमानों द्वारा अधिकार होता है, कृष्ण एवं राम हिन्दुओं के बन जाते हैं, उसी प्रकाश स्वरूप लाओत्से एवं कन्फ्यूशिअस को चीनी अपना ही मानते हैं। वह सब तो एक ही प्रकाश की भिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं।

अभिव्यक्तियों की विभन्नता का आनंद लीजिये; विविधता, भिन्नता, बंधन नहीं हैं। अनेकता बन्धन नहीं है, वह जीवन की संपन्नता है। उनसे संबन्धित हो उनका आनंद लीजिये परन्तु मत भूलिये कि उन अभिव्यक्तियों के स्रोत भिन्न-भिन्न नहीं हैं। स्रोत एक ही है। 'एकं अद्वितीयं ब्रह्म्'; जीवन का अद्वैत, उसकी एकता एकत्ववाद नहीं है। कृपया जान लीजिये की एकत्ववाद भिन्न होता है। जान पड़ने वाली भिन्नता एवं भ्रमित पृथकता के साथ संबंध रखिये, क्योंकि आपके शरीर को एक पृथक अस्तित्व के रूप में भी काम करना है; परन्तु स्रोत को मत भूलिये। अनंतता के बोध के साथ, संस्कृति के मानसिक काल के खिलौनों के साथ कुशलता से, सक्षमता से संबन्ध रखिये। इससे आप मूल एवं अभिव्यक्तियों, दोनों की भिन्नता के साथ संबन्धित रहते हैं। ऐन्द्रिय स्तर पर अभिव्यक्तियों की अनेकता के साथ, चेतना के स्तर पर एकता एवं अद्वैत के बोध के साथ आपका योग रहता है। नश्वर शरीर की लपेट में जीते हुये यह अनश्वरता का मार्ग है। यह मधु का पान करना है, मधुभक्षी बनना है। इस कथन से स्व-अनुरक्ति (Narcssist) की बात नहीं की जा रही।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन्नीसवाँ संवाद

आधुनिक ऋषि अरविन्द को इसी उपनिषद् से मृत्यु के रहस्य पर महाकाव्य सावित्री की रचना करने की प्रेरणा हुयी थी। हमने एक आत्मिक साहस-कर्म का आरम्भ किया है।

हम दूसरे अध्याय की दूसरी वल्ली का आरम्भ करने जा रहे हैं। पहला मंत्र इन्द्रियों पर संयम के विज्ञान से संबन्ध रखता है। दूसरे मंत्र में ऋग्वेद का एक मंत्र शब्दश: लिया गया है, जो ब्रह्मांड एवं पिंड की आध्यात्मिक संरचना का वर्णन देता है। श्लोक तीन व चार ब्रह्मांड की लय का रहस्य प्रकट करते हैं, जिसे यह उपनिषद् वैश्विक श्वास कहता है। हमें अपनी सम्पूर्ण शक्ति श्रवण कर्म में लगाने की आवश्यकता होगी।

पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतस: ।
अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते। एतद्वै तत्॥

पुरम अर्थात् नगर; एकादशद्वारमजस्या अर्थात् जिसके ग्यारह द्वार हैं। अजस्य, वह जो अजन्मा है, अव्यक्त है; अवक्रचेतस:, वह जिसकी चेतना में किसी विकृत बोध अथवा मिथ्या समझ की संभावना नहीं है। अनुष्ठाय का अर्थ है ध्यान करना; न शोचति अर्थात् दु:ख का अन्त करना। योग का विद्यार्थी अथवा सत्य एवं अमरत्व का साधक उस अनादि, अविकृत चेतना पर ध्यान कर दु:ख एवं पीड़ा का अन्त करता है। विमुक्तश्च अर्थात् जिसके फलस्वरूप वह मुक्त हो जाता है; एतद्वै तत्। ओ नचिकेता, वह अनादि, अव्यक्त, अविकृत, आत्म-बोध की लौ ही वह आत्मन् अथवा ब्रह्मन् है, जिसके विषय में तुम पूछ रहे थे। यह इसका शब्दानुवाद है।

ब्रह्मांड एवं पिंड दो नगरियाँ

अब हमें ध्यान देना है दो नगरियों पर, एक है ब्रह्मांड नगरी, जो अव्यक्त जगत् है और दूसरी है मनुष्य देह की नगरी। हमें इन नगरों को, उनके ग्यारह द्वारों को तथा उनके निवासिओं को देखना होगा। उपनिषदों के अर्थ की गहराई में जितना उतरना होता है, उतना ही उनके बोध एवं दृष्टि के वैभव की कांति हमें अभिभूत करती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्मांड एक पुरम् है, एक नगर है, वह सम्पूर्ण हिरण्यगर्भ है। इसके ग्यारह द्वार कौन से हैं ? यदि आपको सांख्य द्वारा दी गयी प्रकृति की परिभाषा स्मरण हो, तो वह पंचमहाभूत द्वारा, पाँच मूलतत्त्वों द्वारा रचित है तथा त्रिगुणानि है। पंचमहाभूत- पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश तथा त्रिगुण-सत्त्व, रज, तम, उसके आठ पहलू हैं, आठ द्वार हैं। सूर्य एवं चन्द्रमा सहित दस द्वार हुये और ग्यारहवां द्वार है समन्वय तत्त्व, जो ब्रह्मांड में व्याप्त अग्नि तत्त्व है, जिसे उपनिषद् वैश्विक मन कहता है। ब्रह्मांड में विद्यमान इस समन्वय तत्त्व को वैश्विक मन कहा गया है, जो समस्त सुव्यवस्थित रखता है, जो ब्रह्मांड में क्रियाशील असंख्य ऊर्जाओं की सुसंगति का तत्त्व है। इसीसे ऋतुओं के आवर्तन में, ग्रहों की, सौर्य मंडल इत्यादि, इत्यादि की गतिशीलता में एक लय है। पृथ्वी की ओर लौटते हुये, मनुष्य देह में पांच कर्म इन्द्रियाँ हैं, बोध एवं ज्ञान की पाँच इन्द्रियाँ हैं तथा ग्यारहवां द्वार मन है। इस प्रकार कर्म की बाह्य इन्द्रियाँ हैं, बोध एवं अनुक्रिया की आंतरिक इन्द्रियां हैं और मन है। यह मनुष्य देह की नगरी के ग्यारह द्वार हैं।

जैसे अजन्मा, अव्यक्त, अविभेदित जीवन का स्रोत परब्रह्मन् में, ब्रह्मांड में, वैश्विक नगर में निवास करता है, वैसे ही ग्यारह द्वारों वाली मनुष्य देह की नगरी में आत्मा का निवास है। *आत्मन् का, जीवन के प्रकाश का, जीवन तत्त्व का मनुष्य देह अथवा ब्रह्मांड में होना, व्यक्त जगत् अथवा भौतिक वाहन के होने पर निर्भर नहीं करता।* उसका होना अनादि-अनंत है। चाहे वह अपनी सम्पूर्णता में अव्यक्त, अविभेदित, विशिष्टतारहित रहे, व्यक्त के पीछे छुपा रहे परन्तु वह वहाँ है।

इसे समझने के लिये एक दृष्टांत दिया गया है। जैसे किसी प्राचीन नगर में एक सम्राट होता था, वैसे ही आत्मन् इस मनुष्य देह का सम्राट है। वह परम प्रज्ञा, वह ब्रह्मन् ब्रह्मांड का सम्राट है। वह केवल उसमें निवास ही नहीं करता, वह शासक है, शासन करने वाला मूलतत्त्व है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैसे ब्रह्मांड में शासक तत्त्व है, मनुष्य देह में भी वही तत्त्व है। इस नगर का एक रेखाचित्र कुछ अनुमान देता है, कैसे उसके शासक, आत्मन् के अधिकारी उस नगर में काम करते हैं। आंतरिक इन्द्रियों में समायी ऊर्जाओं को देवी-देवता कहा जाता है। उन देखने की, श्रवण करने की, गंध लेने की, स्वाद की शक्तिओं एवं मन-मस्तिष्क की संरचना द्वारा, शासक बाह्य ज्ञानेन्द्रियों अथवा कर्मेन्द्रियों पर नियंत्रण रखता है। पहले हमें एक रथ की उपमा दी गयी थी, अब एक नगर की उपमा दी गयी है। इस नगर में एक शासक है, उस शासक के अधिकारी हैं, द्वार हैं, जिनसे संवेदनायें आती-जाती हैं।

साधक के आत्मिक स्वास्थ्य का मार्ग

बाह्य ज्ञानेन्द्रियां विषयों द्वारा, संसार के भौतिक विषयों द्वारा घिरी रहती हैं। उन विषयों द्वारा वे निरंतर संवेदन लाती रहती हैं, जो अन्दर जाने वाली संवेदनायें हैं। *यदि अधिकारी जन, आंतरिक इन्द्रिओं की ऊर्जायें जागरूक हों, सावधान हों, बुद्धि-तत्त्व के साथ, उसके विभेदात्मक बोध के साथ संयुक्त हों, तो वे किन्हीं अशुद्ध संवेदनाओं को प्रवेश नहीं करने देतीं।* वे आंतरिक संरचना को दूषित होने, उसका पतन होने, उसे अस्वस्थ होने नहीं देतीं। यदि वे जागरूक एवं सतर्क रहती हैं, तो वे बहुत सावधानपूर्वक, आने वाली संवेदनाओं पर नियंत्रण रखती हैं। जैसे आप अपने शरीर के स्वास्थ्य के प्रति जागरूक होते हैं तो आप उन खाद्य वस्तुओं को नहीं खायेंगे, जो आपके शरीर को दूषित करेंगी अथवा रोगग्रस्त करेंगी। जैसे यह सुरक्षा शरीर के स्वास्थ्य के लिये की जाती है, वैसे ही आत्मिक स्वास्थ्य के लिये आंतरिक ऊर्जाओं को शिक्षित किया जा सकता है; अन्दर आने वाली संवेदनाओं से उन्हें सुरक्षा दी जा सकती है। यह श्लोक साधक के आत्मिक स्वास्थ्य की चर्चा कर रहा है, किस प्रकार आत्मिक स्वास्थ्य बनाये रखा जाये। योग के लिये, हठयोग, राजयोग, संभवत: योग की सभी शाखाओं के विद्यार्थियों के लिये, यह एक अति महत्त्वपूर्ण सूत्र है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदि यह विषय स्पष्ट हो तो अगले विषय की ओर चलें। आंतरिक इन्द्रियों में, मन अपूर्व सवेंदनशीलता की क्षमता रखता है, संवेदनायें या तो उसे प्रसन्न कर सकती हैं या फिर अप्रसन्न। यदि वह सुख की संवेदना पर निर्भर करता है और दुःख की संवेदना की कल्पना से अत्यंत भयभीत होता है, तो संवेदनाओं के प्रवाह पर, उनके नियंत्रण में असंतुलन आ सकता है। वह सुखद संवेदनाओं को आने देगा क्योंकि वह सुख देती हैं। वह बाह्य इन्द्रियों को भौतिक विषयों के पीछे, उन संवेदनाओं को बारम्बार लाने के लिये दौड़ायेगा। वह उन संवेदनाओं को दोहराने की खोज में रहेगा। जब सुख को दोहराने की खोज रहती है, तो बोध में विकृति आ जाती है। इससे सम्पूर्ण प्रणाली सुख की ओर झुक जाती है, वह दुःख की कल्पना मात्र से संकुचित हो जाती है, उससे बचती है। इससे अवरोध उत्पन्न होते हैं और संवेदनाओं का संचलन स्वस्थ नहीं रहता।

आत्मिक स्वास्थ्य के लिये, विभेदमूलक बोध में समर्थ बुद्धि आत्मन् की अप्रतिबन्धित चेतना के साथ संयुक्त रहती है। अप्रतिबन्धित चेतना के लिये, परम प्रज्ञा के लिये 'अजस्य अवक्रचेतसः' के एक सुन्दर विशेषण का उपयोग किया गया है। अवक्रचेतसः अर्थात् जो कभी विकृत नहीं हो सकती, एक ओर झुक नहीं सकती, जो पक्षपात नहीं कर सकती, वह उसकी संभावना नहीं रखती। वह एक शुद्ध लौ है, चेतना की, प्रज्ञा की निर्धूम लौ है। इसलिये, यदि बुद्धि आन्तरिक आवाज़ के साथ, अंतरात्मा की आवाज़ के साथ जुड़ी रहती है, उसमें आधारित रहती है, तो वह मन को सुखद संवेदनाओं के प्रति पक्षपात करने नहीं देती। तब वह पीड़ा अथवा असुविधा इत्यादि के लिये भय उत्पन्न होने नहीं देती। आपने देखा, साधकों को, यथार्थता के जिज्ञासुओं को सुराग देने के लिये ऋषि किन सूक्ष्मताओं में जाते हैं।

सदैव सतर्क रहने की चेष्टा से बचने के लिये, लोग प्रपीड़न अथवा दमन के हिंसक शस्त्र बनाते हैं। वह बाह्य ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों के विरुद्ध हिंसा का उपयोग करते हैं। मान लीजिये मन भोजन के किन्हीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आस्वादों का गुलाम हो गया है, तब वह व्यक्ति कहता है, मैं एक साधक हूँ, मैं उस भोजन के वशीभूत नहीं होऊँगा, मैं उपवास करूँगा। किसी ज्ञानेन्द्रिय का दमन, उसे दबाना एक अध्यात्म विरोधी शस्त्र है; वह समन्वय तत्त्व एवं लय का उल्लंघन करता है। बाह्य इन्द्रियों का, कर्मेन्द्रियों का दमन किया जाता है। यदि कोई बाध्य काम भाव के आवेग से पीड़ित हो तो वह ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा लेता है, कहता है कि वह स्त्रियों को देखेगा नहीं, उनसे दूर रहेगा। ऐसे ही होता है उपवास रखना, बाध्य, अनिवार्य ब्रह्मचर्य, मौनव्रत रखना इत्यादि, कम से कम निजी वस्तुओं का उपयोग, अपरिग्रह इत्यादि, इत्यादि।

बाध्यता से, दमन एवं बाह्य ज्ञानेन्द्रियों को दबाने से दो भयानक स्थितियाँ बन सकती हैं, एक है आंतरिक सहज समन्वय के प्रति हिंसा और दूसरी है मिथ्याचारी बनने की संभावना। आपको स्मरण है, गीता में हमें बताया गया था- 'मिथ्याचारः स उच्यते।' वह जो इन्द्रियों पर बाह्य रूप से नियंत्रण रखता है, मन में वह उनके विषय में सोचता रहता है। वह स्त्रियों के विषय में, खाद्य पदार्थों के विषय में, अच्छे वस्त्रों के विषय में, संगीत के विषय में सोचता रहता है। इससे बाहर से नियंत्रण परन्तु अन्तर में उधम होता रहता है। क्योंकि मन विषयों के पीछे दौड़ता है, उनकी कल्पनायें कर उनके पीछे लगा रहता है। यह मानसिक विकृति का मार्ग है। अनेकों साधक दमन एवं दबाव के उपयोग से विक्षिप्त हो जाते हैं, या फिर वे अतिभोग के कारण विक्षिप्त हो सकते हैं। मन मानसिक स्वास्थ्य की कुंजी है, या तो वह बाह्य इन्द्रियों के अतिभोग से विकृताचारी बन सकता है, उसकी बोध की क्षमता एवं अनुक्रियाएं विकृत हो सकती हैं अथवा वह दमन एवं प्रतिपीड़न से विक्षिप्त हो सकता है।

उपनिषद् कहता है, एक ओर से इन्द्रियों से, ज्ञानेन्द्रियों से जुड़े मन तथा दूसरी ओर से बुद्धि से, विभेदात्मक बोध से जुड़े हुये मन को न तो अतिभोग का मार्ग लेना है और न ही दमन का मार्ग। उसे संयम का मार्ग लेना है। जब मन की संयम तत्त्व में निपुणता होती है, तो कर्म

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की बाह्य इन्द्रियाँ बिना किसी दमन अथवा हिंसा के नियंत्रित रहती हैं। मन संयम के बिन्दु पर कैसे रहेगा ? यदि वह हृदय में समायी अन्तरात्मा की आवाज़ को सुनेगा। क्योंकि अन्तरात्मा की आवाज़, आपके हृदय से उठी गहरी आवाज़, अंङ्गुष्ठमात्र पुरुष से, परम, उच्चतम प्रज्ञा से, वैश्विक चेतना से संबन्धित है। इसलिये जब कभी संशय हो, जब कभी मन की यातना अथवा बाह्य ज्ञानेन्द्रियों की खींचा-तानी से उद्विग्नता हो, तो बैठ कर मनन-चिंतन करना पड़ता है। अन्तरात्मा की आवाज़ को सुनना होता है, जो पापी एवं संत दोनों को समानत: उपलब्ध रहती है। यदि उसे सुना जाये तो मन को संयम शक्ति मिलती है। इससे मन की प्रत्येक गतिविधि, वाणी के स्तर पर, दृष्टि के स्तर पर, श्रवण के स्तर पर तथा ऐन्द्रिय कर्म के स्तर पर संयत रहती है।

इस प्रकार हमें दो कुन्जियाँ मिली हैं, एक सदैव सचेत रहने की और दूसरी अन्तरात्मा की आवाज़ से संबन्धित रह उसके साथ संवाद द्वारा संयम में रहने की। साधकों के लिये यह अति उपयोगी सूत्र हैं। जैसे विक्षिप्त होने का अथवा मिथ्याचारी बनने का संकट होता है, तीसरी आशंका रहती है आत्मवंचना की। आपको अन्दर आती संवेदनाओं के प्रवाह पर दृष्टि रखनी पड़ती है और उनके बाहर जाते प्रवाह पर भी। पांच ज्ञानेन्द्रियों से अन्दर आती संवेदनायें अन्दर आता प्रवाह है। दृष्टि, श्रवण इत्यादि की अनुक्रिया बाहर जाता प्रवाह है। निरंतर सजग रहने एवं स्वस्थ संयम-शक्ति के विकास के लिये, हमें देखने की आवश्यकता होती है कि हमारे ऐन्द्रिय स्तर पर एवं मानसिक स्तर पर क्या हो रहा है। जब तक आपका उनके साथ एक प्रत्यक्ष साक्षात्कार द्वारा परिचय नहीं हो जाता, आप उन्हें कभी देख नहीं पायेंगे। इससे आप समझ नहीं पायेंगे आप कब झूठ बोलते हैं, क्योंकि आपकी समझ ऊपरी स्तर पर रहेगी। उस ऊपरी समझ से आप कल्पना करेंगे कि आप जो कह रहे हैं वह सत्य है। आप इच्छा की छुपी शक्ति से अवगत नहीं रहते, जो आपकी समझ को विनियमित करती है, उसे ढालती है, उसे तराशती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है।

आप अपनी इच्छा के अनुरूप देखते हैं, आपका देखना एवं बोध करना भी चयनात्मक हो जाता है। हर किसी में वह देखने का सामर्थ्य नहीं होता, जो वास्तव में होता है। आप वह देखते हैं जो आप देखना चाहते हैं, आप वह सुनते हैं जो आप सुनना चाहते हैं। आप कल्पना कर लेते हैं आपने वह सुना है जो कहा नहीं गया। आप वह देखने की कल्पना कर लेते हैं जो वहाँ है ही नहीं। यदि कोई यथार्थता की खोज की तलवार की धार पर चलना चाहे और साथ ही ऊपरी स्तर पर जीना चाहे, तो वह अति विनाशकारी आत्मवंचना होती है।

स्व-शिक्षा की पद्धति

इसलिये कठोपनिषद् अनुष्ठाय शब्द का उपयोग करता है। एक बहुत महत्त्वपूर्ण शब्द अनुष्ठाय पर, 'अनुष्ठानम्' पर टिप्पणी की जा रही है। किसकी खोज है ? किसका अध्ययन है ? खोज है, अध्ययन है, अजस्यावक्रचेतस: के स्वरूप का। वह जो अव्यक्त है, अविकृत प्रज्ञा है उसका अध्ययन करना है, उस पर ध्यान करना है, उसका चिंतन मनन करना है। तब जैसे ब्रह्मांड में समन्वय का, व्यवस्था का तत्त्व सर्वव्याप्त है, वैसे एक साधक के जीवन में, उसके अस्तित्व के सभी स्तरों पर एक आंतरिक सुव्यवस्था होगी, एक समन्वय होगा। *स्वयं को आत्मवंचना के खेल से बचाने के लिये, हमें मन एवं इन्द्रियों की पारस्परिक क्रिया को जानना होगा। गुह्य, अकथित इच्छायें, जो बोध पर, अनुक्रियाओं पर, संबन्धों पर नियंत्रण रखती हैं, उनके प्रति सजग रहना होता है।* आप भले कहें कि आपका यह अर्थ नहीं था, हाँ, उस क्षण आपका ऐसा कहने का इरादा नहीं था, परन्तु इच्छा ने तो, आप द्वारा देखे गये, आप द्वारा श्रवण किये गये, आप द्वारा कहे गये को पहले ही एक घुमाव दे दिया होता है।

हमें एक अति सहायक सुझाव दिया गया है; स्व-शिक्षा की एक अहिंसक पद्धति प्रदान की गयी है। संगठित धर्म-संघ वियोजन की, शारीरिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अलगाव की, शारीरिक एकाकीकरण की, व्यवहार के पूर्व-निर्धारित प्रतिमानों की, संहिताबद्ध मूल्यों की संरचनाओं का प्रचार कर सकते हैं। इससे साधक उन प्रचारों का मात्र एक निष्क्रिय उपभोक्ता बन जाता है, वह उनका अनुसरण बिना समझ के करता है। आपको तो विकसित होना है, परिपक्व होना है।

मेरे मित्रों, धर्म का सार सत्य की व्यक्तिगत खोज है। वह संगठित धर्मों द्वारा पेश किये गये, बने-बनाये सत्यों अथवा व्यवहार के प्रतिमानों को स्वीकार करना नहीं है। इससे तो इस नगरी में बसी मूल प्रज्ञा का अपमान करना होगा। इसलिये यदि आप अध्ययन करते हैं, तो इन्द्रियों एवं ऐन्द्रिय विषयों की पारस्परिक क्रिया से आपका साक्षात्कार होगा। आप देखेंगे कैसे सुरक्षा इत्यादि के नाम से मन सुख का व्यसनी हो जाता है। यदि यह अध्ययन किया जाता है तो कोई आत्मछलना नहीं होगी। यदि संयम तत्त्व जागृत होगा तो कोई मिथ्याचार नहीं होगा।

आप नगर के ग्यारह द्वारों से संवेदनाओं को अन्दर एवं बाहर प्रवाहित होने देते हैं। जागरूकता से, संयम के भाव से आप यह अनुमति देते हैं। तब देह में बसने वाली समस्त ऊर्जाओं का व्यवहार समन्वयपूर्ण होता है, बाह्य के साथ उनका संबन्ध सरल हो जाता है। भले आप योगी हों अथवा भोगी, आप इस पथ पर चल रहे हों अथवा उससे हट कर चल रहे हों, ऐन्द्रिय विषयों एवं इन्द्रियों के बीच की पारस्परिक क्रिया तो होती ही रहने वाली है। यह तो जीवन का खेल है। इन्द्रियाँ एवं उनकी ऊर्जायें - वे ग्यारह द्वार जिनसे हो कर जीवन का प्रकाश बाहर प्रवाहित होता है - ऐन्द्रिय विषयों के साथ उनकी पारस्परिक क्रिया वास्तव में विपत्ति नहीं है। वह समस्या नहीं है, वह बन्धन का कारण नहीं है। विनाश का, दुःख एवं पीड़ा का कारण हैं असावधानी, असजगता, उतावलापन, अतिभोग का खेल अथवा दमन, या फिर कभी अतिभोग तो कभी दमन। इस विषय में और बहुत कुछ कहा जा सकता है परन्तु हमें आगे बढ़ना है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदि पहले श्लोक के सुझाव एवं निर्देश पर्याप्त रूप से स्पष्ट हो गये हों, तो चलिये दूसरे श्लोक का अध्ययन करें। यह दूसरा श्लोक, जैसा मैंने कहा, अक्षरश: ऋग्वेद से लिया गया है। यह वैदिक रहस्यवाद का वर्णन देता है। यह एक अद्भुत वर्णन है परन्तु हम इसे संक्षिप्त रखने का प्रयास करेंगे। हम कठोपनिषद् के अध्ययन के उद्देश्यों से संबन्धित प्रसंग ही लेंगे।

ब्रह्मांड एवं पिंड में सूक्ष्म शक्ति का प्रवाह

अव्यक्त, अजन्मी तथा इसी कारण अमरणशील जीवन की त्रिविध अग्नि स्वयं को एक महान शक्ति के रूप में व्यक्त करती है, जो समस्त अभिव्यक्तियों के आचरण का नियमन करती है। उस शक्ति की तुलना एक अश्व की शक्ति के साथ की गयी है; अरुणोदय अश्व का शीर्ष है, सूर्य-चन्द्र उसके नेत्र हैं, वायु उस पर सवार है। यह मंत्र, सम्पूर्ण ब्रह्मांड में प्रवाहित महान शक्ति का शब्दों में एक सजीव वर्णन देता है। यह शक्ति अपनी वृत्तीय गति से रात एवं दिन को यथास्थान बनाये रखती है, वह ऋतुओं की गति को, ऋतुओं के चक्र को बनाये रखती है। ब्रह्मांड में जिन गतिविधिओं को आप देखते हैं, वे सब लयबद्ध हैं, क्योंकि वह महान शक्ति आत्मिक लय का रहस्य है, वह वैश्विक लय का रहस्य है।

मनुष्य देह में इस शक्ति का रहस्यपूर्ण वर्णन देते हुये, इसका निवास शीर्षशिखर में कहा गया है। जिसे तांत्रिकों ने, तंत्र-विद्या के विद्वानों ने सहस्र पंखुड़ियों वाला कमल, सहस्रदल कमल एवं ब्रह्मरंध्र कहा है। योग की विभिन्न शाखाओं ने इसका वर्णन भिन्न रूप से किया है। *यह शक्तिशाली ऊर्जा जैसे ब्रह्मांड में विद्यमान है, वैसे वह मनुष्य देह के मस्तिष्क में स्थित है।* फिर है वह शक्तिशाली वायु-वायु तत्त्व-जो सूर्य, चन्द्र व आकाश पर सवार है, देह में उसका स्थान कंठ में, सोलह पंखुड़ियों वाले चक्र में है। ब्रह्मरंध्र सहस्र पंखुड़ियों वाला कमल है और कंठ में सोलह पंखुड़ियों वाला कमल है। यह वैदिक योगियों द्वारा दिया गया, सूक्ष्म शरीर-रचना का विज्ञान है। इसलिये मैंने कहा था कि दूसरे श्लोक में वैदिक सूक्ष्म

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विज्ञान है। कंठ को काटने से आपको सोलह पंखुड़ियों वाला चक्र नहीं दिखेगा परन्तु वहाँ एक ऊर्जा है, जो गतिशील होती है। वहाँ नाद शब्द में प्रस्फुटित होता है। तब तक शब्द मौन रहता है; शरीर में गतिशील परन्तु फिर भी शान्त। Solar Plexus में अग्नि की शक्ति रहती है।

यह मंत्र उस शक्तिशाली ऊर्जा का वर्णन देता है, जो मनुष्य देह के विभिन्न बिन्दुओं में निवास करती है। ठीक वैसे, जैसे ब्रह्मांड में कभी वह बादलों पर सवार बिजली समान गिरती है, तो कभी तूफानी वर्षा के रूप में स्वयं को व्यक्त करती है। कभी वह सूर्य किरणों में अग्नि की जिह्वा बन पृथ्वी को झुलसा देती है, और कभी विश्व को चन्द्रमा की रश्मियों के अमृत से शीतलता पहुँचाती है। वह शक्तिशाली ऊर्जा व्याप्त है। वह स्वयं को एक अदृश्य दक्ष समान सदा व्यक्त करती रहती है। आप उसे पकड़ नहीं पाते फिर भी वह वहाँ है। आप वर्षा पर नियंत्रण नहीं रख पाते, बादलों पर, बिजली पर, सूर्य एवं चंद्रमा पर नियंत्रण नहीं रख पाते, वैसे ही ब्रह्मन् की बलशाली शक्ति आपके शरीर में क्रान्तिक बिन्दुओं में रहती है।

यदि आपने ऐल्किमी की क्रिया द्वारा निम्न ऊर्जाओं का उच्च ऊर्जाओं में विलयन कर दिया है और आप ध्यान की वेदी पर विराजित हैं, तो वह शक्ति उपयोगी बन जाती है, वह सहायक बन जाती है। यह अनुष्ठान किया जाता है तो वह शक्तिशाली ऊर्जा स्वयं को व्यक्त करती है। वह आपको वाक्-सिद्धि प्रदान कर सकती है; वाणी में वह सूक्ष्म शक्ति दे सकती है जिससे आप जो भी कहते हैं वह घटित हो सकता है। मंत्र-सिद्धि, वाचा-सिद्धि एक प्रकार की शक्ति है, जो स्वयं को व्यक्त करती है। यह अपने लिये कोई पुरस्कार नहीं है अपितु एक परिणाम है। आप जो विचार करते हैं वह भौतिक रूप ले लेता है। शीर्ष-शिखर में जो शक्ति प्रकट हो रही है, व्यक्त हो रही है, वह विशाल शक्ति विचार-सिद्धि प्रदान करती है। विचार एक शक्ति बन जाता है; आप जो भी सोचते हैं वह घटित होता है, जो घटित होना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होता है वह स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इस विचार शक्ति के प्रकट होने पर जो भी कहा जाता है, वह शब्द सत्य का संप्रेषक बन जाता है।

शक्तियों के अहम् केन्द्रित उपयोग के विरुद्ध चेतावनी

हमें अष्टसिद्धि, अष्टधा प्रकृति इत्यादि में जाने की आवश्यकता नहीं है। इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि पंचमहाभूत एवं सत्त्व, रज, तम भी उन सूक्ष्म शक्तियों के प्रकटन के वाहक बन जाते हैं। वास्तव में यह उनके लिये है, जो बहुत उच्च स्थिति में पहुँच जाते हैं। जब योग के उच्च स्तर पर उत्थान होता है, तब ही यह शक्तियाँ प्रकट होती हैं। अपने आंतरिक विकास अथवा परिपक्वता के साथ सरोकार रखने की जगह, लोग इन सिद्धियों का पीछा करने लगते हैं। जैसे-तैसे जबरदस्ती से शक्तिपात द्वारा अपनी कुण्डलिनी को उत्तेजित कर, उसके साथ फेर-बदल कर वे शक्तियाँ प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। *ये शक्तियाँ प्राप्त करने के लिये नहीं हैं। वे तो ब्रह्मन् अथवा आत्मन् की संभाव्य, दिव्य अभिव्यक्तियां हैं। वे तो दिव्यता की संभावनायें हैं, उनका उपयोग सांसारिक उद्देश्यों के लिये कैसे किया जा सकता है?* स्व-केन्द्रित दावों, आक्रमकताओं अथवा महत्त्वाकांक्षाओं के परितोषण के लिये उनका व्यापार कैसे किया जा सकता है ?

इस मंत्र में गुह्य शक्तियों के व्याख्यान पश्चात्, नचिकेता को सचेत करते हुये यमराज कहते हैं, नचिकेता, ईश्वरत्व को स्व-केन्द्रित, अहम्-केन्द्रित, सांसारिक उद्देश्यों के परितोषण के लिये नहीं लगाया जा सकता। यदि ऐसा किया जाये, तो भले धन-सम्पत्ति एवं मान-सन्मान की प्राप्ति हो जाये परन्तु उससे आंतरिक परिपक्वता जाती रहती है, भव्यता जाती रहती है। मानो यह किसी बहुमूल्य वस्तु को बेचना अथवा उसे व्यर्थ करना हो। उन ऊर्जाओं के साथ खिलवाड़ करना अथवा उनकी शक्तियों के लिये उनका पीछा करना बहुत खतरनाक होता है। इससे मनुष्य भटक जाता है, परम सत्य अथवा यथार्थता के खोज की उपेक्षा हो जाती है। शरीर एवं मन को अनुशासित करने के उपरान्त, जीवन को इन शक्तियों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के पीछे व्यर्थ करना मूर्खता नहीं तो कम से कम बचपना होगा।

वैश्विक एवं शारीरिक श्वास प्रणाली

अब हम वैश्विक श्वास प्रणाली एवं शारीरिक श्वास प्रणाली के विषय पर पहुँचे हैं। वैश्विक लय एवं वैश्विक समन्वय, ब्रह्मांड में श्वास लेने-छोड़ने की प्रणाली का उपफल हैं। शरीर के स्तर पर भी ऐसा ही होता है। इससे प्राण ऊपर खींचा जाता है और अपान नीचे छोड़ा जाता है। हम प्राण एवं अपान शब्दों से बहुत स्थूल ढंग से परिचित हैं। हम प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान नामों से परिचित हैं; समान सम्पूर्ण अस्तित्व में व्याप्त है तथा प्राण, अपान, व्यान, उदान के भी क्रिया के अपने-अपने क्षेत्र हैं। हम यह भी जानते हैं कि प्राण की ऊर्जा उर्ध्वगामी है तथा अपान की अधोगामी है।

जब हम श्वास लेते हैं तो हम मात्र प्राणवायु ही अन्दर नहीं लेते। कहा जाता है कि प्राणायाम रक्त प्रणाली के ऑक्सीकरण की, उसे ऊर्जस्वी एवं शुद्ध रखने की पद्धति है। शारीरिक स्तर पर यह सही है, परन्तु श्वास प्रणाली मात्र रक्त के ऑक्सीकरण के लिये नहीं है। वह मात्र रक्त के ऑक्सीकरण से कहीं गहरे, कहीं अधिक बहुमूल्य उद्देश्य के लिये है। ऑक्सीकरण एक आवश्यकता है, वह स्वास्थ्य की कुंजी है, जो बीमारियों का निराकरण करती है, रक्त-प्रवाह के दोषों से उत्पन्न कोलेस्ट्रॉल, हाई बल्ड प्रेशर, रक्त-ग्रन्थि इत्यादि, इत्यादि से बचाती है। प्राणायाम का विद्यार्थी यदि प्राणायाम उचित ढंग से करता है, तो स्वयं को इन बीमारियों की संभावना से बचाता है। आप जानते ही हैं, यदि कुछ भी अति में किया जाये, अवैज्ञानिक अथवा गलत ढंग से किया जाये, तो वह अहितकारी बन जाता है; भोजन भी विष बन जाता है। वही भोजन जो पोषण एवं शक्ति प्रदान करता है, वह विष बन सकता है। यह सब तो आप जानते हैं।

अब आप को पुनः मेरे साथ ब्रह्मांड के स्तर पर यात्रा करनी है। *जब अजर, अमर, अनादि, अनंत, जीवन की अव्यक्त सम्पूर्णता*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वयं को व्यक्त करती है, * *तो वह बहिर्गामी श्वास होता है, और जब वह व्यक्त स्वरूपों को अपने अन्दर पुनः समा लेती है तो वह अन्तर्गामी श्वास होता है।* इस प्रकार, ब्रह्मांड के स्तर पर एक प्रकार की श्वास क्रिया से विशेष विषयों में विभेदीकरण, व्यक्तीकरण एवं प्रकटन होता है। अन्तर्गामी श्वास उन्हें स्वयं में विघटन एवं विलयन करना है; वह सम्पूर्णता, जिससे उनका जन्म हुआ था, वही सम्पूर्णता पुनः उन्हें स्वयं में खींच लेती है। यह एक प्रकार की वैश्विक श्वास क्रिया है, यह ब्रह्मांड की श्वास क्रिया का दूसरा पहलू है।

निराकार जब प्रकटन के विभिन्न व्यक्तिक स्वरूपों में श्वास छोड़ता है, तो वह स्वयं को रूप-रंग ओढ़ा लेता है। वह न केवल स्वयं को रूप ओढ़ाता है, वह स्वयं से ऊर्जाओं का प्रसर्जन भी करता है। पंचमहाभूतों में ऊर्जायें होती हैं, आकाश में एक प्रकार की ऊर्जा है, वायु है, अग्नि में नाद की ऊर्जा है, ठोसता एवं उर्वरता पृथ्वी की शक्ति है, वायु में गतिशीलता है, सर्वव्यापकता, समावेशकता आकाश की शून्यता में समायी है। यह ब्रह्मांड बहिर्गामी श्वास है। जब ये ऊर्जायें निम्न से उच्च में विलीन हो जाती हैं, तो वह अन्तर्गामी श्वास क्रिया होती है। मैं आपका परिचय वैश्विक श्वास की दो-एक व्याख्याओं से ही करवा रही हूँ, जिनसे वैश्विक लय बनी रहती है। सूर्य की उष्णता, सागर के जल को सोख लेती है, जो भाप बन घन बनते हैं और फिर बरसते हैं। ऊर्जायें वृत्तीय ढंग से गतिशील होती हैं, वह नष्ट नहीं होतीं। सागर का जल जब भाप में परिवर्तित हुआ तो वह नष्ट नहीं हुआ, भाप जब बादल बन आकाश में तैरे तो कुछ नष्ट नहीं हुआ, वह वर्षा बन धरती पर बरसे। आपने देखा, यह समस्त ऊर्जायें एक वृत्तीय गति में विलीन हुई, यह अन्दर जाती हुई श्वास है।

ओह ! कितना रोचक है यह। इन विवरणों में जाना कितना आनंददायक है। ऋषियों के पास प्रकृति के दृश्यों को व्यक्त करने की

** जब कभी अनादि अथवा अव्यक्त शब्द का उपयोग किया जाता है, उससे संकेत सम्पूर्णता की ओर रहता है।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोई अन्य शैली नहीं थी। वे केवल प्रकृति के प्रेमी नहीं थे, वे प्रकृति के साथ जीते थे; वे उसके अंश थे। हम न केवल अपने मूल से, ईश्वरत्व से कट गये हैं, हम उन ऊर्जाओं से भी कट गये हैं। वे ऊर्जायें जो प्रकृति में समायी हैं, जो ईश्वर की बहिर्गामी-श्वास हैं, उनसे हम कट गये हैं। अब यह केवल धनवानों का अथवा संपन्न लोगों का विशेषाधिकार है कि वे भ्रमण कर, प्रकृति के सम्पर्क में कुछ समय व्यतीत कर सकें। दिन-प्रतिदिन, सुबह से शाम तक प्रकृति के बीच रहना अरण्य संस्कृति का अंग था।

बहिर्गामी श्वास को प्रकटन जानना तथा वृत्तिय रूप से गतिशील ऊर्जाओं के अपने में विलीन होने को अन्तर्गामी श्वास जानना, देखने की यह एक भव्य दृष्टि है। आधुनिक मनुष्य के लिये यह अकल्पनीय है। इसलिये इन विषयों पर कदाचित् ही बात करनी होती है, परन्तु यह संवाद योग के कनिष्ठ तथा वरिष्ठ अभ्यासकों के बीच है। इसलिये मैं आपको इस आत्मिक दिव्य दर्शन के परिश्रम से छूट नहीं दे सकती। शब्दों में व्यक्त करने के अतिरिक्त, इसका संदर्शन मात्र उदात्त बनाता है, क्योंकि प्रकृति शुद्धि प्रदान करती है, जल शुद्ध करता है, पृथ्वी शुद्ध करती है, वायु शुद्ध करती है। यह सब शुद्धिकरण की ऊर्जायें हैं, अग्नि भी शुद्ध करती है। मैं दोहरा रही हूँ कि मैंने मात्र दो-एक भावार्थ ही दिये हैं, यदि हम श्लोक में दिये गये अन्य पहलुओं में जायेंगे तो उसमें बहुत समय लगेगा। इसलिये चलिये अर्थ की दो-एक छटाओं को देख कर ही हम संतुष्ट हो जायें और आगे बढ़ें।

अभी तक हमने ब्रह्मांड के स्तर पर अध्ययन किया है, आईये अब मनुष्य शरीर के स्तर पर उतरें। जब हम श्वास अन्दर लेते हैं, उस श्वास के साथ, सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, जल, आकाश की समस्त ऊर्जाओं को, मूल प्रकृति की आठ स्तरीय ऊर्जाओं को अन्दर लेते हैं। यदि हमें ध्यान रहे कि श्वासो-उच्छवास की क्रिया वैश्विक ऊर्जाओं के साथ एक प्रत्यक्ष सहभागिता है, तो हम श्वास के साथ उन ईश्वरीय ऊर्जाओं को अन्दर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लेते हैं।

श्वास की वैकल्पिक शैली

यदि आप मुझे कुछ क्षण और दें, तो बहुत संक्षेप में मैं उस योगी के विषय में बताऊंगी, जिनसे मेरी भेंट दो वर्ष पूर्व हुयी थी। वह पारसी समुदाय से थे, एक गृहस्थ थे और जब मुझसे भेंट करने आये, तो वह छिहत्तर वर्ष के थे। स्वास्थ्य की एक सुंदर मूर्ति, छः फुट का कद, गुलाबी रंग के कपोल, उनके चारों ओर स्वास्थ्य का प्रकाश था। चौवन वर्षों से, वे सप्ताह में दो बार आहार सेवन कर के जिये थे। सप्ताह में दो बार वह ठोस आहार लेते थे, शेष दिन नारियल जल का एक गिलास अथवा बहुत हल्की चाय लेते थे। भोजन सप्ताह में दो ही बार लेते थे। वे कहते, योग विज्ञान में ब्रह्मांड की ऊर्जाओं को ग्रहण करने का रहस्य है। वे मेरे साथ मानवीय उद्देश्यों के लिये उन ऊर्जाओं के रूपांतरण की चर्चा करने के लिये आये थे। दो ग्रंथों में, उन्होंने Three Step Rhythmic Breathing के विषय में लिखा है। उनमें कहा है कि श्वास क्रिया मात्र शारीरिक क्रिया नहीं होनी चाहिये, यदि आप मात्र ऑक्सीजन लेते हैं, तो वह बहुमूल्य जीवन को व्यर्थ करना होगा। यदि आप सचेतन रूप से श्वास लेते हैं, तो सभी आठ स्तरीय ऊर्जायें अन्दर ली जा सकती हैं। यह लय-बद्ध श्वास-क्रिया के तीन-चरण योग का रहस्य है। अपने दूसरे ग्रंथ में उन्होंने सचेतन जन्म, सचेतन निद्रा, एवं सचेतन मृत्यु की बात कही है। उन्होंने योग सूत्रों को भी क्रम-बद्ध किया है।*

मैं ब्रह्मांड की ऊर्जाओं को श्वास के साथ अन्दर लेने की बात कर रही थी। यह एक संकल्पना नहीं, एक शिक्षा है, श्वास लेने की एक वैकल्पिक पद्धति है। यह शरीर के स्तर पर श्वास लेना, छोड़ना और

---

* *ध्यान में रहे कि वे एक गृहस्थ थे, एक साधारण, मध्यवर्गी भारतीय जीवन जीते थे। किसी साधारण भवन के छटे तल्ले पर रहते थे। उस उम्र में, दिन में तीन-चार बार उन छः तल्लों की सीढ़ियों से नीचे ऊपर जाते-आते थे। फूलों, औषध-युक्त तेलों इत्यादि से औषधियाँ बना कर, अपनी कार में वह मुंबई की झोपड़-पट्टियों में जाते थे। यह योगी मुंबई में रहते थे, उन्होंने अभियांत्रिकी में उपाधी पायी थी और फिर कार्य-काल में राजनीति एवं अर्थशास्त्र का अध्ययन किया था।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फिर उसका सात्मीकरण करना है।

जब आप विचार करते हैं तो वह एक बहिर्गामी श्वास होती है। भले आप उसे शब्दों में व्यक्त करें तथा दूसरे उसे जानें या फिर आप उसे शब्दों में व्यक्त न करें और दूसरे उसे न जानें, परन्तु विचार करना मानसिक उच्छ्वास की क्रिया होती है। किन्हीं प्रभावों को नेत्रों द्वारा देखना, उनका कर्णों द्वारा श्रवण करना अथवा पढ़ना, ये तीन- देखना, सुनना, पढ़ना- महत्त्व के आवागमन होते रहते हैं। मानसिक स्तर पर, यह अन्दर जाती श्वास एवं बाहर जाती श्वास मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डालती हैं। इन दो श्लोकों में कठोपनिषद् कहता है, जैसे आप इन्द्रियों एवं ऐन्द्रिय विषयों की परस्पर क्रिया के प्रति सावधान रहते हैं, वैसे ही आपको बहुत सतर्क एवं सजंग रहना पड़ता है कि आपका मन, आपकी संवेदनशीलता, नेत्रों, कर्णों एवं मस्तिष्क द्वारा क्या अन्दर लेती है और उनसे क्या बाहर जाता है। विचारहीनता का कथन, वह बहिर्गामी कर्म वातावरण को दूषित कर सकता है। यदि अनुचित विषयों को पढ़ा अथवा उनका श्रवण किया जाता है, तो वह अन्तर्गामी श्वास आपके आंतरिक श्वास को दूषित करता है। इस प्रकार अपनी श्वास क्रिया के माध्यम से, या तो हम अपना श्वास दूषित करते हैं अथवा दूसरों का। इस श्वास प्रणाली को पुनः एक समग्रता की श्वासोच्छ्वास प्रणाली के ताने-बाने में गूँथना पड़ता है।

सम्यक स्मृति का मार्ग

यमराज कहते हैं कि श्वासोच्छ्वास की गतिविधि अथवा इन्द्रियों व ऐन्द्रिय विषयों के बीच की अभिक्रिया, इच्छाओं की खींचा-तानी से विकृत अथवा असंतुलित हो जाती है। ज्ञानेन्द्रियों द्वारा विषयों की ओर भागने के प्रयास में, विचार के स्तर पर अथवा शारीरिक स्तर पर अधिक से अधिक लाने का प्रयास रहता है। प्रयास रहता है कि जीवन में जितना हो सके उतना एकत्रित कर लिया जाये, समेट लिया जाये, संकल्पनाओं का, अनुभवों का संग्रह कर लिया जाये, विचारों को अपनी मानसिकता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर आरोपित कर दिया जाये। इससे आप अपने प्रति हिंसा करते हैं। इससे आंतरिक विकास नहीं होता, यह समस्त आरोपण, यह जोड़-तोड़ परिपक्वता में परिणत नहीं होता।

योग विज्ञान के अनुसार, इच्छा के दबाव, तनाव एवं खींचा-तानी से प्रत्यक्ष-बोध विकृत हो जाता है, अनुक्रियायें विकृत हो जाती हैं, मानसिक स्तर पर आने-जाने वाली संवेदनायें भी विकृत हो जाती हैं। इसलिये सजग रहना पड़ता है, परन्तु ठीक यही बात लोगों को पसंद नहीं आती। जीवन के प्रति जागरुकता की यह अभिवृत्ति लोगों को बहुत अनुकूल नहीं पड़ती। क्योंकि हम आदतों से जीना पसंद करते हैं, जहाँ हमें ध्यान न देना पड़े, हमें बात करते समय ध्यान न देना पड़े, खाते समय ध्यान न देना पड़े। एकाग्रता अथवा जागरूकता से भार का अनुभव होता है, क्योंकि हम सुने-सुनाये जीवन जीने के अभ्यस्त होते हैं। हम तो किसीका विचार ले उसका अनुसरण करते हैं, किसी प्रतिमान को मान उसका अनुसरण करते हैं। इसलिये कोई सजीवता नहीं रहती।

चेतना वहाँ है, वह आपके शरीर के शक्ति-केन्द्रों से उंडेली जा रही है, परन्तु लोगों को योग का मार्ग नहीं भाता। उसकी स्वतः अध्ययन की अपेक्षा के कारण, प्रत्यक्ष अवलोकन, सजगता, सतर्कता एवं संयम की माँग के कारण, उसे एक कठोर मार्ग माना जाता है। यदि उनसे नियंत्रण करने को, दमन करने को, दबा देने को कहा जाये तो वह किया जा सकता है, क्योंकि उससे इच्छा-शक्ति का उपयोग होता है। यदि इन्द्रियों को निरंकुश, इच्छाओं के, विचारों के आवेग के साथ दौड़ने दिया जाये तो वह ठीक है। अतिभोग स्वीकार होता है, दमन चलता है परन्तु संयम की बात, मध्य मार्ग की, 'सम्यक स्मृति' की, बुद्ध द्वारा कही उचित एकाग्रता की बात मत कीजिये।* लोगों को मध्य मार्ग नहीं भाता, क्योंकि उसमें संवेदनाओं का व्यापार नहीं

---

* *'सम्यक स्मृति' बौद्धों की उपासना का, बौद्ध साधना का कूट शब्द है, यह मार्ग बुद्ध एवं महावीर दोनों ने सिखाया है।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होता, कोई उत्तेजना नहीं होती; संयम में, समन्वय में कोई उत्तेजना नहीं होती।

वैश्विक समन्वय में जीने से, आप वैश्विक समन्वय को भंग करना नहीं चाहते। यह एक आध्यात्मिक पर्यावरणवाद है। चाहे आप इसे आध्यात्मिक परिस्थित विज्ञान (Ecology) कहिये और चाहे तो पर्यावरण से संबन्धित दर्शन कहिये। यदि हम उस समन्वय को भंग करना नहीं चाहते हैं, तो हमें जीने की एक वैकल्पिक शैली, शरीर एवं उसके बाहर की ऊर्जाओं के साथ संबन्धित होने की एक वैकल्पिक पद्धति खोजनी होगी। *हमें इन्द्रियों व ऐन्द्रिय विषयों की परस्पर क्रिया, विचारों एवं मस्तिष्क के साथ एक वैकल्पिक व्यवहार की शैली खोजनी होगी।* वह तो करना ही होगा, उससे भागा नहीं जा सकता, क्योंकि जीवन जीने के लिये है। विभक्तता में मात्र जीवित रहने की संभावना तो होती है परन्तु वह जीवन नहीं होता; जीना तो संबन्धित होना है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बीसवाँ संवाद

उपनिषदों द्वारा इक्कीसवीं सदी में पथ-प्रदर्शन

ऐसा प्रतीत होता है कि वेदों एवं उपनिषदों के वैश्विक जीवन व मनुष्य जीवन के विषय में वैज्ञानिक आविष्कार, इक्कीसवीं सदी के लिये पथ-प्रदर्शन करने जा रहे हैं। जीवविज्ञान, मनोविज्ञान, अधिमानसिक चेतना, ग्रहों के पारस्परिक संबन्धों की वैज्ञानिक उपलब्धियों इत्यादि पर काफ़ी काम हो चुका है। जर्मनी, फ्रांस व भारतवर्ष में इनका अध्ययन किया गया है। आपकी मित्र विमला, भारत के एक महान योगी, स्वामी गंगेश्वरानंद द्वारा किये गये अनुसंधान की साक्षी रही हैं। माऊँट आबु में स्वामीजी का एक आश्रम था, चार से छः महीने वे भारत के कोने-कोने के अनेकों विद्वानों के साथ वहाँ रहते और अनुसंधान करते। जब कभी उन्हें विनोबाजी की सहायता की आवश्यकता पड़ती, वे मुझे बुलवा भेजते और मैं उनके संदेश ले जाती; गंगेश्वरानंदजी के संदेश विनोबाजी और विनोबाजी के संदेश गंगेश्वरानंदजी के पास ले जाती। एक अन्य महान् वैदिक विद्वान, पंडित सातवलेकर गुजरात के सूरत शहर से थे, जो वाराणसी जाया करते थे। कर्नाटक के ब्रह्मर्षि देवरथजी एक बहुत बड़े वैदिक विद्वान थे। अनुसंधान कार्य, विशेषकर यजुर्वेद पर अनुसंधान के साथ संबन्धित रहना मेरा सौभाग्य रहा है। इस शताब्दी में भी वेदों के पुनः लेखन का कार्य भारत वर्ष में हो रहा है।

मुझे यह कहने की आवश्यकता जान पड़ी, क्योंकि ऋग्वेद में ऋषि एक मंत्र में कहते हैं, मैं पृथ्वी को श्वास लेते देखता हूँ, मुझे सागर के श्वास का अनुभव होता है, सूर्य की गर्म श्वास मुझे स्पर्श करती है, ऊपर आकाश को मैं निःशब्द श्वास लेते देखता हूँ; ब्रह्मांड निःशब्द मुझ पर अमृत बरसाता है। हाँ, पृथ्वी श्वास लेती है तथा आकाश, आकाश-मंडल, सूर्य, चन्द्रमा, वृक्ष, सागर, नदियां भी। हम कठोपनिषद् का अध्ययन करने जा रहे हैं, परन्तु उसके संवाद को ग्रहण करने के लिये एक पृष्ठभूमि तैयार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की जा रही है। आज प्रातः जब मैं तीन बजे उठी, तो ये वैदिक मंत्र मेरे कानों में गुंजन करने लगे। साठवें शतक में उनका श्रवण करना हुआ था; कभी ब्रह्मऋषि देवरथजी, कभी विनोबाजी और कभी गंगेश्वरानंदजी को उनका मंत्रोच्चारण करते सुना था। उनसे तो हमारा पोषण हुआ है।

एक अन्य मंत्र में कहा गया है, सूर्य के प्रकाश में सभी सात रंग समाये हैं, वैसे ही मेरी चेतना के प्रकाश में, इस शरीर में सभी सात रंग समाये हैं; वे वहाँ गुह्य हैं। अपनी चेतना में गुह्य उन रंगों की सहायता से ही मैं उन रंगों को पहचान सकता हूँ। पृथ्वी में सभी खनिज, सभी रंग, तीक्ष्णता के, मिठास के जो रस समाये हैं, वे मेरे शरीर में भी समाये हैं। पृथ्वी के समान मेरा शरीर उन खनिजों, रंगों, रसों को समाये है, वैसे ही मेरी चेतना भी उन्हें समाये हुये है। इस प्रार्थना में आगे कहा जाता है- *हे पृथ्वी, मुझे इन्हें अपने जीवन में व्यक्त करना सिखा दो, हे मित्र,* हे विश्वामित्र, मुझे इन्हें अपने जीवन में व्यक्त करना सिखा दो। मेरे प्रिय मित्र, मुझे, मुझमें ही समायी उष्णता को व्यक्त करना सिखा दो। जैसे तुम उसे सम्पूर्ण विश्व पर फैलाते हो, मुझे भी प्रज्ञा को व्यक्त करना सिखा दो। जैसे तुम अन्धकार को दूर करते हो, मुझे भी अपने अन्तर की अज्ञानता के अन्धकार को दूर करने दो, इत्यादि, इत्यादि।* ऐसे ही सागर को, नदियों को, वृक्षों को संबोधित ये प्रार्थनायें अद्भुत हैं परन्तु हम इन वैदिक प्रार्थनाओं में और समय व्यतीत नहीं कर सकते।

मनुष्य श्वासोउच्छ्वास वैश्विक श्वास पर निर्भर

हम जिस मंत्र से आरम्भ करने जा रहे हैं, वह है- *उर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति।* कठोपनिषद् कहता है प्राण एवं अपान स्वयं गतिशील नहीं होते, उनका अस्तित्व एवं उनकी गतिविधियां वैश्विक श्वास पर निर्भर करती हैं। वह ब्रह्मन् की, ईश्वर की, ब्रह्मांड की श्वास है, जो हमारे शरीर में बसे प्राण को अपनी ओर ऊपर खींचती है और

* *सूर्य का एक नाम मित्र है, सूर्य विश्वामित्र है, सम्पूर्ण विश्व का मित्र है।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वही वैश्विक श्वास अपान को भौतिक तत्त्वों की ओर प्रेरित करती है। *अध्यात्म का, ईश्वरत्व का खिंचाव श्वास को अन्दर लेना है तथा भौतिक तत्त्व की ओर जाना श्वास को बाहर छोड़ना है।*

आईये, इस मंत्र का महत्त्व अपने बहुआयामी दैनिक जीवन के संबन्ध में देखें। हम सम्पूर्ण जैविक जगत् की संरचना के अंश हैं, हमारी मूल वृत्तियां, भूख, प्यास, प्रजनन, निद्रा इत्यादि सांझी हैं, सम्पूर्ण जगत्, वनस्पति साम्राज्य, उसके फूलों, वृक्षों इत्यादि के हम सहभागी हैं। संभवत: यह अवसर नहीं है, मात्र उल्लेख करने दीजिये कि ये मूल वृत्तियां केवल वनस्पति साम्राज्य में अथवा पशु साम्राज्य में ही नहीं परन्तु पृथ्वी के गुणों में, खनिजीय राज्य में भी रहती हैं। ये वृत्तियाँ उनमें रहती हैं परन्तु वहाँ ये मूक रहती हैं। वनस्पति एवं पशुओं में वह गतिशीलता एवं अभिव्यक्ति प्राप्त करती हैं, परन्तु अपनी पूर्णता वे मनुष्य देह में पाती हैं। इसलिये आप भले कहें कि मुझे भूख लगी है और मुझे प्यास है, परन्तु भूख एवं प्यास आपकी इच्छा-शक्ति पर नहीं निर्भर करते, वे तो जैविक नियम हैं। आप भले कहें आप निद्रा लेते हैं परन्तु वास्तव में आप निद्रा नहीं लेते; वह तो संरचना है जो जैविक नियम द्वारा, प्रकृति के विधानों द्वारा शासित है। आप अपनी अंगुलियों पर नाखून नहीं उगाते, आप अपने सिर पर केश नहीं उगाते, आप भोजन का पाचन नहीं करते। आप भले कौर ले कर मूँह में डाल उसे चबा लें परन्तु पाचन क्रिया की अपनी स्वचलित गतिविधि होती है, जो पाचन करती है। यद्यपि हम मूल वृत्तियों की क्रिया से अपना, अहम् का तदात्मीकरण करते हैं, वास्तव में वह अव्यक्तिक, जैविक वृत्तियाँ हैं। *देखा आपने, मिथ्या आत्मन् कैसे अहम् का, अविद्या का निर्माण करती है, अस्मिता व असत्य एकात्मीकरण करती है।*

मानसिक स्तर पर ये विचार एवं भावनायें, व्यवहार के मस्तिष्कीय, तांत्रिकीय, रासायनिक ढंग, हममें सम्पूर्ण मानवजाति द्वारा डाले गये हैं। हमारा जन्म उनको लेकर होता है। हमारी हड्डियों के अन्दर तक प्रतिबन्धन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भरे होते हैं। जब आप कहते हैं मैं सोचता हूँ, वह सामने आये तथ्य के प्रति स्मृति की अनुक्रिया मात्र होती है। इसलिये 'मैने सोचा' और 'आपने सोचा', 'मैने अनुभव किया', 'आपने अनुभव किया' इत्यादि कुछ नहीं होता। *शरीर की तंत्रिकीय-रासायनिक प्रणाली, नियोजित मापदंडों, नैतिक मूल्यों के अनुसार प्रतिक्रिया करने, अनुक्रिया करने के लिये, क्रियाशील होने के लिये प्रतिबन्धित रहती है।* मनोवैज्ञानिकों ने खोज की है कि व्यक्तिक मन मिथक है, अहम् एक कल्पित वस्तु है। विभिन्न समुदायों द्वारा आचार-विचार के स्वरूप, मात्र संगठित ढंग से व्यक्त किये जाते हैं। इसलिये हिन्दु बोध एवं अनुक्रिया की पद्धति, मुसलमानों की पद्धति, यहूदी पद्धति, ईसाई पद्धति इत्यादि होती है। यह नैतिक, सौन्दर्यवाद, तर्क इत्यादि द्वारा संगठित मानसिक मूल्य हैं। इसलिये मानसिक स्तर पर भी यह दावा करना एक भ्रम मात्र है कि 'मैं सोचता हूँ', 'मैं पसंद करता हूँ' अथवा नापसंद करता हूँ। इस स्तर पर भी ऊर्जायें संचालन करती हैं, निर्धारित करती हैं।

कठोपनिषद् अब हमें उससे भी उच्च स्तर पर ले जाता है। वह कहता है कि आप श्वास नहीं लेते, आपका श्वास लेना अथवा श्वास छोड़ना वैश्विक लय पर निर्भर करता है; वह उससे संबन्धित है। प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान इत्यादि की गतिविधि का अस्तित्व वैश्विक लय की गति पर निर्भर करता है। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है-य: प्राणे न प्रणीति येन प्राणा: प्रणीयते। तदेव ब्रह्म तं विद्धि। नैदं यदिदम् उपास्ते ॥ वह जिसे वाणी द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि वाणी का अस्तित्व उस ब्रह्मन् के कारण है। वह जिस का कर्णों द्वारा श्रवण नहीं किया जा सकता, क्योंकि श्रवण कर पाना उस शक्ति पर, वैश्विक शक्ति पर निर्भर करता है। बृहदारण्यक में यह एक सुन्दर मंत्र है।

यहाँ कठोपनिषद् में भी कहा गया है- 'य: प्रणान् उन्नयति,' वह वैश्विक श्वास, वह वैश्विक प्राण आपके प्राण को ऊपर, ईश्वर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की ओर खींचते हैं। कितना सत्य है यह ! *प्रत्येक मनुष्य के हृदय में परम सत्य के लिये एक आकांक्षा होती है, उसमें शुद्ध प्रेम के लिये, सरलता के लिये एक आकांक्षा होती है। पवित्रता, सौन्दर्य, प्रेम, शान्ति, सत्य अथवा मुक्ति के प्रति कर्षण ऊर्ध्वगामी कर्षण है।* यह ग्रन्थों से नहीं आता, इसके लिये ग्रन्थों के अध्ययन की आवश्यकता नहीं होती; आप उसके साथ ही जन्म लेते हैं। हमें भले लगे कि 'मैं आकांक्षा करता हूँ', 'मेरी जिज्ञासा है' परन्तु यह ऊर्ध्व खींचाव है, यह तो जीवन का अनुग्रह है। यह कर्षण वैश्विक कर्षण है जो आपको ऊपर खींचता है। यह वैश्विक श्वास आपको नीचे, भौतिक तत्त्वों की ओर भेजता है, जिसमें आप आधारित रहते हैं। शरीर भौतिक तत्त्व है, शरीर पृथ्वी है, जिसमें चेतना आधार पाती है। क्या आप नहीं कहते कि विमान भूमिस्थित है, ठीक उसी प्रकार चेतना भी भूमिस्थित रहती है। यदि वैश्विक श्वास अपान को भौतिक द्रव्यों की ओर न भेजे, तो इन्द्रियों एवं ऐन्द्रिय विषयों के बीच पारस्परिक-क्रीड़ा संभव नहीं होगी। बुभुक्षा, प्यास, काम-भाव, निद्रा, इत्यादि अपान के दबाव हैं। यह समस्त अपान की अधोगामी शक्ति के कारण संभव होता है। वह आपके निवास स्थान को बनाये रखती है, आपके शरीर को, भौतिक काया को बनाये रखती है।

मार्ग चयन की स्वतंत्रता

प्राण एवं अपान ईश्वरीय कर्षण एवं प्रेरणा हैं। आपके अस्तित्व के मध्य में स्थित आत्मा का वह प्रकाश, वह वैश्विक श्वास आपके शरीर में निवास करते हुये आपको अपनी ओर खींचता है तथा भौतिक द्रव्यों की ओर अग्रसर करता है। फिर भी, वह आपको स्वतंत्रता प्रदान करता है कि आप उस कर्षण एवं प्रोत्साहन को ले कर क्या करें। एक स्वतंत्रता रहती है कि आप सत्य की ओर, मुक्ति की ओर प्रेरित हो सत्य एवं मोक्ष की ऊर्ध्वगामी प्रेरणा का अनुसरण करें अथवा भौतिक द्रव्यों की ओर आकर्षित हो उनमें आसक्त हो जायें। चयन करना एवं निर्णय लेना मनुष्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर निर्भर करता है। इससे वैश्विक लय में स्वतंत्रता का तत्त्व आ जाता है। इस स्वतंत्रता से, आपकी चेतना में अनाग्रही दिव्य आत्मन् की उपस्थिति से, आपकी चेतना में अप्रतिबन्धित ऊर्जा की उपस्थिति से जीने के दो मार्ग बने हैं। मृत्यु के पश्चात् भी ये दो मार्ग, दो भिन्न दिशाओं में ले जाते हैं।

अन्धकार का मार्ग

यदि हम भौतिक द्रव्यों की ओर प्रेरित किये जाने का अनुचित लाभ लेते हैं तथा इन्द्रियों एवं ऐन्द्रिय विषयों की अन्दर-बाहर की क्रीड़ा में लीन हो जाते हैं, इच्छाओं के खेल खेलते रहते हैं, तो हम भौतिक अभिव्यक्तियों की अनेकता में आसक्त हो जाते हैं। उनके पीछे जाने का, उन्हें पाने का, खोने का, विजय-पराजय का खेल चलता रहता है। उस अनेकता का अंत नहीं है, मनुष्य जीवन की सौ वर्ष की अवधि में अनेकता के प्रत्येक विषय को नहीं पाया जा सकता। *पहले आती है संग्रह की वृत्ति और फिर तुलना, प्रतिस्पर्धा, इर्ष्या इत्यादि, इत्यादि; वे खेल, जो इच्छा आपके साथ खेलती है। वह आपको दु:ख, पीड़ा, आसक्ति, आकर्षण इत्यादि की गलियों में, उनकी संकीर्ण गलियों में ले जाती है।* यह सब हमने देखा है, इसलिये हम इसका विस्तार नहीं करेंगे, परन्तु इतना जान लें कि यह मार्ग अन्धकार का, दु:ख का है।

आप भले जो करें और भले जितनी भी गति से जायें, जीवन की असंख्य, विविध अभिव्यक्तियों एवं उसके विविध कर्म क्षेत्रों तक नहीं पहुँच सकते, भले आप कितने ही समर्थ क्यों न हों। फिर कहना होता है, मेरे पास यह है और वह नहीं है, मैंने यह पाया और वह नहीं पाया। एक प्रकार का असंतोष, एक अधूरेपन का भान, आधे-अधूरेपन का भान चेतना के अंत:प्रवाह में बना रहता है। वह अनंत दु:ख एवं पीड़ा की उर्वर भूमि बन जाता है। सफलता, समृद्धि, मान-सम्मान, धन-संपत्ति इत्यादि के बीच, उदासीनता का, अपरिपूर्ति का, अभाव का, अधूरेपन का अंत:प्रवाह रहता है। इसलिये इसे अन्धकार का मार्ग कहा जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रूपकात्मक भाषा में इसे पितृयानमार्ग भी कहते हैं तथा दूसरे मार्ग को देवयानमार्ग कहते हैं।

इस मार्ग को पितृयानमार्ग एवं अन्धकार का मार्ग क्यों कहा जाता है ? क्योंकि मृत्यु के क्षण, चेतना को, मन एवं बुद्धि तत्त्वों को असंख्य वासनायें चिपकी रहती हैं; भौतिक संसार की असंख्य, अतृप्त वासनायें, अतृप्त लक्ष्य एवं आदर्श चिपके रहते हैं। जब शरीर की मृत्यु उन अभावपूर्ण, अधूरी, असंतुष्ट वासनाओं को लिये हुये होती है, तो उनके स्पंदन, विचारों एवं इच्छाओं का सम्मिश्रण आकाश में तैरता रहता है। *शरीर मरता है परन्तु विचार नहीं मरता, वासना,* वह इच्छा नहीं मरती। उनके स्पंदन आकाश में घुलमिल जाते हैं। वे वासनायें धीरे-धीरे एक अन्य मनुष्य देह धारण करने का ढंग खोज निकालती हैं।*

नचिकेता ने पूछा था, क्या मृत्यु पश्चात् कुछ बना रहता है ? यह लिंग-देह, वासना-देह, जो अति सूक्ष्म, अनकही, उपेक्षित, दबायी गयी, अवरुद्ध, हिंसापूर्वक कुचली हुयी इच्छाओं की बनी होती है, वह नहीं मरती। स्पंदनों का सूक्ष्म स्वरूप ले कर, वह एक अन्य देह धारण करती है, जो उन अतृप्त महत्त्वाकांक्षाओं, इच्छाओं इत्यादि की पूर्ति में सहायक होगी। इसे पितृयानमार्ग कहते हैं, अन्धकार का मार्ग अथवा दक्षिणायन मार्ग कहते हैं। मैं आप को दक्षिणायन, उत्तरायण इत्यादि में, ब्रह्मांड में सूर्य की गतिविधि में, यह जानने में कि मृत्यु के लिये कौन सा समय उत्तम है, कौन सा वैश्विक ऊर्जा में विलीन होने के लिये अनुकूल नहीं है, इत्यादि में ले जाना नहीं चाहती। यह एक विस्तृत विज्ञान है, हम इसमें अपना समय नहीं व्यतीत करेंगें। ज्योतिष विज्ञान, खगोल विज्ञान, परामानसिक विज्ञान के बीज उपनिषदों में हैं, जिससे योग के मनोविज्ञान का विकास हुआ है। जब हमने कठोपनिषद् का दो सप्ताह का अध्ययन आरम्भ किया

** वासना एक शब्द है, अंग्रेज़ी भाषा में जिसके अनुवाद के लिये मैं कोई शब्द नहीं जानती। इसलिये, मैं उसे डिज़ायर (Desire) कहती हूँ।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

था तो हमारा यह ध्येय नहीं था।

अभी हम यह जान लें कि जब हम भौतिक द्रव्यों की ओर प्रेरणा का अनुचित लाभ उठाते हैं, तो क्या होता है ? वह प्रेरणा तो जैविक आवश्यकता है। उपनिषद् कहता है, ईश तत्त्व का श्वास आप को द्रव्यों की ओर प्रेरित करता है, भौतिक के साथ सम्पर्क की स्वीकृती देता है, उस परस्पर क्रीड़ा में जीने देता है। इसका यह अर्थ नहीं कि हम अविवेकी हो जायें। इसका अर्थ इन्द्रियों एवं ऐन्द्रिय विषयों की अनियंत्रित, अव्यवस्थित पारस्परिक-क्रीड़ा तो नहीं है। असंयम में जो भी हो, वह निश्चय ही जीवन के विरुद्ध अपराध हो जाता है। जब आप जीवन को किन्हीं विषयों से वंचित रखते हैं तो वह अपराध हो जाता है। उसी प्रकार भले कहे जाने वाले विषयों में भी असंयम रखना, जीवन के प्रति निश्चित रूप से अपराध हो जाता है।

प्रकाश का मार्ग

मनुष्य जीवन एक सुअवसर है। कभी भी, कोई भी व्यक्ति ईश्वरीय कर्षण का लाभ ले, प्रेम की ओर, सत्य की ओर, मुक्ति की ओर, अध्यात्म की ओर अग्रसर होता है। यह एक सुअवसर मिलता है और आपको समझना होता है, तय करना होता है कि आप किस पथ का अनुसरण करें। यह प्रकाश का मार्ग है। ऐसा मात्र रूपकात्मक ढंग से ही नहीं कहा जाता कि यह ऊर्ध्वगामी मार्ग है, उत्थान का, भौतिक के उत्थान का मार्ग है। *केवल जब भौतिक का शुद्धीकरण हो जाता है, जब वह उत्कृष्ट हो जाता है, तब अधिमानसिक अथवा ईश तत्त्व उस पर अनुग्रह के रूप में अवतरित होता है।* यह अरविन्द द्वारा अभिव्यक्त पूर्ण योग (Integral Yoga) का सार है। उन्होंने पूर्ण योग पर, अध्यात्म एवं भौतिक के संश्लेषण (Yoga of Synthesis) पर बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे हैं। Life Divine नामक ग्रन्थ में उन्होंने इस योग का सार दिया है।

यदि हम ऊर्ध्वगामी कर्षण का लाभ लेते हैं, तो हम इन्द्रियों एवं ऐन्द्रिय विषयों की पारस्परिक-क्रीड़ा पर बुद्धि के विभेदात्मक बोध द्वारा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नियंत्रण रखते हैं। तब हम संयम भाव से मन का उपयोग इन्द्रियों के नियंत्रण के लिये करते हैं। संयम अहिंसक होता है, बाध्यता बल पूर्वक किया दमन है, वह हिंसक तत्त्व है। अनुनय, शिक्षा, संयम, सौन्दर्यपूर्ण होते हैं, वे प्रकाश पाने में, आंतरिक विकास में सहायक होते हैं। यदि हम उस ईश्वरीय प्रेरणा का लाभ लेते हैं, जिससे हमारा जन्म होता है, तो वैश्विक श्वास हमारे प्राणों को, हमारी जैविक (Vital) ऊर्जा को इन प्रभुत्वशाली तत्त्वों की ओर खींचती है। तब इन्द्रियाँ संयम में रहती हैं, मन में अस्त-व्यस्त, अराजक भावनायें नहीं रहतीं अथवा मस्तिष्क में अव्यवस्थित विचार नहीं रहते, सब कुछ व्यवस्थित नियमित एवं समन्वय से रहता है। *ध्यानावस्था से, उस ऐल्किमी के आसन से, यज्ञ वेदी की पवित्र स्थलि से सब शुद्ध हो जाता है, परिष्कृत हो जाता है।*

अब स्पष्टता आती है कि वह वैश्विक श्वास है जो मेरे माध्यम से श्वास ले रहा है, वह वैश्विक प्रकाश है जो मेरे माध्यम से प्रकट हो रहा है। फिर भौतिक द्रव्यों के साथ आसक्ति, अनुरक्ति नहीं रहती, ऐन्द्रिय ऊर्जाओं एवं ऐन्द्रिय विषयों की पारस्परिक-क्रीड़ा के साथ व्यसन नहीं रहता। एक खिलाड़ी के समान आप अपना भाग निभा जाते हैं, आप उसे अनावश्यक महत्त्व नहीं देते, आप उसके प्रति अत्यधिक चयनात्मक अथवा तुनकमिज़ाज नहीं रहते। स्वस्थता से, विवेक से, मानसिक संतुलन व समन्वय को बनाये हुये आप उससे गुज़र जाते हैं। तब शरीर से अंतिम अनिवर्त्य प्रस्थान के क्षण कोई पकड़ नहीं होती, अपने अस्तित्व के किसी भी स्तर पर उस प्रयाण के प्रति कोई प्रतिरोध नहीं होता। शरीर की मृत्यु के क्षण वैश्विक श्वास उच्चतर स्थान में चला जाता है। वह वैश्विक श्वास ब्रह्मरंध्र से प्रस्थान कर सकता है, जो प्रयाण का अति सूक्ष्म मार्ग है। कहा जाता है कि योग की पूर्णता ब्रह्मरंध्र से प्रयाण करने में है। यदि वैश्विक श्वास नेत्रों से प्रस्थान करता है, तो उस योगी को दूसरी कोटी का कहा जाता है। कुछ लोगों के वैश्विक प्राण नेत्रों से, कुछ के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नासिका से और कुछ के मुख इत्यादि से प्रस्थान करते हैं।

शरीर में मूलभूत प्रज्ञा से जीवन

नचिकेता तुम मुझसे पूछ रहे थे क्या बना रहता है और किसका अंत होता है ?

न प्राणेन नापानेन, मर्त्यो जीवति कश्चन।
इतरेण तु जीवन्ति, यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ॥

हम केवल प्राण एवं अपान की गतिविधि से ही नहीं जीवित रहते, मात्र शारीरिक मूल वृत्तियों एवं आवेगों द्वारा ही नहीं जीवित रहते, हम विचारों के निष्कर्षों एवं ज्ञान द्वारा ही नहीं जीवित रहते। हम जीवित रहते हैं क्योंकि ब्रह्मन् हमारे प्रत्येक रोम-रोम में व्याप्त है। वह परम प्रज्ञा वहाँ है। आधुनिक भाषा में हम उसे मूलभूत प्रज्ञा (Organic Intelligence) कहते हैं। शरीर की प्रत्येक जीव इकाई में वह प्रज्ञा है। आज यदि वेद काल के ऋषि होते, तो जैसे उन्होंने प्राचीन काल में गाया था कि मैं पृथ्वी को श्वास लेते देखता हूँ, मैं सागर को श्वास लेते देखता हूँ, अब वे कहते, मैं प्रत्येक जीव इकाई को श्वास लेते देखता हूँ।

शरीर की इन्द्रियाँ ही नहीं परन्तु प्रत्येक जीव इकाई एक स्वायत्त प्रणाली है। यह शरीर एक चमत्कार है, एक अपूर्व घटना है। उसकी स्वायत्त प्रणालियों में साहचर्य, उसकी स्वतंत्र कोशिकाओं के बीच की लयबद्धता, उनकी सुव्यवस्था, उनका समन्वय देख हमें ईश तत्त्व को अपने से बाहर, अपने से दूर खोजने की क्या आवश्यकता है ? यदि हम अंत:स्थ हो जायें, तो हम जीवन का रहस्य इसी देह रूपी छत्ते में पा सकते हैं, जहाँ आत्मा रानी-मक्खी है और अन्य मक्खियां ऊर्जायें हैं, जो प्रत्येक पारस्परिक-क्रिया से मधु एकत्रित करती हैं। यह काव्य नहीं है, यह रूपकात्मक भाषा नहीं है।

मनुष्य देह में सर्जनशीलता का सामर्थ्य

अगले मंत्र में कहा गया है, शरीर की विभिन्न ऊर्जायें, शरीर की विभिन्न शक्तियाँ, वे मधु-मक्खियाँ इन्द्रियों एवं ऐन्द्रिय विषयों की पारस्परिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रीड़ा से आनंद का अमृत एकत्रित करती हैं। बुद्धि उसे ध्यान की गुफ़ा में ले जाती है और आत्मा मनुष्य शरीर में अमृत का, जिसे हम शुक्रम्-वीर्यम्-कहते हैं, उसकी रचना करती है। भले वह नर शरीर हो अथवा नारी शरीर, वैश्विक जीवन, ईश्वरत्व, ब्रह्मन् या फिर आत्मन् उस सर्जनात्मक अमृत को उत्पन्न करता है, जिससे अपने ही शरीर से एक अन्य मनुष्य जीव को जन्म दिया जा सके। वीर्यम् की बूंद के लिये काव्यात्म अभिव्यक्ति में शुक्रम् शब्द का उपयोग किया गया है, जिसका अर्थ है शुद्ध, निर्मल। इसका एक अर्थ है वृषण अंग में समाया वीर्यम् , दूसरा अर्थ है वह तारा जो साधक के कदमों का पथ-दर्शक है।*

जैसा कहा गया था, मधु एकत्रित किया जाता है और आत्मा उस मधु को वृषण अंग में निर्मुक्त करती है, ताकि मनुष्य जीव की, एक अन्य शरीर की, एक अन्य जीवन की प्रतिकृति की रचना हो सके। जैसे वैश्विक जीवन ने हमारी रचना की है, हमने उससे जन्म लिया है, हमारी संतान हमसे जन्म लेती है। हम उनकी रचना नहीं करते, जीवन की सम्पूर्ण गति, जीवन की समग्रता की गतिविधि मनुष्य शरीर को उस अमृत की, अनश्वरता की रचना करने का सामर्थ्य देती है। जिस क्षण आप पिता अथवा माता बनते हैं, उस क्षण आप अमरत्व प्राप्त करते हैं। क्योंकि आपने उस अमरत्व के प्रकाश को, चेतना के प्रकाश को धारण करने के लिये एक अन्य पात्र तैयार किया है; आपने ज्योत को आगे बढ़ाया है।

कोई कवि यौन-क्रिया के लालित्य, उसके सौन्दर्य, उसकी पवित्रता के विषय में इससे अधिक काव्यमय भाषा में नहीं लिख सकता, जैसा उपनिषदों में लिखा गया है। जो आप खजुराहो अथवा कोणार्क के मंदिरों में देखते हैं, वह भी अति निम्न स्तर पर लाया गया है। यह तो ब्रह्मन्

---

* कितने ही भावार्थ हैं, यह संस्कृत भाषा एक अति रोचक भाषा है, प्रत्येक शब्द के कितने ही वैकल्पिक अर्थ लगाना संभव है। इसलिये कितनी ही व्याख्यायें दी जाती हैं। कोई द्वैत की दृष्टि से तो कोई अद्वैत से, कोई सापेक्ष द्वैत की बात करते हैं, तो कोई साक्षेप अद्वैत की।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एवं आत्मन् के बीच का संबन्ध है। जैसे ब्रह्मन् सर्जनशीलता एवं समस्त अभिव्यक्तियों का स्रोत है, वैसे आपकी मनुष्य देह में ब्रह्मन् की किरण ने, आत्मन् ने आपको सर्जनशीलता का सामर्थ्य प्रदान किया है। *जैसे ब्रह्मन् के आकाश में ऊर्जायें क्रीड़ा करती हैं, आपका शरीर वह क्षेत्र है जहाँ यह ऊर्जायें क्रीड़ा करती हैं। आप क्यों उन्हें अपनाने का, उन पर अपना अधिकार जताने का प्रयास करते हैं ?* उन्हें उनके स्रोत से अलग नहीं किया जा सकता । वह ब्रह्मन्, परम सत्य, जीवन का सत्त्व है, वह स्रोत है और वह जीवन का नियंत्रक है ।

यस्मिन सर्वं- वह जिसमें सर्वस्व समाविष्ट है; यतः सर्वं- जिससे समस्त का उद्‌गमन होता है, प्रसर्जन होता है; यः सर्वं - वह जो समस्त एवं अनेकता बनता है; सर्वदृक तथा - जो एक साथ बोधकर्ता एवं नियंत्रणकर्ता है; सर्व भाव पदातीतम्- वह जो शब्दातीत है तथा वाणी से परे है; स्वात्मानम नमाम्यहम्- अपने शरीर में निवास करने वाले उस आत्मन् तत्त्व को मैं प्रणाम करती हूँ। अहं ब्रह्मास्मि अर्थात् मेरे अन्दर आत्मा का, उस ब्रह्मन् का प्रकटन है । प्रकाश की किरण सूर्य में समाविष्ट प्रकाश की अभिव्यक्ति होती है, भले वह पृथ्वी का स्पर्श करती है और उसमें प्रवेश करती है, वह सूर्य के संग जुड़ी रहती है। उसी प्रकार आत्मन्, वह त्रिविध अग्नि आपके शरीर में ज्ञान-शक्ति, क्रिया-शक्ति एवं इच्छा-शक्ति, संज्ञान, भाव एवं संकल्प की वह लौ उस वैश्विक सूर्य की किरण है। वह संबन्धित रहती है; पृथकता एक भ्रम है, विभाजन एक भ्रम है, वह एकता का तत्त्व है ।

शरीर में समाये अमृत की अभिव्यक्ति

नचिकेता, तुम अमरत्व का रहस्य जानना चाहते थे। तुम्हारे शरीर में ही अमृत तत्त्व का स्रोत है। कभी वह मधु, वह अमृत, वह अमरत्व नेत्रों से, प्रेम दृष्टि से व्यक्त हो जाता है । वह जो नेत्रों की सहायता से व्यक्त किया जा सकता है, जो दृष्टि के माध्यम से प्रदान किया जा सकता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, वह नज़र में प्रेम बन उतरता है। आपने संतों तथा योगियों की कथायें पढ़ी होंगी, उन्होंने किसी वस्तु पर दृष्टि डाली और उस वस्तु का स्वरूप बदल गया अथवा एक योगी ने मृत व्यक्ति को देखा और कहा- 'उठो' और वह उठ गया। मैं लैज़रस एवं ईसा की घटना की बात कर सकती हूँ, अन्य अनेकों योगियों की भी। ऐसी घटनायें होती हैं, यह कोई चमत्कार नहीं है, उस अमरत्व का पूर्ण सत्त्व नेत्रों से प्रेम बन उमड़ पड़ता है।

प्रेम जीवन का मधु है, प्रेम मनुष्य में अमरत्व का श्वास है। इसलिये वह कभी-कभी व्यक्त हो जाता है, प्रकट हो जाता है, प्रदान कर दिया जाता है। कभी वह नेत्रों द्वारा सक्रिय होता है, कभी वह ज्ञानेन्द्रियों द्वारा क्रियाशील होता है, तो कभी वह आपकी वाणी द्वारा व्यक्त होता है। इससे, जो भी कहा जाता है वह घटित हो रहता है, क्योंकि वह अमृत वाणी में घुल जाता है। वह किसी भी इन्द्रिय में प्रवेश कर स्वयं को व्यक्त कर सकता है, जैसे ब्रह्मन् स्वयं को सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, आकाश, अग्नि द्वारा प्रकट करता है। सूर्य में समाविष्ट अग्नि आपके शरीर में भी समाविष्ट है। जैसे उष्णता एवं शीतलता, ग्रीष्म एवं शरद, बसंत एवं पतझड़ का संतुलन वैश्विक समन्वय एवं व्यवस्था द्वारा बना रहता है, वैसे ही आपके शरीर में भी ताप का, ऊर्जाओं का संतुलन बनाये रखा जाता है। वह आप नहीं करते, वह ईश्वरीय क्रिया है जो घटित होती रहती है। हमने कभी उन्हें देखा नहीं है, हमारे नेत्र भौतिक विषयों के प्रलोभन से ढके रहते हैं, धुंधलाये रहते हैं। वैसे ही कान रुंधे रहते हैं। इसलिये देखते हुये भी हम देखते नहीं, सुनते हुये भी हम सुनते नहीं। जीवन ही ईश्वरत्व है, वह ईश तत्त्व का प्रकटन है।

ऐन्द्रिय ऊर्जाओं एवं ऐन्द्रिय विषयों की पारस्परिक-क्रीड़ा से एकत्रित मधु हृदय में रखा जाता है। कठोपनिषद् विस्तार से वर्णन देता है, आवश्यकता पड़ने पर कैसे वह पुनः अपनी-अपनी इन्द्रियों में फैल जाता है। कठोपनिषद् इस रहस्य का चार मंत्रों में वर्णन करता है। हमारे लिये जितना आवश्यक था हम उतनी गहराई में गये परन्तु ये चार मंत्र सम्पूर्ण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैविक क्रिया, मानसिक क्रिया का वर्णन देते हैं। इनमें वर्णन है कैसे विचार एवं ऐन्द्रिय क्रियाओं में पारस्परिक संबंध होता है; कैसे इच्छाओं का तनाव एवं दबाव यौन-क्रिया को प्रदूषित एवं विकृत कर सकता है, कैसे वह बुभुक्षा की पवित्रता को दूषित कर सकता है, कैसे वह प्यास एवं जल के सहज संबन्ध को दूषित कर सकता है। यह उपनिषद् विस्तार से इन क्रियाओं का वर्णन देता है। *उपनिषद् कहता है, यदि वह संयम, वह मानसिक समन्वय की स्वस्थता हो, तो इन्द्रियों एवं ऐन्द्रिय विषयों की पारस्परिक-क्रीड़ा जीवन के मधु को एकत्रित करने का साधन बन जाती है।* तब प्रत्येक सुख में, आनंद, पीड़ा एवं वेदना में भी जीवित होने का आनंद आता है। मन आनंद का अनुभव नहीं कर सकता, वह मात्र सुख का अनुभव कर सकता है। बुद्धि एवं तर्कशक्ति आनंद की काल्पनिक चर्चा कर सकती हैं, परन्तु वह आत्मन् ही है, बुद्धि के पीछे का चेतना का प्रकाश ही है जो मधुभक्षी है। हमने दूसरे अध्याय की पहली वल्ली में पढ़ा था- य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात्। वह आत्मन्, वह ब्रह्मन् ही मधुभक्षी है। 'अत्ति इति आत्मन्', आत्मन् शब्द की परिभाषा है, वह जो प्रत्येक वस्तु को ग्रहण करती है, उसे संभाले रखती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इक्कीसवाँ संवाद

यमराज की शिक्षा का हमारा अध्ययन, प्रायः समाप्त होने को आया है। मुझे आशा है कि आचार्य यम के साथ व्यतीत किये ये दिन, आपके लिये भी उतने ही आनंददायक रहे होंगे, जितने ये मेरे लिये रहे हैं। यह आचार्य यम हिन्दु समाज के देवता नहीं हैं। उपनिषदों के यमराज सूर्य की सन्तान हैं, जो जीवन के दिव्य प्रकाश, ज्ञान के प्रकाश, प्रेम एवं पोषण के प्रकाश के प्रतीक हैं।

हम जिस भाग का अध्ययन करने जा रहे हैं, वह ब्रह्मन् के साथ, परम यथार्थता के स्वरूप के साथ संबन्धित है। आपने ईशोपनिषद् तथा केनोपनिषद् में ध्यान दिया होगा, शब्द उस यथार्थता तक नहीं पहुँच सकते। वह यथार्थता मन को विचारों, प्रत्ययों एवं संकल्पनाओं द्वारा भी प्राप्य नहीं होती। वह शब्दों से परे है, मन की गति से परे है। फिर भी किसी चरण पर, एकत्व एवं विविधता के रहस्यपूर्ण संबन्ध को, हमारे चारों ओर छायी ब्रह्मांड की विशाल एकता एवं अनेकता को शब्दों में व्यक्त करना अनिवार्य हो जाता है।

एक से अनेक

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो, रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा, रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो, रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा, रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥

इन दो मंत्रों का एक साथ अध्ययन करना होगा। अग्नि का मूलतत्त्व एक होता है, यद्यपि वह भिन्न रूप धारण किये रहती है। अग्नि के भिन्न रूप होने पर भी वह अनेक तत्त्व नहीं बन जाती। अभिव्यक्तियाँ विभिन्न होती हैं परन्तु अग्नि तत्त्व एक ही रहता है। सूर्य में समाविष्ट, पोषण प्रदान करती हुई, प्रकाश प्रदान करती हुई अग्नि एक अभिव्यक्ति है। काष्ठ के टुकड़ों में समायी अग्नि अदृश्य है, वह गुह्य है। काष्ठ से व्यक्त होता हुआ अग्नि का स्वरूप, सूर्य में समायी अग्नि के स्वरूप से भिन्न होता है। पृथ्वी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में समायी अग्नि एक ज्वालामुखी का रूप धारण कर सकती है, पृथ्वी में समायी वही अग्नि बीजों का अंकुरित होना संभव करती है। जन्म से पूर्व जैसे संतान माँ के गर्भ में पनपती है, पृथ्वी के गर्भ में जल समाया है, अग्नि समायी है। यह अभिव्यक्ति भी सागर में समायी अग्नि से भिन्न है। जल में समायी अग्नि आपको जल-विद्युत दे सकती है, यह एक भिन्न अभिव्यक्ति है परन्तु अग्नि तत्त्व तो वही है।

ऋषि चाहते हैं हम समझ लें कि मूलतत्त्व की अभिव्यक्ति, उसके विविध रूपों द्वारा सम्पन्न होती है। हमारी ऐन्द्रिय प्रणाली के कारण, हमें ऐसा प्रतीत होता है कि काष्ठ की अग्नि, पृथ्वी, सूर्य व जल में समायी अग्नि, भिन्न हैं अथवा पृथक हैं। वास्तव में वह न तो पृथक है न ही वह भिन्न है, वह तो एक ही तत्त्व की अभिव्यक्तियां हैं। वैसे ही वैश्विक श्वास की वायु विभिन्न स्वरूप धारण करती है। जैसे काष्ठ की अग्नि का अपना एक व्यक्तित्व होता है, वैसे ही बत्ती की सौम्य लौ की एक भिन्न विशेषता होती है, जिसे आप चाहें तो व्यक्तित्व कह सकते हैं। आकाश के बादलों से कड़कड़ाती हुयी बिजली में एक भयप्रद सौन्दर्य होता है, जो एक अन्य अभिव्यक्ति है। यदि हम यह कल्पना कर लें कि अभिव्यक्तियाँ अनेक होने के कारण अग्नि तत्त्व भिन्न है, तो हम भ्रमित हो जायेंगे। इससे हम माया के साम्राज्य में प्रवेश कर लेंगे। वास्तव में वह एक ही वैश्विक श्वास है, जिसमें अग्नि, वायु इत्यादि समाये हैं।

व्यक्तिक आत्माओं के अस्तित्व का अस्वीकार

यमराज ने जीवन की एकता व एक तत्त्व के अनेकता धारण करने की बात कहना भला क्यों आवश्यक समझा ? क्यों आवश्यक था यह ? संभव है, आप स्तब्ध हों कि ब्रह्मन् तत्त्व के मनुष्य रूप धारण करने पर भी, उपनिषद् आत्मन् का भिन्न अस्तित्व नहीं स्वीकार करता। वह मनुष्य की चेतना में बोध के प्रकाश, श्रवण के, आस्वाद के, गंध के प्रकाश इत्यादि के रूप में रहती है। वहाँ व्यक्तिक आत्मायें नहीं हैं, चेतना तत्त्व, परम प्रज्ञा एक ही है। वह मनुष्य चेतना में केन्द्रित हो वहाँ क्रियाशील

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होती है परन्तु वहाँ एक व्यक्तिक आत्मा नहीं होती, जिसके विषय में आपको विचार कर पूछना पड़े कि मृत्योपरान्त उस आत्मा का क्या होगा? ईंधन के व्यय हो जाने पर अग्नि कहाँ जाती है ? क्या वह आकाश में घुलमिल नहीं जाती ? क्या वह आकाश की शून्यता में मिल नहीं जाती ? ईश्वरत्व का स्वरूप अंततः शून्यता अथवा समस्तता ही तो है। इससे बत्ती की लौ, काष्ठ की अग्नि अंतरिक्ष की शून्यता में लौट जाती है, जिससे उसका जन्म हुआ था। वैसे ही मनुष्य शरीर को प्रदीप्त करने वाला बुद्धि, मन एवं ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से क्रियाशील चेतना का प्रकाश, पुनः आकाश की शून्यता में विलीन हो जाता है। हमने देखा था, यद्यपि इस पृथ्वी ग्रह पर असंख्य मनुष्य शरीर हैं, वे केवल पाँच तत्त्वों से, पृथ्वी, जल, वायु, तेज, आकाश से बने हैं। पृथ्वी के एक छोर से दूसरे छोर तक आप भले जहाँ चले जायें, मनुष्य जीवन, उनके शरीर इन्हीं पाँच तत्त्वों द्वारा रचित हैं; उनके स्वरूप भिन्न हैं। जैसे पाँच तत्त्वों से पक्षी, पशु, मनुष्य बने हैं, वैसे चेतना तत्त्व, प्रज्ञा, चैतन्य, आत्मन्, चाहे आप उसे जो नाम दें- शंकराचार्य जिसे संवित् कहते- वह अग्नि तत्त्व, वायु अथवा श्वास तत्त्व के समान एक ही है। इस कारण भिन्न-भिन्न मन नहीं हैं, कोई व्यक्तिक आत्मायें नहीं हैं।

यह दृष्टिकोण हिन्दु धर्म के उपदेशों से बहुत भिन्न है। हम एक तटस्थ विज्ञान के साथ, ऊर्जाओं के विज्ञान, जीवन एवं जीने के विज्ञान के साथ संबन्ध रख रहे हैं। एक धार्मिक मनोवृत्ति के व्यक्ति को ठेस पहुँच सकती है कि व्यक्ति की एक पृथक आत्मा नहीं है; वह मात्र उस यथार्थता का प्रतिबिम्ब है। वह जीवन का एक ही तत्त्व है जो अनेक बनता है और फिर भी अपनी एकता बनाये रखता है। वह सर्वव्यापी बन कर भी उत्कृष्ट रहता है, वह परिवर्तनीय स्वरूपों में उतर कर भी अपरिवर्तनीय रहता है। आशा है कि आपको ईशावास्य उपनिषद् का कथन स्मरण है- 'तदेजति तन्नेजति तद्दूरे तद्वन्तिके। तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।' ईशावास्य में कहा गया है, वह गतिशील हो कर भी गतिरहित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, परिवर्तनों के बहाव में वह अपरिवर्तनीय है, वह सर्वस्व का सत्त्व है। सर्वस्व का सार होते हुये भी वह सर्वस्व से परे है। वह हमसे बहुत दूर है और निकट से भी निकट है। क्या आपको गीता का कथन स्मरण है? श्रीकृष्ण अपने मित्र अर्जुन से कहते हैं, ईश तत्त्व के एक अंश से ही सम्पूर्ण विश्व का प्रकटन होता है, इस तत्त्व का तीन चौथाई से भी अधिक शेष रहता है। हमारे चारों ओर दिखने वाले बहुविध जीवन से, सम्पूर्ण ईश्वरत्व का पूर्ण व्यय नहीं होता।

यदि आप केन, ईश एवं गीता की शिक्षा का स्मरण करेंगे, तो आपकी समझ में आयेगा, यमराज नचिकेता से क्यों कहते हैं कि चेतना का प्रकाश, ज्ञान, इच्छा एवं क्रिया की वह त्रिविध अग्नि अवबोधक है। वह स्वसंवेद्य है, उसमें प्रेम एवं करुणा की क्षमता है, अभिव्यक्त होकर भी वह मनुष्य दृष्टि से छुपी रहती है। अपने हाथ में एक सूखी लकड़ी का टुकड़ा लेने पर आप हाथ में अग्नि पकड़ते हैं। आप उस अग्नि तत्त्व को देखते नहीं परन्तु जब आप उसके प्रकटन में सहायता करते हैं तो अग्नि प्रकट हो जाती है। उसी प्रकार निम्न को उच्च में विलयन करने के मार्ग से, ऊर्जाओं के रूपांतरण के मार्ग से, आंतरिक ऐल्किमी के मार्ग से एक साधक, ब्रह्मन् के, यथार्थता के, त्रिविध अग्नि के अव्यक्त तत्त्व के प्रकटन में सहायता करता है।

संसार के सभी लोगों को यह निराशाजनक लगेगा कि पहले मनोविज्ञान ने मन खो दिया और अब अध्यात्म कहता है कि हमारी जीवात्मा नहीं है। अगले मंत्र में आप और भारी संकट के लिये तैयार रहिये।

प्रकाश का उपयोग हमारा उत्तरदायित्व

अग्नि एवं वायु पश्चात् अब हम सूर्य के विषय को लेते हैं। सूर्यो *यथा सर्वलोकस्य चक्षुः,* सूर्य की दिव्य दृष्टि सम्पूर्ण सृष्टि पर नज़र रखती है। लोकस्य चक्षुः का यह एक अर्थ है, दूसरा अर्थ है कि हमारे नेत्रों में सूर्य प्रकाश का, दृष्टि का स्रोत है। उस दृष्टि का हम क्या उपयोग करते हैं, वह हमारी स्वतंत्रता एवं उत्तरदायित्व का क्षेत्र है, सूर्य का उससे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोई सरोकार नहीं है। हममें समायी दृष्टि के साथ हम क्या करते हैं, सूर्य का उससे कोई संबन्ध नहीं है। हमारे नेत्रों में वह दृष्टि का, प्रकाश का स्रोत है परन्तु हम उसके साथ क्या करते हैं, यह सूर्य का दायित्व नहीं है। वैसे ही मनुष्य हृदय में विद्यमान चेतना का प्रकाश, परम प्रज्ञा का प्रकाश, ईश्वरत्व का प्रकाश, समस्त बोध, समस्त इच्छाओं, समस्त कर्मों का स्रोत है। फिर भी वह दिव्य प्रकाश, वह आत्मन्, वह ब्रह्मन् उत्तरदायी नहीं कि आप बोध का, अनुक्रियाओं का, इच्छा शक्ति का, क्रिया शक्ति का कैसे उपयोग करते हैं। *ज्ञान, इच्छा एवं क्रिया शक्तियों का हम कैसे उपयोग करते हैं, वह हमारी स्वतंत्रता एवं उत्तरदायित्व का क्षेत्र है।*

मैंने कहा था, यह मंत्र पिछले दो मंत्रों से अधिक विकट है। वहाँ उपनिषद् द्वारा व्यक्तिक आत्मा की कल्पना विस्फुटित की गयी थी। अब यहाँ, उपनिषद् स्वर्ग में बैठे एक अति करूणामय पिता अथवा माता की कल्पना को तोड़ता है। यहाँ उस मिथिक कल्पना का खंडन है, जिसमें कहा जाता है कि वे जो उस ओर उन्मुख होते हैं, उन पर करूणामय दयालु होते हैं। उसी प्रकार कहा जाता है कि जो उस ओर ध्यान नहीं देते अथवा अपना जीवन उसे समर्पित नहीं करते, उन्हें करुणामय दंड देते हैं। आपने देखा, धर्मसंघटनों द्वारा प्रचारित भगवान अथवा देवता, उपनिषदों द्वारा चित्रित ब्रह्मन् अथवा जीवन के स्रोत से बहुत भिन्न हैं; यहाँ न तो कृपा दृष्टि की बात है और न ही दंड की; 'वैषम्य नैवृण्य न्यायः'। धर्मसंघटनों एवं धर्मशास्त्रों द्वारा देवी देवताओं पर आरोपित अनुग्रह एवं दंड के नियम यहाँ पूर्णतः विसंगत हो जाते हैं।

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा। जैसे सूर्य, अग्नि, वायु इत्यादि सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हैं, यह आत्मन् तत्त्व भी सर्वत्र व्याप्त है। यह प्रज्ञा तत्त्व है, अवबोधक प्रज्ञा है, नचिकेता की त्रिविध अग्नि है। जब हम आत्मन् तत्त्व की बात करते हैं तो हमारा अर्थ बोध एवं आत्म-ज्ञान की परम शक्ति से, इच्छा-शक्ति एवं कर्म-शक्ति से होता है; त्रिविध अग्नि को आत्मन् अथवा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्मन् कहा जाता है। वह सूर्य के समान तटस्थ है। आप सूर्य के प्रकाश के साथ जो भी करें, भले आप दूसरों के लिये कुछ कल्याणकारी करें, एक दूसरे को एक-एक कर अथवा एक साथ मार दें, वह सूर्य का उत्तरदायित्व नहीं है। अपने नेत्रों की ज्योति से आप कोई अश्लील साहित्य पढ़ें अथवा कोई पावन साहित्य पढ़ें, वह आपकी स्वतंत्रता एवं उत्तरदायित्त्व का क्षेत्र है।

आचार्य यम मनुष्य जाति की अनन्यता की बात कर रहे हैं, यह पशुओं पर नहीं लागू होता; पशु जाति अव-नैतिक एवं अधो-सैधान्तिक स्तर पर जीती है। उनमें चेतना रहती है, फिर भी आचार एवं नैतिकता के मूल्य एवं आधार इस जगत् पर लागू नहीं होते। यहाँ, मनुष्य काया में, स्वतंत्रता है कि आप अन्धकार का मार्ग लें अथवा प्रकाश का मार्ग लें। यह मनुष्यों पर निर्भर करता है कि वह ध्यान मार्ग लें तथा निर्वाण प्राप्त करें, अथवा वासना के मार्ग से निरंतर दुःख का भोग करें। उन्हें स्वाधीनता रहती है कि वह समनव्य में जीयें अथवा एक दूसरे के साथ, एक दूसरे के विरुद्ध द्वन्द करें। *यमराज यही कहना चाहते हैं कि ईश्वर दुष्टता का रचयिता नहीं है, वह न तो अच्छाई का निर्माण करता है और न ही बुराई का; वह तो एकदम तटस्थ जीवन-शक्ति है।*

आप देख रहे हैं, क्यों लोगों को ईश्वरत्व से भय लगता है, क्यों वह मुक्ति से भयभीत होते हैं। उन्हें एक बाह्य शक्ति चाहिये होती है, जो उनसे पृथक, उन पर नियंत्रण के लिये, उन्हें अशुभ करने से रोकने के लिये, उनमें शुभ कर्म की इच्छा प्रेरित करने के लिये हो। वह उत्तरदायित्व लेना नहीं चाहते। इस मंत्र में यमराज नचिकेता से कह रहे हैं कि अच्छे-बुरे, पाप-पुण्य, प्रेम, करुणा अथवा घृणा, कटुता एवं हिंसा के द्वंद्व का मूल दायित्व मनुष्य पर है, ईश्वर पर नहीं। आप देख रहे हैं, कैसे रूढ़ एवं संघठित धर्मों के आधार को काट दिया गया है। इसीलिये बहुत कम लोगों को अध्यात्म पसंद आता है, वह धार्मिक स्तर पर रहना पसंद करते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं, भगवान द्वारा आश्वासित, उससे सांत्वना पाकर, प्रेरित हो, अनुग्रहित अथवा दंडित हो कर जीना चाहते हैं। इससे अशुभ का भय हमें सही मार्ग पर रखता है, या फिर स्वर्ग में सुखों की कल्पना हमें भलाई करने की प्रेरणा देती है।

हम ईश्वरत्व के सहभागी

मेरे मित्रों, उपनिषद् दिखा रहा है कि हम उस ईश्वरत्व के, उस ब्रह्मांड की शक्ति के, त्रिविध नचिकेता अग्नि के भागीदार हैं, हम उसके भाग हैं । हम ईश्वरत्व के सहभागी हैं। हम किस मार्ग का अनुसरण करते हैं, यह दायित्व हमारा है, क्योंकि हमें मन एवं बुद्धि की ऊर्जायें दी गयी हैं, हम विभेदात्मक बोध का सामर्थ्य रखते हैं। यदि हम क्षुधा, लोभ, प्रलोभनों अथवा भय के मारे अन्तर न समझें, तो उसका दायित्व हम पर है । हमें प्रदान की गयी शक्तियों का उपयोग हम कैसे करते हैं, वही हमारे जीवन का स्वरूप निर्धारित करता है; अंततः वही निश्चित करता है। उसे अपना भाग्य अथवा नियति कहने से, किसी पिछले जन्म पर दोष डालने से कोई लाभ नहीं। अध्यात्म में ऐसी आत्मनिर्भरता लोगों को बहुत अप्रिय होती है। वैसे ही अर्थव्यवस्था एवं राजनीति में आत्मनिर्भता अथवा लोकतंत्र, या तो तानाशाही राज्यों या फिर कल्याणकारी राज्यों के नाम से टाली जाता है। प्रौद्योगिकी के विकास के नाम से मनुष्य अपनी स्वाधीनता खो रहा है। *उपनिषद् हमें अपनी स्वाधीनता छोड़ने की, हमें दी गयी शक्तियों के उपयोग के उत्तरदायित्त्व से बचने की अनुमति नहीं देते ।* वे कहते हैं, आप उनसे परिचय पाईये, सुव्यस्थित रीति से उनके साथ निभाईये और अभिज्ञता से जीने का कर्म कीजिये। अन्य शब्दों में, कठोपनिषद् किन्हीं बन्धनों का स्वीकार नहीं करते, इसी कारण इनमें मुक्ति का भी स्थान नहीं होता । यहाँ या तो अविद्या है अथवा विद्या, अज्ञान है अथवा ज्ञान, गलत तदात्मीकरण, अस्मिता, राग, द्वेष हैं अथवा है सही मिलन ।'योग युज्यते इति योगः' ; इस कथन के अनुसार या तो अपने मूल, अपने स्रोत से कटे रहिये अथवा उससे संयुक्त रहिये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा। हमें वशी शब्द पर भी ध्यान देना है। वशी का अर्थ है, वह जिसके नियंत्रण में यह प्रकट संसार है। अन्तरात्मा अर्थात् ज्ञान, इच्छा, क्रिया का आंतरिक प्रकाश। वह त्रिविध प्रकाश नियंत्रण में समर्थ है। वस्तुत: पंचतत्त्वों का आंतरिक समन्वय एवं सुव्यवस्था, जिससे सम्पूर्ण ब्रह्मांड की रचना हुयी है, वे पंचमहाभूत आत्मन् के नियंत्रण में हैं। वशी अर्थात् उसके नियंत्रण में हैं। वह स्रोत है, बोध का मूल है, प्रज्ञा है, प्रेम है, वह हमारे चारों ओर की सुव्यवस्था एवं समन्वय का स्रोत है, उसका सार है। फिर भी जहाँ तक मनुष्य जीवन का संबन्ध है, वह प्रकाश तटस्थ रहता है।

मनुष्य चेतना में आंतरिक परिवर्तन की प्रतीक्षा

जहाँ तक मनुष्य शरीर का प्रश्न है, उसे क्रमविकास (Evolution) की निष्पत्ति माना गया है। अब अगला कदम चेतना के आंतरिक परिवर्तन का है। *अब चेतना के आयाम में परिवर्तन (Mutation) की, जीवन में परिपक्वता के, समन्वय के प्रकटन की प्रतीक्षा है।*

वह मूलतत्त्व 'एक:', वह अद्वितीय जिसके जैसा दूसरा और नहीं है, वह देश-काल में प्रकट पाँच तत्त्वों का नियंत्रण करता है। भू भवति अर्थात् वह जो घटित हुआ है। भूत अर्थात् घटित हुआ है, जो देश काल के संदर्भ में घटित हो चुका है; इसलिये जिसका रूप-विधान है, जिसका भौतिक गुण है। भौतिक विज्ञान की भाषा में, अंतरिक्ष में पारस्परिक क्रिया करती हुई ऊर्जायें, उस क्रिया द्वारा घनीभूत हो जाती हैं। जीवन के पाँच तत्त्व- आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी-अंतरिक्ष में हैं, वे परस्पर क्रियाशील हैं। उस पारस्पारिक क्रिया द्वारा वे ऊर्जायें ठोस हो जाती हैं, जिन्हें आप भौतिक पदार्थ कहते हैं। आप पदार्थ को ऊर्जा से अलग नहीं कर सकते, पदार्थ में ऊर्जा समायी है। वैसे ही, वह जो ऊर्जाओं से परे है, यथार्थ है, जीवन का स्रोत है, होनापन है, वह पदार्थ में समाया है। जीवन से वंचित कुछ भी नहीं है।

जीवन का प्रकाश वहाँ है, प्रज्ञा का प्रकाश वहाँ है। वह पाँच

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्त्वों पर नियंत्रण रखता है और फिर आप पर छोड़ देता है, आप उन ऊर्जाओं का उपयोग चाहे जैसे करें। भला ईश्वर हमें अशुभ करने से रोकता क्यों नहीं? क्योंकि वह उसकी भूमिका नहीं है। यह एक अति अप्रिय सत्य है। *यह मनुष्य जाति कब परिपक्व हो आत्मनिर्भरता की चरम सीमा से, मुक्ति से, अप्रतिबन्धित स्वतंत्रता से प्रेम करेगी तथा मानवीय संबन्धों एवं प्रकृति के साथ सबन्ध में उसका उपयोग करेगी ?* यह कार्य इक्कीसवीं सदी में किये जाने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। समस्त अशुभ का स्रोत अहंकार के नाम से अथवा जीवात्मा के नाम से, एक पृथक अस्तित्व की कल्पना में है। समस्त अनिष्टता इस पृथकता की कल्पना में है, अहंकार में है। अहंकार से बढ़ कर कोई बुराई नहीं है और अच्छाई भी नहीं।

जीवन में विरोधाभासों का अस्तित्व

मेरे लिये यदि यह विषय पर्याप्त रूप से स्पष्ट करना संभव हो पाया है, तो चलिये इसे एक अन्य दृष्टिकोण से देखें। आपको स्मरण होगा कि कठोपनिषद् के पहले अध्याय में, उपनिषद् ने यह कह कर आरम्भ किया था कि जीवन एक अग्नि है। यमराज ने नचिकेता को समझाया था कि जीवन ही अग्नि है परन्तु वह जलाती नहीं। पृथ्वी में समायी अग्नि आपको जलाती नहीं, आपके बाहर अंतरिक्ष की अग्नि आपको जलाती नहीं। आपकी पाचन इन्द्रियों में समायी अग्नि आहार का पाचन करती है, जब तक कि आप उसका दुरूपयोग नहीं करते वह आपको जलाती नहीं। आपकी दृष्टि में समायी रोशनी आपको हानि नहीं पहुँचाती, जब तक कि आप उसका उपयोग हानिकारक उद्देश्यों के लिये नहीं करते। इच्छा तत्त्व प्रत्येक गतिविधि के प्रेरक के रूप में है, अपने आपमें वह विनाशक नहीं है। इस इच्छा तत्त्व, इस गति तत्त्व के बिना जीवन का होना संभव नहीं है। इसके बिना समस्त ज्ञान, आत्मज्ञान भी अप्रकाशित रहता, क्योंकि प्रकट होने के लिये एक संकल्प की आवश्यकता होती है। 'एकोऽहम् बहुस्याम्'; एक की, एकत्व की अपने सत्त्व से अनेक बनने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की इच्छा हुयी। एकता स्वयं को अनेकता के दर्पण में निहारना चाहती थी, अनेकता की गतिविधि में वह संबन्धों का आनंद लेना चाहती थी। संकल्प- सः अकल्पयत; ईश्वरत्व ने संकल्प लिया, उसकी इच्छा हुयी। वास्तव में प्रकटीकरण उस त्रिविध अग्नि में इच्छा की गतिविधि का उपफल है। ऐसे ही हमारे हृदय में भी आत्म-बोध है और वहाँ इच्छा-शक्ति है। यह शक्ति ज्ञान को ऐन्द्रिय प्रणाली तक ले जाने में सहायक होती है और फिर कर्म करना संभव होता है।

ईश्वर कोई दार्शनिक कल्पना नहीं है, ईश्वर कोई गोबर-गणेश नहीं है। लोग करुणा शब्द का उपयोग करते हैं परन्तु उससे उनका अर्थ 'दया' से होता है। वह एक तानाशाह शक्ति नहीं है, वह स्वयं को आरोपित करना नहीं चाहती। आप कल का कहा स्मरण करें, जहाँ ईश्वर को एक अनाग्रही शक्ति कहा गया था। वह अग्नि सर्व-व्यापक है, शीतल है, वह आपको जलाती नहीं। अंतरिक्ष में अग्नि है, जल में अग्नि है परन्तु आप चाहें तो जल में डुबकी लगाईये और तैरिये, जल की शीतलता का आनंद लीजिये। क्या आप विरोधाभास देख रहे हैं? निर्मल शीतल जल में अग्नि समायी है, जिससे आप बिजली उत्पन्न करते हैं और अपने घरों में पंखे, बत्तियाँ इत्यादि जलाते हैं। क्या आपने सूर्य की ऊर्जा से चलने वाले वातानुकूलन यंत्र बने देखे हैं ? सूर्य ऊर्जा को संरक्षित कर आप बिजली उत्पन्न कर सकते हैं, आप उससे भोजन पका सकते हैं, आप वातानुकूलन यंत्र इत्यादि चला सकते हैं। जीवन अग्नि है।

वैश्विक श्वास के समान वैश्विक अग्नि है, जो सर्वस्व में व्याप्त है; उसे ईश्वर कहिये, ईश तत्त्व कहिये, चाहे तो ब्रह्मन् कहिये। यह वर्णन देने का अवसर नहीं है, कैसे आकाश में टिमटिमाते सितारों में, चन्द्रमा में अग्नि तत्त्व है। आप उस अग्नि से घिरे हुये हैं। आपके शरीर के भिन्न केन्द्रों में, विभिन्न स्वरूपों में दस प्रकार की अग्नि है, नेत्रों में अग्नि है, मुख में अग्नि है, कंठ में अग्नि है, हृदय में अग्नि है, उदर में अग्नि है, यौन अंगों में अग्नि है, श्वास में अग्नि है। यदि हम स्वयं को जलाना चाहें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तो हम उन अग्निशिखाओं का, शरीर के अन्दर एवं शरीर के बाहर वैश्विक अग्नि के प्रसर्जन का दुरूपयोग कर सकते हैं।

आत्मा सर्वथा मुक्त

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुः। मैं पुनः ग्यारहवें मंत्र की पहली पक्ति पर लौट रही हूँ। सूर्य एवं सूर्य का प्रकाश आप की दृष्टि के अंगों अथवा क्रिया यंत्रों में दोष के कारण प्रभावित नहीं होता। मान लीजिये आपको मोतियाबिंद है, आप देख नहीं सकते या फिर आप डबल व्हिज़न से पीड़ित हैं, एक सूर्य की जगह आप दो देखते हैं, क्रिया यंत्रों में यह दोष अथवा विकृतियां सूर्य के प्रकाश पर, सूर्य के गुणों पर प्रभाव नहीं डालतीं। वैसे ही जब कोई व्यक्ति लोभ, क्षुधा, ईष्या, क्रोध, नीचतावश ऊर्जाओं का दुरूयोग करता है, तो हृदय में वास करती आत्मा उससे प्रभावित नहीं होती।*

आत्मन् पवित्र है। भले आप ज्ञान, इच्छा एवं क्रिया शक्ति का दुरूपयोग करते हैं, आप उस अग्नि से उद्भूत ऊर्जाओं का अनुचित लाभ उठाते हैं, उससे वह प्रभावित नहीं होती। गीता में श्रीकृष्ण, अर्जुन से कहते हैं- 'न मां कर्माणि लिम्पन्ति, न मे कर्मफले स्पृहा।' कोई भी विकृत कर्म, विकार से, अस्वस्थता से किया गया कर्म आत्मा को दोष नहीं लगा सकता। अनुचित ढंग से किये कर्म उस आत्मन् को बांध नहीं सकते। लिम्पन्ति अर्थात् दूषित नहीं कर सकते; वे मुझे दूषित नहीं कर सकते, वे मेरे गुणों को नष्ट नहीं कर सकते, उन्हें क्षति नहीं पहुँचा सकते, वे मुझे अशुद्ध नहीं कर सकते। वह तो मनुष्य देह है जो दूषित हो जाती है, ऊर्जाओं का प्रसर्जन प्रभावित हो जाता है, वह मंद पड़ जाती हैं, प्रकाश धूमिल पड़ जाता है, सजीवता क्षीण पड़ जाती है, अभिनवता चली जाती है और जड़ता आ जाती है। यह सब होता है, परन्तु वह तो शरीर के साथ होता है, वह जिसमें प्रकाश रहता

** उपनिषद् के इस कथन का गलत अर्थ लगाये जाने की संभावना है। संभवतः इसका दुरूपयोग व अनुचित लाभ उठाया जाता है।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है अथवा जिससे वह ढका है, जिसके आवरण में वह है।

यमराज ने यह क्यों कहा ? मुझे लगता है ऐसा कहा गया, क्योंकि वे दिखाना चाहते हैं कि मुक्ति की चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। हम सोचते हैं कि आत्मा बंधी हुयी है, इसीलिये उसे मुक्त करना है। *पहले, उपनिषद् ने आत्मा की पृथकता का, जीवात्मा का खंडन किया । अब वह कह रहा है कि कोई बन्धन ही नहीं है, इसलिये मुक्ति की कोई आवश्यकता नहीं है।* आवश्यकता है केवल सही जीवन जीने की शैली की।

ऐल्किमी के आंतरिक मार्ग द्वारा प्रकटन

तद अन्तरस्य सर्वस्य। वह आपके जीवन का सार है । वह आपको अपने बाहर कहाँ मिलेगा ? ध्यान रहे कि आपकी आंतरिक एवं बाह्य इन्द्रियों में दृश्य को देखने की क्षमता नहीं है। कर्ण उस नाद का श्रवण करने में समर्थ नहीं हैं, दृष्टि में भी सामर्थ्य नहीं कि वह उसे देख सके, जिसने स्वयं को हृदय आकाश में छुपा रखा है। एक आवर्धक लेन्स (Magnifying Glass) से भी आप हाथ में पकड़े लकड़ी के टुकड़े के अन्दर की अग्नि नहीं देख सकेंगे। आपके आँगन में एक सुन्दर गाय खड़ी रहती है, परन्तु कोई भी यंत्र उसमें समाये दूध को देखने में सहायक नहीं हो सकते; जब तक कि आपको दूध दोहना नहीं आता हो । वैसे ही बाह्य एवं आंतरिक इन्द्रियाँ दृष्टा को देखने में समर्थ नहीं हैं, वह ज्ञाता को जानने की तथा अस्तित्व के अशब्द नाद का श्रावण करने की क्षमता नहीं रखतीं। वह प्रकटीकरण तो केवल ऐल्किमी के आंतरिक मार्ग द्वारा, आंतरिक अग्निओं का उपयोग कर, अपनी ऊर्जाओं की उनमें आहुति डाल कर होता है।

अनाश्रयता का भय

लोगों को ब्रह्मन् की, उस तटस्थ शक्ति की बात से भय लगता है। जीवात्मा गयी, सुखकर भगवान गया और हम रह गये उत्तरदायित्व एवं स्वतंत्रता के साथ। इसलिये मुझे लोग कहते हैं, हमें यह आघातप्रवणता (Vulnerability) एवं दायित्व नहीं चाहिये। आप यह कहने के लिये मुझे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्षमा करें, परन्तु पृथ्वी पर लाखों वर्ष व्यतीत करने पश्चात् भी, मनुष्य जाति को धर्म अथवा अध्यात्म के नाम से एक पिता तुल्य, एक माता तुल्य व्यक्ति की आवश्यकता होती है। गुरु के नाम से उन्हें एक माता समान, पिता समान व्यक्ति चाहिये होता है; उस पर निर्भर होने के लिये, उसके द्वारा अनुभव करने के लिये। *लोगों को जीवन की अग्नि के समक्ष आघातप्रवणता का, अनाश्रयता का भय होता है। वैश्विक जीवन की अनावृत्तता का उन्हें भय होता है। इसलिये वह यथार्थता एवं अपने बीच एक आवरण चाहते हैं।*

कृपया मेरे साथ देखिये। अध्ययन किया जा रहा मंत्र बहुत महत्त्वपूर्ण है। यदि आप केवल पढ़ जाते हैं- यथा अग्नि भुवनं प्रविष्टो, इत्यादि, इत्यादि तो उससे कुछ लाभ नहीं है। यमराज जो सिखाना चाहते हैं, यदि आप वह समझते हैं, तब उसका महत्त्व है। यह अमरत्व एवं नश्वरता के नृत्य की शिक्षा है , जो आपके शरीर में, आपके चारों ओर के अंतरिक्ष में हाथ थामे एकसाथ नृत्य करते हैं। यह व्यक्त एवं अव्यक्त का उद्‌गमन एवं पुनः विलयन का नृत्य है; एकता एवं अनेकता का नृत्य है। हम उसके साथ जीना नहीं चाहते। हम या तो विविधता एवं अनेकता को पूर्ण सत्य मान कर जीना चाहते हैं अथवा मुहँ मोड़ कर एकता एवं एकत्व की संकल्पना को पकड़े रहना चाहते हैं। इन दो की ध्रुवता से, हम उनके बीच तनाव पैदा करना पसंद करते हैं। जन्म एवं मृत्यु, सुख एवं दुःख, एकता एवं अनेकता में हम तनाव पैदा करते हैं और उस तनाव में जीते हैं। हम दिलासा के, सांत्वना के, सुरक्षा के आधार चाहते हैं। कृपया देखिये।

उपनिषद् कहता है, हजारों में एक साधना पथ का अनुसरण करने का साहस करता है। गीता में कहा गया है-'मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चित् सिद्धये यतति'। हजारों में कोई एक प्रश्न करने के लिये प्रवृत्त होता है, वह सत्य-असत्य में, नश्वर-अनश्वर में अन्तर समझने का प्रयास करता है। अधिकतर तो इन्द्रियों के तथ्यों को स्वीकार कर के जीया जाता है। या फिर एकता के नाम से, एकत्व के नाम से जीवन एवं संबन्धों का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्याग कर मानसिक वियुक्ति में जीया जाता है। अन्धकार के इन दो मार्गों का अनुसरण किया जाता है । मुहँ मोड़ लेने का मार्ग ही अन्धकार का मार्ग है, वह प्रकाश का मार्ग नहीं। मनुष्य होने का लालित्य, एकता एवं अनेकता की ध्रुवता के सामंजस्य में है, इन्द्रियों एवं ऐन्द्रिय विषयों की परस्पर क्रीड़ा के स्वीकार में है, उस परस्पर सम्पर्क में संतुलन बनाये रखने में है।

प्राच्य ऋषियों की विशाल दृष्टि देख व्यक्ति स्तब्ध रह जाता है, जो वैश्विक अग्नि, वैश्विक श्वास तथा वैश्विक त्रिविध अग्नि की, उसके मनुष्य हृदय में केन्द्रित होने की बात करते हैं । मनुष्य हृदय में उसके प्रवेश करने पर, उसके प्रवेश द्वारा उत्पन्न हुयी ऊर्जाओं के उपयोग अथवा दुरूपयोग की मनुष्य को स्वतंत्रता देते हैं। अद्‌भुत है यह !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाईसवाँ संवाद

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥

नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विद्धाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥

इन दो मंत्रों का अध्ययन हम एक साथ करने जा रहे हैं। यह हमें अनंत आनंद एवं अनंत शान्ति के मार्ग का वर्णन देते हैं।

अपने ही अस्तित्व में अनुसंधान

जीवन का प्रकाश, चेतना का प्रकाश व्यक्त आकृतिओं की गतिविधियों का नियंत्रण करता है। जीवन का वह प्रकाश अपने सत्त्व को आकृतिओं की विविधता एवं अनेकता में अभिव्यक्त होने देता है। एक साधक, एक धैर्यवान व्यक्ति, जीवन के उस स्रोत, चेतना के उस स्रोत का बोध अपने अन्दर करता है। एक साधक जब अपने हृदय की गुफ़ा में प्रवेश करता है, तो वह जीवन के उस प्रकाश को अपने अन्दर प्रकट होने देता है। चेतना के प्रकाश का प्रकटन, जीवन के प्रकाश का प्रकटन आनंद में, नित्य आनंद में, एक पूर्णता के भान में परिणत होता है। यह पहला मंत्र था। दूसरा मंत्र कहता है, वह जो अल्पकालिक रूप-विधान में नित्य है, वह जो जीवित एवं नश्वर शरीर में अनश्वर है, वह जो समस्त सचेतन जीवों में चेतना है, एक साधक चेतना के उस मूल का, चेतना के उस स्रोत का प्रत्यक्ष बोध पा जाता है। चेतना का वह प्रकाश जब उसके हृदय की गुफ़ा में स्वयं को प्रकट करता है, तब एक अविनाशी, अजय शान्ति आती है, जो उसके जीवन की सुगंध बन जाती है।

अब तक हमने इन मंत्रों का अभिधार्थ देखा है, चलिये अब इनकी शिक्षा के आत्मिक निहितार्थ को समझते हैं। उपनिषदों में आत्मिक शिक्षा है, जब कि धर्मशास्त्रों में लोकप्रचलित शिक्षा है। आत्मिक शिक्षा जीवन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के रहस्य प्रकट करने में सहायक सिद्ध होती है, वह प्रकटीकरण का माध्यम बनती है। ये दो मंत्र हमें क्या सिखाना चाहते हैं ? मुझे ऐसा जान पड़ता है कि उनके कथन अनुसार, हमें अपने अनुसंधान एवं अपनी खोज देह के बाहर नहीं करनी है। वे हमें दिशा प्रदान करते हैं, जिससे हमें अपने अस्तित्व से बाहर, अपने शरीर से बाहर न जाना पड़े, ऐन्द्रिय विषयों में नहीं, विचारों में, कल्पनाओं में, दर्शनशास्त्रों में न जाना पड़े। तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां; वह रहस्य तुम्हारे ही अन्दर छुपा है। कठोपनिषद् का पहला संदेश है कि अपने बोध के प्रकाश को अंतर्मुखी करो। अपनी इन्द्रियों को पोषण देने के सिवा उन्हें बाह्य विषयों में मत अटकने दो। अनुसंधान एवं खोज के क्षेत्र को बनाये रखने के लिये आपको बाह्य के साथ संबन्ध रखना पड़ता है, उनके साथ पारस्परिक क्रिया करनी पड़ती है; नहीं तो अपने से बाहर, अपने से दूर कुछ खोजना व पाना नहीं है।

विभेदात्मक बोध का सामर्थ्य

दूसरा संदेश खोज के क्षेत्र से संबधित है। अस्तित्व के आन्तरिक विषयों में वह क्षेत्र कौन सा है ? *कहाँ अनुसंधान करना है और फिर उसकी कार्य प्रणाली क्या होगी ? वह क्षेत्र है आंतरिक एवं बाह्य इन्द्रियाँ। आंतरिक एवं बाह्य इन्द्रियों को विभेदात्मक बोध में समर्थ करना होता है।* क्योंकि इन्द्रियाँ ही निरंतर अपने विषयों के सम्पर्क में आती हैं, इन विषयों में पागल कर देने वाली विविधता होती है। एकता एवं अनेकता से इतनी बड़ी समस्या नहीं होती, उनके बीच के घ्रुवत्व से उतनी समस्या नहीं होती, परन्तु अनेकता में विविधता होती है, उनमें रूप-रंग की, आकारों की, आस्वादों एवं गंधों इत्यादि की विविधता होती है। इस कारण इन्द्रियां अनेकता से प्रसन्न होती हैं, जहाँ वह इधर-उधर घूम सकती हैं। वे अनेकता की संख्या से प्रसन्न होती हैं क्योंकि वह चयन का, पसंदगी, नापसंदगी का क्षेत्र है; फिर बाह्य जगत् में नशीली विविधता भी तो है। विविधता का संबंध गुणों से है तथा अनेकता संख्या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की ओर संकेत करती है। इन्द्रियों को विविधता एवं अनेकता के साथ संबन्ध रखना पड़ता है, उनके बीच, उनके साथ जीना पड़ता है। बाह्य ऐन्द्रिय विषयों के साथ की पारस्परिक क्रिया एक नितांत नशीला व्यवहार है। इन्द्रियों को विभेदात्मक सम्पर्क में, एक वरणात्मक सम्पर्क में, विविधता एवं अनेकता के वरणात्मक सात्मीकरण में शिक्षित करना पड़ता है। अध्यात्म में कुछ भी वर्जित नहीं है, कुछ भी निषिद्ध नहीं है, कोई भी बने-बनाये ढंग नहीं हैं, क्योंकि उससे आपकी स्वतंत्रता जाती रहती है।

इन्द्रियों को विभेदात्मक सम्पर्क एवं विभेदात्मक सात्मीकरण के लिये कैसे समर्थ किया जाये ? ऋषि कहते हैं आपके अन्दर ही वह बुद्धि तत्त्व एवं मन है। जीवन के अनुग्रह से बुद्धि तत्त्व में विभेदात्मक बोध की क्षमता रहती है, वह क्षणिक का, अनित्य का भेद कर सकती है, वह सत्य एवं असत्य में भेद कर सकती है। मन अनुभव कर सकता है, क्या हितकारी है तथा क्या अहितकारी है। एक साधक को सर्वप्रथम, मन एवं बुद्धि की सहायता से बाह्य विषयों का विभेदात्मक बोध करना पड़ता है, उस विविधता से, उस अनेकता से एक स्वस्थ चयन की क्षमता का उपयोग करना पड़ता है।*

मनोभौतिक स्तर पर समन्वय एवं सुव्यवस्था

जब विभेदात्मक बोध होता है, यथार्थता, स्वस्थता एवं हितकर पर ध्यान केन्द्रित रहता है, तब आपके अस्तित्व में एकत्व जागृत होता है। जब आंतरिक एवं बाह्य इन्द्रियों के स्तर पर यह विभेदात्मक बोध, सम्पर्क एवं वरण होता है, तो मूल में पड़ा एकता तत्त्व क्रियाशील हो उठता

* मौन के समय क्या आपने बाहर एक पक्षी के गाने के स्वर सुने थे। संत विनोबा के साथ लम्बी पद-यात्राओं में, इस पक्षी को सुनना होता था। वह कहते यहाँ रुको, सुनो भला वह पक्षी क्या कह रहा है ? कौन स्वस्थ है ? 'हितभुक्-मितभुक् कौन', वे ऐसे स्वरों की कल्पना करते या फिर पक्षी के गायन पर उनका रोपण करते। कौन स्वस्थ है ? कौन अपनी सभी इन्द्रियों से स्वयं को हितकारी पोषण देता है ? 'मितभुक्' ! कौन उसे सही मात्रा में देता है? विनोबा ऐसा कहते और हंसते। वे हमें ऐसे सिखाते थे , स्वरों से, पक्षियों के गायन से, पक्षियों की चहचहाहट, वृक्षों की टहनियों से हो कर बहती हुयी समीर की गति इत्यादि से वह सिखाते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। तब समन्वय एवं सुव्यवस्था तत्त्व, जो वैश्विक अस्तित्व के ताने-बाने में गूँथा है, वह क्रियाशील हो आपके अस्तित्व में व्यक्त होता है। इससे आपके व्यक्तित्व को एक भिन्न स्वरूप मिलता है। यह दूसरा कदम एकत्व का, समविषयकता का कदम है। यदि बुद्धि एवं मन, बुद्धि शक्ति एवं मन की मौजों के बीच एक अविरल संघर्ष होता रहे, यदि आपकी बुद्धि अथवा समझ के कथन तथा इन्द्रियों के विद्रोह के बीच एक विरोध, एक तनाव रहे तो व्यक्तित्व बिखर जाता है। तब सभी ऊर्जाओं के बीच सामंजस्य नहीं रहता। ऊर्जाओं का समन्वय, साधना अथवा सत्य की खोज का अनिवार्य अंग है। आंतरिक बोध के लिये, आंतरिक प्रकटन के लिये क्षेत्र कहीं बाहर नहीं, हमारे भीतर ही है।

अब आपने अपने मनोभौतिक क्षेत्र को समन्वय, सुव्यवस्था एवं स्वास्थ्य द्वारा तैयार कर लिया है। मानसिक स्वस्थता के सिवा समन्वय और क्या है ? आंतरिक अव्यवस्था मानसिक रोग ही तो है। जब समन्वय हो जाता है, तब उन सुसंगत ऊर्जाओं तथा एकता के साथ, सात्मीकरण के क्रियाशील तत्त्व के साथ आप लगभग एक सम्पूर्ण व्यक्ति बन जाते हैं। इससे, आप कम से कम एक अविभक्त, अखंडित व्यक्ति बन जाते हैं। अपने मनोभौतिक अस्तित्व को व्यवस्था एवं समन्वय के जल से शुद्ध कर, आप हृदय में मौन की गुफ़ा में प्रवेश करते हैं।

सहजता में विश्राम

ध्यान दीजिये ऋषि हमसे क्या कह रहे हैं। यमराज, नचिकेता से क्या कह रहे हैं ? वे कहते हैं, मनोभौतिक स्तर पर तुमने सुसंगत ऊर्जाओं के साथ गुफ़ा में प्रवेश किया, वह जो तुम कर सकते थे तुमने किया। *अब, उस मौन की गुफ़ा में तुम्हें प्रतीक्षा करनी है। जब तक वह स्वयं को प्रकट न करे तुम कुछ नहीं कर सकते।* अब तुम एक सुन्दर सहजता में विश्राम करो, क्योंकि मनुष्य देह में तुम वह कर चुके हो जो तुम्हारा धर्म था। तुमने बुद्धि-तत्त्व का उपयोग किया है, तुमने मन की संवेदनशीलता का उपयोग किया है, तुमने ऐन्द्रिय ऊर्जाओं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का भी व्यवहार कर लिया है। हमें जीवन में यह करना होता है। यदि इन्द्रियों को वंचित रखा जाये, यदि मन की संवेदनशीलता की अवहेलना की जाये, यदि बुद्धि की सत्य-असत्य में विभेद करने की माँग की उपेक्षा की जाये, तो फिर भले आप दिन में दस घंटे ध्यान में बैठें, ध्यान नहीं होगा। ध्यानावस्था, वह निरपेक्ष मनोभौतिक विश्रांति की अवस्था, आंतरिक समन्वय का उपफल होती है। आपके बैठने से ही वह वहाँ होती है, बशर्ते वह आंतरिक व्यवस्था एवं समन्वय जीवन में हो।

दर्शन उसी के प्रकाश से

ऋषि द्वारा कथित दोनों मंत्रों की दूसरी पंक्तियाँ सौन्दर्यपूर्ण हैं, उनमें एक आनंद का सौन्दर्य है। धीराः ये अनुपश्यन्ति; पश्यन्ति एक सुन्दर शब्द है, जिसका अर्थ है बोध, अनुपश्यन्ति अर्थात् वह बोध प्रकट होता है। ऋषि कहना चाहते हैं कि अब आपने मौन एवं शून्यता की गुफ़ा में प्रवेश कर लिया है, आपका सम्पूर्ण ध्यान, आपकी समग्र संवेदनशीलता, सम्पूर्ण अस्तित्व वहाँ है। जीवन का वह स्रोत- तमात्मस्थं- वह आत्मन्, वह प्रकाश जो आप के अस्तित्व में ऐसे छुपा था जैसे काष्ठ में अग्नि छुपी रहती है, वह प्रकाश अब व्यक्त हो जाता है, वह प्रकट हो जाता हैं। *हमें बोध होता है, क्योंकि वह प्रकट होता है। ऋषि हमें बोधकर्ता भी नहीं कहते, वे कहते हैं हमें वह बोध होता है क्योंकि प्रकटीकरण हुआ है।* इस उक्ति को स्पष्ट करने के लिये एक उपमा, एक अनुरूपता दी गयी है। जैसे आकाश में सूर्य उदय होता है, वैसे ही आपकी आंतरिक सूर्य रूपी आत्मा आंतरिक आकाश के मौन से उदय होती है। यह बाह्य सूर्य आकाश में उदित होता है, उसी के प्रकाश से हम उसे देख पाते हैं। वह सूर्य जो सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है, उसीके प्रकाश से आप विषयों को भिन्न-भिन्न रूप में देख सकते हैं। इस प्रकार पहले प्रकटीकरण होता है, फिर आपको बोध का श्रेय प्रदान किया जाता है।

क्या आप प्रकटीकरण की रहस्यपूर्ण भाषा समझ रहे हैं?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुपश्यन्ति, अनु अर्थात् तद् उपरान्त; पहले प्रकटीकरण और फिर बोध होता है ।* यह आत्मन् का, जीवन के स्रोत का, यथार्थता का प्रकट होना है और फिर सम्पूर्ण मनोभौतिक अस्तित्व द्वारा उस उपस्थिति का अनुभव करना है । यह अनुभव सर्व प्रथम बोध होता है, फिर वह पारदर्शी पर्दा भी हटा दिया जाता है और आप सम्पूर्ण प्रकाश के स्पर्श का अनुभव करते हैं । आप अनुभव करते हैं कि आपका अस्तित्व प्रकाशमय हो गया है, दीप्त हो गया है, वह प्रबुद्ध हो गया है । तमात्मस्थं धीरा: अनुपश्यन्ति; किसी भी उपनिषद् के अध्ययन में ऐसी अभिव्यक्ति मेरे ध्यान में नहीं आयी है । *देखना हुआ, क्योंकि प्रियतम ने स्वयं को शोधित दृष्टि को, शुद्ध किये हुये मनोभौतिक यंत्र को प्रकट किया।* जब ऐसा हुआ, जब प्रकटीकरण एवं परिणामी बोध हुआ, तब वहाँ एक आनंद एवं एक पूर्णता की प्रतीति हुई, क्योंकि आपने अपने ही अंदर जीवन एवं प्रकाश के स्रोत को देखा । आपने उसे उसी के प्रकाश से देखा । जैसे आप सूर्य को, सूर्य के प्रकाश में देखते हैं, आप आंतरिक लौ की आत्मज्योति को, उसके प्रकाश में देखते हैं।

अस्तित्व का चौथा आयाम

यदि यह विषय सही रूप से स्पष्ट हो गया हो, तो आइये इस मंत्र को कुछ भिन्न दृष्टिकोणों से देखें । हम विज्ञान के युग में रहते हैं, जहाँ जीवन के मूल, जीवन के स्रोत की खोज में भौतिक तत्त्व का उपयोग किया जाता है । भौतिक तत्त्व से आरम्भ कर वे वैज्ञानिक ऊर्जाओं तक पहुँचे हैं, वे जानना चाहते थे कि ऊर्जाओं के आगे क्या है । वहाँ उन्होंने शून्यता पायी । उन्होंने शून्यता का भेदन किया और वे वहाँ मूलसत्ता अथवा शुद्ध 'होनेपन' के बिन्दु पर पहुँचे । यह रूप-विधान का उपयोग करना है, भले वह परमाणु हो, इलेक्ट्रॉन हो, प्रोटॉन हो, न्यूट्रॉन हो, उससे भी सूक्ष्म भौतिक तत्त्व का अंश अथवा तरंग हो । वे उसे Strings अथवा अन्य जो

---

* *यह बहुत पवित्र शब्द हैं, एक प्रेमी एवं प्रेमिका के बीच हुये रहस्यमय संवादों अथवा संदेशों के समान हैं यह ।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुछ भी कहते हों परन्तु वे जीवन के स्रोत की खोज में रूप-विधान का उपयोग करते हैं। यह विज्ञान का पथ एक बहिर्गामी पथ है। यह कुछ सीमा तक परिणाम देता है, फिर एक बिन्दु ऐसा आता है जहाँ से वैज्ञानिक आगे नहीं बढ़ सकता।

अध्यात्म अंतर्मुखी मार्ग है तथा विज्ञान बहिर्मुखी मार्ग है, जो जीवन के मूलतत्त्व की खोज रूप-विधान की सहायता से करता है। अध्यात्म एक अंत:स्थ पथ, एक आत्मिक पथ है। इस पथ पर आप अपने शरीर के अन्दर कोई यंत्र नहीं ले जाते। आप केवल अपनी चेतना, अपनी संवेदनशीलता का उपयोग करते हैं, आप उसे शुद्ध करते हैं। आप अपने शरीर को सूक्ष्मग्राही बनाते हैं, आप अपने मस्तिष्क इत्यादि को संवेदनशील बनाते हैं। उसके लिये आंतरिक साधनों, आंतरिक इन्द्रियों का उपयोग किया जाता है। पथ आंतरिक है, साधन आंतरिक हैं तथा चेतना में ही खोज होती है। जीवन के रहस्य की, जीवन के मूल, जीवन के स्रोत की खोज चेतना में ही की जाती है; किसी बाह्य रूप-विधान में नहीं, अपितु चेतना में ही। देखिये, आन्तरिक मार्ग अथवा बाह्य मार्ग के अनुसरण में मात्र यही अन्तर है।

वैज्ञानिक बाहर की शून्यता जाँचते हैं, वे अंतरिक्ष की शून्यता में समायी ऊर्जाओं के अन्वेषण तथा उनका उपयोग करने में व्यस्त हैं। यहाँ, हम आंतरिक चेतना के विभिन्न स्तरों पर खोज करने में व्यस्त हैं। *हम खोजते हैं कि वह परम प्रकाश कौन सा है, जो चेतना को प्रकाशित करता है, जो इन्द्रियों को प्रकाशित करता है। वह प्रकाश क्या है जो नेत्रों को दृष्टि का तथा कर्णों को श्रवण का सामर्थ्य प्रदान करता है।* आंतरिक मार्ग चेतना का परिशोध है, चेतना के स्रोत के रहस्य को व्यक्त होने का, उसे प्रकट होने का अवसर देता है। आपने दो मार्गों की भिन्नता देखी। सभी वैज्ञानिक सहमत नहीं होंगे कि चेतना का वैश्विक चेतना के रूप में, भौतिक तत्त्व से स्वतंत्र अस्तित्व है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हम प्राच्यकालीन उपनिषदों का वैज्ञानिक अध्ययन कर रहे हैं। हमारे लिये यह जानना आवश्यक है कि आज हम किस स्थिति में हैं। हमारे एक ऑस्ट्रेलिया निवासी मित्र हैं जो चालीस-पैंतालीस वर्षों के लगभग होंगे, वे लेख लिखते हैं। उन्होंने अनेकों लेखों में लिखा है कि चेतना की भौतिक से स्वतंत्र कोई सत्ता नहीं है। उनके अनुसार, वह भौतिक तत्त्व है जिसका विकास हो रहा है, भौतिक से, भौतिक के क्रमविकास से चेतना भी स्वयं को व्यक्त कर रही है, परन्तु वह भौतिक का ही गुण है। दूसरी ओर उपनिषद् कह रहा है कि चेतना का प्रकाश, जिसे चैतन्य, संवित्, ब्रह्मन्, आत्मन्, परम प्रज्ञा, वैश्विक चेतना इत्यादि अनेकों नाम दिये गये हैं, उसी से आकाश, वायु, अग्नि, तेज, जल व पृथ्वी का विकास हुआ है।

हमें इस भिन्नता एवं भिन्न मार्गों पर गौर करना है। इन मार्गों का सामंजस्य कैसे होगा, यह एक रुचिकर विषय है। जो इक्कीसवीं सदी के अरुणोदय तक जियेंगे, वे यह सामंजस्य देखेंगे। उदाहरणत:, विशेषज्ञों को अनुभव है कि ऐलोपैथी के चिकित्सा विज्ञान में- शल्यविज्ञान को छोड़ कर- एक प्रकार का अधूरापन है। वे वैकल्पिक चिकित्सा विज्ञानों की छान-बीन कर रहे हैं, वे ऊर्जाओं के विज्ञान आयुर्वेद की जाँच कर रहे हैं, ऐक्युप्रेशर, ऐक्युपंक्चर इत्यादि का भी यूरोप, अमरीका इत्यादि देशों में अध्ययन किया जा रहा है। आहार संबन्धी क्षेत्र में, शिक्षा के क्षेत्र में तथा अन्य क्षेत्रों में भी ऐसे अध्ययन हो रहे हैं। हमें जानकारी रहनी चाहिये, क्योंकि हम बिना जाने समझे उपनिषदों के प्रति विश्वसनीयता को प्रोत्साहन नहीं देना चाहते। हमें शीघ्रता से सहमत अथवा असहमत नहीं होना है, स्वीकार अथवा अस्वीकार नहीं करना है। यदि हम उपनिषदों के कथन को समझ सकें, तो अपने देश लौट कर वैज्ञानिकों के साथ संवाद कर भिन्नताओं को समझ सकेंगे। हमें भिन्न मतों से अवगत रहना चाहिये, फिर ही योग पथ का अनुसरण अपनी इच्छा एवं निर्णय से करना चाहिये।

सत्य की खोज रूप-विधान एवं भौतिक तत्त्वों के विश्लेषण द्वारा की जाती है। यही खोज चेतना के विश्लेषण तथा परीक्षण द्वारा की जाती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। यह विभिन्न आयाम हैं। जागृत अवस्था की चेतना का परीक्षण किया गया है, स्वप्नावस्था का अध्ययन किया गया है, निद्रावस्था में चेतना की जांच होती आयी है। उपनिषद् तो तुरीयावस्था की, चेतना के चौथे आयाम की भी बात करते हैं; जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीया; तुरीया अर्थात् चौथा आयाम। उनका कथन है कि चेतना का चौथा आयाम भी है, जो ध्यान द्वारा सक्रिय हो जाता है।

योग का विद्यार्थी धारणा से ध्यान में Quantum Jump लेता है, उसमें स्थिर हो उसे समाधि का आयाम बनने देता है। यह चेतना के आयामों का परीक्षण है। यह किसी नगण्य, तुच्छ दंभ अथवा अभिमान से नहीं किया जाता, ऐसे नहीं कि मैं इतने घंटों ध्यान करता हूँ, मुझे ध्यान में यह प्राप्त हुआ इत्यादि, इत्यादि। हम ध्यान सम्पूर्ण मनुष्य जाति की ओर से करते हैं। जिस युग में हम जी रहे हैं चेतना के मूल की खोज उसकी माँग है। इसलिये चलिये, कठोपनिषद् अथवा किसी भी अन्य उपनिषद् का अध्ययन हम उस संदर्भ के प्रति सचेत रह कर करें, आज हम जिसमें जी रहे हैं। ऋषियों के समक्ष वह चुनौती नहीं थी जो आपके समक्ष है, वह समग्रता का जीवन था और हम विखंडित विश्व में जी रहे हैं।

आत्मा स्वयंभू ,स्व-प्रकाशित

यदि इन दो मंत्रों का अर्थ स्पष्ट हो तो हम आगे बढ़ें। आचार्य यम को शान्तिपूर्वक सुनने पश्चात् , नचिकेता, हमारा वह प्रिय मित्र अपना मुँह खोलता है। मेरे आचार्य, आप मुझसे कह रहे हैं कि वह अनंत आनंद एवं अनंत शान्ति का स्रोत हमारे भीतर है, हमें किन्हीं बाह्य परिस्थितियों अथवा उपलब्धियों पर निर्भर नहीं करना पड़ता। मुझे यह स्वीकार है। *कथं नु तद्विजानीयां किमु भाति विभाति वा।* नचिकेता एक अति महत्त्वपूर्ण, एक अति उपयुक्त प्रश्न पूछ रहा है। वह कहता है, आप जीवन के प्रकाश द्वारा दीप्त आंतरिक सत्ता की बात करते आये हैं, उसके द्वारा इन्द्रियों को बाह्य प्रकाश देखने का सामर्थ्य प्रदान करने की बात करते आये हैं। आप कहते हैं कि उसी प्रकाश द्वारा हम देख सकते हैं, सुन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकते हैं इत्यादि, इत्यादि । अब कहिये, मैं उस प्रकाश को कैसे पहचानूँ -किमु तद्विजानीयां ? हम उस प्रकाश को कैसे जानें ? कैसे हम उसे पहचानें ? क्या यह संभव नहीं कि हम बुद्धि के शुष्क प्रकाश तथा शाब्दिक ज्ञान को वह ज्योति समझने की भूल कर बैठें ? क्या यह संभव नहीं कि हम भावनाओं के आवेग को वह प्रकाश समझ बैठें ? बहुत विनम्रता से, नचिकेता यह प्रश्न पूछ रहा है । इस प्रश्न का दूसरा भाग है- किमु तद् विभाति भाति वा ? वह ज्योति स्वयं को कैसे प्रज्वलित करती है ? वह परम ज्योति कैसे सत्ता में आती है ?

नचिकेता ऐसा प्रश्न पूछ रहा है, जिसका शब्दों में उत्तर देना लगभग असंभव है । वास्तव में आचार्य यह कहने के लिये बाध्य हो सकता है कि तुम उस प्रकटीकरण को होने दो और फिर देखो । यमराज ऐसा नहीं करते, जैसे नचिकेता के पास अथाह तितिक्षा रही है, उनके पास अथाह धैर्य है ।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥

देखो नचिकेता, वहाँ कोई सूर्य नहीं; न तत्र सूर्यो भाति । यहाँ इस ग्रह पर, ब्रह्मांड में, बाह्य आकाश में सूर्य है, जिसके प्रकाश से तुम भौतिक पदार्थों को देखते हो परन्तु इस सूर्य का एक भौतिक ग्रह-पथ है । न तत्र सूर्यो भाति; मैं उस क्षेत्र की, उस आंतरिक आकाश की बात कर रहा हूँ, जहाँ तुम्हारे बाह्य सूर्य का प्रकाश नहीं है । न चन्द्र, न तारकं; वहाँ चन्द्रमा का प्रकाश नहीं, वहाँ तारका मंडल भी प्रकाश नहीं देते । मौन में प्रवेश करने के लिये उनका प्रकाश अत्यधिक स्थूल है । न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति; बिजली भी वहाँ नहीं जा सकती। बाह्य आकाश में, बादलों पर सवार हो वह जहाँ चाहे कड़क कर आतंक की चपेट दे सकती है परन्तु वह चेतना में प्रवेश नहीं कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

सकती। मैं चेतना के आकाश की बात कर रही हूँ, उस आकाश की नहीं जिसे आप बाहर देखते हैं। जंगलों व पृथ्वी में समायी अग्नि अथवा जल भी उस चेतना में प्रवेश नहीं कर सकता।

तुम मुझसे पूछ रहे हो, किसके प्रकाश से तुम उसे देख सकते हो ? अथवा किसके प्रकाश से वह चेतना प्रकाशित होती है ? प्रकाश उसका सत्त्व है। तस्य भासा विभाति सर्वं; आकाश में दिखने वाले सूर्य का सत्त्व प्रकाश है, कोई उसमें प्रकाश भरता अथवा उंडेलता नहीं है; वह उसका गुण है, उसका सार है, उसका स्वभाव है। प्रकाश अथवा उष्णता या फिर किरणों की गतिविधि सूर्य के साथ जोड़ी नहीं जाती। *वैसे ही चेतना का प्रकाश, स्व-बोध, इच्छा-शक्ति एवं कर्म-शक्ति का वैश्विक त्रिविध प्रकाश, जिसकी मैं चर्चा करता हूँ, वह स्व-प्रकाशित है, वह स्वयंभू है तथा स्व-नियंत्रित है।* उसके प्रकाश से तुम्हारा अन्तर प्रकाशित हो जाता है, जैसे सूर्य के प्रकाश से बाहर पृथ्वी पर सब प्रकाशित एवं दीप्त हो जाता है।

यमराज कहते हैं आंतरिक सत्ता दीप्त हो जाती है, वह प्रकाश अन्तर को प्रकाशित कर देता है। इससे उनका किस ओर संकेत है ? हमने एक मंत्र में अध्ययन किया था, जहाँ यमराज नचिकेता से कहते हैं, जब तुम निद्रावस्था में रहते हो वह प्रकाश जागृत रहता है। तुम जो स्वप्न देखते हो वह उसके प्रकाश द्वारा देखे जाते हैं, क्योंकि तुम्हारा अहम् प्रसुप्तावस्था में रहता है। वहाँ बाह्य प्रकाश नहीं रहता। तुम अन्धकार में सो रहे होते हो, फिर भी तुम जीते-जागते स्वप्न देखते हो, रंग देखते हो, विषय देखते हो, शब्द सुनते हो। वह जो तुम्हारे निद्रा में रहने पर जागृत रहता है, वह जो अपने सत्त्व से तुम्हें प्रकाश देता है, जिसकेमाध्यम से तुम स्वप्न देखते हो, वह जो गहरी निद्रा में रहने पर भी तुम्हारे शरीर की प्रत्येक एकाई को सजीवता देता है, वह आत्मन् का स्वभाव है, वह आत्मन् है।

यहाँ कहा जा रहा है कि अपने अस्तित्व के आंतरिक जगत् में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हम अपने भाव एवं विचार देखते हैं। ऐसा नहीं होता क्या ? आंतरिक आकाश में इतने विचार उठते हैं कि आप उनकी गणना भी नहीं कर सकते। वे कितनी शीघ्रता से उठते हैं और आप उनका अनुभव करते हैं। उन विचारों को जिन्हें शब्दों में कहा भी न गया हो, उन विचारों के अनुभव का सामर्थ्य कौन देता है ? हमारे सिर के ऊपर खुले आकाश में उड़ते हुये बादलों के समान, हमारे आंतरिक आकाश में विभिन्न मनोभाव, विभिन्न भावनायें उड़ान भरती रहती हैं। यह सब किससे संभव होता है ? उन्हें प्रकाशित करने वाला वह अहम् नाम का मिथ्या तत्त्व नहीं है, जैसा कि वह कल्पना करता है। उस परम तत्त्व को अपना अस्तित्व अथवा बोध बनाये रखने के लिये किसी विषय की आवश्यकता नहीं होती, वह उसका आंतरिक गुण है।

नचिकेता, तुम्हें वे भावनायें उसके प्रकाश से दिखती हैं। इससे पहले कि विचार शब्दों का आवरण धारण करें तुम्हें उनका बोध हो जाता है। आपको चार प्रकार की वाणियों का वर्णन दिया गया था, वैखरी- वह जिसे हम उच्चारित करते हैं, मध्यमा- जो कंठ में स्थित है; पश्यन्ती- जिसे हृदय में देखा जाता है; परा- वह जो निःशब्द है, जिसने अभी कोई शब्द धारण नहीं किया है। ये चार प्रकार की वाणियां हमारे शरीर में गतिशील एवं क्रियाशील रहती हैं। दूसरों से कहीं अधिक हम अपने आपसे बातें करते हैं।

आंतरिक जगत् की समावेशकता

यमराज नचिकेता को बता रहे हैं कि एक आंतरिक जगत् है, एक आंतरिक आकाश है, एक आंतरिक प्रकाश है, तथा अन्दर घटित होती घटनायें हैं। पेट में एक संवेदन से भूख का अनुभव होता है, एक अन्य संवेदन को प्यास कहा जाता है; संवेदनों को देखा जाता है, उनका अनुभव किया जाता है। भले कोई व्यक्ति अनपढ़ हो, जिसे आपके भूख, प्यास, निद्रा इत्यादि नाम ज्ञात न हों परन्तु अस्तित्व के सभी स्तरों पर बोध की सहज वृत्ति रहती है। वहाँ एक सहज बोध शक्ति रहती है। वह मूल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाश, वह मूल आत्मपरकता आंतरिक जगत् में उपलब्ध विभिन्न साधनों के माध्यम से काम करती है। कौन सभी अनुभवों, विचारों एवं ज्ञान की स्मृतियों को एकत्रित रखता है ? कौन आपकी स्मृति में पाये जाने वाली समावेशकता बनाये रखता है ? केवल जब कोई मनस्ताप ग्रस्त होता है अथवा मनोव्याधि से पीड़ित होता है, तब स्मृति के विषय बिखर जाते हैं, अव्यवस्थित हो जाते हैं और स्मृति को जोड़ने वाली कड़ी नहीं रहती; अन्यथा स्मृति में समाये अनुभवों में सुसंगति रहती है। कौन है जो जैविक तथा मानसिक वंशानुक्रम को अन्दर बनाये रखता है ? यमराज ये प्रश्न उठा रहे हैं।

यमराज कहते हैं आंतरिक सत्ता की, आंतरिक क्षेत्र की समावेशकता उस आत्मन् द्वारा बनायी रखी जाती है। आपके बाहर, पंचप्राणों में वह संसक्ति उसीके द्वारा रखी जाती है। वह सुव्यवस्था का स्रोत है, वह समन्वय को जागृत रखता है। वह एकता का केन्द्र है, जो समस्त विविधताओं, अनेकताओं, विभिन्नताओं, असंगतिओं, विरोधाभासों को एक समग्रता में गूँथे रखता है। वह अनेकताओं का संग्रह नहीं है, वह संग्रहण नहीं है, वह तो एक समग्रता है जिसमें प्रत्येक अपना स्थान पाता है। प्रकाश के साथ अन्धकार को स्थान मिलता है और उन्हें एक साथ रखा जाता है। जन्म के रूप में उद्‌गमन तथा वृद्धावस्था के रूप में क्षय, दोनों एक शरीर में सुसंगति में रहते हैं।

उपलब्ध रहने का आमंत्रण

यमराज कहते हैं उसके प्रकाश से, उसकी शक्ति से, सब कुछ प्रकाशमय होता है, सब कुछ प्रदीप्त होता है, प्रत्येक वस्तु को संबन्धित रखा जाता है; एतद्वै तत्। *नचिकेता, बोध उसी के प्रकाश से होगा। तुम्हें उस की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं।* तुम मुझे पूछ रहे हो किसके प्रकाश से तुम उसे देखोगे। तुम्हें चिन्ता की आवश्यकता नहीं, तुम्हारे हृदय में त्रिविध अग्नि का प्रकटीकरण सर्वस्व प्रकाशित कर देगा। तुम्हें एक ही काम करना है और वह है उपलब्ध रहना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुझे स्वामी विवेकानंद का स्मरण हो आया है, वे कहते- मित्र, तुम कहाँ अपनी मुक्ति खोज रहे हो, न यह लोक और न ही परलोक तुम्हें वह प्रदान कर सकता है। वह तुम्हारा ही हाथ है जो उस बंधन को पकड़े हुये है, जो तुम्हें खींचे ले जा रहा है। अब रुदन छोड़, अपनी पकड़ छोड़ कहो ॐ तत् सत् ॐ। निरर्थक ही तुम माता, पिता, संतति, पत्नि, सखा इत्यादि के स्वप्न देखते हो। वह काम-रहित आत्मा, किसकी माता और किसका है पिता? आत्मा ही है सर्वस्व, अन्य कुछ भी नहीं। हे निर्भय संन्यासी, कहो ॐ तत् सत् ॐ। अद्वैत का यह गीत जीवन के स्रोत के रूप में, जीवन के सत्त्व के रूप में अनेकों द्वारा गाया गया है। भगवत्गीता ने यही गीत गाया है। जब हमने ईश, केन, छान्दोग्य का अध्ययन किया था तो यही संदेश दोहराया गया था। अब कठोपनिषद् जो कहना चाहता है, वह उससे भिन्न नहीं है। 'तत् त्वं असि'; तुम वह हो, तुम्हारे अस्तित्व का, सत्ता का सार वह प्रकाश है, जो शरीर में विभिन्न स्तरों पर ऊर्जाओं को क्रियाशील होने देता है, जैसे बाह्य अंतरिक्ष में ऊर्जाओं को क्रियाशील होने दिया जाता है। कोई अन्तर नहीं है, जो यहाँ है वही वहाँ है, जो ऊपर है वही यहाँ नीचे है; एक संघनित है तो दूसरा प्रसारित है।

आज हमने खोज की दिशा देखी है और देखा है ऐन्द्रिय स्तर से कार्य प्रणाली का आरम्भ कर मानसिक स्तर तक जाना, विभेदात्मक बोध करना वरणात्मक सात्मीकरण करना, ऊर्जाओं का समाँगीकरण करना और फिर मौन में विश्रांति करना। हमने देखा, प्रकाश का प्रकटन ही हमें बोध प्रदान करता है, हमारे अस्तित्व में बोध उसके द्वारा होता है। इसीके साथ दूसरे अध्याय की दूसरी वल्ली का समापन हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तेईसवाँ संवाद

यह स्मरण रखना अनिवार्य है कि कठोपनिषद् एक साथ तीन स्तरों से संबन्ध रखता है। प्रत्येक श्लोक मनोभौतिक अभिव्यक्ति, रहस्यात्मक निहितार्थ तथा उनमें गुह्य आध्यात्मिक तथ्य की ओर संकेत करता है। इसलिये प्रत्येक श्लोक के त्रिपक्षीय अर्थ नियत करने में परिश्रम की आवश्यकता होती है।

मनुष्य चेतना की जड़ें आकाश की शून्यता में

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः। अन्तिम वल्ली का आरम्भ जीवन के वृक्ष का वर्णन करते हुये होता है। क्या आपके ध्यान में आया है कि विश्व के विभिन्न भागों में, प्राचीनकाल के बुद्धिमान लोगों ने अनादि-अनंत जीवन को वृक्ष कहा है? जीवन का वर्णन एक वृक्ष के रूप में किया है। मिस्र देश के लोगों ने इसका वर्णन सर्जनशीलता एवं उर्वरता के प्रतीक, 'फिग ट्री' के रूप में दिया है। स्कैंडिनेवियावासी जीवन को 'ऐश ट्री' कहते हैं। भारत में जीवन के वर्णन के लिये वटवृक्ष या पीपल के वृक्ष का प्रतीक स्वरूप उपयोग किया जाता है। अश्वत्थ एक भारतीय वृक्ष का नाम है, उसे पीपल भी कहते हैं, यह बरगद के पेड़ों की एक उपजाति है। हमारे यहाँ इस प्रकार की अनेकों जातियां हैं। यह वृक्ष कल्याण-शक्ति एवं सर्जनात्मक-शक्ति का प्रतीक है। गाँवों में शिक्षित एवं अशिक्षित इस की पूजा करते हैं; इसके प्रति अत्यंत आदर एवं सम्मान का भाव रखते हैं।

ऊर्ध्वमूल अर्थात् जिसकी जड़ें ऊपर आकाश में हैं।* इस जीवन के वृक्ष की जड़ें ऊपर होती हैं, उसकी डालियां एवं टहनियाँ नीचे की ओर फैलती हैं, वे एक दूसरे के साथ जुड़ी रहती हैं और वृक्ष के तने

---

* *यहाँ ऊर्ध्व का अर्थ प्रतीकात्मक रूप में लेना चाहिये, क्योंकि जीवन के एकत्व में न तो ऊपर है न ही नीचे। जब किसी तथ्य का शब्दों में वर्णन देना होता है तो एक मर्यादा होती है। प्रत्येक शाब्दिक अभिव्यक्ति की एक परिसीमा होती है, उसका एक प्रतीक के रूप में, एक सूचक के रूप में उपयोग किया जा सकता है परन्तु वह अपने में ही तथ्य नहीं होता।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वारा सीधी रखी जाती हैं। वृक्ष के तने की द्विविध प्रकृति रहती है। भौतिक रूप में श्वास जीवन का तना है, मानसिक रूप से मनस् अथवा मन जीवन का तना है। इस जीवन रूपी वृक्ष का, इस सनातन का कोई आदि नहीं है और कोई अन्त नहीं। इसे ईश्वरत्व कहा जाता है क्योंकि सनातन शब्द का अर्थ नित्यता एवं ईश्वरत्व है। इसे ईश्वर कहा जाता है, इसे अनादि-अनंत कहा जाता है क्योंकि इसके आरम्भ का पता लगाना संभव नहीं रहा है। मनुष्य मस्तिष्क को इसका अन्त नहीं दिखता, उसकी संकल्पना भी नहीं है।

जीवन, पुरुष एवं प्रकृति की व्यामिश्रित एकता

ये ऊपर की जड़ें क्या हैं? ये जड़ें क्या हैं जो वृक्ष के ऊपर हैं? जीवन की एकता, जीवन की परम एकता ही जड़ें है। जीवन की इस एकता का स्वरूप व्यामिश्रित है। इसके दो भाग हैं। जैसे चने के अथवा मूंगफली के दाने के दो भाग होते हैं, जो उसके छिलके में एक साथ लिपटे रहते हैं, वैसे ही पुरुष एवं प्रकृति जीवन के एकत्व में लिपटे रहते हैं, एक साथ घुले-मिले हैं। आत्मा एवं शरीर, चेतना एवं शरीर उस व्यामिश्रित एकता में मिले हुये हैं। यह एक सरल एकता नहीं, यह व्यामिश्रित एकता है। यह एकता, पुरुष एवं प्रकृति जिसके दो स्तंभ हैं, वह जीवन के वृक्ष की जड़ें हैं। वैश्विक श्वास में पुरुष एवं प्रकृति एक साथ श्वास लेते हैं। उसमें पुरुष एवं प्रकृति की मिश्रित श्वास समायी है। जब विश्व का जन्म उस श्वास से होता है, तो उसकी प्रत्येक अभिव्यक्ति में पुरुष अथवा चेतना, चैतन्य या फिर आत्मा समायी है। उसमें समायी है प्रकृति अथवा भौतिक तत्त्व। प्रत्येक अभिव्यक्ति यथार्थता के उस द्विविध गुण को समाये है, जीवन की उस व्यामिश्रित एकता को समाये है। *जीवन का यह वृक्ष, अश्वत्थः, सनातनः, जीवन का यह शाश्वत वृक्ष साधना का क्षेत्र है, यह अमरत्व के बोध का क्षेत्र है।* यह वह क्षेत्र है, जहाँ मुक्ति अथवा मोक्ष का अनुभव किया जा सकता है; उसे जीया जा सकता है।

प्रत्येक अभिव्यक्ति में भौतिक तत्त्व एवं आत्मन् तत्त्व, भौतिक तत्त्व

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एवं चेतना तत्त्व समान रूप से पवित्र हैं। मुझे यह स्पष्ट करने की आवश्यकता पड़ी, क्योंकि हमारे योग विज्ञान में पुरुष को प्रकृति से कुछ उच्च स्तर का माना गया है। यहाँ, कठोपनिषद् में उन्हें एक स्तर का माना गया हैं; वह समान हैं। जीवन की इसी व्यामिश्रित एकता को भारतीय मंदिरों में प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। संभवत: आपने ऐसी मूर्ति देखी हो, जिसका आधा भाग शिव है और आधा भाग शक्ति है। इसे अर्धनारीनटेश्वर कहा जाता है। ऐसी मूर्तियाँ विशेषत: दक्षिण भारत में मिलेंगी। यह एक प्रतीक है; लोग उस प्रतीक के अर्थ का विस्मरण कर मात्र उसके स्वरूप की आराधना करते हैं। यह स्वरूप मनुष्य देह में नर एवं मादा ऊर्जाओं का प्रतीक है। चीनी भाषा में इन्हें यिन एवं यैगं कहा जाता है।

जीवन एक मिश्रित एकता है। यदि आप पुंरुष के ही पीछे जाते हैं और प्रकृति की, भौतिक की, अर्थात् मनोभौतिक की उपेक्षा करते हैं तो अमरत्व आपकी पहुँच के बाहर रहता है। यदि आप भौतिक पदार्थों, मनोभौतिक तत्त्वों; अभिव्यक्तियों, अनेकताओं एवं विविधताओं के लिये ही प्रयत्नशील रहते हैं, उसकी मूल व्यामिश्रित एकता की अवज्ञा करते हैं, तो आप दु:ख एवं क्लेश के बीज डालते हैं। इसलिये कठोपनिषद् कहता है दोनों एक सम पवित्र हैं, दोनों समान हैं। उनका बोध करने की, उन्हें समझने की, सिद्ध करने की, उनके साथ संवाद की आवश्यकता होती है। हमें प्रत्येक अन्दर जाती और बाहर जाती श्वास के साथ, मनोभौतिक, परामानसिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर एक साथ जीना होता है। इस व्यामिश्रित एकता का बोध रहे, उसकी मान्यता रहे, यही अमरत्व का मार्ग है। नश्वर के क्षेत्र में ही अनश्वरता है, इस नश्वर देह से पृथक अनश्वरता का कोई अस्तित्व नहीं है।

श्वास रूपी तने का शुद्धिकरण

मनुष्य देह के स्तर पर चेतना की जड़ें मस्तिष्क में हैं। सम्पूर्ण तंत्रिकीय प्रणाली की शाखायें तथा टहनियाँ मस्तिष्क के नीचे की ओर जाती हैं। इस पिंड के अंतरिक्ष में, जीवन की असंख्य इकाईयां आंतरिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आकाश में टिमटिमाते सितारे हैं। श्वास जीवन के इस वृक्ष का तना है। इसीलिये हठयोगी श्वास का शुद्धीकरण करते हैं। केवल प्राणायाम द्वारा ही नहीं परन्तु अन्य अभ्यासों द्वारा भी-नेति, धोति, नौलि इत्यादि द्वारा-सम्पूर्ण तंत्रिकीय प्रणाली, रासायनिक प्रणाली, श्वास प्रणाली इत्यादि को शुद्ध किया जाता है। यह मात्र यांत्रिक खींचा-तानी अथवा शारीरिक व्यायाम नहीं हैं। हठ-योग को यदि उसके निहितार्थ के बोध से किया जाये, तो उसका प्रत्येक उपाय शरीर रूपी वृक्ष के तने को सबल बनाता है, उसका शुद्धीकरण करता है। यम, नियम, आसन तथा अन्य सभी क्रियाओं द्वारा, क्रिया योग द्वारा शुद्धीकरण पश्चात् आप भस्त्रिका प्राणायाम में प्रवेश करते हैं। इस वृक्ष के तने पर प्राणायाम द्वारा आप ऊपर जाते हैं और शीर्ष शिखर पर पहुँचते हैं, जहाँ जीवन की जड़ें समायी हैं। *प्रतिबन्धित का शुद्धिकरण किया जाता है, हठयोग के अभ्यासों द्वारा उसे अप्रतिबन्धित किया जाता है, मनोभौतिक प्रणाली को शुद्ध किया जाता है।*

राज-योग द्वारा मन रूपी तने का शुद्धिकरण

चलिये अब राज-योग को देखते हैं। हठ-योग एवं राज-योग के मिश्रण से योग विज्ञान बनता है। जैसे पुरुष एवं प्रकृति को अलग-अलग नहीं किया जा सकता, वैसे ही हठ-योग एवं राज-योग एक दूसरे के बिना अधूरे हैं। इन दोनों के मिश्रण से योग के शिरोमणि योग शास्त्र की रचना होती है। यदि हम जीवन के वृक्ष के प्रति राज-योग के दृष्टिकोण से ध्यान दें तो भी जड़ें मस्तिष्क में हैं। यहाँ तक दोनों योग-शाखाओं का एक मत है। उस चेतना, उस शुद्ध चेतना की जड़ों से विचारों, भावनाओं, मनोभावों, संवेदनाओं की शाखायें हाथों एवं पैरों की सीमाओं तक जाती हैं। फिर वृक्ष का तना क्या है ? वह मन है, जो उन सब विषयों को संबंधित रखता है; आखिरकार वृक्ष का तना ही तो शाखाओं, टहनियों, पत्तों इत्यादि को जोड़े रखता है। यहाँ चेतना के स्तर पर वर्णन दिया गया है। जब वृक्ष का वर्णन भौतिक स्तर पर दिया जाता है तो उसमें
Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तंत्रिकीय प्रणाली की बात होती है। मानसिक स्तर पर विचारों, संकल्पनाओं, भावनाओं, मनोभावों, महत्त्वाकांक्षाओं की बात है; उस सम्पूर्ण सामग्री की जिसे आप जानते है। यहाँ बात है हमारे अन्दर के क्रोध, ईर्ष्या, नगण्यता, शान्ति, निस्तब्धता, लोभ इत्यादि की।

अब मन का शुद्धीकरण कैसे हो ? बुद्धि एवं मन के सहयोग से हम इन्द्रियों को बाह्य जगत् के साथ विभेदात्मक संबन्ध में समर्थ करते हैं। बुद्धि एवं मन की सहायता से संयम तत्त्व का उपयोग करते हुये हम ऊर्जाओं का समन्वय करते हैं। मन वह तना है जो अब शुद्ध एवं सबल हो रहा है, ताकि आप उससे ऊपर जा ध्यान के बिन्दु पर पहुँच सकें। जब तक ऊर्जाओं का सामंजस्य नहीं होता, जब तक विचारों के स्तर पर अव्यवस्था एवं दुर्व्यवस्था तथा भावनाओं के स्तर पर अराजकता को पूर्णत: मिटा नहीं दिया जाता, मानसिक स्तर पर जब तक एक आंतरिक व्यवस्था नहीं बनायी जाती, तब तक ध्यानावस्था संभव नहीं होती। हाँ, धारणा संभव है, क्योंकि उसमें आप अपनी इच्छा-शक्ति का उपयोग कर सकते हैं। आप धारणा का एक बिन्दु निर्धारित करते हैं, इससे एक आधार रहता है। आपको एक दिशा मिलती है। ऊर्जाओं को एकत्रित कर, इच्छा-शक्ति के बल से आप उन्हें उस बिन्दु पर आधे घंटे, दो घंटे, इत्यादि के लिये केन्द्रित करते हैं। इच्छा-शक्ति का उपयोग कर, श्वास को अन्दर रोक आप लम्बे समय तक अन्तर कुम्भक लगा सकते हैं। वह सब किया जा सकता है परन्तु ध्यान इच्छा का उपयोग करना नहीं है। वह मन अथवा मस्तिष्क की किन्हीं भी गतिविधियों का उपयोग करना नहीं है। वह देखने, सुनने, आस्वाद लेने, स्पर्श करने इत्यादि की ऐन्द्रिय गतिविधियों का उपयोग करना भी नहीं है; वे तो गतिविधियों की संवेदनायें हैं।

जैसे आप शरीर को विश्रांति में शिक्षित करते हैं, आप ऐन्द्रिय प्रणाली एवं मानसिक प्रणाली को, विचार प्रणाली को विश्रांति में शिक्षित करते हैं। मौन उस शिक्षा का साधन है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मौन से पूर्व आप उनसे परिचित होना आरम्भ करते हैं। आप उन्हें देखते हैं। उनके वास्तविक विषयों के साथ, वास्तविक तथ्यों के साथ आप एक व्यंक्तिगत, आत्मीय भेंट करते हैं। जब तक आप अपनी अन्तर की दुर्व्यवस्था को, अराजकता को देख नहीं लेते, उन्हें दूर करने की प्रेरणा नहीं होगी। मात्र काल्पनिक विचारों में लिप्त होने से आंतरिक सुव्यवस्था नहीं बनायी जा सकती । भावनाओं के स्तर पर मनुष्य देह में किसी को अथवा किसी व्यक्तिगत ईश्वर के स्वरूप को प्राधिकारी बना कर, उसके साथ तादात्म्य करने से आंतरिक समाधान नहीं होता। यह सब धारणा के स्तर पर होता है, ध्यान पूर्णतः भिन्न स्तर है। इसके लिये समस्त गतिविधिओं को, गतिविधिओं की संभावनाओं को पहचान लिया जाता है। फिर उस गतिविधि को भी निलंबित होने दिया जाता है। इस प्रकार इस मार्ग में शाब्दिक ज्ञान, व्यक्तिगत पहचान, तथ्यों के साथ एक संवाद, उन तथ्यों के आशय की पहचान, उनको संबन्धित करना तथा उनका समन्वय करना होता है। मानसिक स्तर पर यह सब किया जाता है, फिर आती है ध्यानावस्था। *हठ-योग को, राज-योग के साथ जोड़ना होता है, तथा राज-योग में ध्यान का आधार शारीरिक स्तर पर होना अनिवार्य हैं।* शरीर के स्तर पर अव्यवस्थित रूप से, असावधानी से, विचारहीनता से, जैसे-तैसे जीने से वह आधार नहीं बनता। इसलिये, आप भले प्राणों की सहायता से जीवन के वृक्ष पर ऊपर जायें, उसी प्राण के वृक्ष पर जाने के लिये आपको समन्वय शक्ति की आवश्यकता होगी।

समन्वय एवं सुव्यवस्था द्वारा अप्रतिबन्धित ऊर्जा का प्रवाह

काश मैं शब्दों में व्यक्त कर सकती कैसे आंतरिक समन्वय शान्ति का, आनंद का स्रोत है। वह आपके अस्तित्व को एक भिन्न कोटि की ऊर्जा से भर देता है, जो न तो पेशी संबधित है न ही ग्रंथिल अथवा कोशिकीय। समन्वय ब्रह्मांड की श्वास है। सुव्यवस्था एवं समन्वय वैश्विक श्वास हैं। जब वे आपकी मनोभौतिक संरचना में बस जाती हैं, तो एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अ-भौतिक, अ-मानसिक ऊर्जा का तेज होता है। *समन्वय को प्रतिबन्धित नहीं किया जा सकता, इसलिये उसे अप्रतिबन्धित ऊर्जा कहा जाता है।* कठोपनिषद् कहता है, बाह्य जगत् के साथ सम्पर्क से बनी चिपकने वाली संवेदनाओं में उलझने के बदले, यदि कोई स्वयं को हठ-योग एवं राज-योग में शिक्षित करता है तो इस वृक्ष पर चढ़ना संभव हो जाता है। एक बार फिर यह एक अति जटिल एवं पेचीदा विषय का काव्यात्मक रूप से वर्णन करने का ढंग है।

एक अनादि अनंत नृत्य

पुरुष एवं प्रकृति की व्यामिश्रित एकता का अन्दर आता श्वास तथा बाहर जाता श्वास समस्त अभिव्यक्तिओं में एक लयबद्ध गति उत्पन्न करता है। जब पुरुष एवं प्रकृति, चेतना एवं भौतिक तत्त्व एक साथ श्वास छोड़ते हैं तब उस एकता से अनेकता का, विविधता का प्रसरण होता है। यह बाहर जाती श्वास होती है। मनुष्य स्तर पर जिसे आप जन्म लेना कहते हैं, वह जीवन का उल्लासपूर्ण प्रवाह है। जिसे आप जन्म लेना कहते हैं, वह वैश्विक शक्ति का, वैश्विक जीवन का निःश्वास है; जन्म के रूप में यह एक प्रफुल्लित उद्गार है। वैश्विक स्तर पर श्वासो-निःश्वास लयबद्धता से चलते हैं। निःश्वास के साथ अभिव्यक्ति होती है, उस प्रकटन को रूप धारण करने दिया जाता है; उन स्वरूपों में जीवन का नृत्य होता है। एक बाहर जाती श्वास से विभिन्न प्राणियों में जीवन का जन्म होता है, उसका विकास होता है। परन्तु फिर एक अन्दर जाती श्वास भी तो होती है। इसलिये जिसे आप भौतिक स्तर पर देह का क्षीण होना और फिर मरना कहते हैं, वास्तव में वह पुरुष एवं प्रकृति की वैश्विक श्वास के अन्दर जाने का परिणाम होता है। *न तो जन्म जीवन का उद्गमन है, और न ही मृत्यु जीवन का अन्त। पुरुष एवं प्रकृति के अनादि-अनंत नृत्य में जन्म एवं मरण जीवन के दो स्तंभ हैं।* उनसे एक व्यामिश्रित समग्रता बनती है, जैसे अन्धकार एवं प्रकाश से जीवन की समग्रता बनती है। यह एकता में द्वित्व का नृत्य है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस वल्ली के द्वितीय मंत्र में वर्णन है, जीवन में वैश्विक श्वास की गति कैसे प्रवाह करती है; वह वैश्विक, जिससे उसका प्रकटन हुआ है, जिसमें वह पुन: विलीन होने वाली है। इस अभिव्यक्त जीवन का उस एकता के मूल से कोई पृथक अस्तित्व नहीं है, वहाँ एक लयबद्ध श्वास क्रिया है, एक लयबद्धता है। काव्यात्मक शैली में उपनिषद् कहता है सम्पूर्ण अभिव्यक्त विश्व पर श्वासो-नि:श्वास की, वैश्विक लयबद्ध गति की तलवार टंगी रहती है। आसमान के ग्रह, सितारे उस लय का अनुसरण करते हैं, पृथ्वी पर मनुष्य एवं अन्य प्राणी उसका अनुसरण करते हैं। कोई भी उस वैश्विक श्वास का उल्लंघन नहीं कर सकता। भले आप चाहें कि वहाँ जन्म एवं विकास ही हो, कोई क्षीणता अथवा मृत्यु न हो,ऐसा नहीं हो सकता। यह एक व्यामिश्रित एकता है, जिसमें प्रकटन, प्रसरण, विकास और फिर अवनति, मरण एवं विलयन समाविष्ट हैं। प्रकटन एवं विलयन ब्रह्मन् के श्वास-नि:श्वास हैं। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' अर्थात सर्वस्व वास्तव में ब्रह्मन् है, सर्वस्व वास्तव में अपने सार में ब्रह्मन् है।

नश्वर में अनश्वरता का अनुभव

तीसरे मंत्र में भयम् शब्द का प्रयोग किया गया है; भयात्तपति सूर्य:। यह प्रतीकात्मक भाषा है, इसे अभिधार्थ में नहीं लेना चाहिये। दुर्भाग्य से वेदान्त के प्रवक्ता आद्य शंकराचार्य से लेकर प्रत्येक व्याख्याकार ने भयात्तपति शब्द का अर्थ भय से लगाया है। अब, भला वैश्विक लय का भय कैसे हो सकता है ? *मृत्यु एवं मरण का भय तभी हो सकता है, जब हमें पहचान न हो कि मृत्यु जीवन एवं जीने का अंग है।* मात्र आपका व्यक्तिगत जीवन ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण जीवन जल के वक्षस्थल पर एक बुदबुदे समान है, अथवा सागर में एक तरंग के समान है। तरंग पुन: उस जल में लौट जाती है ,जहाँ से वह उठी थी। वैसे ही व्यक्त ने अव्यक्त से जन्म लिया है, अपने स्वरूप की समर्थता के साथ न्याय कर वह पुन: अव्यक्त में विलीन हो जाता है। यही जन्म एवं मरण की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध्रुवीयता, पुरुष एवं प्रकृति की ध्रुवीयता, प्रसरण एवं विलयन की ध्रुवीयता जीवन है। द्वैत से रची इस व्यामिश्रित एकता को जो जान लेता है, वह मृत्यु एवं नश्वरता के पार चला जाता है।

सत्य की समझ में ही अमरत्व समाया है। अमरत्व कोई खोज का विषय नहीं है, आपकी चेतना के गुण के रूप में, उसके गुणधर्म के रूप में वह कोई प्राप्त करने का विषय नहीं है, वह तो जीवन के स्वरूप में रचा है। जीवन अनश्वर है, वह स्वयं को जन्म द्वारा व्यक्त करता है, वह स्वयं को मृत्यु द्वारा व्यक्त करता है। भले उनमें द्वित्व है परन्तु उनमें एक दूसरे के प्रति विरोध नहीं है, विरोधाभास नहीं है। वास्तव में वह वैश्विक लय में सहभागी हैं, वह वैश्विक श्वास है। नचिकेता, जो इस सत्य को जान जाते हैं, इस नश्वर देह में जीते हुये वे अनश्वरता का अनुभव पाते हैं। देह छोड़ स्वर्ग में जाना आवश्यक नहीं है, देह में रहते हुये ही वैश्विक चेतना के साथ, परम यथार्थता, प्रज्ञा, चैतन्य, ब्रह्मन् के साथ मिल जाना है। उसके लिये भौतिक काया का त्याग करने से कोई संबन्ध नहीं है, उसके लिये मरने की आवश्यता नहीं है, वह अवश्यंभावी है परन्तु शरीर में रहते हुये कहीं भी अटके बिना वृक्ष का आनंद लेना है, वृक्ष के फलों का आनंद लेना है। तभी योग द्वारा अप्रतिबन्धित किये अपने शरीर में ही, अपनी ही चेतना में आप मधु के अमृत का पान कर सकेंगे। *इस प्रकार नश्वरता एवं अनश्वरता को काल्पनिक विचार के क्षेत्र से हटा दिया गया है, हम जन्म एवं मरण की गतिविधि को प्रत्यक्ष रूप से देख रहे हैं। हम उसके साक्षी हो सकते हैं, उसमें सहभागी हो सकते हैं।*

क्या अब आप जीने का अर्थ समझ रहे हैं? मन एवं इन्द्रियों द्वारा बाह्य जगत् की ओर धकेले जाना जीना नहीं है। वह विविधताओं एवं अनेकताओं के बीच हृदय में और अधिक पाने, अधिक प्राप्त करने का लोभ लिये विचरण करना नहीं है। ऐन्द्रिय जगत् अथवा मनोभौतिक सरंचना से मुँह फेर, किसी 'अहम् ब्रह्मास्मि' जैसी संकल्पना में खो जाना जीना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं है। जीवन की गतिविधि में अनश्वरता का आनंद लिया जा सकता है। यदि उसका आनंद यहाँ नहीं है, तो ऐसा कोई अन्य स्थान नहीं जहाँ आप शरीर छोड़ने के पश्चात् जा कर उसे पा सकते हैं।

मध्य मार्ग से ध्यानावस्था में निवास

उपनिषद् के शब्द अत्यंत कड़े, अत्यंत तीक्ष्ण हैं। इन शब्दों की समस्त तीक्ष्णता, स्पष्टवादिता एवं अंतर्वेधी क्षमता आपको कहने में संकोच होता है, अन्यथा आप उनका अनुभव अपनी चेतना पर चाबुक की मार के समान करेंगे। प्राचीन काल में उपनिषदों का अध्ययन केवल उन्हीं द्वारा किया जाता था जो सांसारिक जीवन का परित्याग करना चाहते थे अर्थात् जो स्वयं को सत्य के प्रति समर्पित करने के अभिलाषी थे। उपनिषद् एक मंत्र में कहता है, जो योग पथ की, हठ-योग, राज-योग, ध्यान-योग, इत्यादि की तलवार की धार पर चलने को तैयार न हों, जिन्हें संयम तथा समन्वय का मार्ग पसंद न हो, जिन्हें शारीरिक, वाचिक तथा मानसिक स्तर पर अतिक्रमण से प्रेम हो, उनके लिये इस अध्ययन से दूर रहना ही अच्छा होगा। जीना निर्भय एवं साहसी लोगों का काम है। जीने की क्षमता रखनी होती है; उस द्वित्व को पहचानना होता है जिससे एकता की रचना हुयी है। कहा जाता है कि जीना ही धर्मपरायणता का सार है। 'इदं धर्म्यामृतम्'; इसे जीवन का अमृत कहा है, जो जीने की धर्मनिष्ठ अभिवृत्ति में है। वह द्वित्व से थक कर उसके एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु की ओर दौड़ने में नहीं है। आपको मध्य बिन्दु पर रहना होता है, मध्य मार्ग लेना होता है, अपने अस्तित्व के मध्य में जीना होता है।

स्वेच्छा से मृत्यु के साथ मिलन

अपने अस्तित्व के मध्य में, ध्यानावस्था में, ध्यान को अपना निवासस्थान बना आप आत्मा एवं विषयों की गतिविधि देखते हैं; आप जीवन एवं मरण की गतिविधि देखते हैं। जीवन के प्रत्येक वर्ष के साथ, शरीर के स्तर पर आप अन्तिम विघटन की ओर, मृत्यु की ओर कदम लेते हैं। यदि उस कदम को स्वेच्छा से, बिना किसी प्रतिरोध -जो भय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है- से लिया जाये तो मौत की ओर लिया वह कदम आनंदपूर्ण एवं शान्तिपूर्ण हो सकता है। यह उपनिषद् हमें सिखाना चाहता है कैसे जीया जाये और कैसे मरा जाये। वास्तव में उपनिषद् ने स्पष्ट रूप से यह भी कहा है कि प्रत्येक रात्रि जब आप निद्रा में जाते हैं, तो आप दिन के प्रति मर जाते हैं। क्या आप ऐसा सहजता से, शालीनता से, स्वेच्छा से नहीं करते? ऐसे में क्या आप अपने सक्षम अहम् एवं शारीरिक संरचना को समर्पित नहीं कर देते ? क्या आप अपने ऐन्द्रिय विषयों को पीछे छोड़ निद्रा की निश्चलता में प्रवेश नहीं करते ? यह भी तो मृत्यु की निश्चलता के समान है, क्योंकि निद्रा में अहम् की कोई गतिविधि नहीं होती। यदि आप स्वेच्छा से, सहजता से उसमें प्रवेश करते हैं तो परम विघटन का क्षण, जिसे मृत्यु कहा जाता है, वह एक मित्र के साथ मिलन समान है।

इस अध्याय में वैश्विक जीवन से पृथकता के भ्रम पर वार किया गया है, क्योंकि कठोपनिषद् के अनुसार आपकी जड़ें वहाँ हैं। आपका एक रूप-विधान है, जिस में उस वृक्ष की शाखाओं के साथ खेलने के लिये, जीवन के उस वृक्ष के फल सेवन करने के लिये आपके पास सौ वर्ष की अवधि है। परन्तु पुरुष एवं प्रकृति की वैश्विक श्वास, जिसने आपको विश्व में भेजा है, वह आपको वापिस बुला लेने वाली है। उस वैश्विक लय के प्रकटन एवं विघटन के प्रति सचेत रहिये, सचेत रहिये कि वैश्विक लयबद्धता की तलवार आपके सिर पर है। भले आप जितना भी प्रयास करें आप उससे बच नहीं सकते, आप उस लय से भाग नहीं सकते, आप उस लयबद्धता की कंपन हैं।

शिव-शक्ति के अनंत नृत्य में सहभागिता

यह अंतिम वल्ली अव्यक्त एवं व्यक्त, आत्मन् एवं भौतिक तत्त्व,ऊर्जा एवं रूप-विधान की वैश्विक लयबद्धता को समर्पित है। आपसे यह परामर्श है कि आप व्यामिश्रित एकता में लिपटे द्वित्व के नृत्य को देखें, उस नृत्य को देखें और उसमें सम्मिलित हों, उसमें सहभागी हों।

पुरुष एवं प्रकृति की अभिव्यक्तियों का विश्लेषण किया जा सकता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, चेतना का पुरुष की अभिव्यक्ति के रूप में तथा भौतिक तत्त्व का, संरचना का, प्रकृति के रूप में विश्लेषण किया जा सकता है। अष्टगुण सम्पन्न प्रकृति आपको मनोभौतिक संरचना प्रदान करती है , पुरुष आपको चेतना देता है। यह अद्भुत है कि भौतिक तत्त्व को शुद्ध कहा गया है, भौतिक विषयों को भी शुद्ध कहा गया है। वह तो केवल अनुचित उपयोग है, जो भौतिक विषयों को बन्धन का कारण बनाता है, वह अनुचित संबन्ध है, वह अविद्या है । यदि उनके साथ उचित एवं सही संबन्ध रखा जाये, तो वही आनंद के कारण बन जाते हैं अन्यथा वन के किसी वृक्ष पर फला सेब आपकी भूख को कैसे शान्त कर सकता है। वन के किसी वृक्ष पर जन्मे सेब में कल्याणकारी-शक्ति अथवा पोषण-शक्ति कहाँ से आती है ? जल में आपकी प्यास बुझाने की और आपको शुद्ध करने की शक्ति कहाँ से आती है ? इसलिये भौतिक तत्त्व उतना ही शुद्ध है जितनी की आत्मा।

एक अन्तिम उपमा। *जैसे शिशिर एवं शरद ऋतु के आगमन पर शाखाओं एवं पत्तियों से रिक्त वृक्ष कोई प्रतिरोध नहीं करता, वैसे ही वह व्यक्ति जिसने योग का अध्ययन किया है, वह वृद्धावस्था के आगमन पर, मृत्यु के आगमन पर प्रतिरोध नहीं करता।* वृक्ष में समायी मूलभूत प्रज्ञा को विश्वास रहता है कि शरद का अनुगमन बसंत में होगा, जो उसीके तने से पुन: कोमल पत्तों, टहनियों एवं शाखाओं को जन्म देगी और वह पुन: जीवन से भर जायेगा। वैसे ही एक योगी जानता है कि मरण के कर्म में देह छूट जाती है, चेतना देह-हीन हो जाती है, सभी अंग, जिनकी विकास की क्रिया में देख-रेख की गयी थी, वह नष्ट हो जाते हैं। उसे ज्ञात रहता है कि देह, जिसकी देख-भाल की गयी थी, चाहे उसका दाहसंस्कार किया जाये अथवा उसे दफनाया जाये, वह मिट्टी में मिल जायेगी। योगी उससे निश्चिंत रहता है, क्योंकि उसने जीवन के व्यक्तिक रूप तथा वैश्विक जीवन की समग्रता में भेद समझ लिया है । देह के छूटने से समग्रता का कुछ नहीं जाता, जीवन की व्यान्िश्रित समग्रता से कुछ कम नहीं हो जाता। रूप पुन: ध।रण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किये जाते हैं, उसके अस्तित्व से, उसकी लय से रूप बनते हैं परन्तु पुराने को दोहराने के लिये नहीं। जिसे हम ईश तत्त्व कहते हैं, वे उसकी अनंत सर्जनशीलता, उसके नूतन प्रकटन, नूतन अभिव्यक्ति के रूप में प्रकट होते हैं। आपकी संतान आपकी प्रतिकृति नहीं होती, वह आपके शरीर की प्रतिलिपि नहीं होती। वह आपसे जन्मी है, फिर भी उसकी अनन्यता है, उसका अपना व्यक्तित्व है।

इस प्रकार पुरानी आकृतियों से, उनकी राख एवं मिट्टी बन जाने से नव रूप-विधान का, नव अभिव्यक्तियों का जन्म होता है। उद्गमन एवं विलयन का यह नृत्य चलता रहता है। उसमें दुःख करने का क्या है ? *इस वल्ली के चौथे मंत्र में, कठोपनिषद् कहता है कि योगी दुःख नहीं करते, इसलिये नहीं कि वे देह के प्रति उदासीन होते हैं, इसलिये नहीं कि उन्हें जीवन से प्रेम नहीं होता, वे दुःख नहीं करते क्योंकि उन्हें जीवन से प्रेम होता है।* वे रूप-विधान के बन्दी नहीं होते, उन्होंने उसमें जीया है परन्तु न तो वे उसके दास हैं और न ही उसके बन्दी। उनके लिये देह धारणा करना, देह का त्याग करना श्वास लेने एवं श्वास छोड़ने समान होता है।

यमराज कहते हैं अमरत्व का रहस्य इस नश्वर शरीर में है। अनश्वरता का, अनंतत्ता का रहस्य प्रकटन एवं पुनः अव्यक्त जगत् में लौट जाने में है। अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत्। प्रकट होना, व्यक्त होना, देश-काल में केन्द्रित होना मात्र एक अल्पकालिक स्थिति है, यह एक दशा है, यह कोई गन्तव्य नहीं। अव्यक्त से व्यक्त में तथा व्यक्त से अव्यक्त में जाने की यात्रा चलती रहती है, जिसे आलंकारिक भाषा में शिव एवं शक्ति का नृत्य कहा गया है। इन प्रतीकों को इस स्तर तक नीचे ला दिया गया है कि हम इन प्रतीकों का प्रयोजन ही भूल जाते हैं, इनकी प्रतिष्ठा ही लुप्त हो जाती है।

आज हमने देखा, पुरुष एवं प्रकृति, व्यामिश्रित एकता के ये दो स्तंभ, जीवन के मूल हैं। प्रकटन को बाहर जाती श्वास के रूप में देखा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथा अव्यक्त के पुन: विलीन होने को अन्दर जाती श्वास के रूप में देखा और मनुष्य देह का वृक्ष देखा। मैंने वैश्विक वृक्ष, उसके तने, उसकी शाखा के सभी विस्तार नहीं दिये हैं। इन ऋषियों के बोध का फैलाव इतने विशाल पैमाने पर है, वह कुशल से कुशल मस्तिष्क को भी अभिभूत कर देता है। बोध करने मात्र से ही वे रुक नहीं जाते; वह कोई दिवास्वप्न नहीं होता जो एक बोध पश्चात् लुप्त हो जाये। बोध पश्चात् वे उसके साथ संवाद करते हैं, जिसका उन्हें बोध हुआ है। उस आध्यात्मिक सहभागिता से मंत्रों के फूल खिलते हैं, श्लोंको की समृद्धता व्यक्त होती है। यह सब बहुत मंत्र-मुग्ध करने वाला है, फिर भी विमलाजी को अब रुकना पड़ेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चौबीसवाँ संवाद

आचार्य एवं शिष्य के बीच के संवाद होने के कारण, उपनिषदों के अन्तिम भाग समग्र शिक्षा का सार देते हैं। वह जिसका कठोपनिषद् के एक सौ पचीस मंत्रों में विस्तार से वर्णन दिया गया है, उसे हम अब संक्षेप में देखेंगे।

आज हम यम द्वारा नचिकेता को दी गयी योग की परिभाषा से आरम्भ कर रहे हैं। *स्थिराम् इन्द्रियधारणाम् योगम इति मन्यन्ते।* बहुत स्पष्ट भाषा में वे कहते हैं कि समस्त इन्द्रियों की स्थिरता ही योग का सार है। यमराज की दृष्टि से वह स्थिरता ध्यान के एकांत में ही नहीं होती, परन्तु संबन्धों की भीड़ की कोलाहल में भी समस्त इन्द्रियाँ स्थिर एवं शान्त रहती हैं। इस परिभाषा को हम पिछले वर्ग में किये गये अध्ययन के साथ संबन्धित करेंगे, जहाँ हठ-योग एवं राज-योग को जीवन के वृक्ष पर जाने का मार्ग कहा गया है।

इन्द्रियों में गतिशील स्थिरता

अब प्रश्न है किसंबन्धों की निरंतर गतिविधि के बीचोंबीच, समस्त इन्द्रियों की गतिशील स्थिरता की अवस्था में कैसे पहुँचा जाये ? इसी प्रश्न के साथ उपनिषद् पुन: आरम्भ करता है। यम एवं नियम की सहायता द्वारा बाह्य ज्ञानेन्द्रियों के व्यवहार को नियंत्रण में लाया जाता है। सभी पाँच बाह्य ज्ञानेन्द्रियों के आचरण के प्रति एक वैज्ञानिक शैली का उपयोग करने से वह स्थिरता आती है। यहाँ मैं कहना चाहूँगी कि योग के विद्यार्थियों को अपने देश, वहाँ की जल-वायु, सम्पूर्ण जीवन शैली तथा अपने व्यवसाय एवं इत्यादि के अनुसार यम एवं नियम नियत करने पड़ते हैं। उष्णप्रदेशीय विद्यार्थियों पर लागू आहार, निद्रा इत्यादि के यम एवं नियम, उत्तरध्रुवीय प्रदेश अथवा शीत-प्रधान देशों के योग विद्यार्थियों पर संभवत: लागू नहीं होंगे। इसलिये यम एवं नियम के स्वरूपों में योग्य परिवर्तन, योग आचार्यों एवं विद्यार्थियों की बुद्धि एवं विवेक पर छोड़ दिया जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'स्थिरसुखं आसनम्'। आसनों के नियमित अभ्यास एवं अध्ययन द्वारा भौतिक शरीर की विभिन्न प्रणालियाँ स्थिर हो जाती हैं। योगासन, शरीर की अनेकों स्वचालित प्रणालियों को एक साथ शिक्षित करने की शैली है; यह उनकी अनन्यता है। व्यायाम द्वारा शरीर को सुसंस्कृत करने के अनेकों ढंग हैं, परन्तु योगासनों द्वारा शरीर की अनेकों प्रणालियों को एक साथ शिक्षित किया जाता है। इस संदर्भ में भी भिन्न जातियों से संबन्धित, भिन्न रूपाकृति एवं अस्थि संरचना लिये, भिन्न प्रजातियों में जन्मे लोगों की अनुकूलता के अनुसार आसनों की शैली निर्धारित करनी होगी; आसनों का अभ्यास असुविधा के लिये नहीं किया जाता है। योग विज्ञान के आसनों की परिभाषा है- स्थिरसुखं आसनम्; जब स्थिरता एवं सुविधाजनक स्थिरता हो, जब शरीर के किसी भी अंग में किसी प्रकार की असुविधा अथवा पीड़ा का अनुभव न हो। इन आसनों की सहायता से विभिन्न प्रणालियों को स्थिर किया जाता है। यदि शरीर के अंदर कोई भी प्रणाली - भले वह मांसपेशी संबन्धित हो, ग्रंथिल हो या फिर तंत्रिकीय प्रणाली से संबन्धित हो- अस्थिर हो, तो आप लम्बे समय तक एक आसन में नहीं रह सकते। ऐसा कर पाना साध्य है, यह अध्ययन एवं अभ्यास का प्रश्न है।

श्वास प्रणाली में स्थिरता

आसनों की स्थिरता के उपरान्त, प्राणायाम की सहायता से आप श्वास- प्रणाली को स्थिर करते हैं। यदि आप अपनी श्वास क्रिया को देखेंगे, आती-जाती श्वास को तथा अन्तर-कुम्भक को देखेंगे, तो आपके ध्यान में आयेगा कि वह बहुत अस्थिर, कम्पायमान एवं ऊँची-नीची होती है। उसमें कोई लयबद्धता नहीं होती, उसमें सरलता का लालित्य नहीं होता। क्योंकि दबाव एवं तनाव विचारों की व्यग्रता, भावनाओं के दबाव इत्यादि आपको उत्तेजित कर देते हैं और श्वास प्रणाली अस्थिर हो जाती है। वह एक बहुत नाज़ुक तंत्र है, वह दुर्बल नहीं परन्तु संवेदनशील है। प्राणायाम के अध्ययन द्वारा इस तंत्र को भी स्थिर किया जाता है, इससे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्वास लेने के इस तंत्र तथा इसकी गतिविधि में एक सहज लय जागृत की जाती है।

स्थिराम् इन्द्रियधारणां योगम् इति मन्यन्ते । योग के अध्ययन में इस परिभाषा का उल्लेख बहुत विरल है। अधिकतर कहा जाता है- 'समत्वं योग उच्यते', समचित्तता ही योग है और कहा जाता है - 'कर्मसु कौशलम्', कर्म में कुशलता ही योग है; या फिर- 'योग: चित्तवृतिनिरोध:' इत्यादि, इत्यादि। यह सब अति लोकप्रिय परिभाषायें हैं परन्तु कठोपनिषद् में दी गयी परिभाषा अनूठी है, अद्वितीय है। इसमें मार्ग का वर्णन दर्शाया गया है, ऊर्ध्वगामी पथ का वर्णन दिया गया है। ऐसा करना मात्र ग्रन्थों का अध्ययन नहीं होता, यह अभ्यास द्वारा किये जाने का प्रश्न है। इससे आप अपनी भौतिक, जैविक संरचना के साथ, अपने इस घर के साथ संबन्ध रखते हैं। मानो आप अपने घर को व्यवस्थित करते हैं। ऐसा हो जाने पर प्रत्याहार का अवसर होता है। अब हम इसकी चर्चा कुछ विस्तार से करेंगे।

प्रत्याहार एक द्रष्टाभाव

इन्द्रियाणां पृथग्भावमुदयास्तमयौ च यत् ।
पृथगुत्पद्यमानानां मत्वा धीरो न शोचति ॥

यमराज, नचिकेता को अब कुछ और आगे ले जाते हैं। प्रत्याहार तथा जिसे विपश्यना में ध्यान क्रिया कहा जाता है, उनमें अनेकों समरूपतायें हैं। बौद्ध धर्म की अवधान युक्त ध्यान पद्धति के भी उसके साथ समरूपता के बिन्दु हैं, जो कठोपनिषद् हमें सिखाना चाहता है। इन्द्रियों में आती-जाती विभिन्न संवेदनाओं को देखना होता है, उन्हें पहचानना होता है तथा समझना होता है। उसके लिये हमें बैठ कर शरीर में उठती संवेदनाओं को देखना होता है। हमारे दैनिक जीवन में संवेदनाओं के उठते ही, हम उनके साथ तादात्म्य कर प्रतिक्रिया करते हैं; उन्हें बदलने का या फिर दबाने का प्रयास करते हैं। हम उनके साथ कुछ तो करते हैं, हम उनके और अपने बीच एक अन्तराल नहीं देते। यद्यपि हम दिन में हज़ारों आती-जाती संवेदनाओं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से गुज़रते हैं, हम उनके पीछे के मूल कारण को नहीं समझते। *जब तक शरीर में उठती-मिटती संवेदनाओं में क्रियाशील तत्त्व को नहीं समझा जाता, तब तक संयम नहीं आता; संयम आता है समझ से।* यह कोई बाह्य प्रतिबन्ध लगाना नहीं है, यह आपके द्वारा बाह्य नियंत्रण लगाना नहीं है। यह तो गुणात्मक रूप से भिन्न है, जो अति सौन्दर्यपूर्ण है। यह जीवन में तब आता है जब आप इस जैविक जगत् के पीछे छुपे प्रकृति तत्त्व को समझते हैं।

इस प्रकार अध्ययन का आरम्भ हमारे निजी जीवन से होता है। हमारे चारों ओर के जैविक वातावरण में संवेदनाओं की गतिविधि के अवलोकन से होता है। हमें देखना पड़ता है कि क्षुधा से वृक्ष पर क्या प्रभाव पड़ता है, उसका पशु-पक्षियों पर क्या प्रभाव पड़ता है, उनके व्यवहार पर क्या प्रभाव पड़ता है; क्षुधा, प्यास, काम-भाव, निद्रा इत्यादि हमारे परिवेश में कैसे क्रियाशील रहते हैं। ये गतिविधियाँ हमारे परिवेश में निरंतर होती रहती हैं, हम उनके भाग हैं। जब कोई बाह्य जैविक जगत् की गतिविधियों को देखता है, तो वह वहाँ क्रियाशील विधि-विधानों को देखता है और फिर उन संवेदनों की क्रिया को अपने शरीर में देखता है। इससे हम शरीर में उठती और शान्त होती भूख एवं प्यास की लय को, यौन एवं निद्रा की लय को अपनी बुद्धि द्वारा समझ लेते हैं। हम उनके आवेगों की तेज़ गति के, उनके शक्तिशाली प्रभाव के गुलाम नहीं रहते, भले वह भूख एवं प्यास की मूलवृत्ति हो अथवा जैविक संरचना में समायी निद्रा, काम-भाव अथवा वाणी की मूल आवृत्तियां हों। आप क्षुधा का निर्माण नहीं करते, आप भूल से उसके साथ तदात्मीकरण कर लेते हैं। वह तो सम्पूर्ण ब्रह्मांड में क्रियाशील एक जैविक तत्त्व है।

जब आप अवलोकन करते हैं, दृश्य के पीछे क्रियाशील तत्त्वों को समझते हैं, तब उन संवेदनाओं की गतिविधि के साथ कोई तादात्म्य नहीं होता। आप उन्हें देखते हैं, उन पर ध्यान देते हैं और उनकी तुष्टि के लिये जो आवश्यक हो वह करते हैं। जब आप जैविक आवेगों की गतिविधि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के पीछे के क्रियाशील तत्त्वों को समझते हैं, तो किसी अतिक्रमण, किसी अतिभोग, किसी दमन का प्रश्न ही नहीं उठता । यह शरीर आपका निवासस्थान है, जैसे आप अपने घर की देखभाल करते हैं वैसे आप इस जैविक जगत् की भी देखभाल करते हैं। इससे आपके शरीर में क्रियाशील आवेग एक लयबद्धता में आ जाते हैं। आप उस लय को पहचानते हैं, उस लय को समर्पित हो जाते हैं। आप उस लयबद्धता का सम्मान करते हैं । *आप जैविक लय पर अपने तनावों, दबावों, अपने मानसिक द्वन्द्वों तथा अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को आरोपित नहीं करते।* ये सब आपके जीवन के जैविक आयाम पर लागू नहीं किये जाते। आप उसका आदर करते हैं क्योंकिवह आपका निवास-स्थान है। जीवन के प्रति सम्मान के भाव का आरम्भ यहाँ से होता है ।

स्थिराम् इन्द्रियधारणां योगम् इति मन्यन्ते। जैसे ब्रह्मांड में भू: भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः व सत्यम् विभिन्न लोक हैं, पिंडब्रह्मांड के पृथ्वी लोक में स्थिरता लानी होती है, हमारा शरीर लघुब्रह्मांड का पृथ्वी ग्रह है । आप उसे बलपूर्वक नहीं ला सकते, आप उसे इच्छा के बल पर नहीं ला सकते। लोग भूख-प्यास अथवा काम-भाव पर इच्छा शक्ति का दबाव डाल उसे नियंत्रित करना चाहते हैं । यह अपने प्रति एक प्रकार की हिंसा होती है। आप साधना में, योग में, ऊर्ध्वगामी होने जा रहे हैं, अपने आपसे पार जाने के लिये अपने अन्दर ऊर्ध्वगति प्राप्त करने जा रहे हैं। उसके लिये, किसी भार से मुक्त होने के लिये आप हिंसा का उपयोग नहीं कर सकते । तदात्मीकरण का भार तो उतारना ही होता है, परन्तु आप उसे काट कर फेंक नहीं सकते। आप अपने ही घर, अपने ही शरीर के प्रति हिंसा का उपयोग नहीं कर सकते। ऐसी हिंसा का उपयोग अधीरता के कारण तथा अन्य अनेक कारणों वश किया गया है। देह को एक पाप मानने के कारण, उसे पाप से जन्मे होने की मान्यता के कारण उसके प्रति हिंसा का उपयोग किया गया है । वास्तव में मेरी समझ नहीं आता लोग अपने ही घर, अपनी ही देह, जिसमें वह जीवन के अन्त तक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वास करने वाले हैं, वे उसका अनादर कैसे कर सकते हैं।

भुवः लोक पर प्रत्याहार

ऐसे प्रत्याहार में शिक्षा होती रहती है। अभी तक यह शारीरिक स्तर पर थी, उसमें भले स्थिरता आ गयी हो, अब कठिन परिश्रम का आरम्भ होता है। हमें परिश्रम करना होगा, एक कदम ऊपर ले हम मानसिक ग्रह पर, भुवः लोक में आ पहुँचे हैं। अपने पिंड में भूः लोक छोड़ अध्ययन के लिये, विश्लेषण के लिये हम मानसिक स्तर पर जाते हैं। जैसे जैविक ग्रह में संवेदनाओं का उदय एवं अस्त होता रहता है, वैसे ही मानसिक ग्रह में, हमारे अस्तित्व के इस दूसरे लोक में भी ऐसा ही घटित होता रहता है। हम एक छोटा सा ब्रह्मांड हैं, जो वहाँ बाहर ब्रह्मांड में होता है वही यहाँ होता है। इस मानसिक ग्रह में हर प्रकार के, हर रंग के, हर छटा के विचारों की, स्मृतियों, भावनाओं, मनोभावों की निरंतर गतिविधि होती रहती है। वे समस्त संवेदनायें आती-जाती रहती हैं, परन्तु जैसे ही कोई विचार आता है भूल से हम उसे अपना विचार कहते हैं। इसलिये हम उसे देख नहीं पाते, उसका अध्ययन नहीं कर पाते। अध्ययन के लिये, उन्हें देखने के लिये अपने और संवेदन के बीच एक अंतराल देना अनिवार्य होता है।

विचारों, संकल्पों, भावनाओं, स्मृतियों एवं कल्पनाओं इत्यादि को देखने के लिये एक दर्पण की आवश्यकता होती है। शरीर के स्तर पर यह आसान था, उनका अनुभव कर आप उनके विषय में जान सकते थे। परन्तु यहाँ आपको एक दर्पण की आवश्यकता होती है, जिसमें ये गतिविधियां प्रतिबिम्बित हो सकें। कठोपनिषद् कहता है, मन तत्त्व का उपयोग एक दर्पण के रूप में किया जा सकता है। मन अथवा मनस् के मौन का दर्पण के रूप में उपयोग कर, उस अंतरिक्ष में उठती संवेदनाओं एवं उनकी गतिविधियों को देखा जा सकता है। हम इसे अवलोकन के लिये बैठना, मौन में बैठना इत्यादि, इत्यादि कहते हैं। आपकी मित्र विमला ने अनेकों बार इसे मौन के दर्पण में देखना कहा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कठोपनिषद् कहता है-तेषाम् उत्पद्यमानानाम् । आपमें एक विचार की उत्पत्ति कैसे होती है ? आपमें उसका जन्म क्यों होता है ? उस पर नियंत्रण करने से कोई लाभ नहीं, उसे मन से बाहर निकाल फेंकने के प्रयास से कोई लाभ नहीं । आप ऐसा कर नहीं सकते । उसे छुपाने से, ढकने के प्रयास से कोई लाभ नहीं, उसके लिये सफाई देने के प्रयास से भी कोई लाभ नहीं, वह तो वहीं रहेगा । उसकी जगह विचारों की, भावनाओं की, इच्छाओं इत्यादि की संवेदनाओं को देखना पड़ता है, उन्हें मौन एवं अवलोकन के एकांत में देखना पड़ता है । एक ही विचार के बारम्बार उठने के कारण को, उसकी प्रेरणा शक्ति के कारण को, किसी भावना के अनेकों बार उठने के पीछे की प्रेरणा शक्ति के कारण को खोजना पड़ता है, उसे समझना पड़ता है । साधारणत: शिष्टाचार वश, सामाजिक नियमों के, मापदण्डों के कारण आप उस विचार, उस संकल्पना अथवा भावना को एक ओर हटा देने का प्रयास करते हैं । इससे आप उसे एक ओर धकेल देते हैं, आपको लगता है कि आपकी उससे मुक्ति हो गयी । वास्तव में वह आपको छोड़ता नहीं, आपने उसे कहीं दूर धकेल दिया है अथवा अन्दर दबा दिया है । वह वहीं पड़ा आपके अवचेतन मन में घूमता रहता है । *कठोपनिषद् ने यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण मंत्र दिया है- एषां पृथक् भावम् । जैसे शारीरिक स्तर पर किया जाता है, वैसे ही मानसिक स्तर पर संवेदनाओं एवं उनके पीछे क्रियाशील मूल कारणों को देखना पड़ता है, विचारों एवं भावनाओं को देखना पड़ता है, पहचानना एवं समझना होता है ।*

अगले मंत्र में कठोपनिषद् कहता है, सुख की चाह, शरीर से बाहर के विषयों द्वारा शारीरिक अथवा मानसिक सुख की इच्छा, अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष इत्यादि का कारण है । वह इच्छा है जो आपको सदैव बाह्य इन्द्रियों की ओर खींचती है और आप उन विषयों की ओर दौड़ते हैं । किसी विशेष वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति अथवा वातावरण के लिये इच्छा के बिना एक ही विचार बार-बार नहीं आता, एक ही कल्पना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथवा भावना नहीं लौटती। जैसे जैविक सिद्धान्त होते हैं, वैसे ही मानसिक स्तर पर कारण एवं परिणाम संबन्धित रहते हैं। यह बुरा-भला कहा जाने वाला, दुरूपयोग में लाया गया इच्छा तत्त्व, विचारों के पीछे की प्रेरणा शक्ति है, उनकी अभिप्रेरणा है। इसलिये विचारों को नियंत्रित करने, उन पर विभिन्न व्यवहार के नियम तथा अनुशासन लगाने से क्या लाभ ? मन को कहने से कि ऐसा करना चाहिये और ऐसा नहीं करना चाहिये, या फिर उसको नरक का भय दिखाने अथवा स्वर्ग का लोभ दिखाने से क्या लाभ ? यह सब काम में नहीं आता, बल्कि प्रदूषण अन्दर पहुँच जाता है, वह अस्तित्व की गहराईयों में जा पहुँचता है; भले ही सचेतन स्तर पर वाणी का व्यवहार नियंत्रित रहता है।

उपनिषद् और अधिक गहराई में जाता है। वह जो अवचेतन मन में छुपा रहता है, जिसे निर्दयता से पीछे हटा दिया गया था अथवा दबा दिया गया था, विभिन्न छटाओं में वह आंखों में उतर आता है। वाणी के माध्यम से वह उसके स्वर, उसकी मात्रा, उसके तनाव में झलक जाता है। वह शरीर के हलन-चलन में व्यक्त हो जाता है। आप भले बाह्य ज्ञानेन्द्रियों के व्यवहार पर, शरीर के अंगों, हाथों-पैरों, वाणी की अभिव्यक्तियों इत्यादि पर नियंत्रण पा लें, परन्तु शरीर से सूक्ष्म अभिव्यक्तियों का प्रसर्जन होता है। अवांछनीय कहे जाने वाले विचारों को उन्हें समझे बिना दूर करने के प्रयास का प्रदूषण अंतर में रहता है। यह समझना होता है कि वे अवांछनीय क्यों हैं ? यदि वे अवांछनीय हैं, यदि वे अस्वास्थ्यकर हैं, तो उन्होंने मेरे मन में, चेतना में क्यों घर कर लिया है? यदि बैठ कर उन संवेदनाओं को देखने का कष्ट न किया जाये कि वे कैसे उठती हैं, आप उन्हें कैसे दबाते हैं, कैसे उनका गलत अर्थ लगाते हैं, तो यह अति सूक्ष्म खेल हमारे द्वारा अपने ही साथ खेला जाता है और मन स्थिर नहीं हो पाता। मन एक अति महत्त्वपूर्ण इन्द्रिय है, आपको स्मरण है कि पाँच कर्मेन्द्रियाँ होती हैं, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं तथा ग्याहरवीं इन्द्रिय मन होता है। इस प्रकार प्रत्याहार एवं धारणा का उपयोग दूसरे लोक को,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानसिक लोक को स्थिर करने के लिये किया जाता है।

इस बिन्दु पर कठोपनिषद् कहता है, जो इस तलवार की धार के योग पथ का अनुसरण न करना चाहते हों, उन्हें स्वयं को ऐसा करने के लिये बाध्य नहीं करना चाहिये। एक योगी, एक संत, एक संन्यासी, एक भक्त में अन्तर होता है, उनकी जीवन शैलियों में अन्तर होता है, उनके बोध के स्वरूप भी भिन्न होते हैं। यहाँ, उपनिषद् का संबन्ध समग्रता के योग से है जिसमें हठ-योग एवं राज-योग सम्मिलित हैं, जिसका संबन्ध ऊर्जाओं के रूपान्तरण से है। प्रत्येक व्यक्ति को इस पथ के अनुसरण की प्रवृत्ति नहीं होती, इस के लिये स्वयं को बाध्य नहीं करना चाहिये। यह अध्यात्म का विज्ञान है, यह कोई मनगढ़न्त जगत् नहीं है, इसमें किसी आत्म-सम्मोहन (Hypnotism) का उपयोग नहीं किया जाता। यह तप के विज्ञान का आडम्बर-रहित मार्ग है।

कठोपनिषद् कहता है कि मानसिक स्तर पर प्रत्याहार एवं धारणा के अभ्यास द्वारा संवेदनाओं का अध्ययन होता है। उनके मूल में जाना होता है, उनके प्रेरणा के स्रोत का पता लगाना होता है, उन्हें जीवन के अन्य पहलुओं के साथ सबन्धित कर देखना होता है कि उनमें सामंजस्य है अथवा नहीं। *मात्र उसीको अवांछनीय कहा जा सकता है, जो आपके सम्पूर्ण जीवन के साथ असंगत हो। इसलिये नहीं कि किन्हीं धर्म-ग्रन्थों ने ऐसा कहा है अथवा धर्म संगठनों ने ऐसा कहा है, या फिर किसी व्यक्ति ने ऐसा कहा है।* एक आंतरिक स्पष्टीक़रण होना चाहिये कि अमुक विचार, अमुक भावनायें, आकर्षण अथवा प्रतिकर्षण सम्पूर्ण जीवन के साथ सुसंगत हैं अथवा नहीं। हमें पूछना चाहिये कि मुझे अपने जीवन के साथ क्या करना है ? मुझे दिये गये सौ वर्षों के जीवन के साथ क्या करना है ?*

दूसरे लोक में, भुवः लोक में जब स्थिरता आ जाती है, तो चित्त

---

* *जीवेम शरदः शतम्, पश्येम शरदः शतम्, शृणुयाम शरदः शतम्। उपनिषद् सौ वर्षों तक जीने का आमंत्रण देते हैं, एक दूसरे के साथ मिल-जुल कर इस सुन्दर संसार को सौ वर्षों तक देखने का उद्घोषण करते हैं। उपनिषद् मनुष्य जीवन की अवधि सौ वर्ष की मानते हैं तथा योगियों की एक सौ बीस वर्ष की। इसका उल्लेख विशेषकर योग विज्ञान में किया गया है, जिससे हमें अभी सरोकार नहीं है।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में वही विचार उठते हैं जो आपके जीवन की समग्र अभिप्रेरणा के साथ, जीवन के सम्पूर्ण उद्देश्यों के साथ सुसंगत होते हैं। फिर कोई असंगति नहीं होती, कोई असंगत विचार उठता ही नहीं, किसी विषय के लिये बलपूर्वक नियंत्रण नहीं करना पड़ता।

अवचेतन मन की वासनाओं के साथ पहचान

यदि मेरे लिये इस विषय को स्पष्ट करना संभव हुआ है, तो चलिये इसी विषय को एक भिन्न दृष्टिकोण से देखें, जो हमें आध्यात्मिक आयाम की ओर ले जायेगा। जैसे जैविक स्तर पर आपके आवेग आपकी इच्छा-शक्ति के साथ असंबन्धित होते हैं, वैसे ही मानसिक स्तर पर विचार, भावनायें इत्यादि आपकी इच्छा शक्ति, आपके सचेतन मन, आपकी संकल्पनाओं, आपके निष्कर्षों, आपके सिद्धांतों इत्यादि से संबन्धित नहीं होतीं। विचारों, भावनाओं, मनोभावों इत्यादि की गतिविधि इच्छाओं से संबन्धित है, आपके चेतन मन से नहीं। इस उपनिषद् द्वारा यह एक अति सूक्ष्म विषय का विस्तरण है, उसका स्पष्टीकरण है। वह कहता है, जैसे आप जै़विक जगत् के शासक नहीं हैं, आप अपने विचार जगत् के भी शासक नहीं है। एक अच्छे बागवान की तरह आप उसकी देखभाल कर सकते हैं, किस पौधे को कितने जल की आवश्यकता है, खेत में खलिहान को कितनी खाद देनी है, कैसे जंगली घास को निकालना है, पौधे की जड़ों को कैसे हवा पहुँचानी है इत्यादि, इत्यादि। एक अच्छा बागवान, जिसे अपने बगीचे से प्रेम होता है, उसकी तरह आप ध्यान देते हैं, सतर्क रहते हैं। एक अच्छा किसान जैसे सतर्क रहता है, वैसे ही आप जैविक लोक के प्रति सावधान रहते हैं, उसकी गतिविधि, उसकी ऊर्जाओं की पारस्पारिक-क्रिया के प्रति सतर्क रहते हैं। आप उसके शासक नहीं है, आप उस पर नियंत्रण नहीं रख सकते।

भारतवर्ष में ऐसे लोग हैं जिन्होंने हठ-योग के नाम से नियंत्रण का उपयोग किया है, उसकी नुमाईश की है। बारह वर्षों तक एक टांग पर खड़े हो कर, कीलों की सेज पर सो कर, दहकते कोयलों पर चल कर,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीन-चार दिवस तक ज़िंदा धरती में दबे रह कर उन्होंने प्रदर्शन किया है; जैसे सर्कस में प्रदर्शन किये जाते हैं। वे भी हैं जिन्होंने शरीर की शक्ति का परिष्कार किया है और अपनी अग्रबाहु पर बड़े- बड़े बांस तोड़ देते हैं, इत्यादि, इत्यादि। *योग का इन निपुणताओं से, नियंत्रणों से, बल के ऐसे प्रदर्शनों से कोई संबन्ध नहीं है। उसमें जीवन की कोई ऐल्किमी नहीं है।* उस दुराग्रही नियंत्रण में, संरचना के प्रति हिंसा में कोई सौन्दर्य, कोई लालित्य नहीं है। भारतवर्ष में लोग उनकी पूजा करते हैं, उन्हें आध्यात्मिक रूप से उन्नत मानते आये हैं। इस प्राच्य विश्व में आध्यात्मिक साधनाओं के नाम से, धार्मिक जीवन के नाम से जिन विकृतियों, विकारों एवं रुग्णताओं में व्यवहार किये गये हैं, उनमें जाने के लिये हमारे पास समय नहीं है।

मैं इस देश में रही हूँ, उन विकृतियों को मैंने देखा है। उन्हें हठ-योग के नाम से सिखाया जाता है, उन्हें साधना के नाम से, तंत्र विद्या इत्यादि के नाम से सिखाया जाता है। इस सब ने भारतीय मन को, चेतना को शक्तिहीन कर दिया है । यहाँ असंख्य अक्षम लोग पाये जाते हैं, वे जो शारीरिक रूप से अक्षम हैं, लाखों करोड़ों मानसिक रूप से, बौद्धिक रूप से अक्षम हैं; शक्तिहीन लोगों का समूह है यहाँ। मुझे आपको यह बताने की आवश्यकता नहीं कि विमला को आलोचना करनी नहीं आती, वह तो अपने मित्रों के साथ मात्र अपना दुःख बाँट रही हैं।

मानसिक स्तर पर हम विचारों के नियंत्रक नहीं हैं। आपकी चेतना में विचारों का उठना व शांत होना, उनका पूर्णतः शान्त होना अथवा आपकी चेतना से मिट जाना जिससे वह पुनः कभी न लौटें, ऐसा नियंत्रण द्वारा संभव नहीं है। यह हिंसा से अथवा शपथ लेने से या प्रतिज्ञा लेने से नहीं किया जा सकता। यह तो अवलोकन द्वारा, गतिविधि को देखने से संभव होता है। विचारों तथा भावनाओं की संवेदनाओं से कुछ अन्तराल रख, समय की दूरी रख प्रश्न करना पड़ता है कि वह कैसे उठती हैं? क्यों बार-बार दोहराये जाती हैं ? उनके पीछे छुपी वासना, जो उनका पोषण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करती है उसे खोज निकालना होता है। यह एक सुन्दर अध्ययन होता है। अपने ही शरीर में सत्य को खोजना बहुत आनंददायक होता है। *सत्य की व्यक्तिकं खोज अध्यात्म का सार है। दूसरों के कथन को अपना लेना, उनके अनुरूप चलना, लिंग भेद, हठधर्मी एवं सिद्धातों के नाम से कट्टर बनना, कठोर बनना अध्यात्म नहीं है। मनुष्य जाति ने इन निषेधों, इन परित्यागों के कारण बहुत दुःख भोगे हैं।*

योग विज्ञान कहता है – 'उत्पद्यमानानां'; विचारों एवं भावनाओं की संवेदनाओं का जन्म आपमें ही होता हैं, कुछ भी बाहर से नहीं आता। आपके समस्त अच्छे -बुरे विचार, आपकी सभी भावनायें, वासनायें एवं लोभ आपसे ही जन्में हैं। संभवत: आपने कभी,कहीं, किसी पुस्तक में कुछ पढ़ा हो, जो आपकी अवचेतना की गहराई में चला गया हो, जिसने एक विचार, एक संकल्पना, एक भावना का रूप धारण कर लिया हो। जो हम ग्रन्थों में पढ़ते हैं, जो परनिंदा सुनते हैं, चारों ओर जो दृश्य देखते हैं, महत्त्वाकांक्षा द्वारा प्रेरित अथवा अकेलेपन को दूर करने की इच्छा से जो अविवेकी मेल-जोल रखते हैं, वे सब अन्तर में उतर जाते हैं। वह आहार होता है, जो आहार आप अपने जीवन में ग्रहण करते हैं और जो आपके मानसिक जीवन की बनावट पर, उसके स्वरूप पर प्रभाव डालता है।

दूसरों को अथवा समाज को दोष देने से कोई लाभ नहीं। हमें पता लगाना है कैसे छुपी हुयी इच्छायें, महत्त्वाकाक्षांयें, भय के अवरोधन हमारे अन्दर पड़े हैं और किन द्वेषों को हम संजोये बैठे हैं। वह झलक जाते हैं, वह स्वप्नों का स्वरूप ले लेते हैं। इसलिये चेतन स्तर पर यदि कोई आपसे पूछता है तो आप कहते हैं, नहीं मुझमें कोई अवहेलना नहीं है, कोई घृणा नहीं है; वह चेतन स्तर पर नहीं होती। जो आप स्वप्न में देखते हैं वह चेतन स्तर पर नहीं होता, फिर भी स्वप्न-चेतना आपके अस्तित्व का भाग होती है। इसलिये आपको जागृत रहना होता है, सावधान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रह अपने अन्दर के विचारों एवं भावनाओं को व्यवस्थित करना होता है। एक बार कारण समझ में आ जाये, बस एक बार आपको अपराधी की पहचान हो जाये। यदि आप योग के विद्यार्थी हैं, यदि अन्तर में जानने की प्रेरणा है, तो अपराधी को देखते ही आप उसे पहचान लेंगे। उसके लिये अपने साथ परिश्रम करना पड़ता है, अन्तर कक्ष को अपनी दृष्टि एवं अवधान के समक्ष प्रकट करना पड़ता है।

योगावस्था का प्रतिष्ठान

जब अव्यवस्था एवं असामंजस्य को मिटा दिया जाता है, तब शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जाओं के समन्वयपूर्ण ग्रह में विश्रांति के शान्त, शीतल जल का आगमन होता है। अब तक सम्पूर्ण अस्तित्व में, दोनों लोकों-भू: एवं भुव: लोकों-में अव्यवस्था थी; वहाँ अशांति, अव्यवस्था, असामंजस्य था। अब सम्पूर्ण अस्तित्व को व्यवस्थित कर दिया गया है, अब वहाँ स्थिरता है। वहाँ समन्वय का संगीत है। ध्यान, आपके अन्तर के आकाश में मौन की शांत झील है।

स्थिराम् इन्द्रियधारणाम् योगं इति मन्यन्ते। अब शारीरिक एवं मानसिक स्तर पर योगावस्था का प्रतिष्ठान हो गया है, उसने एक निश्चित रूप धारण कर लिया है। यह भी पूर्णावस्था नहीं है, यह पूर्णता का बिन्दु नहीं है परन्तु यह नितांत अनिवार्य है, इसके बिना वह 'दूसरा' नहीं आ सकता। *इसी आंतरिक समन्वय एवं आंतरिक सुव्यवस्था के कारण, एक योगी के जीवन में निर्मलता एवं लालित्य का भान होता है। प्रत्येक क्षण उसकी प्रत्येक गतिविधि में एक प्रकार की अभिनवता की, लालित्य की सुगंध होती है।* उसमें सहजता की सुगमता होती है, क्योंकि सब समझ लिया गया है, स्पष्ट कर दिया गया है, व्यवस्थित कर दिया गया है।

अब ईश्वरत्व के आनंद, सत् -चित्-आनंद को, उसके सौन्दर्य एवं लालित्य को, ब्रह्मन् को, परम सत्य को इस शरीर में प्रकट होने का सुअवसर मिलता है। अब वह मनोभौतिक संरचना तैयार है, वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुसज्जित है; अब वह सूक्ष्मग्राही है। वह जिसने शरीर एवं मन के स्तर पर संवेदनाओं को देख लिया है, उसमें अब सूक्ष्म ऊर्जाओं के बोध की क्षमता है। स्थूल से सूक्ष्म की ओर ऊपर जाना होता है; यह एक ऊर्ध्वगामी तीर्थयात्रा है।

ध्यानावस्था की स्थिरता में अमृतत्व का वास

आपके अंदर, मौन की झील के शान्त जल में, उस मौन के आंतरिक आकाश में वह परम सत्ता अब स्वयं को प्रकट करती है। पहले वह प्रतिबिम्बित होती है, आपको उसका भान होता है। ध्यानावस्था में आपको उसके प्रति एक प्रकार के आनंद का अनुभव होता है। अब यदि हम उत्तेजित नहीं होते, उसे व्यक्त करना अथवा उस आनंद को प्रदर्शित करना नहीं चाहते, तो 'धीरः अमृतत्वं पश्यन्ति'। वे जिनके पास अथाह धैर्य है, वही इस अमृत का पान करते हैं। साधारणतः हमारे दिन-प्रतिदिन के जीवन में जिस क्षण हमें कुछ अनुभव होता है, हम उसके विषय में बात करना चाहते हैं, उसे व्यक्त करना चाहते हैं। हममें धारणा शक्ति का, धृति का धैर्य नहीं होता; हममें धृति नहीं होती। इसलिये कुछ भी आत्मसात नहीं होता, कुछ भी एक शक्ति नहीं बन पाता, कुछ भी आंतरिक शक्ति को संपन्न नहीं कर पाता।

अब वह यथार्थता, वह ब्रह्मन्, वह शुद्ध चेतना, सांख्य एवं योग का पुरूष, ईशोपनिषद का ईश, छन्दोग्य का ओंकार, बृहदारण्यक का अमृतं, बिन्दूपनिषद एवं नादोपनिषद का बिन्दु अथवा अमरत्व की वह बूँद जल में प्रतिबिम्बित होती है । पहले आपको अपने अस्तित्व में उस के होने का अनुभव होता है, फिर वह सभी स्तरों में प्रवेश करती है, वह आप के अस्तित्व के प्रत्येक रोम में व्याप्त हो जाती है। उसे नेत्रों द्वारा देखा नहीं जा सकता, शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता, कर्णों द्वारा उसका श्रवण नहीं किया जा सकता। फिर भी जब आपके अस्तित्व में ध्यानावस्था स्थिर हो जाती है, तो वहाँ उसका निवास होता है। वह जैविक नहीं है, मानसिक नहीं है, फिर भी वह वहाँ निवास

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करती है। 'धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुह्यां'; आपकी ही समझ की गुफ़ा में अमृत तत्त्व छुपा है। 'धीरः तत्त्वभावे पश्यन्ति'; वह जिसमें असीम धैर्य है, वह उस तत्त्व का, उस अनादि-अनंत तत्त्व के होनेपन का अनुभव करता है। अमरत्व, ईश्वरत्व, ब्रह्मन्, आत्मन् कोई हस्ती नहीं है, वह एक तत्त्व है, वह एक मूलतत्त्व है, वह एक ऊर्जा है, जिसका अनुभव किया जा सकता है। आपका शरीर चेतना का संवेदनशील वाहक बन जाता है, वह आत्मन् की, आत्म-बोध की ऊर्जा से सजीव हो जाता है।

द्रष्टा तत्त्व कोई हस्ती नहीं

अब आत्म बोध का नया प्रकाश होता है, जो किसी अन्धकार को नहीं जानता, जिसका किसी के साथ तादात्म्य नहीं होता। *वह द्रष्टा तत्त्व है, ज्ञाता तत्त्व है, अनुभव तत्त्व है। यद्यपि वह देखता है, जानता है, अनुभव करता है, वह एक व्यक्ति-विशेष अनुभवकर्ता नहीं बनता।* मानसिक स्तर के अहम् समान वह यह दावा नहीं करता कि 'मैं' देखता हूँ, 'मैं' अनुभव करता हूँ, 'मैं' जानता हूँ। देखने, जानने, समझने, कर्म करने का मूलतत्त्व बिना एक हस्ती बने, बिना विशिष्ट बने अस्तित्व में व्याप्त हो जाता है; क्योंकि उसकी जड़ें वैश्विक जीवन में होती हैं। वह संयुक्त होता है , वह अपने मूल से कटा हुआ अथवा उससे विभाजित नहीं होता। जैसे सूर्य का प्रकाश पृथ्वी का स्पर्श करता है, वैसे वह पुरुष आपको स्पर्श करता है वह आत्मन् के रूप में प्रकट होता है। एक बार वह ऐसे उदय हो जाये, फिर वह अस्त नहीं होता; वह वहीं रहता है।

अस्ति इति !

नचिकेता, जब आत्मन् के होने का अनुभव होता है अथवा जब उस देखने, जानने, बोध करने इत्यादि के तत्त्व के होने का अनुभव होता है, तो योगी कहता है, यही है वह! यही है वह ! एतद्वै तत् ! वह मात्र यही कह सकता है। यदि आप उसे वर्णन देने को कहें तो वह कहता है कि कोई शब्द उसका वर्णन नहीं कर सकते; वह कोई विषय नहीं जिसका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वर्णन दिया जा सके। उसने किसी हस्ती का रूप धारण नहीं किया है। वह अपने सार-तत्त्व अथवा मूल-कारण होने की अवस्था को, मूल-स्रोत होने केप्रवाह की धारा को बनाये रखता है। इसी कारण वह सम्पूर्ण अस्तित्व में व्याप्त हो सकता है। क्या आप कह सकते हैं कि आत्मन् पांव के अंगूठे में नहीं है? वह एक साथ सब जगह है, वरना आप पांव के तलवे में कांटे की चुभन का कैसे अनुभव करते, आपके उदर में हुयी पीड़ा मस्तिष्क द्वारा कैसे पहचानी एवं समझी जाती? देखने, जानने, अनुभव करने का वह मूलतत्त्व सम्पूर्ण अस्तित्व में व्याप्त है, जैसे ब्रह्मन् सम्पूर्ण ब्रह्मांड में व्याप्त है। इसलिये आप मात्र यही वर्णन दे सकते हैं कि वह है, अस्ति इति!

नचिकेता ने पूछा था- अस्ति इति एके, न अस्ति इति एके? यमराज कहते हैं, अस्ति इति; वह है वहाँ। न चक्षुषा पश्यति; आपके नेत्र उसे देख नहीं सकते, वाणी उसका वर्णन नहीं कर सकती। आपके कर्ण उस आंतरिक समन्वय के गीत के निश:ब्द नाद का श्रवण नहीं कर सकते। इस बोध के प्रकाश की आप द्वारा देखे गये किसी भी भौतिक प्रकाश के साथ तुलना नहीं की जा सकती। इसलिये निस्सहाय हो व्यक्ति को कहना पड़ता है- अस्ति इति! अस्ति इति! वह है! वह है! अस्ति इति उपलभ्यते! आपको क्या प्राप्त हुआ? मुझे कुछ प्राप्त नहीं हुआ, मैंने मात्र यही देखा है कि वह है और मैं वही सर्वं खल्विदं ब्रह्मन् हूँ। अहम् ब्रह्मास्मि! तत् तत्वं असि! ओह, मेरे मित्र तुम भी वही हो, यह सम्पूर्ण जीवन ईश तत्त्व है। वह व्यक्ति मात्र यही कह सकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पच्चीसवाँ संवाद

हमने देखा था कि परम सत्य के साथ सम्मिलन के क्षण, विस्मय भाव से योगी मात्र यही कह सकता है-अस्ति इति ! अस्ति इति; यथार्थता है, ईश्वरत्व है, आत्मन् है अथवा ब्रह्मन् है। अब यह हम पर निर्भर करता है कि हम उन अभिव्यक्तियों पर विश्वास रखें, यर्थाथता के साथ प्रत्यक्ष सम्मिलन से खिले फूलों पर आस्था रखें अथवा न रखें।

नचिकेता ने तीसरे वरदान स्वरूप प्रश्न किया था कि अस्ति इति एके न अस्ति इति च एके? उसने कहा था कुछ लोगों के कथन अनुसार आत्मा का अस्तित्व शरीर के जीवित रहते हुए तथा उसके अंत पश्चात् भी रहता है, अन्य जन कहते हैं कि शरीर के अन्त पश्चात् उसका अस्तित्व नहीं रहता। नचिकेता ने सत्य दर्शन के लिये निवेदन किया था। सम्पूर्ण कठोपनिषद् इसी प्रश्न का उत्तर है।

जीवन के दो मार्ग

दो मार्ग हैं। उन पर चलने वाले कुछ भिन्न मत प्रकट करते हैं। एक मार्ग है भौतिकवादियों का, जिनका विश्वास होता है कि भौतिक पदार्थ ही एकमात्र सत्य है। पदार्थों में समायी ऊर्जाओं का भी इन भौतिकवादियों एवं वैज्ञानिकों द्वारा स्वीकार होता है। वे परम यथार्थता की खोज पदार्थों तथा उनमें समायी ऊर्जाओं द्वारा करते हैं। कुछ लोग इन भौतिकवादियों अथवा वैज्ञानिकों पर आस्था रख, पदार्थों एवं उनमें समाविष्ट ऊर्जाओं को ही जीवन का एकमात्र, सम्पूर्ण एवं अद्वितीय सत्य मानते हैं। वे वैज्ञानिकों पर, भौतिकवादियों पर विश्वास कर भौतिक विषयों का मार्ग लेते हैं, जो अन्ततः इच्छा का मार्ग बन जाता है। शरीर के बाहर, भौतिक विषयों की ओर जाने के लिये इच्छा की प्रेरणा-शक्ति का उपयोग करना पड़ता है और: व्यक्ति विषयों की असंख्य विविधताओं में खो जाता है। उन विषयों को पाने की चेष्टा में वह सुख एवं दुःख की गलियों में, उनकी संकीर्ण गलियों में भटक जाता है। यह कथन उन्हें भी सम्मिलित करता है जो विचारों के क्षेत्र से आकांक्षा रखते हैं, विचार एक भौतिक ऊर्जा है; विचार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करना एक भौतिक क्रिया है।

जो लोग विचारों, भावों, मनोवेगों इत्यादि के पथ का अनुसरण करते हैं, वे भी अनजाने में ज्ञान की प्राप्ति के लिये, ज्ञान के माध्यम से अधिकार प्राप्त करने के लिये, ऐन्द्रिय, अतीन्द्रिय, गुह्य स्तरों केअनुभवों की प्राप्ति के लिये, अनुभवों में समाये प्राधिकारों के लिये इच्छा की उसी प्रेरणा-शक्ति का उपयोग करते हैं। वे विचारों दार्शनिक प्रणालियों, सिद्धांतों, मतों, संवेगों, भावनाओं, अथवा अनुभवों की भीड़ में खो जाते हैं। संभवत: जीवन की अंतिम श्वास तक, जब वे मृत्यु के द्वार पर खड़े रहते हैं तब भी इच्छा उन्हें नहीं छोड़ती। क्योंकि ज्ञान, अनुभवों अथवा भौतिक विषयों द्वारा इच्छा की तुष्टि एक पूर्णता का भान नहीं देती, वह आनंद एवं शान्ति की प्रतीति नहीं देती। वे समस्त उपलब्धियाँ, अधूरेपन की, अपूर्णता इत्यादि की अन्धेरी छाया से घिरी रहती हैं। हममें से अधिकतर लोग वैज्ञानिकों, दार्शनिकों, भौतिकवादियों, अर्थशास्त्रियों पर आस्था रखते हैं। हम उनके पथ का अनुसरण करते हैं; जहाँ प्रत्येक लाभ एक हानि है और प्रत्येक सुख अपने सायेतले दु:ख का पोषण किये हुये है। यह पथ इच्छा का एक अविरल पथ है।

श्रद्धा की नींव से अन्वेषण

एक अन्य पथ भी है। इस पथ पर योगी, मुक्त-जन, प्रबुद्ध-जन घोषित करते हैं कि ईश्वरत्व है, आत्मन् का, ब्रह्मन् का, परम प्रज्ञा एवं चैतन्य का अस्तित्व है। एक आश्चर्यजनक बात है कि यह आध्यात्मिक पथ के पथिक कभी भौतिक के अस्तित्व का खंडन नहीं करते। भौतिकवादी भले आध्यात्मिकता अथवा ईश्वरत्व के होने को नकार दें, परन्तु एक सच्चा आध्यात्मिक व्यक्ति, एक योगी, एक मुक्त व्यक्ति वह दृष्टि रखता है जो भौतिक को परम सत्य में सम्मिलित रखती है। उनका कथन है कि चेतना, दिव्य चेतना, वैश्विक चेतना भौतिक विषयों का स्रोत है, उनका सार है। अब हमें स्वतंत्रता है कि हम उन पर आस्था रख कर प्रकाश के मार्ग का, योग के पथ का अनुसरण करें अथवा अन्धकार के मार्ग का,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इच्छाओं के मार्ग का अनुसरण करें। इस स्पष्टीकरण की आवश्यकता निम्नलिखित मंत्र के अध्ययन के लिये है।

अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन चोभयो:।
अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभाव: प्रसीदति।

हम एक अति महत्त्वपूर्ण मंत्र के अध्ययन पर आ पहुँचे हैं। आप एक योगी के जीवन में प्रत्यक्ष सम्मिलन से उमड़ती उस सहज अभिव्यक्ति पर आस्था रखते हैं। आप श्रद्धा रखते हैं कि जीवन के मूलतत्त्व के रूप में उसका अस्तित्व है। उपलब्धव्यं तत्त्वभावेन; आप उसे एक अन्धविश्वास के रूप में नहीं स्वीकार करते, आप उसे अबोधता में नहीं मान लेते। आप कहते हैं, महाराज मैं आपके संदेश, आपके कथन पर आस्था रखता हूँ कि वह यथार्थता, वह सर्वव्यापी प्रज्ञा, तत्त्व के रूप में विद्यमान है। इसलिये मैं अन्वेषण करूँगा, एक खोज पश्चात् आपके कथन की प्रामाणिकता सिद्ध करूँगा। इस प्रकार पहले आप श्रद्धा करते हैं।* योगियों और मुक्तजनों के शब्दों पर श्रद्धा रख, उनके कथन पर श्रद्धा रख एक सुझाव के रूप में, एक अंतरिम रूप से साधक अपने अनुसंधान का आरम्भ करता है। उनके कथन के सहारे जीने के लिये नहीं परन्तु खोज के लिये, सीखने के लिये, सिद्ध करने के लिये। *इस प्रकार जब हम उनके द्वारा प्रदान किये ज्ञान को एक प्रस्ताव के रूप में स्वीकार कर, उसे अपने अनुसंधान एवं प्रयोगों का आधार बनाते हैं, तो हम एक काल्पनिक जगत् की रचना नहीं करते। हम एक भावनात्मक आत्मसम्मोहन में नहीं जाते।* साधना के प्रत्येक कदम पर सावधानी से, सतर्कता से, अपने अनुभवों की प्रमाणिकता सिद्ध करने के उद्देश्य से हम उनके अनुभवों के साथ साम्यता रखते हैं। यदि ऐसा किया जाता है - तो अस्ति इति उपलब्धव्यस्य तत्त्व भावेन। जैसा पिछले मंत्रों में दिखाया गया था, ऐन्द्रिय विषयों के साथ अ-तदात्मीकरण द्वारा आंतरिक एवं

---

* *उन मन एवं मस्तिष्क वालों के लिये, जिनका पोषण पश्चिमी देशों में, यूरोप अथवा अमरीका में हुआ है, उनके लिये श्रद्धा शब्द को समझना कठिन होगा।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाह्य इन्द्रियों की गतिविधि के साथ अ-तदात्मीकरण कर, आप मौन एवं ध्यान की वेदी पर आ बैठते हैं और प्रकटीकरण हो जाता है।

कठोपनिषद् कहता है, तत्त्वभावेन प्रसीदति। जब साधक ऐसा करता है, तब ध्यानावस्था में जागृत ज्ञान, इच्छा एवं क्रिया की त्रिविध अग्नि आत्मन् का प्रकटन बन जाती है। वह परम यथार्थता का प्रकटन होता है; वह प्रकटन प्रसाद होता है। एक साधक पर वह अनुग्रह होता है। प्रसाद का अभिधार्थ होता है प्रेम की भेंट, यहाँ इसे परम परमेश्वर की कृपा कहा जा सकता है।

आप श्रद्धा से आरम्भ करते हैं। यदि आपमें श्रद्धा न हो तो आप पुन: अन्धकार के पथ पर चले जाते हैं, जो वासनाओं का पथ है, आसक्तियों का पथ है, मान-सन्मान इत्यादि की उपलब्धियों का पथ है। कठोपनिषद् चेतावनी देता है कि योग अध्ययन के प्रथम कदम से ही इस मूल श्रद्धा का होना अनिवार्य है; वह अवश्यंभावी है। यह श्रद्धा किसी देवी-देवता, किसी इष्ट देवता में नहीं परन्तु विश्व में व्याप्त जीवन तत्त्व में होती है। इस तत्त्व के लिये वैश्विक श्वास, पुरुष एवं प्रकृति की संयुक्त एकता इत्यादि की भाषा का उपयोग किया जा चुका है।

सत्यापन की प्रमाणिकता की कसौटी

मान लीजिये एक साधक ने इस पथ का अनुसरण किया है और उसके हृदय की गुफ़ा में उस प्रकाश का प्रकटन हुआ है। क्या कोई ऐसा ढंग है, जिससे वह जान पाये कि प्रकटन विशुद्ध है, वह एक भ्रम, एक निर्मूल भ्रम नहीं है। सत्यापन की प्रमाणिकता की कसौटी क्या है? कठोपनिषद् एक वैज्ञानिक शैली है, इसलिये वह कहता है घटना की प्रामाणिकता सिद्ध करने का ढंग है। *यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थय: -यदि वह ज्ञानोदय हुआ है, उस प्रकाश का प्रकटन यदि आपके ध्यान की गुफ़ा में हुआ है, तो उसके परिणाम स्वरूप आपके हृदय की समस्त ग्रन्थियाँ खुल जायेंगी।* भिद्यन्ते शब्द का शब्दिक अनुवाद है वेधन, भिद्यन्ते हृदय ग्रन्थय: अर्थात् हृदय की ग्रन्थियों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का वेधन हो गया है, ग्रन्थियाँ काट दी गयी हैं। योग के अहिंसक साधना के दूत होने के नाते, हम भिद्यन्ते शब्द का अनुवाद हृदय की ग्रन्थियां खोलने के अर्थ में करेंगे। आप भले वेधन करने, काटने इत्यादि शब्दों का उपयोग करें अथवा खोलने शब्द का प्रयोग करें, अन्तत: अर्थ तो एक ही होगा कि अब ग्रन्थियां नहीं रहतीं । परन्तु जब शब्द हिंसा का थोड़ा सा भी स्पर्श लिये रहते हैं, तो वे मुझे पीड़ा पहुँचाते हैं, वह मेरी संस्कारिक सौन्दर्य दृष्टि का उल्लंघन करते हैं। इसलिये मुझे ऐसा कहने दीजिये कि हृदय की ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं।

ऐन्द्रिय स्तर की ग्रन्थि

अब भला ये ग्रन्थियां क्या हैं? ऐन्द्रिय स्तर पर, यह भौतिक विषयों के लिये एक निरंतर लालसा है, आवश्यकताओं के लिये नहीं अपितु भौतिक विषयों के लिये ही उनकी लालसा, धन के लिये ही धन की ललक, मात्र प्राधिकार के लिये ही उसका प्रलोभन, सुख के लिये ही उसकी तृष्णा। भौतिक विषयों के लिये ऐसा तदात्मीकरण, मानो वे शान्ति एवं आनंद का स्रोत हों। *जब हृदय की ग्रन्थि खुलती है, तो भौतिक विषयों के साथ एक संबन्ध रहता है परन्तु उनके साथ तदात्मीकरण का बन्धन नहीं होता।* तब तृष्णा का, उत्कंठा का, अधिक से अधिक पाने का दबाव नहीं होता, जो आपको सदैव दौड़ाता रहे। विषयों के पीछे दौड़ाया जाता है, भले वे कोई भी विषय हों, भले वह एक पुरूष, स्त्री, आर्थिक अथवा राजनैतिक सत्ता हो, अतीन्द्रिय शक्ति हो, कुछ भी ऐसा जिसे प्राप्त करना होता है, उपलब्ध करना, अपनाना होता है, जिस पर स्वामित्व करना पड़ता है, जिस का संरक्षण करना पड़ता है ।

संबन्ध बन्धन नहीं होता, तदात्मीकरण एवं तृष्णा ही बन्धन होते हैं। शरीर का अस्तित्व, उसकी उत्तरजीविता, उसकी पुष्टि उस स्वस्थ संबन्ध पर निर्भर करती है । उससे इन्कार नहीं किया जा सकता और करने की आवश्यकता भी नहीं है। बन्धन है वह लालसा, जो एक साधारण इच्छा नहीं होती । उससे एक लालसा का, तृष्णा का पागलपन उठता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, जिसके लिये मैं आवेश शब्द का उपयोग कर सकती हूँ। अब वह ग्रन्थि जाती रहती है। यदि प्रकटन घटित होता है तो भौतिक विषयों के साथ संबन्ध में, आपकी अभिवृत्ति में एक मूल गुंणात्मक परिवर्तन आ जाता है; जो आपके ध्यान में आ जाता है। यदि ऐसा नहीं होता है, तो वह 'लौ' इत्यादि आपके अवचेतन मन के प्रक्षेपण मात्र हैं; वह मन द्वारा प्रेरित भ्रम हैं।

मानसिक स्तर की ग्रन्थियां

दूसरी ग्रन्थि होती है शाब्दिक ज्ञान एवं भावनाओं के लिये लालसा, उनके लिये उत्कंठा। हृदय में यह एक दूसरे प्रकार के तदात्मीकरण का क्षेत्र रहता है; आकांक्षा का, लालसा का; पीछे दौड़ने का यह दूसरा क्षेत्र होता है। जीवन के अंतिम श्वास तक लोग विश्व में दर्शन प्रणालियों की, सिद्धांतों की, ज्ञान के भिन्न स्रोतों की खोज में भटकते फिरते हैं। वह अधिक से अधिक जानना चाहते हैं, मानो जानकारी सत्य के प्रकटन में परिवर्तित होने वाली हो। शाब्दिक ज्ञान कभी किसी व्यक्ति को प्रत्यक्ष सम्मिलन के लिये वह संवेदनशीलता, वह परिपक्वता नहीं दे सकता, क्योंकि वह मात्र उसके विषय में जानना होता है। हमारे हृदय शब्दों एवं संकल्पनाओं की झाग पर परिपोषित होते हैं। जैसे वह भौतिक पदार्थों पर पोषित होते हैं, वैसे ही वह संकल्पनाओं, सिद्धान्तों द्वारा पोषित होते हैं, उनके द्वारा बने रहते हैं। यदि मुक्ति, मोक्ष, कैवल्य एवं निर्वाण शब्द पुराने हो जाते हैं, तो रूपांतरण, तत्त्वांतरण इत्यादि शब्द प्रचलित हो जाते हैं; आप मात्र शब्दों को बदल देते हैं। इनका बंधन अति सूक्ष्म होता है, यह पहली ग्रन्थि से कहीं अधिक विनाशकारी होता है।

पहली ग्रन्थि स्थूल जगत् में होती है, यदि कोई चाहे तो उसे छोड़ सकता है; जिससे एक मुक्तता के भाव का अनुभव होता है। दूसरी ग्रन्थि की पकड़ पहली से अधिक प्रबल होती है, क्योंकि यह आपकी ज्ञानेन्द्रियों से संबन्धित नहीं होती, वह आपके बाहर के विषयों से नहीं जुड़ी होती। पठन से, श्रवण इत्यादि से आपके अन्दर वे विचार आये हैं, स्मृति में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जमा हो गये हैं। इसलिये हमें लगता है, मुझसे भले मेरा सर्वस्व ले लिया जाये परन्तु मेरे विचार नहीं, मेरी पसंदगी-नापसंदगी नहीं, मेरे अधिमान व मेरे पूर्वाग्रह नहीं। मुझसे मेरे मूल्यों की संरचनायें न ली जायें, जिनका मैंने निर्माण किया है। मेरे लिये जो महत्त्वपूर्ण है, मुझसे वह मत लीजिये।

अस्तित्व के मानसिक स्तर की ग्रन्थि दूसरों को अदृश्य होती है। ऐन्द्रिय स्तर पर लोग आपकी लालसाओं को, उत्कंठाओं को, आपके आवेशों को देख सकते हैं, उनकी प्राप्ति एवं हानि इत्यादि भी लोगों को दिखती है। इसलिये इस स्तर पर कुछ नियंत्रण, कुछ सामाजिक नियंत्रण रहतें हैं। मानसिक स्तर पर आप अपने मन की गोपनीयता में रहते हैं। आप अन्दर जो भी करते हैं, विचारों को, कल्पनाओं को संजोते हैं अथवा अनुभवों से सुख लेते हैं या फिर उनका रस सेवन करते हैं, वह पूर्णतः आपके जीवन का निजी क्षेत्र होता है। आपके अंदर चेतन व अवचेतन मन में विचार घूमते रहते हैं, भावनायें चक्कर काटती रहती हैं। इस प्रकार पाने, अपनाने, अधिकरण करने, माँग करने इत्यादि का खेल एक अति सूक्ष्म स्तर पर चलता रहता है, उसकी गांठ बहुत प्रबल होती है।

जब आप विचारों से, अनुभवों से कुछ दूरी रख उन्हें देख सकते हैं, तो आप देखते हैं वे कैसे उठते हैं और आप स्वयं को तदात्मीकरण से मुक्त कर सकते हैं। वह ग्रन्थि खुल जाती है। भिद्यन्ते हृदय ग्रन्थयः; हमें यह एक अति महत्त्वपूर्ण सुझाव दिया गया है, यह प्रामाणिकता सिद्ध करने का ढंग है। *प्रत्येक हृदय में अन्तरात्मा की आवाज होती है, यदि आप उसकी ओर उन्मुख हो जायें तो वह कभी धोखा नहीं देती। वह आपको दिखाती है कि विचारों के साथ, भावनाओं के साथ तादात्म्य छूटा है या नहीं।* जब तक वे आसक्तियां रहती हैं, जब तक वे ग्रन्थियाँ रहती हैं, उनके द्वारा रचित अवशेष रहते हैं, वे संबन्धों में प्रतिबिम्बित हो जाते हैं। आप कुछ छुपा नहीं सकते, आप कुछ गुप्त नहीं रख सकते। प्रत्येक क्षण आप वैश्विक प्रज्ञा के समक्ष अनावृत्त रहते हैं, आपकी प्रत्येक गतिविधि आपके अन्तर को प्रकट करती है।
Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यही जीवन का सौन्दर्य है। आप भले कितना ही छुपाना चाहें अथवा स्वीकृतियों-अस्वीकृतियों की आड़ में छुपना चाहें, जो है वह अधिक समय तक छुपाया नहीं जा सकता, ढका नहीं जा सकता। आप भले स्वयं को या फिर दूसरों को कुछ समय के लिये धोखा दे लें, परन्तु आप सदा के लिये ऐसा नहीं कर सकते। जब आप सावधान नहीं होते, आपकी प्रतिक्रियों के क्षणों में वह अनावृत्त हो जाता है। *जब आप संबन्धों की तेज गति में होते हैं, तो आपके अस्तित्व का आंतरिक स्वरूप अनावृत्त हो जाता है।* कृपया ऐसा जान लीजिये।

इसलिये कठोपनिषद् कहता है, भिद्यन्ते हृदय ग्रन्थयः। यदि प्रकटन हो गया हो तो बालकों के समान, अल्पवयस्कों के समान आप विचारों, भावनाओं, मनोभावों के साथ तदात्मीकरण का खेल नहीं खेलते। आप उन पर अपना अधिकार नहीं जमाते, विचार करते रहने में, उन्हें शब्दों में व्यक्त करते रहने में, उनके विषय में बात करते रहने में रस नहीं आता। वह सब छूट जाता है। उनका उपयोग उसी स्तर तक रखा जाता है, जब तक उनकी आवश्यकता हो। जब आवश्यक हो तब आप वाणी का, मन का उपयोग करते हैं, अन्यथा आप अपने हृदय के मौन में पुनः लौट जाते हैं, आप ध्यान की गुफ़ा में लौट जाते हैं। ध्यानावस्था आपका निवास स्थान बन जाती है, जहाँसे आप मानसिक स्तर पर, वाणी एवं ऐन्द्रिय स्तर पर कर्म करते हैं। इसलिये यदि किसी को स्वयं से धोखा करने का व्यसन न हो, तो व्यक्ति जान सकता है कि कथित प्रकटीकरण एक भ्रम है अथवा यथार्थता है।

अंतिम ग्रन्थि

अंतिम ग्रन्थि की पकड़ और भी प्रबल होती है, जो आपके अस्तित्व की और अधिक गहराई में होती है। प्रकटीकरण होने पर एक भान रहता है कि मैंने देखा है, मुझे प्रकटीकरण हुआ है। अहम् अब सबसे उच्च स्तर पर रहता है, पृथकता का भान सबसे उच्च स्तर पर रहता है। 'मैंने देखा है', 'मैं मुक्त हूँ', 'मुझमें परिवर्तन आया है', 'मैं समाधि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में हूँ', 'मैं आत्मबोध में जीता हूँ'; मुक्ति के भान के साथ तदात्मीकरण का यह सबसे सूक्ष्म स्वरूप है। उपनिषद् कहता है, वह जो कहता है मैंने जाना है वह जानता नहीं और वह जो समझता है कि वह जानता नहीं उसने समझ लिया है। यह एक अति सूक्ष्म गांठ होती है।

मनुष्य प्रयास की सीमा

जैसे ऐन्द्रिय स्तर पर सुख एवं दुःख का एक नशा होता है, व्यक्ति जिन में खो जाता है, वैसे ही विचारों एवं भावनाओं के स्तर पर भी नशा होता है। लोग शब्दों द्वारा उन्मत्त हो जाते हैं, उनकी काव्यमयता, उनकी कोमलता, उनकी विशुद्धता, उनके त्रुटि रहित तर्क इत्यादि से वे उन्मत्त हो जाते हैं। ऐसे में लगभग एक भाव समाधि सी होती है। वैसे ही जब प्रकटीकरण होता है तथा परमानंद की उन्मत्तता बनी रहती है, तो जान लीजिये कि प्रकटीकरण नहीं हुआ है। क्योंकि जब आत्मन् अथवा परमात्मन् का अनुग्रह आपके अस्तित्व पर प्रकटीकरण स्वरूप होता है तो आप नहीं देखते, वह आपको दिखाया जाता है। आप उसे अपने बल पर नहीं देख सकते थे। *अपनी शक्ति से आप ध्यान के बिन्दु पर पहुँचते हैं, तत्पश्चात् आपके मनुष्य प्रयास की सीमा होती है। यही तो सुन्दरता है।* वह प्रयास जिससे आप वैज्ञानिक रीति से एक-एक कदम ले कर चले थे, जो गुणात्मक परिवर्तन ला रहा था, अब वही प्रयास विसंगत हो जाता है। आप इसकी सुन्दरता तो देखिये।

अप्रमत्त योग

आत्म-शिक्षा के लिये यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, धारणा इत्यादि के लिये प्रयास की आवश्यकता थी। उसकी अपनी प्रतिष्ठा, अपना सौन्दर्य था, अन्यथा आप अप्रमत्त योग के बिन्दु पर नहीं पहुँच सकते। कठोपनिषद् अप्रमत्त योग शब्द का उपयोग करता है, जो मात्र 'स्थिरामिन्द्रियधारणाम्' की अवस्था नहीं परन्तु अप्रमत्त है। वह जहाँ त्रुटि की कोई संभावना ही नहीं होती, जहाँ जीने के कर्म को निलंबित करने की कोई संभावना ही नहीं होती। प्रमाद का अर्थ जीने के कर्म को निलंबित करना है; अभी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से शाम को, आज से कल को। प्रत्येक निलंबन, प्रत्येक स्थगित कर्म, जीने के कर्म को स्थगित करना होता है। वह स्वयं एवं जीवन के बीच की पारस्परिक क्रिया को स्थगित करना होता है; प्रमाद जीने के कर्म का निलंबन है। *एक योगी जीने के कर्म को कभी स्थगित करने के लिये प्रवृत्त नहीं होता। भले वह पीड़ा हो अथवा सुख, वह कहता है मुझे उससे हो गुज़रने दो, मुझे उसे जी लेने दो।*

आप जानते हैं, ३० जनवरी १९८५ में, Los Angeles के अस्पताल में जे. कृष्णमूर्ति को बताया गया था कि उन्हें कैंसर है, जो अनिवर्त्य अवस्था में है, जो विघातक है। डॉक्टर उन्हें पीड़ाशमक दवा देना चाहते थे। जब कृष्णमूर्ति ने सुना कि उन्हें कैंसर है, जो विघातक है, जिससे असहन पीड़ा होगी, तो वे बोले - 'हे ईश्वर, मैंने शरीर के साथ क्या भूल की है'? कितना सुन्दर प्रश्न किया गया था! कैंसर शब्द अथवा विघातक कैंसर शब्दों द्वारा विचलित हुये बिना उनका प्रश्न था, मैंने शरीर के साथ क्या अन्याय किया है ? फिर वे बोले - 'चलो, कोई बात नहीं, परन्तु श्रीमान, हम पीड़ा का शमन क्यों करें'? 'क्या पीड़ा जीवन का अंग नहीं है'? 'चलिये इसे जी जाते हैं' ! एक नब्बे वर्ष के व्यक्ति में यह कहने की सजीवता थी कि पीड़ा जीवन का अंग ही तो है। वह अलग बात है कि जीवन के अंतिम तीन दिनों में, जब वे अर्धचेतन अवस्था में थे तब उनके शरीर में औषधियों का उपयोग किया गया था। वह एक भिन्न विषय है। बात है मृत्यु के समाचार के समक्ष उनकी अनुक्रिया की।

मैं कह रही थी कि एक योगी जीने के कर्म को कभी स्थगित नहीं करता, भले वह सुख हो अथवा दुःख, विजय हो अथवा पराजय; वही मरना है और वही जीना है। *क्योंकि जीवन ईश्वरत्व है आप दुःख अथवा वेदना, असहाय पीड़ा, मान या फिर सम्मान के साथ पवित्र अंतःक्रिया के शुभ अवसर को कैसे जाने दे सकते हैं?* उसे किसी भी अनुभव के वेष में आने दीजिये न ! इसलिये कहा गया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है - अप्रमत्त योग: !

तीसरी ग्रन्थि कब खुलती है? जब तक पृथकता का भान रहता है अथवा ब्रह्मानुभूति के, ब्रह्मानंद के नाम से पृथकता बनाये रखने की सूक्ष्म से सूक्ष्म भी इच्छा रहती है, उस आनंद अथवा शान्ति को बनाये रखने की इच्छा रहती है; तो जान लीजिये की प्रकटन नहीं हुआ है। जब तक हृदय के किसी कोने में एक हल्की सी भी इच्छा छुपी रहती है, तो जान लीजिये की प्रकटन नहीं हुआ है। *यदि मिलन के आनंद एवं सम्मिलन की कृपा का आनंद, आपके अन्तर क्षण भर के लिये भी उस अनुभव को, उस विशिष्ट आनंद को बनाये रखने की इच्छा नहीं उत्पन्न करता, तो उस प्रकटन की सत्यता है।* तब स्पंज में जल प्रवेश कर उससे निकल जाता है। एक योगी परमानंद के अनुभव को भी अपनाने के प्रयास बिना, उसे अपने से गुज़र जाने देता है। वह घटित हुआ है, मनुष्य चेतना के लोक में इस देह में बसी चेतना उस अवस्था में पहुँच गयी है, बस इतना ही।

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थय:। जब ऐसा हो जाता है, ऐन्द्रिय मानसिक एवं अतींद्रिय स्तर की ग्रन्थियाँ भी खुल जाती हैं तो वही अमरत्व है। पृथकता की इच्छा एवं अनन्य स्वामित्व की इच्छा नश्वरता है। ऐसा बोध रहे कि हम वैश्विक जीवन की अभिव्यक्ति हैं, यह चेतना अनेकों शरीरों में जन्म ले चुकी है। फिर यह तथ्य कष्ट नहीं देता कि आवश्यकता होने पर वैश्विक चेतना पुन: इसे किसी अन्य देह में भेजने वाली है। फिर यह प्रकटीकरण व्यक्ति को देश-काल से परे, ईश्वरत्व में ले जाता है। यह सम्मिलन व्यक्ति को कालातीत में ले जाता है, जो अनंतता है, जो ईश्वरत्व है, जो आत्मन् है, जो ब्रह्मन् है। इसलिये नचिकेता, अमरत्व का अनुभव अथवा उससे सम्मिलन केवल मनुष्य देह में हो सकता है, उसके बाहर नहीं। उसमें ही अमृत डाला जा सकता है।

क्या आपके ध्यान में आया है कि यह योग, कठोपनिषद् तथा उसके द्वारा सिखाया गया योग, प्रयास करने का सुझाव देता है और फिर कहता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है कि प्रयास को भी छोड़ना पड़ता है। समस्त क्रियाओं का शान्त होना ध्यान है, क्योंकि समस्त क्रियाएं इच्छा द्वारा प्रोत्साहित होती हैं। प्रयास की बहिर्गामी क्रिया तथा मौन की अतंर्मुखी क्रिया में संतुलन रखा जाता है तो ध्यानावस्था आती है। एक संतुलन बनाये रखा जाता है। संतुलन के सिवा योग भला और क्या है?

ऊर्ध्वगामी उत्थान की प्रेरणा

शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिः सृतैका।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेते विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति॥

आश्चर्य है कि इस मंत्र को उपनिषद् के अंत में दिया गया है। विमला को इन शब्दों को अन्त में दिये जाने की उपयुक्तता अभी तक समझ में नहीं आयी है। ऐसा लगता है, यह मंत्र अप्रत्यक्ष रूप से मरण के कर्म से संबंधित है, क्योंकि सम्पूर्ण उपनिषद् मृत्यु का मार्ग है, एक अग्नि पथ है। जिस मंत्र की चर्चा मैं कर रही हूँ, वह कहता है आपके हृदय में एक सौ एक नाड़ियां हैं*, उनमें से एक नाड़ी शीर्ष शिखर से जुड़ी रहती है। आपके शीर्षशिखर में एक अति सूक्ष्म द्वार है, जहाँ से वह नाड़ी अप्रतिबन्धित चेतना को ग्रहण करती है। ईश्वरत्व के साथ सम्मिलन, वैश्विक प्रज्ञा के साथ मिलन इस एक नाड़ी के माध्यम से होता है। वह हृदय से ऊर्ध्वगामी हो, शीर्ष-शिखर के इस छोटे से द्वार से ईश तत्त्व को ग्रहण करती है।

इस मंत्र के विभिन्न अर्थ लगाये गये हैं, भाष्यकारों एवं आचार्यों द्वारा उनकेव्याख्यानों में ही नहीं परन्तु योग की शाखाओं के विभिन्न प्रवक्ताओं ने भी ऐसा किया है।** तंत्र-योग, मंत्र-योग के अनुयायिओं ने, विशेषतः कुण्डलिनी योगियों ने इस मंत्र पर भिन्न रूप से व्याख्यान लिखे हैं, उन्होंने ग्रन्थियों की भी भिन्न व्याख्यायें दी हैं। यदि आप कुण्डलिनी योग पर लिखे

** नाड्य शब्द का प्रयोग किया गया है। आप इसे नाडी, नस अथवा धमनी, जो भी कहना पसंद करें।*

*** हम तो केवल एक योग की ही बात करते आये हैं, जो हठयोग एवं राजयोग का मिश्रण है। अन्य शाखायें भी हैं, परन्तु वह भी हठ-योग की अवहेलना नहीं कर सकतीं, उन्हें भी हठ-योग एवं राज-योग द्वारा अनुपूरक होना पड़ता है।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग्रन्थों का अध्ययन करेंगे तो वे कहते हैं कि ग्रन्थियां रीढ़ में है, जिनका वेधन सुषुम्ना नाड़ी द्वारा किया जाता है, जो रीढ़ के निचले भाग में लिपटी हुयी कुण्डलिनी से ऊपर की ओर जाती है।

जहाँ तक आपकी मित्र विमला का मत है, उसे लगता है कि उपनिषद् के अंत में इस मंत्र की व्याख्या भौतिक स्तर पर लाने की, रीढ़, हृदय, अथवा नाभि बिन्दु की चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा करना उस स्तर के साथ न्याय करना नहीं होगा, जिस स्तर पर इस उपनिषद ने सम्पूर्ण शिक्षा को बनाये रखा है। तब, विमला इस मंत्र को किस दृष्टि से देखती है ? उसकी एक अ-परम्परागत, अ-भारतीय बोध एवं दृष्टि है। क्योंकि विमला ने उपनिषदों का अध्ययन एक भारतीय के रूप में नहीं किया है। उसने यह अध्ययन एक मनुष्य के रूप में, इस पृथ्वी के नागरिक के रूप में, विश्व की मनुष्य जाति के एक सदस्य के रूप में किया है। उसने बचपन से अन्य कोई भूमिका नहीं जानी है, उसका अन्य कोई एकात्मीकरण नहीं रहा है। इसलिये बहुत विनम्रता से, वह इस मंत्र की एक मानवीय व्याख्या दे रही हैं।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस उपनिषद् में की गयी एक नाड़ी की, सुषुम्ना की बात सत्य के खोज की बात है। हमें इस मंत्र की व्याख्या आध्यात्मिक स्तर पर करनी है। आप व्याख्या को पुनः शरीर के स्तर पर नहीं ला सकते, उसकी आवश्यकता नहीं है। इससे उस विषय के प्रति न्याय नहीं होगा, जिस बिन्दु पर कठोपनिषद् हमें ले आया है। वह कह चुका है-यदेन अमृतं ब्रह्म समश्नुते। वह यथार्थता के साथ सम्मिलन की बात कर चुका है। तो क्या हम पुनः शरीर के स्तर पर आयेंगे? वह एक प्रकार की विसंगति होगी। इसलिये मुझे लगता है कि सौ नाड़ियों से संकेत आपकी इच्छाओं की ओर है। लोग कहते हैं कि इच्छा जीवन का वैश्विक तत्त्व है, परन्तु वह समस्त इच्छायें आपको नीचे की ओर, मानसिक अथवा ऐन्द्रिय स्तर पर ले जाती हैं। वह आपको विचारों की ओर ले जाती हैं, जो शरीर के बाहर से प्राप्त किये जाते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं, या फिर वह आपको पदार्थों की ओर ले जाती हैं। परन्तु यह एक नाड़ी है, एक प्रेरणा है, यदि वह न हो तो आप अध्यात्म के पथ की ओर प्रवृत्त नहीं होंगे। *सुषुम्ना नाड़ी वह प्रेरणा है, जो किसी व्यक्तिगत उपलब्धि की इच्छा द्वारा संदूषित नहीं होती। इस ऊर्ध्वगामी प्रेरणा का, जो व्यक्तिगत प्राप्ति की इच्छा से संदूषित नहीं होती, उसका होना आवश्यक होता है।* यदि सत्य की, मुक्ति की, मोक्ष की प्रेरणा न हो, तो व्यक्ति ऊर्ध्वगामी नहीं हो सकता। तब सौ प्रकार की इच्छायें आपको नीचे की ओर खींचती हैं, वे आपको मानसिक एवं ऐन्द्रिय के अन्धकार के पथ पर ले जाती हैं।*

यह एक प्रकार से स्वीकार करना है कि प्रेरणा के खिंचाव की आवश्यकता होती है परन्तु एक व्यक्तिगत उपलब्धि की इच्छा की नहीं। मात्र शाब्दिक समझ का निरुत्साह पथ, तथा रुखा-सूखा ज्ञान का पथ आपको ऊपर उठने की प्रेरणा-शक्ति नहीं प्रदान कर सकता। यह एक समतल विस्तरण की क्रिया नहीं है, यह ऊर्ध्वगामी उत्थान का पथ है। इससे आप स्वयं ऊपर उठते हैं और स्वयं से, एक पृथक अस्तित्व से परे चले जाते हैं। यह मानसिक, अतीन्द्रिय एवं आध्यात्मिक रूप से स्वयं से पार जाना है। यह उसकी प्रेरणा है जो किसी भी व्यक्तिक इच्छा से संदूषित नहीं है । इस मंत्र में उल्लेख की गयी सुषुम्ना नाड़ी का मुझे यह अर्थ जान पड़ता है ।

यमराज कहते हैं, 'नचिकेता, तुम इस नाड़ी का अनुसरण करो, वह तुम्हें प्रकाश के मार्ग पर, मुक्ति एवं ईश्वरत्व के पथ पर प्रोत्साहित करेगी, वह तुम्हारा पथ प्रदर्शन करेगी, तुम्हारी सहायता करेगी।'

अमरत्व की प्राप्ति

छठी वल्ली के अंत में, अंतिम से पहले मंत्र में कहा गया है, प्रदान

---

* *मैंने घंटों इस मंत्र पर ध्यान में व्यतीत किये हैं। जब कभी भी कठोपनिषद् के साथ सम्पर्क हुआ, तो शंकराचार्य से ले कर विवेकानंद तथा विनोबा द्वारा दिये गये व्याख्यानों एवं टिप्पणियों को अस्वीकार करने में संकोच हुआ। फिर भी, यदि अपने अनुभव के प्रति न्याय करना है, तो उन व्याख्यानों एवं समालोचनाओं को स्वीकार करना संभव नहीं है ।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की गयी शिक्षा को ग्रहण कर, उसका अनुसरण कर नचिकेता एकत्व के आनंद में विकसित हुआ। वह यमराज के पास गया था, वह उस घर गया था जो प्रकाश का घर है। यमराज सूर्य की सन्तान है, सूर्य दिव्य प्रकाश का प्रतीक है। नचिकेता उस प्रकाश के घर गया था, वहाँ उसे शिक्षा प्रदान की गयी, जिसे उसने बुद्धि एवं मन की सहायता से समझ लिया। उस निर्देशित योगविधि का अनुसरण कर, वह वहीं, उसी क्षण अमरत्व को प्राप्त हुआ। अमृतं ब्रह्म समश्नुते। वह जीवन के दिव्य स्रोत के साथ एक हो गया। वह उसके जीवन का सत्त्व हो गया। ब्रह्म समश्नुते अर्थात् नचिकेता ने ब्रह्मन् का आत्मसात किया, उसे उसका बोध हुआ। पहले उसे समझना हुआ, फिर योगविधि के पथ पर चल उसे देखना हुआ और फिर उसका आत्मसात हुआ। ब्रह्मविद् ब्रह्मणो भवति; वह जो ब्रह्मन् को देखता है, उसे समझता है, वह उसके साथ एक हो जाता है।

उपनिषद् कहता है, नचिकेता समान जो इन एक सौ पच्चीस मंत्रों में दिये ज्ञान को समझेंगें, विस्तार में दिये गये निर्देशों का अनुसरण करेंगें, वे भी अवश्य उसी एकत्व पर पहुँचेंगें। वे भी उसी व्यामिश्रित एकता को साकार करेंगे, जिसमें पुरुष एवं प्रकृति एक साथ हैं।

इसके साथ अंत होता है। एतद् हि अनुशासनम्। इसीके साथ शब्दों द्वारा शिक्षा देने की संभावना अंत होती है। यह उसकी सीमा है जो शब्दों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। वह जो शब्दों द्वारा कहा जा सकता है वह कहा गया। इससे आगे अब आपको अनुसरण करना है, अपना कर्म करना है।

इसीके साथ हमारा कठोपनिषद् का अध्ययन समाप्त हुआ है। मैं आशा करती हूँ कि योग पथ के अनुसरण का आरम्भ हुआ है। उपनिषद् के अध्ययन का भले ही समापन हुआ हो परन्तु वास्तव में उसका अनुसारण इस क्षण से आरम्भ होता है। अमरत्व यहाँ और इसी क्षण है। ईश्वरत्व ब्रह्मांड से अलग नहीं है, ईश्वर अथवा ईश्वरत्व आपसे अलग नहीं है। आपके नश्वर शरीर में ईश्वरत्व का अमृत समाया है। बस इतना ही।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कैसा प्रेरित करने वाला संदेश है ! आश्चर्य नहीं कि स्वामी विवेकानन्द को एक सौ आठ उपनिषदों में इसी उपनिषद् से सबसे अधिक प्रेम था। वह जहाँ भी जाते वहाँ इसका मंत्रोच्चारण करते। आश्चर्य नहीं कि श्री आद्य शंकराचार्य ने सभी उपनिषदों में इसे सबसे अधिक सम्पन्न कहा है।

इसीके साथ आपके और मेरे बीच के संवाद का अंत होता है। आपने इस उपनिषद् का अध्ययन करवाने को कह कर, मुझे एक शुभ अवसर प्रदान किया।

अभयं नः करोतु अंतरिक्षम्।

अभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।

अभयं पश्चात् अभयं पुरस्तात् उत्तरात् अधरात् ।

अभयं नोऽस्तु, अभयं मित्रात्, अभयं अमित्रात् ।

अभयं ज्ञानात् अभयं पुरोयतः

सर्वे मम आशा, अभयं भवन्तु ।

सर्वे मम आशा, अभयं भवन्तु ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरे प्रिय मित्र, मुझे मुझमें ही समायी उष्णता को व्यक्त करना सिखा दो। जैसे तुम उसे सम्पूर्ण विश्व पर फैलाते हो, मुझे भी प्रज्ञा को व्यक्त करना सिखा दो। जैसे तुम अन्धकार को दूर करते हो, मुझे भी अपने अन्तर की अज्ञानता के अन्धकार को दूर करने दो।

ॐ सह ना-ववतु। सह नौ
भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विना-वधीत-मस्तु मा
विद्विषावहै।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपनिष[illegible]स आंतरिक आशय को प्रकट करना चाहते है, वह हिन्दु समुदाय तक, भारतीय संस्कृति तक सीमित नहीं है; वह देश-काल व्दारा सीमित नहीं है ।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रह्मांड की पृष्ठभूमि पर उपनिषद् असंख्य ऊर्जाओं के नृत्य के लिपिबद्ध महाकाव्य हैं । उनके स्तोत्र ब्रह्मांड की सुव्यवस्था एवं समन्वय को समर्पित है, जो असंख्य ऊर्जाओं को संयम में रखे हुये हैं । इस समन्वय, सुव्यवस्था एवं आंतरिक संयम का संगीत मौन के आकाश में निःशब्द गूंजता है । शैली काव्य की है तथा पद्धति प्रतीकात्मक विवरण की है । अवर्णनीय आत्मविश्वास के साथ ऋषि-मुनि उस स्वयं सिद्ध किये, जिये हुये सत्य को उद्घोषित करते है, जो एक साथ ऐन्द्रिय, मानसिक एवं अधिनमानसिक के लिये महत्त्व रखता है ।

ऐसा प्रतीत होता है कि वेदों एवं उपनिषदों के वैश्विक जीवन व मनुष्य जीवन के विषय में वैज्ञानिक आविष्कार, इक्कीसवीं सदी के लिये पथ-प्रदर्शन करने जा रहे हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi